ब्रह्म-संहिता

ऐसी पुस्तक आज तक बनी नहीं अनमोल।
आयुर्वेद उपदेश मय लिखी हुई दिल खोल॥

रचयिता—

उपाध्याय, जसराज वैद्य,

ठि० मकराना चौक, जोधपुर।

(मेरी भावना)

लिखा ग्रन्थ कर भावना सुगम ब्रह्म विचार।
देता तुमको प्रेम से करना आत्म सुधार॥

प्रथम वृति	सम्वत्	जिज्ञासुओं के
१०००	१९९५	हितार्थ २॥)

पुस्तकें मिलने का पता—
राजस्थान सस्ती पुस्तकालय ब्यावर (राजपूताना)

हमारे निकलने वाले अन्य ग्रंथ रत्न ।

नाडी महा विज्ञान ।

इसमें नाडियों की उत्पत्ति और नाडियों से उत्पन्न अंग उपांग नाडियों का छेदन आदि भेद नाडियों का मर्म नाडियों के चक्र नाडियों के मस्तक मर्म ज्ञान चक्र नाडियों में सजीवन शक्ति की व्यापकता रोगों में नाडी देखने का ज्ञान नाडी के त्रिदोष बात पित्त कफादि का ज्ञान नाडी से काल ज्ञान नाडीसे स्वर ज्ञान स्वर ज्ञानसे शुभाशुभ दूत इत्यादि ज्ञान नाडी से मृत्यु परीक्षा आदि महा ज्ञान भरा हुआ है नाडी में पांच तत्वों का ज्ञान इस प्रकार यह नाडी ज्ञान का स्वांग पूर्ण ग्रन्थ है । कीमत १)

मृत्यु महा विज्ञान ।

इसमें मृत्यु की उत्पत्ति मृत्यु एक है या अनेक मृत्यु के काल अकाल के भेद मृत्यु काल के भेद अकाल के भेद काल मृत्यु के निमित्त नित्य भेद अकाल मृत्यु के भौतिक देवीक अध्यातमिक भेद प्राकृतिक भेद विकृत मृत्यु भेद मृत्यु के कारण रोगी से कारण वैद से कारण दूत से कारण शकुन से कारण मृत्यु परीक्षा आसन्न मृत्यु परीक्षा और आसु मृत्यु परीक्षा मृत्युओं की रोक इस प्रकार के इसमें अलौकिक विषय हैं ।

कीमत १

पारद नाम का मासिक पत्र ।

इस पारद नामके मासिक पत्र में पारद सम्बन्धी शोध मारण बन्धन वैधन आदि अष्टादस सस्कारों का अनुभव ज्ञ और पारद के जो सत कोटि अर्थात सौ करोड़ गुण

॥ श्री ॥

आयुर्वेद का मूल ग्रन्थ

अर्थात्—

ब्रह्म-संहिता

॥ मूले मूलां भावादमूलं मूलम् ॥

अर्थ-मूल जड़की नहीं होती सांख्य (६७) इस सिद्धांत

से मूल बिना मूल के ही होती है।

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो न विद्यते।

परात्मा विद्यते येन स वेदो वेद उच्यते॥

अर्थ-पंडित जन वेद को वेद नहीं कहते किन्तु जिससे

परमात्मा जाना जाय वही ज्ञानियों का लक्ष्य वेद है।

अन्वेषण कर्ता—उपाध्याय जसराज वैद्य,

लेखक—उपाध्याय नन्दलाल जिज्ञासु जारोंं

इस पुस्तक की दक्षिणा ! श्री राज राजेश्वर महाराज दिग्

अधिराजों श्री १०८ के लिये केवल एक सो अष्टोत्तर

रूप्याधर रौप्य मुद्रा १०८) और श्रीमानवरों के

लिये पंच रौप्य मुद्रा है और केवल जिज्ञा-

सुओ के लिये २॥) मात्रालागत ही है।

पुस्तक मिलने का पता—

उपाध्याय जसराज वैद,

ठि० मोहल्ला मकराना चौक जोधपुर (मारवाड)

(लेखक के वक्तव्य)
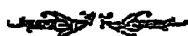
श्रीमाल महान पुरुषों ! महात्माओं विद्वानों वैदों और गृहस्थोः आप मेरे इस लेख पर अपनी विचार दृष्टि से अवश्य अवलोकन करेंगे।

आज कल इस शताब्दी में (New thought) नवीन विचारों का आंदोलन विश्व व्यापी हो रहा है। हरेक देश के विद्वान अपनी कला कौशलता और विद्याओं का नित्य नवीन खोज व आविष्कार कर कर के विपुल धन सुख शान्ति आरोग्य का नित्य नवीन उपाय निकाल रहे हैं और इन पर नवीन ज्ञान की श्रेणी से अनेक नही बलके हजारों की तादाद में नूतन ग्रन्थ लिख रहे हैं। जो हमारे रात दिन देखने में भी आरहे है। अब आप इसको ध्यान पूर्वक विचार कर देखिए कि हमारे मारवाड़ (मरु) देश के अतिरिक्त कोई भी देश न होगा कि जिसके विद्वान अपनी भाषा में अपने नवीन विचारों के ग्रन्थ न लिखे हों। परन्तु हमारे हमारी भाषा में वर्तमान काल में कोई भी विद्या अथवा कलाओं पर विद्वानों ने नवीन विचार के प्रकाश का लेखबद्ध ग्रन्थ नहीं लिखे जाते हैं जिस का कारण यह है कि हमारे देश में कला और विद्या का कोई भी विद्यालय नहीं है जिसके अभाव से देश की भाषा के साहित्य की उन्नति नहीं हो सकती

है। दूसरा कारण यह कि विद्वानों ने ग्रन्थ लेखकों के पास द्रव्य का अभाव क्योंकि अनवेषण के कर्त्ता को अपने आहार और विहार और प्रयोग करने के लिये प्रयोग शाला और पुस्तकालय के लिये कितने धन की जरूरत रहती है जिस के लिये राज्य की सहायता होनी बड़ी जरूरी बात है अब इसके अन्य कारणों को न बता कर सीधा अपने ध्येय विषय पर आता हूं।

विश्वके प्रत्येक शास्त्रों को यदि विचार की दृष्टि से देखा जाय तो वह चार प्रकार की श्रेणी में ही पाये जाते हैं। या तो वह धर्म शास्त्र, अर्थ शास्त्र, कामशास्त्र अथवा मोक्षशास्त्र इनही वर्गों में पाये जायेंगे और ये ही चारों पदार्थों को प्रत्येक मनुष्य प्राप्त करता रहता है।

इन पदार्थों की प्राप्ति मनुष्य जब ही कर सकता है कि जब तक वह आरोग्य है। इससे प्रत्येक मनुष्य मात्र का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी आरोग्योन्नति करे क्योंकि आरोग्यता ही चारों पदार्थों की जड़ है अर्थात मूल है। इसी को चरक संहिता के प्रथम अध्याय सूत्र स्थान में ऋषियों का प्रस्ताव है कि धर्मार्थ. काम मोक्षाणा-मारोग्यं मूलमुत्तमम् ॥ इससे यह मतलब निकलता है कि उपरोक्त चारों पदार्थों के शास्त्रों की जड़ आरोग्य शास्त्र है। अब हम को यह विचारना है कि किन २ कारणों से आरोग्य उन्नति हो सकती है। इसके लिये आयुर्वेद शास्त्र का पढना पढाना तथा औषधियों का प्रयोग व प्रचार करना

कराना प्रत्येक मनुष्य का चो राजा और प्रजा का कर्तव्य है।

इसी लिये आयुर्वेद को चारों पदार्थों के शास्त्रों से भिन्न शास्त्र माना है और इन चारों पदार्थों को भी साधना और प्राप्ति केवल आयुर्वेद शास्त्र द्वारा हो सकती है। उस हालत में जब कि आयुर्वेद के अन्तरगत चारों शास्त्रों का समावेश हो। हमने इसी उदेश्य को पूरा करने के लिये आयुर्वेद शास्त्र को नवीन विचार श्रेणी से एक ही शास्त्र द्वारा पांचों पदार्थ अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और आरोग्यता की प्राप्ति हो ऐसी जिज्ञासा पिता श्री से की और उन्होंने मेरी जिज्ञासा पूर्ति के लिये जो उपदेश मुझको दिये उनको ही मैंने अपनी नव पल्लिवत लेखनी द्वारा लेखबद्द किये हैं जो आप के सन्मुख उपस्थित हैं।

उपरोक्त चारों पदार्थों का मूल होने से ही इस ग्रन्थ का नाम आयुर्वेद का मूल ग्रन्थ रखा है और ब्रह्म से प्रकृति प्रमाणु और जीव तक के तत्व ज्ञान का समावेश होने से इस को ब्रह्म संहिता ऐसा नाम भी रखा है। इसमें वेदांत दर्शन आदि आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों की स्पष्ट शंका समाधान सहित व्याख्या की गई है।

इसमें नीचे लिखे प्रत्येक विषय का नवीन श्रेणी से प्रतिपादन किया गया है सृष्टि रचना क्रम सिद्धांत युग कल्प और मन्वन्तरों का सिद्धांत अव्यक्त माया, व्यक्त माया मूल माया, गुण माया, प्रकृति माया, भूत माया, मोह माया

और रूप माया, आदि माया सिद्धान्त त्रिगुण सत्व, रज और तम पंचभूत गुण और भूतों का सिद्धांत ।

अव्यक्त पुरुष, व्यक्त पुरुष, समष्टि पुरुष, व्यष्टि पुरुष, आदि पुरुष ज्ञान की विभक्तियोंका सिद्धांत अन्तःकरण चतुष्ट और प्राण चेतना वाणी अवस्था आदिकों का सिद्धांत प्रमाणु, प्रमाणु रचना सप्त लोकों की उत्पत्ति आदि और सूर्य आदि ग्रह और नक्षत्रों की उत्पत्ति और तत्व ज्ञान और सूर्य और सूर्य चक्र का सिद्धांत ज्ञान द्रव्य ज्ञान पिण्ड और ब्रह्माण्ड ज्ञान सप्त पिण्ड ज्ञान,कारण, पिण्ड ज्ञान,आत्मा पिण्ड ज्ञान हिरण्य गर्भ, ज्ञान अध्यात्मा अधी देवी ज्ञान, अधी भूत ज्ञान वैराट ज्ञान छाया ज्ञान मूल प्रकृति ज्ञान वासन पिण्ड ज्ञान स्थूल पिण्ड ज्ञान सिद्धिस्थान में क्रिया रूप विकार आदि सिद्धियां सत्व सिद्धियां ज्ञान रुप सिद्धियां आदि अनेक अद्भूत सिद्धियां इसके अलावा बाह्य जगत आन्तर जगत आदिकों का सार और गुप्त भेद निकाल कर रख दिया गया है। सामर्थ्य जिज्ञासा अभ्यास श्रद्धा ब्रह्म आत्मा परमात्मा जीवात्मा कर्म उपासना ज्ञान मंत्र-लय-हठ-राज आदि योग। यम नियमादिकों का पूर्ण विवेचन अष्टादस सिद्धि नव निद्धि सुख शान्ति भूत भविष्य आदि त्रिकाल ज्ञान दिव्य दृष्टि विश्व दृष्टि सूक्ष्म दृष्टि पर काया प्रवेश, पर चित्त ज्ञान आर्कषण विर्कषण सम्मोहन वसीकरण रोग निवारण अमर तत्वादि जो चाहो सो साधन करने के लिये अमोघ शक्ति अप्रचल प्राप्त करने का सरल और सीधा मार्ग दिखाया गया है जिस को बिना गुरु की इस ग्रन्थके अध्ययनके द्वारा कर सक्ता है। जिस से थोड़ परिश्रम एवम समय में इच्छित

साध्य करके सिद्ध बन सका है एवं पूर्ण वदान्त का ज्ञान होकर परमात्मा प्राप्ति का राज मार्ग मिलता है और अखण्ड सुख शान्ति का लाभ होता है। अनेक खोज और अनुभव के साथ सप्रमाण-युक्त सिद्ध विधियों के अनुसार बिल कुल नये ढंग पर इस ग्रन्थ को तैयार किया गया है। इसके पढने मात्र ही से आपको स्वयम विदित हो जायगा कि पुस्तक क्या है ? सुख शान्ति आनन्द उत्साह आरोग्य बल ऐश्वरीय का खजाना है अमोघ विद्याओं का भाण्डागार है एवं मोक्ष प्राप्ति का महा द्वार है। जो पुण्यात्मा [illegible]यशाली धार्मिकों के भाग्य उदयोदय से ही इस ग्रन्थ को पढने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

मेरा निवेदन है कि मनुष्य मात्र भूल का पात्र है इसी लिये यदि इसमें किसी तरह की त्रुटियां अवश्य होन संभव है जिसको आप मेरे प्रति जिज्ञासु जान कर सह हर्ष क्षमा करेंगे जिस प्रकार बालक की तोतली (अटलाती हुई) वक्तव्यता से मुग्ध होते हो, इसी प्रकार से मेरी जिज्ञासावस्था की लेखनी से अवश्य आप मुग्ध होवोगे।

आपका लेखक—
उपाध्याय नन्दलाल शर्म्मा.

तीसरी जनपदोध्वंसनिय अध्याय में भगवान आत्रेयन अपने शिष्य अग्निवेश को यह बताया है कि त्रेतायुग में अधर्म के कारण मनुष्यों को रोगादिक व्याधियों ने आ घेरा था जिस से मनुष्यों की दीर्घ आयुक्षय होकर जनपद प्रजा अकाल का ग्रास बनने लगी।

इस से साबित होता है कि त्रेत्रा से पहले युगों में न तो रोग और व्याधियां ही थी और न मनुष्यों को आयुर्वेद की आवशक्ता ही थी। क्यों कि आवश्यता से आविष्कार होता है यह सिद्ध नियम है। अब युगान्तरों के इतिहासों को खोजने से जो पुराणों में भरे पड़े हैं ब खूबी हरेक युग मन्वतन्र और कल्पों का हाल है जिन को इस स्थल पर लिखने की आवशक्ता नही है परन्तु कुछ नमूने की तौर पर यथा प्रयोजन लिख देते हैं। सतयुग में मनुष्यों को दैविक सिद्धि थी जिस के द्वारा मनुष्य देव संकल्प की इच्छा मात्रा करने से ही कामना पूर्ण होती थी और प्रत्येक पदार्थ इच्छा मात्रा से ही इच्छित होजाता था यहां तक कि धन दारा पुत्र प्रोत्र आदि सब इच्छा मान ही संकल्प से प्रकट हो जाते थे। सुख दु:ख शीतोष्ण क्षुधा पिपासा आदि द्वंन्दु कुछ नहीं थे। न राग द्वेष मान मोह आदि ही थे आयु बल विपल और अतुल्य थे। देवता और देव ऋषी जिन से साक्षात मिलते थे। वे मनुष्य खुद सत्य ऋजुता आनृ संश्य दान इन्द्रिय दमन नियम तप उपवास ब्रह्मचर्य आदि आदि वर्तों से युक्त होते थे। ऐसा सतयुग का समय था।

इस के बाद द्वापुर में मनुष्यों में से संकल्प सिद्धि नष्ट

हो गई और इस के अभाव में परजंन्य उत्पन्न हुये जिन से मनुष्यों को इच्छित पदार्थ मिलने लगे जब इन वृक्षों का नाम कल्प वृक्ष पड़ा क्योंकि संकल्प सिद्धि नष्ट होकर कल्प सिद्धि प्रकट हुई जिस से मनुष्य अपने इच्छित भोगों को वृक्षों से प्रार्थना द्वारा प्राप्त करने लगे यहां तक कि जैसे पक्षागण वृक्षों में जिस प्रकार अपने घर (घोसले) बनाते रहते हैं उसी प्रकार से मनुष्यों को यह वृक्ष सब कुछ देदेते थे यहां तक कि कपड़ा जेवर आहार विहार आदि जो कुछ वृक्ष से मांगते वह उस वृक्ष से प्रकट होजाता था। किसी को कुछ भी कमाने का श्रम करने अथवा पराधीनता कर कहीं नही जाना पड़ता था। जो कुछ कामना करते वह उस वृक्ष से तुरन्त प्रकट हो जाता था। प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रवृति के माफिक स्वतंत्र विचरण किया करता था इस प्रकार द्वापु रमे सुख का समय बढ़गया था।

इस प्रकार द्वापर के वीतजाने पर मनुष्यों के अत्याहार के कारण शरीर मे स्थूलता हो गई स्थूलता से आलस्य और आलस्य से संचय की प्रवृति बढी और संचय से लोभ प्रकट हुवा और लोभ से पर धन ग्रहण और पिसूनता आदि दोष प्रकट होगये। लोभ के बढने से अविद्रोह और अविद्रोह से मिथ्या बचन (झूठ बोलना) आदि दोषों के बढ जाने से मनुष्य परस्पर उन वृक्षों को एक दूसरे से जबरन छीन ने लगे और उन वृक्षों को नष्ट करने लगे इस प्रकार द्वापुर के अन्त तक वह सिद्धि दायक वृक्षों को प्राय नष्ट कर दिये। इस प्रकार द्वेषाअग्नि के द्वारा वह सिद्धि दायक वृक्ष पृथ्वी से अलोप हो गये। इस प्रकार सिद्धि दायक वृक्ष नष्ट हो

जाने से और दोषों के प्रकट हो जाने से द्वन्द मैथुन की उत्पत्ति हुई।

त्रेतायुग में काल कर्म से मनुष्यों में राग उत्पन्न हुआ जब राग उत्पन्न होते ही मानव स्त्रियों के रज (ऋतु) अर्थात् मासिक धर्म प्रत्येक मास में प्रारंभ हुवा फिर इसी के मैथुन के द्वारा मैथुनी प्रजा की उत्पति हुई। फिर इन में भूख प्यास काम क्रोध गर्मी शरदी आदि द्वन्दों की उत्पत्ति हुई।

फिर इन द्वन्द दुखों को निवारण करने के लिये मनुष्यों ने घर और नगर और बड़े बडे किले आदिकों का निर्माण करने लगे ये सब घर आदि उन सूखे वृक्षों को देख कर उन की रचना के माफिक उन्ही कल्प वृक्षों की लकड़ियों से बनाये जैसे वृक्षो की ऊची नीची शाखायें थीं उसी के माफिक घरों में भी छवन कडी आदि लगाई। फिर मनुष्य अपने निरबाह के लिये (भूख प्यास) को मिटाने के लिये उपाय की चिन्ता करने लगे क्यों कि जिन वृक्षों से उन को जो मधुरस मिलता था वह सूक कर विनष्टता को प्राप्त हो गये थे। इस से सब लोग भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल होउठे इस प्रकार आपदा ग्रहस्त हो जाने से सबलोग ऋषि तपस्वियों के पास जाकर अपने दुखों क निवारण का उपाय पूछने लगे। फिर ऋषियों ने ब्रह्म यज्ञ किया। विभू प्रमेष्टी भगवान् ब्रह्मा ने देखा तो सचमुच ही वसुन्धरा निर बीज होगयी है। जब ब्रह्मा ने सुमेर पर्वत जो पृथ्वी का बछडा है उसको अपने आधीन कर पृथ्वी को दुहा तब भूमाता के गर्भ में से पुन्न १४ प्रकार के वृक्ष और १७ प्रकार की औष-

धियां प्रकट हुई। इस प्रकार ये एक बार प्रकट होकर फिर अंकुरित नही हुई। फिर से इन को जिलाने के लिये भगवान् ब्रह्माने मनुष्यों को एक कर्मज्या (हस्त सिद्धि) दी जबसे हल से ज्योति बोई जाने ओषधियों (अन्न) के बीज पुनः उत्पन्न होने लगे इस प्रकार त्रेता युग ने सब प्रकार की ओषधियों का प्रादुर्भाव मनुष्य लोक में हुवा। इस प्रकार अन्न के द्वारा शरीर में अन्न मय दोषों की (अर्थात्) वात, पित, कफ. की त्रिदोषों की उत्पत्ति हुई। फिर इन दोष के क्षयवृद्धि संचय प्रकोप आदि के द्वारा रोगों की उत्पति हुई और रोग दोष के कारण मनुष्यों की आयु अल्प काल और दीर्घ जीवन काल क्षीण हाने लगा और प्रजा रोग शोक में व्याधि ग्रस्त हो गये। तमाम लोग अकाल में ही मरने लगे। इस प्रकार प्रजा का हाल देख कर पुन. ऋषी गण अपने तप उपवास पठन पाठन ब्रह्मचर्यादि नियमों में विघ्न होने लगा तब पुण्य कर्म्मा महर्षिगण इस पर विचार करने के निमत्त हिमालय के सुन्दर स्थान पर एकत्रित हुवे, और उपरोक्त विषय पर विचार करने लगे कि इस लोक में आरोग्यता ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन पदार्थों के प्राप्त करने का प्रधान उपाय है और रोग उक्त पदार्थों का और जीवन का भी नाश करता है इस लिये देह धारियों के लिये यह रोग रूप महान् विघ्न उत्पन्न हुवा है अब इस के नष्ट करने का कौन सा उपाय कर्त्तव्य है।

सब महर्षियोंने दिव्य दृष्टिसे निश्चय किया कि सब प्रकार से एक इन्द्र ही इस विषय में शरण लेने योग्य है क्योंकि देवाधिपति ही इन रोगों की शान्ति के निमत्त यथावत्

उपायों को बतावेंगे। परन्तु इस काम को पूरा करने के निमित्त योग्य पुरुष का निर्धारण करना चाहिये कि जो सह स्राक्ष के लोक और भवन में जाकर इन उपायों को यथावत पूछे और जाणे। ब्रह्मन शान्ति और नियम के मूर्तिमान निधी स्वरूप तप के तेज पुंज भारद्वाज ऋषी ही इस काम के लिये सर्व समिति से नियुक्त किये गये।

भारद्वाज अपने तपोबल के प्रभाव से इन्द्र भवन में पहुंच कर देवो और देवऋषियो के मध्य में बैठे हुवे तेज समुह इन्द्र के दर्शन कर निकट जाकर आशीर्वाद दिया कि आप की जय हो। फिर प्रणाम करके सर्वगुण सम्पन्न ऋषि ने ऋषियों का सन्देश कह सुनाया और प्रार्थना की कि हे अम रेश्वर सम्पूर्ण देहधारियों को भयभीत करने वाली व्याधियों मनुष्य लोक में उत्पन्न होगई हैं सो उनकी शान्ति का उपाय यथा वत कहिये। भगवान इन्द्रने ऋषि का प्रशस्त अभिप्राय जान कर थोडे ही में बहुत संक्षेप से उसे सम्पूर्ण आयुर्वेद पढा और सिखा दिया।

महर्षि भारद्वाज ने अपने एकाग्रता चित्त से इस अपार और अगम्य आयुर्वेद शास्त्र का बहुत थोडे काल में यथावत ज्ञान प्राप्त कर अत्यिन्त प्रसन्न होकर मनुष्य लोक में आकर ऋषियों और ऋषि बालकाओं को यथावत उपदेश देकर अध्ययन और अभ्यास कराया और इस प्रकार मनुष्य लोक में आयुर्वेद को फैलाया गया। इस प्रकार त्रेत्रा युग में आयु-र्वेद का हमारे मनुष्य लोक में आगमन हुवा है। यह बात आयुर्वेद के चरक नाम के ग्रन्थ में भी है और पुराणो में भी

है परन्तु सुश्रुत में यों कहा कि जब इन्द्र ने मृत्यु लोक के मनुष्यों को व्याधि परिपीडित देख कर दया करके श्री धन्व-न्तरी से कहने लगे कि महाराज मेरी यह प्रार्थना है कि आप सब योग्य हैं इस से प्राणियो पर उपकार करो क्योंकि उपकार के लिये ही भगवान को बारम्बार अवतार रूप धारण करने पडे इसी लिये आप भी पृथ्वी पर जाकर काशी पति काशी के राजा होकर रोगों की शान्ति के हित् आयुर्वेद का प्रकाश करो इन्द्र का यह वचन सुनकर श्री धन्वन्तरी का अवतार काशी के राजा हुवे तब विश्वा मित्र ने अपने पुत्र को आज्ञा दी कि वह काशी के राजा दीवोदास जो धन्व-न्तरी का अवतार है उन से पढकर मनुष्यों के हित के हेतु आयुर्वेद का प्रकाश करो। जब विश्वामित्र के पुत्र पिता की आज्ञा अनुसार काशी राजाके पास जाकर आयुर्वेद को आदर से ध्यान पूर्वक श्रवण किया इसी लिये इन की सुश्रुत के नाम से विषेशण लग गया और इन के बनाये हुवे ग्रन्थ का नाम भी सुश्रुत पडा फिर इन्होंने आयुर्वेद को अन्य ऋषि बालकों को भी पढाया यह आयुर्वेद का पूर्व का इतिहास है।

अब हमारे सामने स्वभाविक यह विचार उत्पन्न होता है कि त्रेतायुग में आयुर्वेद के मुख्य दो आचार्य हैं। भारद्वाज और काशी पति दीवोदास परन्तु इन दोनों का बनाया हुवा कोई ग्रन्थ आज की शताब्दी में नहीं हैं। लेकिन इनके अन्य शिष्यों में एक तो सुश्रुत के बनाये हुवे ग्रन्थ को सुश्रुत संहिता कहते हैं वह उपलब्ध है परन्तु इस में भी बहुत से मतों का सन्देह है कि यह ग्रन्थ खास सुश्रुत प्रणित ग्रन्थ नहीं है बल्के कहते हैं कि नागा अर्जुन नाम के सिद्ध का

बनाया हुवा है क्यों कि शरीरिक स्थान की चौथी अध्याय में जो वासना की चित्त वृतियों की है उस में यह साफ कहा है कि यह नागा अर्जुन की बनाई हुई है। दूसरे में यह कि सुत्र स्थान के प्रथम अध्याय प्रथम मन्त्र में भी यही कहा कि जिस प्रकार भगवान धन्वन्तरीजी ने अपने शिष्य सुश्रुत को आयुर्वेद का उपदेश दिया है उसी प्रकार अब हम भी आयुर्वेद उत्पति नाम की व्याख्या करते हैं। इस से यह अभी प्राय स्पष्ट सिद्ध है कि चाहे नागा अर्जुन ने अपने शिष्यों को सुश्रुत सहिंता का उपदेश दिया हो इसी से इस ग्रन्थ को भी सुश्रुत नाम से संबोधित किया गया है। दूसरे चरक सहिंता है यह भी भारद्वाज प्रणित नही है बलके भारद्वाज के मुख्य शिष्य अत्रीमुनि के पुत्र पुनर्वसु से अग्निवेश अग्निवेश से अन्य आचार्यो ने भी आयुर्वेद का प्रकाश किया बताते हैं। उसी अग्निवेश के दिये हुवे उपदेशों की ही यह चरक सहिंता है। इस के विषय में भी कई मत मतान्तरों के किमवदन्ति कथा है। कोई चरक को पातंजली कृत मानते है कोई इसको शेष का अवतार मानते हैं परन्तु यह सब वृथा के वादों से लेख बढाना है परन्तु चरक मुनि अपने समय में अवश्य ही प्रमाणिक आचार्य हुवे थे। इसके अलावा अन्य ऋषियों ने भी आयुर्वेद के ग्रन्थ रचे हैं परन्तु इन दो ग्रन्थों के परिपाठी को नही पहुच सके हैं।

(ग्रन्थ रचना की आवशक्ता)

सम्भव है कि त्रेता में ग्रन्थ आज कल की भांति नहीं रचे जाते होंगे क्योंकि उस युग के मनुष्य मेधावी और स्मृति मान हुआ करते थे। उनको सम्पूर्ण शास्त्रों के सूत्र पाठ मुख जवानी याद रखते थे। न तो उस वक्त आज कल की भांति कागज और कलम स्याही थी न प्रेस आदि की मशिनरी ही थी, जब मनुष्य अल्प स्मृति मान होने लगे जब इनको लेखन कला की आवशयक्ता पडी और इन्हों ने प्रथप वृक्षों की छाल और पत्तोपर वृक्षो के रसों के द्वारा लिखना प्रारम्भ किया। इसके बाद फिर धातुओं के पत्रों पर लिखना प्रारम्भ किया फिर सूत्र पट अर्थात् कपडे पर मसाला लगा कर विविध प्रकार के रंगों द्वारा लिखना प्रारंभ किया अथवा इसके बाद के युगों में लकडी के तखते बनवा कर उस पर रंग चढा कर ग्रन्थ लिखना प्रारंभ किया इसके बाद कागज का आविष्कार हुवा और उस पर लिखना शुरू किया इसके बाद लकडे का प्रेस यंत्र बनाकर पत्थर पर लिख कर छापना शुरू किया इस प्रकार ग्रन्थ लिखने की शैली चलती आई है। हमारे आयुर्वेद विद्याके मन्त्र सूत्र श्लोक भी इसी श्रेणी में परिवर्तन होते आये हैं और आज हमारे सामने भी वह प्रेस के स्पष्ट अक्षरों में छपे हुवे ग्रन्थ प्रत्यक्ष सामने मौजूद हैं।

महर्षि भारद्वाज के पुनर्वसु और पुनर्वसु से अग्निवेश, भेल जतूकर्ण पाराशर हारीत और क्षारपाणी ये छै आचार्य भारद्वाज परिपाठी के हैं और धन्वन्तरी के सुश्रुत औपधेनव,

वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत करविर्य गोपुर रक्षित इन आठ ऋषि धन्वन्तरी परिपाठी के हैं। इन्होने अपने २ नाम के ग्रन्थ रचे होंगे परन्तु इन दोनों परिपाठी के दो ग्रन्थ पुखता और विस्तार पूर्वक हैं। जिन में चरक संहिता और सुश्रुत संहिता हैं ये दोनों ग्रन्थ आयुर्वेद के सर्वांगं पूर्ण ग्रन्थ नहीं हैं। क्योंकि इन्ही ग्रन्थों में शल्य, शालाक्य कायचिकित्सा भूतविद्या, कौमार, भृत्य, अगद, रसायने, और बाजी करण ये आठ अंग बताये गये हैं। परन्तु वह इन में नही है। सुश्रुत तो अपने को शल्य अंग का ही वर्णन करना बताता है और चरक अपने को कायक चिकित्सा का वर्णन करना बताता है। इस प्रकार दोनों एक एक अंग के ज्ञाता हैं इसी लिये इन को सर्वांग नहीं कह सक्ते।

इसके अलावा एक वागभट्ट नाम का ग्रन्थाकार ने एक अष्टांग हृदय नाम का ग्रन्थ रचा है इसे वाग्बट्ट भी कहते हैं परन्तु इसने कोई नईरचना नही की उसने स्वयंम अपने में ग्रन्थ लिखा है कि मैंने चरक सुश्रुत आदि ऋषियोंकेरचे हुवे ग्रन्थों के विषयों का ही इस में वर्णन किया है। यह ग्रन्थ कर्त्ता आज से २००० वर्ष पहले हुवा बताते हैं।

अब हमारे सामने चरक और सुश्रुत इन दो ही ग्रन्थों की विचारणा सिद्ध होती है। इस लिये अब इन दोनों की ही आलोचना को कहते हैं। बारम्बार की आलोचना को ही समालोचना कहते हैं। प्रत्येक ग्रन्थ की बाहिरी और आंन्तरिक ये दो प्रकार की समालोचना होती हैं। वह पक्षपात रहित होनी चाहिये।

ग्रन्थ के ऊपरी समालोचना में यह है कि इस ग्रन्थ में भाषा सरस है या निरस है और शब्दों के रचना पर व्याकरण पर ध्यान दिया गया है या नहीं और पुनरावृति आदि दोषों को निकालना इस प्रकार से बाहरी समालोचना करते हैं। इस प्रकार के ग्रन्थ के मर्म रहस्य मथितार्थ और कर्त्ता का आशय दूर रह जाता है न ग्रन्थ मूल सिद्धान्त हाथ आता है। वह केवल उपरी परीक्षा में ही मोहित हो जाते हैं। जैसे कामातुर पुरुष नव योवना स्त्री के रूप और लावण्यता की सुन्दरता को ही देख कर मोहित हो जाते हैं लेकिन उसके आन्तरिक गुणों अथवा अवगुणों से सर्वदा अबोध ही रह जाते हैं। परन्तु जो आन्तरिक आलोचना वाले ग्रन्थ को त्रुटियों की दृष्टि से नहीं देखते वह ग्रन्थ के मूल अन्वेषणो की और लक्ष रखते हैं कि इस ग्रन्थ कर्त्ता का आशय क्या था। किस हेतु और प्रयोजन से यह ग्रन्थ लिखा गया है इसमें किन किन मतों का उल्लेख है अथवा इसके विषय सिद्धान्त किन किन ग्रन्थों के आधार पर हैं और वह कहां से लिये गये हैं। ग्रन्थ का प्रमेय क्या है किन सिद्धान्तों का इसमें क्या रहस्य खोला गया है। ग्रन्थ कर्त्ता का स्वमत क्या है इत्यादि अनेक मर्मों का ज्ञान जानना ही ग्रन्थ की आन्तर आलोचना है।

इसी प्रकार अब हम चरक और सुश्रुत इन दोनों ग्रन्थों की आन्तरिक समालोचना का संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

सुश्रुत की समालोचना। यह ग्रन्थ १८६ अध्याय और सूत्र, निदान, शारीरिक चिकित्सा, कल्प और उत्तर इन छै स्थानों में विभक्त है और इस में ११२० रोगों की व्याख्या

है। इसके सूत्र स्थान की १×२८×४१×४२×४० इन अध्यायओं में द्रव्यज्ञान वर्णन है जो द्रव्यशास्त्र वैशैषीक की है और इसी स्थान की २४ वीं व्याधी समुद्देशीय नामकी अध्याय सांख्या शास्त्र की है जिस का वर्णन सांख्याके प्रथम सूत्र में है। शारीरिक स्थान की १० अध्याय है जिस में सांख्या के पुरुष और प्रकृति के पचीस तत्वों का वर्णन किया गया है चेतना और सूर्य चक्र का भी वर्णन वहुत सूक्ष्म और चित्र स्वरूप है। वासना की चित्त प्रकृतिओं का वर्णन नागा अर्जुन कृति बहुत ही उत्तम है। उत्तम स्थानकी ६५ वीं अध्याय तांत्रिक युक्ति है वह न्याय दर्शन की है इस प्रकार इस ग्रन्थ की नियुक्ति की गई है।

चरक समालोचना। यह ग्रन्थ सूत्र निदान, विमान, शरीर, इन्द्रिय चिकित्सा, कल्प और सिद्ध इन आठ स्थानों और १२० अध्याय में विस्तारित किया गया है।। सूत्र स्थान की १× अध्याय में द्रव्य ज्ञान वर्णन किया गया है वह वैशेषिक का है और ८ वीं इन्द्रियो पक्रमणीय अध्याय में जो इन्द्रिय और विषयों का ज्ञान है वे भी वैशेषिक का है। विमान स्थान में तीसरी जन पदोध्वमनीय अध्याय है वह अर्थ शास्त्रों की है। और इस का विस्तार पूर्वक ज्ञान इस मे नहीं है। रोग विशेषज्ञ चौथी अध्याय वह न्याय शास्त्र की है और इसी स्थान की रोगौनिक जो छठी अध्याय है वह सुश्रुत के रोगौनिक से भिन्न है इसके रोग भेद और ही प्रकार से बताये गये है। विमान स्थान की आठवी अध्याय में पूरा पूरा न्यायशास्त्र का वर्णन है जिस में वादी और

प्रति वादी के लक्षण और सभा के भेद और आचार्य आदि के भेद भली प्रकार से समझाये गये हैं। शारीरिक स्थान की रचना सुश्रुत के शारीरिक ज्ञान से बिलकुल भिन्न हैं इस में पुरुष अव्यक्त ब्रह्म ज्ञान आदि कर्त्ता के अधिष्ठानोंका अच्छा प्रतिपादन है योग और मोक्ष का भी वर्णन है और इसी स्थानकी पांच वीं अध्याय में पिण्ड और ब्रह्माण्ड का वर्णन है और चित्त की प्रकृतियों और निवृतियों का भी ज्ञान है। इन्द्रिय स्थान में विकृतियों का ज्ञान और आसन्न मृत्यु आसु मृत्यु आदि मृत्यु ज्ञान का अच्छा प्रति पादन है। चिकित्सा स्थान में रोगों के हेतुओं का बहुत ऊंचाज्ञान और चिकित्सा का अच्छा ज्ञान दिया गया है जिस से चिकित्सक का बोध होता है,इस का कल्प स्थान अपूर्ण है।

उपरोक्त समालोचना से दोनों ग्रन्थों के अन्दर अन्य ग्रन्थों का समावेश है यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि और जब तक सांख्या वैशेषिक न्याय वेदान्त योग आदि दर्शनों को नही समझेगा जब तक सुश्रुत और चरक का भी समझना दुर्लभ है।

अब हम एक ऐसे ज्ञान का वर्णन करते हैं जिस ज्ञान में सम्पूर्ण ज्ञानों और विद्याओं का समष्टि कर्ण होजाता है अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान और विद्यायें एक ही ज्ञान के प्राप्त करने से स्वयम आजाती हैं क्योंकि उसी एक विद्या की सब उपांग विद्या हैं जैसे भिन्न २ रोगों और शरीर के भिन्न २ अव्यवों का भिन्न २ ज्ञान और रोग है परन्तु वह सब ही एक शरीर में समष्टि रूप से हैं इस लिये यदि हम समष्टि शरीर को

ज्ञान लें तो फिर हम को भिन्न २ रोगों के जानने की क्या आवश्क्ता है। क्योंकि जब समष्टि ज्ञान को जानने पर व्यष्टि ज्ञान स्वयम ही आजाता है। इसी प्रकार भिन्न २ शास्त्रों के ज्ञान और भिन्न २ विद्याओं को न जान कर केवल एक ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म विद्या को जानने से सम्पूर्ण शास्त्र और विद्याओं का ज्ञान स्वयम ही आजाता है क्योंकि ब्रह्म ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञानों का समष्टि ज्ञान है और ब्रह्म विद्या सम्पूर्ण विद्याओं की समष्टि विद्या है इस लिये यदि एक ब्रह्म ज्ञान के जानने से अन्य ग्रन्थों और शास्त्रों के जानने की फिर कोई आवश्क्ता नही रहती है वह खुद ही हरेक शास्त्र का ज्ञाता नहीं बलके तत्त्व ज्ञाता नही बलके वह स्वयम कर्त्ता बन जाता है।

इसी लिये इस ग्रन्थ में उस ही समष्टि ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने का सरल और सीधा उपाय बताया गया है जिसके सिद्ध करने पर अन्य शास्त्रों को जानने की कोई जरूरत नही रहती बलके वह खुद ही सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता और कर्त्ता बन जाता है और सम्पूर्ण जिज्ञासा और सन्देह निवृति हो जाती हैं। इसी लिये इस शास्त्र का नाम भी मूल ग्रन्थ रखा है जिसका कारण यह कि सर्व शास्त्रों की मूल ही परा विद्या है और इस में परा विद्या का पूरा ज्ञान है और ब्रह्म संहिता के रखने का कारण यह कि इसमें ब्रह्म ज्ञान का प्रति पादन है और आयुर्वेद के रखने का कारण यह कि सम्पूर्ण आयु (जीवन) की चेतना का ज्ञान इसमें समावेश किया गया है इसी से इसका नाम आयुर्वेद का

मूल ग्रन्थ रखा गया है जिसको जानने से आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता बन कर आयु के हिताहित को जान सका है।

हमारे भावीकोष में से आने वाले कार्य के ग्रन्थ। नाडी वेदक मृत्यु विज्ञान, चिकित्सा पद्धति। व्याधी दर्शन, राज वैद, राज विद्या की अष्ट कला खेल, और एक पारद नाम का मासिक पत्र निकलेगा जिस की वार्षिक फीस १) होगी पत्र का उद्देश्य पारद के गुणो का वर्णन करना और पारद से उत्पन्न हुवे सम्पूर्ण रस उपरस धातु उपधातु बनाने की विधियां अनुभूत होंगी। आप शीघ्र ग्राहक बन जाइयेगा ताके पत्र शीघ्र प्रकाशित होजावे।

आपका—

उपाध्याय जसराज वैद

मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

लेखक—

उपाध्याय नन्दलाल
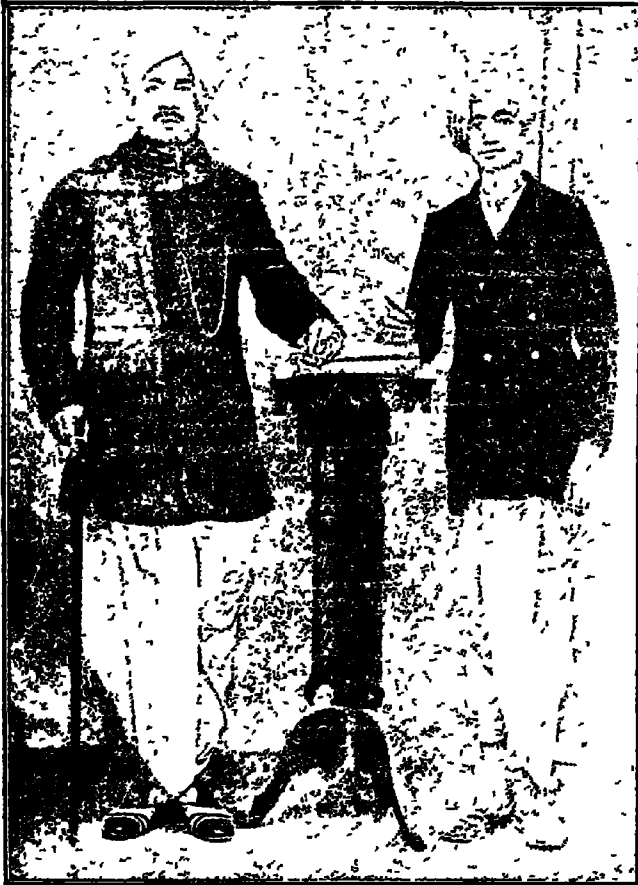
अन्वेषण कर्त्ता—

उपाध्याय जसराज वैद

आयुर्वेद का मूल ग्रंथ

लेखक	अन्वेषण कर्त्ता
उपाध्याय नन्दलाल	उपाध्याय जसराज वैद

आयुर्वेद के मूल ग्रंथ की विषयानुक्रमणिका।

विषय	पृष्ठ
सृष्टि रचना कर्म सिद्धान्त	१
स्वाभाव वादियो का सिद्धान्त	२
काल वादियो का सिद्धान्त	२
यहच्छा वादियो का सिद्धान्त	३
नियमि वादियो का सिद्धान्त	४
परिणाम वादियो का मत	४
ईश्वर वादियो का मत	५
पश्चिमी सिद्धान्त वादियो का तर्क	५
कारण के लक्षण	८
कार्य के लक्षण	११
अन्यमत	१३
परमाणु वादियों का सिद्धान्त	१६
सृष्टि का निरुपण	१८
सृष्टि की आवश्यकता	२१
जिज्ञासु के प्रश्न उत्तर	२४
युगों का निरुपण	३६
माया का निरुपण	३६
सगुण निर्गुण की व्याख्या	४४
सगुण संकल्प की उत्पति	४५
अर्ध नारीश्वर की उत्पति	४८
अन्तर आत्मा के दो रूप	४८
मूल माया का उपादान	४८
मूल माया का व्यक्तिगत रूप	५१
त्रिगुणो की मूल माया से उत्पति	५१
त्रिगुणो का मिश्रण रुप में बर्ताव	५३
पचभूतो की उत्पति भूतमाया	५५
पचभूतो की पहिचान	५६
पंचभूतों का मिश्रण	५७
पंचभूतों के सुक्ष्म एक २ के पांचभेद	६०
पंचभूतों के गुण	६२
पच तत्वों की उत्पति	६५
अष्टधा मूल प्रकृति	६६
रुप प्रकृति	६८
मोहमाया	६८
माया की स्तुति	६९
गणेश स्तुति	७०
पुरुष सर्ग	७१
पुरुष निरुपण	७१
पुरुष की ही प्रधानता	७४
व्यष्टि पुरुष के लिंग	७४
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ सिद्धान्त	७५
कर्म वादियो का सिद्धान्त	७७
प्रकृति वादियो का सिद्धान्त	७७
संकल्प वादियों का सिद्धान्त	७८

विषय	पृष्ठ
स्वभाव वादियों का सिद्धान्त	७१
काल वादियों का सिद्धान्त	८०
ब्रह्म वादियों का सिद्धान्त	८०
क्षेत्र पहले या क्षेत्रज्ञ	८३
क्षेत्र में वस्तु और सामर्थता	८३
पुरुष का निरूपण	८७
अव्यक्त पुरुष की रचना	९२
अव्यक्त पुरुष की चौपाई	९६
अव्यक्त पुरुष का छन्द	९६
अव्यक्त पुरुष का दूसरा छन्द	९८
सगुण व्यक्त पुरुष समष्टि	१०१
समष्टि व्यक्त पुरुष के समष्टि अगों का वर्णन	१०१
समष्टि ईश्वर की महिमा	११४
व्यष्टि पुरुष का बन्धनागार	११५
माया के बन्धन, अपराके बन्धन, परा के बन्धन	११६
व्यष्टि पुरुष	११७
अपरा प्रकृति गुणों का बंधन	११९
अपरा प्रकृति भूतों का बंधन	१२१
आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी	१२२
भूतों के गुणों की विभक्तियां	१२३
आकाश, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु	,,

विषय	पृष्ठ
भूतों के भागो की विभक्तियां	१२५
आकाश, वायु, अग्नि	१२६
पानी	१२७
पृथ्वी	१२८
परा प्रकृति का अधिष्टान	१३०
अंतः करण का ज्ञान	१३१
दर्पण में मुख देखने का सिद्धात	१३२
पराका रुप इच्छा शक्तियां	१३६
चित्त	१३६
मन	१४१
बुद्धि	१४६
अहंकार	१५०
तन्मात्राओं का वर्णन	१५७
इन्द्रियों के विषय	१५८
वासना की उत्पति	१५८
इच्छा की उत्पति	१६०
सुख, दुख	१६१
अपरा की क्रिया शक्तियो	१६२
प्राणो की उत्पति	१६२
प्राणों के तीनस्वरुप	१६४
प्राणों के सूक्ष्म रूप	१६५
प्राणो की सूक्ष्म क्रिया	१६६
प्राणो के स्थूल स्वरुप	१७७
प्राणों के परिणाम काल का निरुपण	१७१
अवस्थाओ का वर्णन	१७५
अवस्थाओं के भेद	१७७

विषय	पृष्ठ
पुरुष मे ज्ञानकी अवस्था	१७८
वाणी की उत्पत्ति	१८३
परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी	१८४
अक्षरो की उत्पत्ति	१८७
वाणी की महिमा	१९०
व्यष्टि पुरुष की विभक्तियां	१९३
पुरुष विभक्तियां का नकशा	१९७
जड़ा अद्वैत वाद	१९८
साङ्ख्या के मुख्य सिद्धान्त	२०२
अद्वैत मत	२०४
परमाणु वादके अन्वेषण कर्त्ता	२०६
परमाणु वर्ग	
अचर के लक्षण	२०८
चर के लक्षण	२०९
परमाणुओं का मैथुन	२१०
द्रव्याणु	२१३
वायु	२१४
ओक्सीजन	२१५
नाइट्रोजन	,,
पानी अग्नि	२१६
द्रव्याणु का विस्तार	२१६
काल की अपेक्षा	२१७
काल का वर्णन	२१९
मान का वर्णन	२२०
काल का निरुपण	२२०

विषय	पृष्ठ
प्रमाणु युग	२२१
काल की गति	२२४
परमाणुओं का कोष	२२६
ब्रह्म लोक	२२७
तप लोक	२२८
जन लोक	२२८
महर लोक	२२८
स्वर्ग लोक	२२९
भुर्व लोक	२२९
भू लोक	२२९
लोको की व्याख्या	२३०
चैतन्य शक्ति का वर्णन	२३६
पच प्राणों से पंच तत्वों की उत्पति	२३७
तत्व प्रबोध का नकशा	२४०
चराचर जगत की उत्पति	२४१
ग्रह पिंडों की उत्पत्ति	२४१
नक्षत्रों की उत्पति	२४१
पृथ्वी से	
जल से	
अग्नि से	
वायु से	
ग्रह	२४२
सूर्य	
चंद्रमा	

विषय	पृष्ठ
मंगल	२४३
बुध्द	२४३
बृहस्पति	२४४
शुक्र	२४४
शनिश्चर	२४४
राहु	२४४
केतु	२४५
पृथ्वी	
तारालोक	२४६
नक्षत्र	२४६
राशी चक्र	२४७
संजीवन शक्ति	२४८
चैतन्य के मार्ग	२४९
चैतना का मुख्य केन्द्र	२५३
केंद्रों की उत्पति	२५४
सूर्य और सूर्य चक्र की तुलना	२५५
सूर्य और सूर्य चक्र की शक्तियां	२५८
सूर्य चक्र की शक्ति	२६०
संजीवन शक्ति की शरीर मे व्यापकता	२६४
सूर्य चक्र और कार्य	२६६
श्वांस क्रिया	२६७
सूर्य चक्र की प्रभा	२७०
प्रभा की आकृति	२७४
अच्छे भावो की आकृतियां	२७५
द्रव्य	२७६
द्रव्य गुण कर्म आदि	२७९

विषय	पृष्ठ
द्रव्यों के भेद	२८१
आत्मा	,,
आत्मा की व्यापकता	२८४
आत्मा का द्रव्य तत्व	,,
बुध्दि	२८६
मन	२८७
इन्द्रियां	२८८
आदि भौतिक द्रव्य आकाश द्रव्य वायु द्रव्य अग्नि द्रव्य आप्य द्रव्य पार्थिव द्रव्य	२९०
द्रव्य के लक्षण द्रव्य प्रधान ता	२९१
द्रव्य की श्रेष्टता	२९२
द्रव्य और रसका अन्योन्याय सम्बन्ध	२९३
द्रव्य के स्वभावादि	,,
गुण के विषय	२९५
कारण स्थूल द्रव्य	२९६
जिवाणुओं के गुण और कर्म	३०२
स्थुल के महा कारण	३०४
स्थुल बिन्दु	३०५
जिवाणु कोष	३०९
चारों खानियों का नकसा	३१२
पिण्ड और ब्रह्माण्ड	३१४
ब्रह्म में ब्रह्मांड	३१६

विषय	पृष्ठ
ब्रह्मांड में क्या भरा है	३१६
पिंड और ब्रह्मांड की तुलना	३१७
सप्त प्रकार का ब्रह्मांड	३१९
कारण ब्रह्मांड	३२१
आत्मा विश्व	,,
हिरण्यगर्भ आधि दैवीक ब्रह्मांड	३२२
विराट प्राण ब्रह्मांड	,,
मूल प्रकृति वासना ब्रह्मांड	,,
सूक्ष्म छाया ब्रह्मांड	,,
स्थूल ब्रह्मांड	३२३
दो प्रकार के पिंड	,,
अव्यक्त पिंड	३२५
व्यक्त शरीर	३३०
व्यष्टि शरीर रचना	३३१
सात्विक अहंकार से बारह देवता	३३२
राजस अहंकार से ग्यारेइन्द्रियां	,,
तामस अहंकार से पंच तन्मात्रा	,,
आत्म की विभक्ति	,,
अध्यात्मा आदि देव भूत का वर्णन	३३३
आत्मा को व्यक्त कहने का कारण	३३४
आत्मा के साथ मन का संयोग	३३५
तीन प्रकार के शरीर का वर्णन	३३८
कारण शरीर	३३९
सूक्ष्म शरीर	,,

विषय	पृष्ठ
स्थुल	३४०
स्थुल पची करण	३४१
हिरण्य गर्भ	३४३
हिरण्य गर्भ की रचना कर्म	३४५
प्राण शरीर की रचना	३४६
अध्यात्मक प्राण	,,
स्पनन्दन प्राण पांच प्रकार प्राणो की क्रिया	,,
प्राणों के शारीरिक कर्म	३५०
आदि भौतिक प्राण	३५१
आदि दैवीक प्राण	३५३
वसुदेवता	३५४
रुद्र देवता	३५५
आदित्य देवता	३५६
सम्वतसर देवता	३५७
ऋतुएँ	३५९
इन्द्र देवता	३६०
प्रजा प्रति	३६१
समष्टि प्राण पिंड	३६२
प्राणो के छाया की व्याख्या	३६३
छाया शरीर	३६६
छाया शरीर की रचना भेद	३७७
प्राण संचारी छाया शरीर	३७९
वासना शरीर मूल प्रकृति	३८२
ब्रह्मकाय	३८६
आर्ष्य काय	३८७
ऐंद्रकाय	,,

विषय	पृष्ठ
याम्य काय	३८७
वारुण काय	,,
गान्धर्व काय	३८८
असुकाय	,,
राक्षस काय	,,
पिशाच काय	,,
सर्प काय	३८९
प्रेत काय	,,
शकुन काय	,,
पशुकाय	,,
मत्स्य काय	३९०
वनस्पति काय	,,
स्थूल शरीर	३९१
सिद्धि स्थान जिज्ञासु	३९३
विचार का निदान	३९७
विचार सस्कार	३९८
विचारो की उत्पत्ति	४००
विचारो की दो क्रिया	४०१
विचारो की कल्पना	४०४
विचार परिशीलन सयम का वर्णन	४०७
सयम शब्द की परिभाषा	४०८
विचार की सिद्धि	४११
विचार के विचारक नियम	४१३
विचार का बल वेग	४१४
विचार की दृढ़ता	,,
दृढ़ विचार के प्रयोग की विधि	४१५

विषय	पृष्ठ
विचार के दो मंडल	४१७
उम्मेद के विचार	४१८
विचार द्वारा वस्तु कहां से मिलती है	,,
विचार स्पन्दन	४२२
आज्ञाकारी विचार	४२४
श्वांस मे विचार क्रिया	४३१
विचार से सदेश भेजना	४३३
नियम विचार	४३५
मानसिक चित्र प्रदर्श भेजना	४३८
विचारों के द्वारा गुप्त वस्तु की खोज	४४०
तत्व सिद्धि	४४३
अपार बल प्राप्त करने की सिद्धि	४४४
क्षुधा पियासा निवृति सिद्धि	४४६
अदृश्य सिद्धि	,,
वचन सिद्धि	४४८
मन्त्र सिद्धि	४५०
लघु सिद्धि शरीर का हल्का करना	,,
आकाश गमन सिद्धि	४५२
परकाया प्रवेश सिद्धि	,,
भाव सिद्धि	४५३
शरीर के रचना ज्ञान की सिद्धि	४५४
मृत्यु ज्ञान जानने की सिद्धि	४५६
तारों की रचना ज्ञान की सिद्धि	४५७
सूर्य जगत के भवनों के ज्ञान	

विषय	पृष्ठ
की सिद्धि	४५८
सिद्धि पुरूषों के दर्शन देखने की सिद्धि	४६०
चित के ज्ञान की सिद्धि	,,
भूत और भविष्य को ज्ञान जानने की सिद्धि	४६१
तेज सिद्धि	४६२
सूक्ष्म छाया मय पुरुष की सिद्धि	४६३
समाधि	४६४
समाधि के लक्षण	४७२
धारणा	४७४
धारणा के लक्षण	,,
धारणा के तीन भेद	४७६
ध्यान	४७७
ध्यान का प्रयोग	४७६
ध्यान का अभ्यास	४८०
श्वांस क्रिया से समाधि	४८१
चक्र बेध	४८४
अपने स्वरूप के प्रति बिम्ब की सिद्धि	४८८
इस सिद्धि के नियम	,,
दृष्टि की आकर्षण शक्ति	४६१
प्रयोग	४६२
प्रयोग सिद्धि	४६३
प्रयोग के प्रयोगी का दर्प-नासक प्रयोग	४६४
दृष्टि की आकर्षण शक्ति बढाने की विधि	४६६
स्वर सिद्धि	४६६
विषय विवेचन	५००
विवेचना के नियम	५०२
सत्व स्वरूप सिद्धियां	५०४
पुरुष और सत्व का ज्ञान	,,
पंच महा भूतों की जय सिद्धि	५०६
पंच महा भुतों की यन्त्रि का	
पंच महा भुतों का अर्थ	५०७
अणिमादि अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति	५११
इन्द्रियों जय	५१३
ज्ञान सिद्धियां	५१५
प्रतिभा का ज्ञान	५१६
,, का अभ्यास	५१७
,, की सिद्धियां	५१६
केवल्य प्राप्ति	५२०
उपासना रूप सिद्धियां	५२१
अष्टादश सिद्धियां	५२२
भौवतिक सिद्धियां	५२५
ईशा यंत्र की सिध्दि	५२७

त्रुटियों का महाशय विचार करलें।

हमारी पेटन्ट दवायें जादु का सा असर दिखाने वाली आप एक दफा खरीद कर अवश्य चमत्कार देखें।

पराक्रमी बटी—इसके सेवन से शरीर का पराक्रम बढजाता है और दिल दिमाग की कमजोरी मिट जाती है। एक तोले का मू० १)

मल्लराज—इसके सेवन से कैसा ही दुवला मनुष्य मल्ल (पहलवान) बन जाता है और शरीर स्थूल हो जाता है। शरीर में एक दम नया खून बढ जाता है और खुराक बढ जाती है इस पर एक मन घृत पच जाता है बुढों को जवान बना देता है।
कीमत ३२ रत्ती का २) आठरोज

मुफ्रालेह—यह दिल दिमाग की कमजोरी को मिटाता है। जिन को पढने लिखने का ज्यादा काम पड़ता हो उन को और जो इम्तहान में फेल होते हों उनकी याद दास्त स्मृति और बुद्धि को बढ़ाता है एक दफा पढी हुई को याद रखता है। कीमत ५ तोला १)

श्वास का कुलाड़ा—हर प्रकार के श्वास रोग को जड़ से काट डालता है। मू० १ तोला १)

नित्याञ्जन—ठन्डा सुरमा आंखों को ठन्ठा बरफ के मानिन्द कर देखने की कमजोरी खुजली पानी का गिरना जल का उतरना मैल मास का बढना को मिटाता है। कीमत १ तोला की १)

खून सफा—इससे बिगड़ा हुवा खून साफ हो जाता है खून का जमाव फोड़ा फुन्सी कोढ सौजा, खसरा, तवचा, की बीमारियों को मिटाता है गर्मी से होने वाले रोगों को मिटावा है। कीमत १ शीशी का ॥)

॥ श्री ॥

* आयुर्वेद का मूल ग्रंथ *

अर्थात्

—:ब्रह्म संहिता:—

प्रथम अध्याय ।

प्रथम प्रकरण

॥ सृष्टि रचना क्रम सिद्धान्त ॥

सृष्टि रचना क्रम के प्रतिवाद मे आज कल अनेकानेक मत मतान्तरों की अनेक सम्प्रदायें प्रचलित हैं वे अपने २ सिद्धान्तों की पुष्टि से सृष्टि क्रम का वर्णन करते हैं और अपनी २ बात की पक्षपात में लग कर वास्तविक ज्ञान को भूल बैठे हैं। कोई कहता है कि जो प्रत्यक्ष देखने में आता है वही पदार्थ सत्य है। कोई कहता है कि जिस का युक्ति से प्रमाण प्रमाणित हो जाय वही सत्य है। अब यथार्थ में इन बाद विवादों के अनेकानेक मतावलम्बी देखे जाते हैं। परन्तु यदि खोज की दृष्टि से देखा जाय तो सृष्टि का क्रम कारणकार्य का भेद जानने में भी अनेक सिद्धान्तियों ने अनेक भेद कर रक्खे है परन्तु अगर हम सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो इन का विवाद कुछ नमूने के तौर पर यहाँ प्रगट करते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) स्वभाव से (२) काल से (३) यदृच्छा (४) नियती (५) परिणाम (६) ईश्वर से।

(१) ॥ स्वाभाव-वादियों का सिद्धान्त ॥

स्वभाव वादी कहते हैं कि यह सृष्टि के लोकालोक इत्यादि सब अपने आप खुद व खुद स्वभाव से ही उत्पन्न हुये हैं यानी कुदरती, नैच्चूरल । कोई किसी का कारण या कर्त्ता नहीं है जिस प्रकार के कांटों को कौन पैने करता है; पशु पक्षियों को रंग बिरंगे कौन करता है, ईख में मीठापन, मिर्च में चरकापन, नीम में कड़वापन, नींबू में खट्टापन कौन करता है । ये सब स्वाभाविक ही होते हैं ।

हमारे अंग और प्रत्यंगों की रचना और दांतों का गिरना, हथेली और तलुओं में बाल न होना, बालों का सफेद होना, धातुओं के क्षीण होने पर भी नख और रोमों का बढ़ना; जैसे निद्रावस्था का हेतु तमोगुण और जागृत का हेतु सत्तोगुण ।

इन में भी स्वाभाव ही बलवान कारण है इस सिद्धान्त से सृष्टि का क्रम स्वाभाव निर्माण कारण स्वाभाव ही मुख्य है ।

(२) ॥ काल-वादियों का सिद्धान्त ॥

काल वादियों का मत यह है कि यह सम्पूर्ण जगत की सृष्टि स्थिति और प्रलय आदि का हेतु एक काल ही है काल करके ही प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होते हैं और काल से ही नष्ट होते हैं । काल पाकर ही स्वेत बाल. दांतों का गिरना इत्यादि ये सब काल के ही आधीन हैं ।

क्यों कि ज्योतिष शास्त्र में भी लिखा है कि जिस के आदि मध्यम और अंत को हम नहीं जानते हैं, उस से संसार की स्थिति, उत्पत्ति—और प्रलय के कारण और सूर्य आदि से अनुमान करने के योग्य ही काल भगवान इन सब का कारण है।

न्याय वादियों का मत है कि पंच महाभूतों को शीत और उष्ण इन दो भेदों से काल कहते हैं। ऋतु चर्य्य आदि में दोषों के संचय प्रकोप और उपशम द्वारा यही काल ही कारण वर्णन किया गया है।

(३) ॥ यदृच्छा–वादियों का सिद्धान्त ॥

अलक्षित और आकस्मिक पदार्थों के प्रादुर्भाव को यदृच्छ कहते हैं। अर्थात् जो जिस में होता है वही उस का निमित्त कारण है जैसे वृक्ष का निमित यदृच्छा बीज है उसी प्रकार घी का यदृच्छा दूध। क्यों कि यदि बीज में वृक्ष न होता तो बीज से वृक्ष का कैसे प्रादुर्भाव होता। जैसे दूध में घृत न होता तो दूध से घृत का कसे प्रादुर्भाव होता।

जिस प्रकार पुरुष में प्रकृति और प्रकृति में पुरुष, क्यों कि प्रकृति को बीज धर्मणी कहते हैं जैसे कि बीज में वृक्ष रहता हैं उसी प्रकार प्रकृति में सन्सार रहता है। वही प्रकृति साम्यावस्था का परित्याग कर के महत्तत्व आदि अहंकार से सृष्टि को उत्पन्न करती है इसी से प्रकृति को प्रसवधर्म्मिणी कहते हैं। और इस को सुख दुखादि का अनुभव होने से अमध्यस्थ धर्म्मिणी कहते हैं। इसी

सिद्धान्त से यह प्रगट होता है कि जिस का जिस में प्रादुर्भाव है वही उस का कारण है।

(४) ॥ नियति-वादियों का मत ॥

नियति-वादियों का कहना है कि पूर्व जन्मार्जित धर्म्म को नियति कहते हैं। इसी से यही सब का कारण है, क्यों कि पूर्व जन्मान्तरों के संस्कार से कर्मों का उदय होना कर्मों से नियति का, जैसे जो जिस काल में होना होता है उस का वही नियति है। जैसे यह सृष्टि जिन कर्मों के द्वारा बनी है। भाग्य एक क्षेत्र है और जो पुरुष जैसा२बीज अपने क्षेत्र में नियति की विधिसे बोता है वैसा२ही उस को फल प्राप्त होता है इस लिये यह संसार कर्मों का क्षेत्र है और कर्मों का पाक फल के निमित्त कारण कर्माधीन ही बना है। जैसा जिसका कर्म होता है वैसा ही उसके भोग के निमित्त कर्मों के फल देने को कर्मज्या सृष्टि बन जाती है।

॥ परिणाम-वादियों का मत ॥

परिणाम वादियों का मत है कि यह परिणाम करके ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। क्यों कि इस संसार का प्रत्येक पदार्थ परिणाम शील है यानि क्षण २ मात्रा में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के रूपाकार में परिणित हो जाता है। जैसे कच्चा फल चखने म खट्टा या कड़वा होता है परन्तु पकने पर अपने को मधुरता में परिणित कर देता है। इसी प्रकार हमारा शरीर बाल्यावस्था से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था का होना यह परिणाम का ही मुख्य कार्य्य

है यदि परिणाम न हो तो कच्चे फल से पक्के फल और बाल्यावस्था से वृद्धावस्था में परिवर्तन कैसे हो सकता है। जो हमारा खाया हुआ आहार जठरानल के द्वारा रस रुधिर आदि धातुओं में परिवर्तन होता हैं यदि यह परिवर्तन न हो तो हमारा जीना असम्भव है। इस प्रकार सृष्टि के प्रमाणुओं का परिवर्तन अणुओं में और अणुओं का कणों में, परिणाम. तोल नाप इत्यादि बन कर उसी से सृष्टि के पदार्थों का और सृष्टि का निर्माण हो जाता है; इसी प्रकार अहंकार आदि गुणों के परिवर्तन प्रयोजन उपकार्य्य उप-कारण द्वारा ही प्रयोजन कारण है।

(६) ॥ ईश्वर-वादियोंका मत ॥

ईश्वर-वादियों का मत है कि सृष्टि के किसी भी पदार्थ का कारण कर्ता एक ईश्वर ही है। वही अपनी सामर्था से ही इस पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, जीव, जन्तु, स्वर्ग, नर्क सब का कारण ईश्वर को ही मानते हैं। जीव स्वयं अज्ञानी है और अपने सुख दुख में असमर्थ है वह ईश्वर की ही प्रेरणा से स्वर्ग नर्क में जाता है असा ये मानते हैं। इस प्रकार सृष्टि के क्रम के अनेकानेक सिद्धान्त वादियों के सिद्धान्त हैं।

॥ पश्चिमी सिद्धान्त-वादियों का नवीन तर्क ॥

ईश्वर सृष्टि का रचियता नहीं माना जाता और किसी भी कारण का प्रमाण दिया जाय तो आज कल के न्यू लाइट मैन साइंस वादी झट यह कह देते हैं कि आप का और आपके शास्त्रों का प्रमाण हम नहीं मानते, जब

तक कि हम अपनी दूरदर्शिनी दुर्बीणों (माइसक्रोस्कोप) में न देख लें। तुम्हारे वेद, पुराण, कुरान, बाईबल इत्यादि में लिखा है। अपितु, युक्ति से जिस की सत्ता में प्रमाण मिलता है और युक्ति से जिस की उपयोगिता समझ में आती है उसी को स्वीकार किया जाता है। युक्ति ही प्रत्येक पदार्थ की जांच की अन्तिम कसौटी हैं इसी लिये ईश्वर की सत्ता है या नहीं इस के लिये इतना ही कहना प्रर्याप्त नहीं हो सकता कि हमारे पूर्व-जन ईश्वर को मानते चले आये हैं यह हमारे धर्म ग्रन्थों में लिखा है इस लिये इस को मानने में क्या हर्ज है। परन्तु ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने लिये प्रर्याप्त प्रमाण उपस्थित करने चाहिये। जिस से ईश्वर की सत्ता को मानने में संदेह न रहे। इस प्रकार से आज कल के युग के विज्ञानियों के प्रश्न हैं। अब हम सृष्टि क्रम सम्बंधी युक्ति का ही उल्लेख करेंगे जिस के द्वारा ईश्वर की सत्ता को युक्ति पूर्वक प्रत्येक व्यक्ति के निःसंदेह पूर्वक ज्ञान में आ जाय ऐसी युक्ति को ही पेश करते हैं।

सृष्टि रचना सम्बन्धी युक्ति का आधार कार्य कारण का नियम है। इस का अभिप्राय यह है कि जो वस्तु बनी है उस का उस से पूर्ववर्ती कोई कारण अवश्य होना चाहिये कि प्रत्येक पदार्थ का कोई न कोई कारण होना आवश्यक है। यह मत सभी मत वादियों का है और सभी शास्त्रों का है अब इसी पर विचार किया जाता हैं।

कार्य कारण की परम्परा को माना जाय तो अगर हम यह मान लें कि ईश्वर सृष्टि का आदि कारण है तो ऊपर के

सिद्धान्तों से तो ईश्वर का भी कारण होना चाहिये और यदि ईश्वर का कारण मिल जाय तो ईश्वर के कारण का भी कारण होना चाहिये। कारणों की परम्परा इस सिद्धान्त से होनी चाहिये।

भला आप भी अपने दिल में यह बिचारिये कि जब कारणो की परम्परा पर बिचार किया जाय तो कार्य हो ही नहीं सकता क्योंकि जब तक कारणों की समाप्ति न हो जाय, कार्य प्रारम्भ हो ही नही सकता है या यों मान लिया जाय कि कारण और कार्य्य का साथ २ ही दोनों का प्रारम्भ होता है तो भी एक शंका उत्पन्न हो जाती है वह यह है कि जब तक बीज वृक्ष पर पूर्ण रुप से न पक जाय और यदि उसको कच्चा तोड़ लिया जाय और उस को बोया जाय तो क्या उस में से वृक्षाङ्कुर रूपी कार्य पैदा हो सकता है? इसी प्रकार यदि एक गर्भ के बच्चे को जो कि अपने पूरे नौ माह के कारण को समाप्त न कर चुका हो और पहले ही पैदा हो जाय तो वह क्या कार्य करने में समर्थ हो सकता है। इसी प्रकार एक इञ्जन में जब तक पूरा स्टीम न भरा हो उस के पहले वह इञ्जन क्या कोई कार्य करने मे समार्थ हो सकता है इन्हीं उदाहरणो से आप ही समझ सकेंगे कि जब तक कारण समाप्त न हो तब तक कार्य्य प्रारम्भ कैसे हो सकता है। यदि यों बिचार किया जाय कि कारण और कार्य का परस्पर एक ही करण हो जैसे कि जो कारण है वही कार्य हो और जो कार्य है वही कारण हो।

यदि इन को एक मान लिया जाय तो फिर शास्त्रकारों ने दो क्यों माने । इस प्रकार यदि हो तो पिता और पुत्र ये भी एक होने चाहिये, और कारण और कार्य के लक्षणों को मिलाया जाय तो दोनों के धर्म में विषमता होती हैं, जैसे कि कारण से तो कार्य उत्पन्न होता हैं और कारण से कारण की उत्पत्ति नहीं होती । जैसे अंडे से अंडा पैदा नहीं हो सकता।

॥ कारण के लक्षण ॥

अब हम कारण के लक्षणों को दर्शाते है। वे इस प्रकारहैं
(तत्र कारणं नाम तद्यत्करोति स एव हेतु कर्ता सः)
अर्थात् जो काम का करने वाला है उसे ही कारण कहते हैं उसी के दूसरे नाम ये हैं। हेतु या कर्ता हैं । अब यह सिद्ध हुआ कि कर्ता के बिना कार्य बन ही नहीं सकता है ॥

अब हमें यह विचार करना है कि वह कर्ता किस उद्देश्य और उपाय से कार्य निर्माण करता हैं उस की परिपाटी दर्शाते हैं ।

कार्य के काम को पूरा करने के लिये जो कर्ता का उपकरण होता है उस को करण कहते हैं जैसे कुम्हार का अपने डंडे से चक्र का घुमाना । यहाँ करण डंडा है । इसको शास्त्र कारोंने इस प्रकार से वर्णन किया है । ' । करणं पुनः तद्य दुप करणयोप कल्पते कर्तु. कार्याभिनिर्वृत्तौ - प्रयत मानस्य) । "

कर्त्ता जिस परिमाण से कार्य प्रारम्भ करता हैं बस वहीं से करण का प्रारम्भ होता है। कारण जब कार्य के रूप में पलटा जाता है उस प्रक्रिया को कार्य योनि कहते हैं। जैसे मिट्टी से कोई भी शक्ल बनाई तो मिट्टी को पहिले पानी आदि से सान कर चाक आदि पर घुमा कर कोई मूर्तिमान पदार्थ कर्त्ता ने बनाया तो कर्त्ताने पहिले कार्य की योनी से ही कार्य बनाया, जिसको शास्त्र कारों ने इस प्रकार वर्णन किया है कि जो कारण विकृत हो कर कार्य रूप में बदला जाता है उसी को कार्य योनी कहते हैं। जैसे मिट्टी का घड़ा। यह घट रुप कार्य की योनि मिट्टी है।

(कार्य योनिस्तु साया विक्रियमाणा कार्यत्वमापद्यते)

अर्थात् विना योनी के कोई भी कारण या कर्त्ता कार्य उत्पन्न नहीं कर सकता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण कार्य की योनि वही मूल प्रकृति है। बिना प्रकृति के कर्त्ता कार्य कारण ये सव परस्पर अनुवन्ध नहीं हो सकते हैं। और बिना अनु-बन्ध के कर्त्ता का शुभाशुभ कार्य का नियमित फल नहीं हो सकता है, इस लिये कर्त्ता को अनुबन्ध का होना आव-श्यक हैं। अनुबन्ध के लक्षण शास्त्रकारों में इस प्रकार हैं।

(अनुबन्धस्तु कर्त्तारमवश्यमवह नाति कार्यदुत्तर कालं कार्य निमित्त सुभावाप्यशुभोवा भाव) ॥

कार्य के उत्तर काल में जो कार्य निमित्तक शुभ वा अशुभ फल होता है वही कर्त्ता का अनुबन्धी होता हैं, जैसे मिट्टी के पदार्थ बनाने में मिट्टी के परिमाणुओं का पानी अनुबन्ध हैं और जिस पदार्थ की शक्ल बनानी हो तो कर्त्ता

उसी आकारादिक का उस मिट्टी के गोले के रूप का अनुबन्ध आकारादिक के फल के निमित्त लगाता है, यह कर्त्ता का अनुबन्ध हुआ ।

कर्त्ता, करण, कार्य, योनि, अनुबन्ध इत्यादि सब होते हुये भी बिना अधिष्ठान के कर्त्ता कुछ नहीं कर सकता, इस लिये कर्त्ता को अपने अर्थ के लिये कोई भी अधिष्ठान अवश्य कायम करना होगा । बिना अधिष्ठान के कर्त्ता कार्य निर्माण कैसे कर सकता है । अधिष्ठान को ही देश कहते हैं, जैसे जीवात्मा मन बुद्धि आदि मस्तिष्क आदि देश अधिष्ठान में ही बैठ कर प्रत्येक शुभाशुभ कार्य का निर्णय करते हैं । इस प्रकार कर्त्ता को कार्य करने के निमित्त कोई न कोई स्थान विशेष की आवश्यकता होगी जिस के लक्षण शास्त्रकारों ने इस प्रकार लिखे हैं ।

(देशत्वाधिष्ठानम्)

जो कारण कार्य में पलटा जाय और उसे पलटने में जो विलम्ब हो उस को काल कहते हैं ।

पदार्थ मात्रा कारण से कार्य में पलटा गया है इस लिये पदार्थ मात्रा का काल अवश्य हुआ जैसे परिमाणुओं से अणु ।

अणु जो पदार्थ के रुप में पलटा गया जो कि पलटने में टाइम कुछ भी खर्च हुआ हो वह काल ही कहलायगा । उसी काल को परिणाम कहते हैं जिस को शास्त्रकारों ने यों कहा है । (कालः पुनः परिणाम)

काल के अनेक भेद हैं, परन्तु उन को मैं आगे लिखूंगा। यहाँ तो केवल सृष्टि क्रमः के अनुसार ही लिखूंगा।

कर्त्ता, करण, कार्य योनि, अनुबन्ध देश काल इत्यादि साधन सम्पन्न उपस्थित होते हुये भी यदि कर्त्ता अपनी चेष्टा न करें तो कार्य की प्रवृत्ति कैसे हो सकती है, जिस प्रकार से रसोई बनाने की सम्पूर्ण सामग्री उपस्थित होते हुये भी यदि रसोई कर्त्ता रसोई के बनाने की चेष्टा न करे तो रसोई अपने आप कैसे बन सकती है इसी प्रकार यदि हमारे पास हवा खाने की पंखी हो लेकिन बिना चेष्टा उसको हिलाये कैसे हवा आ सकती है; इसी प्रकार हमारे पास एक घड़ी है, यदि उसको चावी देने की चेष्टा न की जाय तो क्या वह समय बता सकती है? ये जितने भी कारणादिक हैं वे चेष्टा के बिदुन निष्फल हो जाते हैं। इस लिये कर्त्ता को कर्म में प्रवृत की चेष्टा की आवश्यकता है। इसी को शास्त्र कारों ने इस प्रकार लिखा है।

(प्रवृत्तिस्तु खलु चेष्टा कार्यार्था एवं क्रिया कर्म यत्नः कार्य समारम्भश्चः)

अर्थात् कार्य की सिद्धी के लिये जो कर्त्ता की चेष्टा है उसे ही प्रवृत्ति कहते है इस के अन्य नामान्तर भी इस प्रकार से हैं। इच्छा, क्रिया, कर्म, यत्न, कार्य समारम्भ हैं।

* अथ कार्य के लक्षणों को कहते हैं *

कार्यन्तु तद्यस्याभिनिर्वृतिराम सन्धाय प्रवर्तते कर्त्ताः

अर्थात् जिस की उत्पत्ति की सम्भावना करके कर्ता प्रवृत्त होता है, उसे कार्य कहते हैं। अब कार्य के फल को कहेंगे।

॥ कार्य फल पुनास्त तप्रयोजना कार्याभि निवृत्तिरियते ॥

अर्थात् जिस प्रयोजन से कार्यों की उत्पत्ति की जाती है, उसे कार्य फल कहते हैं ऊपर दरसाये हुये कारणादिक उपस्थित होते हुये भी इन में यदि अनुकूलता यानि इनकी रीति भाँति परिपाटी से अनुपूर्वी न किया जाय तो कार्य फल विकृत अवस्था में हो कर बीच में ही नष्ट हो जायगा। कारणादिकों को यथोचित्त विधि अनुकूलन मिलाया जाय तो कोई भी कार्य फल पूर्ण परिपक्व वस्अथा में न हो सकेगा। इस लिये कार्य के फल को परिपक्व करने के लिये कारणादिकों को शुभ व्यवस्था में अवश्य होने चाहिये।

जिस प्रकार एक रसोइया यदि हलवा बनाना चाहता हो और उस की पूर्ण सामग्री हलवा बनाने की उपस्थित हो परन्तु वह उस की विधि-रीति, परिपाटी को नहीं जानता हो तो क्या वह हलवा बनावेगा ? यदि बनायेगा तो बिगड़ जायेगा। यदि समझो कि वह बनाते समय शक्कर, घी, पानी, इत्यादि कम या ज्यादा डाले और उस को पूरा न सेके, तो वह सुधार नहीं सकता। जिस प्रकार एक कुंम-कुंम को बनाने वाला हल्दी, चूना सुहागा, सज्जी के मेल से बनाता है परन्तु उस को बनाने की विधि परिमाण आदि को न जानता हो तो वह कुंमकुम अवश्य बिगाड़ देगा इस लिये कोई भी कार्य के निर्माण में उस की विधि, परिपाटी

में अनुकूलता होनी चाहिये जैसे यदि रसोइया खीर बनाते समय दूध में नमक अथवा खटाई डाल दे तो दूध तुरन्त फट जायगा। क्यों कि वह दूध के प्रतिकूल है न कि अनुकूल। इस लिये कार्य में सदा अनुकूलता ही होनी चाहिये। इसी से शास्त्र कारों ने यों वर्णन किया है।

उपाय पुनः कारणादिनां सौष्टव अभिविधानं च सम्यक कार्य कार्य कर्धाफलानु वन्धवर्ज्यानां कायाणाम निर्वर्त्तर्कं इत्यतोऽभ्युपायः कृतेनोपाय र्थोऽस्तिन च विद्यते तद्धत्वे कृतानाच्चोत्तर कालं फलं फलं चानुबन्धदाति ॥

अर्थात् कार्य के उत्पादन में कारण कारणादिक स्वयं समर्थ नहीं होते हैं। कार्य उत्पादन के पक्ष में जिस की जिस से अनुकूलता होती है उसे उपाय कहते हैं क्यों कि कारणादिक भी उपाय हैं। बिना कारणादिक के कार्य नहीं होता। फल और अनुबन्ध उपाय नहीं होते हैं क्यों कि यह कार्य के पीछे होते हैं इस प्रकार कार्य कारणादिक की परिपाटी संक्षिप्त रीति से कही गई है यदि सूक्ष्म बुद्धि से देखी जाय तो ये ही पर्याप्त हैं।

॥ अन्य मत ॥

कई ऐसे मानते हैं कि सत्य पदार्थ ऐसे भी हैं जो नित्य हैं और जिन का निर्माण न हुआ हो ऐसे नित्य कूटस्थ पदार्थों के कारण की आवश्यकता नहीं होनी। इस संसार में इन कार्य कारण के नियम का कोई भी अपवाद नहीं मिल सकता। इस की सत्यता का अनुभव मनुष्य को

अपनी प्रत्येक चेष्टा और क्रिया से सिद्ध होता है । परन्तु बहुत से आज कल के मतान्तर, वैज्ञानिक कथिय्य विचारक हैं वह कार्य कारण के नियम को स्वीकार नहीं करते । जैसे—ह्यूम और कांम्टे

इसी प्रकार जैन धार्मावलम्बी कार्य कारण कर्त्ता को नहीं मानते । उन का कथन है कि हमें कितनी ही दो वस्तुओं में पूर्वा पर कर्म या उन में परस्पर सादृश्यता असादृश्यता का ही ज्ञान हो सकता है इसके अतिरिक्त कोई कार्य कारण का सम्बन्ध हमारे अनुभव में नहीं आता । मिस्टर काम्टे ने इसको यों माना है कि हमे जितना भी ज्ञान उपलब्ध होता है वह सब बाह्य जगत् से नहीं आता । उस का कुछ भाग तो बाहर से आता है और बाकी भाग अन्तर जगत् यानि बुद्धि से उस में मिलाते हैं हमारी बुद्धि की कुछ विशेष रचनायें हैं और हम सब पदार्थों को उन्हीं के अनुरुप देखते हैं । कार्य कारण का नियम बाह्य जगत में नहीं पाये जाते । अपितु यह हमारी बुद्धि के नियम है । हम अपने अनुभवों को इन नियमों के रुप में देखते हैं । बाह्य जगत से मीटर(Meter)आता है और हम उसे अपनी बुद्धि से कार्य कारण के रुप में बदल देते है । इस लिये वे कहते है कि कार्य कारण का नियम हमारे अनुभव में नहीं आता । इस लिये हमको भी कह देना ठीक नहीं होता कि वह है ही नहीं जैसे कि एक अंधा कह दे कि मुझको कुछ नहीं दीखता हैं तो क्या ? आंखों वाला भी यह कह दे कि मुझे भी दीखता नहीं है । अतएव इस में जानने के लिये सूक्ष्म बुद्धि की ज़रुरत है इसके अतिरिक्त बच्चों

को और अशिक्षितों को कार्य कारण का नियम इस रूप से चाहे न भी विदित हो परन्तु व्यवहार में वे भी इस नियम को लगाते हैं, इसलिये कार्य कारण का नियम जैसे सार्वजनिक नियम को यदि स्वीकार न किया जाय तो संसार में कोई भी ऐसा नियम या सिद्धान्त नहीं जो स्वीकार किये जाने योग्य हो। इस के अतिरिक्त बहुत से यह भी मानते हैं कि कारण को कार्य से सदा पूर्व रहना आवश्यक है वरना वह कारण, 'कारण' ही नहीं हो सकता। इस प्रकार कार्य का कारण के पश्चात् रहना भी आवश्यक है अन्यथा वह कार्य, कार्य नहीं हो सकता। परन्तु आप इस से यह न समझें कि कार्य और कारण में पूर्वापर कर्म के अतिरिक्त कोई और आन्तरीय सम्बन्ध होता हो। हम कहते हैं कि सोमवार हमेशा मंगलवार के पूर्व होता है परन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि सोमवार में मंगलवार का कारण है। कार्य कारण के द्वारा ही होता है, और उस पर आश्रित भी रहता है।

इस प्रकार कार्य कारण के नियम की विवेचना के बाद हम प्रस्तुत विषय पर आते हैं कि इस नियम के द्वारा ईश्वर की सिद्धि कैसे हो सकती है। कार्य कारण के नियम के द्वारा ईश्वर को सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक है कि इस समस्त सृष्टि के कार्य की रचना को सिद्ध करने के लिये यह आवश्यकता है कि यह सिद्ध किया जाय कि किसी काल में चाहे वे अत्यन्त प्राचीन या नवीन क्यों न हो, सृष्टि का निर्माण अवश्य हुआ है। यह प्रश्न अन्य सब प्रश्नों में सब से अधिक महत्व पूर्ण है। इस सृष्टि का निरीक्षण

करने से हमें ज्ञात होता है कि इस सृष्टि की जितनी वस्तुयें हमारे अनुभव में आती हैं उन में से कोई भी ऐसी नहीं जो नित्य हो या जिस का नाश न हो सकता हो । विज्ञान के सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्रों की पहुँच में भी कोई ऐसा पदार्थ नहीं मिला जो अनाशवान हो या उसे अनेश्वर कहा जा सके। ये बड़ी बड़ी चट्टानें पर्वत, जंगम या स्थावर जो हमे साधारण या नित्य और अविनाशी प्रतीत होते है, वे किसी समय अवश्य बने थे। यहाँ तक कि सूर्य और चन्द्र भी इस बात का दावा नहीं कर सकते कि हम हमेशा से इस प्रकार लोक लोकान्तरों को ज्योति प्रदान करते चले आये हैं और करते चलेंगे । बिज्ञान के संसार में सब भौतिक पदार्थों को ८५ तत्वों में बिभक्त किया हैं क्यों कि यह तत्व अविनाशी है। नहीं ! ये अविनाशी नहीं है ये परमाणुँ से मिल कर बने हैं और परमाणु भौतिक जगत की अन्तिम सत्ता है। यह भौतिक जगत् का एक परमाणु आदि दैविक जगत के तेरह अरब चौरासी करोड़ बारह लाख सत्तासी हज़ार दो सौ एक परमाणु मिल कर भौतिक लोक का एक अन्तिम परमम्हाणुँ बना है। तो यह परमाणुँ भी नाशवान है ! फिर इन से बना तत्व कब अविनाशी कहा जा सकता है।

॥ प्रमाणु वादियों का सिद्धान्त ॥

परमाणुँ वादियों का यह सिद्धान्त है कि इन विविध शक्ति सम्पन्न परमाणुओं के परस्पर संयोग से सृष्टि की रचना होती है। इस लिये एक सर्व शक्तिमान् सृष्टि नियन्ता और जगत सृष्टा ईश्वर को मानने की क्या आवश्यकत है?

हम इस का उत्तर इस प्रकार दे सकते हैं कि अगर प्रमाणुओं के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की सत्ता को स्वीकार न किया जाय तो यह प्रश्न स्वभाविक उत्पन्न हो जायगा कि इस असंख्यात और सर्वथा अपरीमित असम्वाद् प्रमाणुओं से यह विविध प्रकार की व्यवस्था सम्पन्न सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ। क्या इन प्रमाणुओं ने एकत्रित हो इस प्रकार की रचना रचने के लिये परस्पर सलाह की थी। जड़ पदार्थ चेतना रहित प्रमाणु क्या इस प्रकार परस्पर विचार कर सकते हैं। यह सिद्धान्त विल्कुल निर्मूल है। अगर यों मान लिया जाय कि प्रमाणुओं की गति से अकसमात इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई होगी और अगर अकसंमात सृष्टि की उत्पत्ति हुई है तो इस में व्यवस्था के वजाय अव्यवस्था, अनियमिता, अप्रियमानता अधिक होनी चाहिये। और अणुँ अपनी गतियों से सरल से सरल पदार्थ को उतपन्न करने में सर्वथा असमर्थ हैं। यह सैारसंस्थान जैसी जटिल रचनाओं के विषय में तो कहना ही क्या है। असंख्यात और अपरिमित प्रमाणु चाहे कितनी भी महान शक्तियों से सम्पन्न क्यों न हो वे विश्वसृष्टा विश्वनियन्ता कभी नहीं हो सकते और न कर्त्ता की सहायता के बिना रचना रचने में स्वयं अपने आप समर्थ हो सकते हैं। यदि हम यूरोपीय दर्शनों के इतिहास में देखते हैं तो सृष्टि रचना को युक्ति के अन्दर परमेश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रथम प्रयास महाशय प्लेटो और अरिष्टारल ने किया था और कहा था कि जड़ प्रकृति में गति स्वयं पैदा नही हो सकती। इसलिये इस सृष्टि को प्रथम गति दाता की आवश्यकता हैं उसके विना इस का कार्य चलना असम्भव है। मिस्टर ए किबना ने भी परमात्मा की सिद्धि

की युक्ति को प्रमुख स्थान दिया था। प्रोफेसर पेडीगेटन और जेम्सजीन लिखते हैं कि भौतिक जगत के विशेष अध्ययन से हम परमेश्वर को मानने के लिये वाधित होतेहैं। महाशय प. एन. बिटूड लिखते हैं कि प्रकृति से परे परमेश्वर की सत्ता माने बिना सृष्टि की व्यवस्था की पूर्ण व्याख्या करना असम्भव हैं इस प्रकार से परमात्मा को युक्तियों से सिद्ध करने के लिये अनेकानेक बातें हो सकती है जिनका वर्णन करना एक बड़ी पुस्तक से भी ज्यादा बन जावे।

॥ सृष्टि का निरूपण ॥

प्रथम अध्याय।

प्रकरण दूसरा

वास्तव में सृष्टि क्या चीज़ है ? और सृष्टि का अर्थ क्या होता है ? हम पहले सृष्टि के विषय में जान ले तब फिर इस की उत्पत्ति के विषय में और इस के कार्य कारण भेदों को जानना चाहिये। जब तक सृष्टि को तो जान ही न पाये और पहले से ही उसके कार्य कारण के विवादों में फंसना कितनी भारी भूल है। सृष्टि का अर्थ होता है कि जो सरजी जावे अथवा रची जावे; अथवा जिस की रचना हो।

कई सिद्धान्त बादी सृष्टि को एक ही तत्व से मानते हैं वह अद्वेत वादी हैं और उन का यह कहना है कि (एको

ब्रह्म द्वितियो नास्ति) वे न ईश्वर न कर्त्ता को मानते हैं। ये सब रचना केवल ब्रह्म की मानते हैं और द्वैत वादी मानते है कि परमात्मा और प्रकृति से यह सृष्टि रची गई है। और इन दोनों को अनादि कारण मानते हैं और ये दो तत्वों को मानते हैं इसी से इनको द्वैत वादी कहते हैं। कोई मत वाले सृष्टि एक मानते हैं और कोई अनेकानेक(अनन्त)मानते हैं। कई मत्तावलम्बियों का यह सिद्धान्त है कि जितने प्रकार के प्राणधारी प्राणी है उतनी ही सृष्टियां हैं। प्रकृति वादी मानते हैं कि प्रकृति के आठ विभाग और सोलह बिकार ये २४ तत्वों के संयोग को सृष्टि कहते हैं। कई इस प्रकार मानते हैं कि ईश्वर या जीव अपनी कार्य सिद्धि के निमित्त प्रयोजन सिद्ध हो- और उन का साधन जहां से उपलब्ध हो वही सृष्टि है। जिस के लक्षण इस प्रकार कहे है कि-(क्रिया सोऽधिष्ठानं कस्माल्लो कस्य) अर्थात् जो सम्पूर्ण लोकों का अधिष्ठान है वह सृष्टि हुई। कई मतावलम्बी सम्पूर्ण प्राण धारी प्राणियों की कर्मो उन्नति की निसैनी यानि सीढ़ि यह सृष्टि है। ऐसा भी मानते हैं कि एक सात खंड का महल है और उस पर चढ़ने की सात सिढ़िया है और एक २ खंड में सात २ भवन हैं और उन भवनों में आने जाने के लिये ज़ीने भी हैं। हम इस समय सब से नीचे के खंड में हैं। समझ लो हमारे आगे उन्नति पाने वाले ऊपर के खंडो में हैं। कई लोक सीढ़ियों पर चढ़ने की मंज़िल तय कर रहे है ऊपर वाले लोकों को हम नहीं देख सकते। परन्तु ऊपर वाले नीचे वालों को देख सकते हैं। इसी प्रकार क्रम से नीचे वाले

ऊपर वालों को नहीं देख सकते । जिन २ खंडों में वे लोग पहुंच गये हैं और वहाँ के अनुभवों को लेते जाते हैं और कर्मोन्नति करते जाते हैं । जहां के खण्डों की कर्मोन्नति और अनुभव नहीं प्राप्त होता है वहीं से अवनति के कारण पूरा अनुभव न होने से वह वापिस नीचे के खण्ड में आ जाते है कि जहाँ का अनुभव अपूर्ण है इस प्रकार कर्मो उन्नति की निसैनी यह सृष्टि है ।

स्मृतियों के मत से परमात्मा ने नाना प्रकार की प्रजाओं की इच्छा करते हुये अपने ध्यान मात्रा से सृष्टि रची । अपनी शक्ति से जल उत्पन्न किया और उस जल में अपना बल रूप बीज स्थापित किया । वह बीज ईश्वर की इच्छा से सुवर्ण का अंडा बन गया इसी से हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ जिस की क्रान्ति कोटिन सूर्य के सदृश थी उस अंडे में सम्पूर्ण लोक और लोक पाल आदि को रचने वाला वह पितामहः अपने आप प्रजापति उत्पन्न हुआ । और प्रजा-पति ने सृष्टि को रचा । अब दर्शनों को लीजियेगा ।

दर्शन कारों के मत भिन्न २ है कोई प्रकृति से, कोई पुरुष से कोई पदार्थ मात्रा के समवाय से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं । पदार्थ वादी कहते हैं कि पदार्थ समवाय में तो सृष्टि बन जाती है और विषम वाम में प्रलय । याने पुन्य पदार्थ । कोई पदार्थो की अनुकूलता से सृष्टि और प्रति-कूलता से प्रलय मानते हैं । कोई गुणों के समुदाय को सृष्टि और गुणों के विषमवाय को प्रलय मानते हैं ।

अब उपनिषदों को लीजियेगा । इन में सृष्टि का वर्णन ऐसा है। पिप्लाद मुनि ने सृष्टि का वर्णन रार्य और प्राण से किया है कि प्राण और रार्य परस्पर युक्त व्यक्त हो कर सृष्टि की रचना करतेहैं। महात्मा कात्यायन ने लिखा है कि जिस के अंदर बैठा हुआ आत्मा जिस की सहायता से सम्पूर्ण लोकों को देखता है। वह जिस के अंदर बैठा है वही सृष्टि है।

॥ सृष्टि का निरूपण ॥

ब्रह्म में जो जगह खाली है उस में ब्रह्माण्ड भरा है और ब्रह्माण्ड मे जो जगह खाली है उस में वैराट भरा है और वैराट में जो जगह खाली है उसमें प्रजापति भरा हुआ है और प्रजापति में जो जगह खाली है उस में सृष्टि भरी हुई है। सृष्टि में जो जगह खाली है उस में लोक भरे हैं लोकों में जो जगह खाली है उस में लोक पाल भरे हैं और लोक पालो में जो जगह खाली है उस में दिग्पाल भरे हुये है और दिग्पालों में जो जगह खाली है उस मे वसु और वसुओं में जो जगह खाली है उस मे रुद्र, और रुद्रों में जो जगह खाली है आदित्य, और आदित्यों में जो जगह खाली है उस में पुरुष भरे हुए है इस प्रकार से सृष्टि की रचना जान पड़ती है। जिस में ये सब समाये हुए हैं । उसी को ब्रह्म कहते है ।

॥ सृष्टि की आवश्यकता ॥

विना आवश्यकता के आविष्कार नहीं होता इस

सिद्धान्त को सभी मतावलम्बी विना अपवाद के मानते हैं इसी सिद्धात के उद्देश्य के अनुसार ईश्वर को भी आवश्यकता होनी चाहिये। सृष्टि के बनाने का प्रयोजन क्या है ? सृष्टि क्यों बनाई गई ? यदि ईश्वर ने बनाई तो उसे क्या अवश्यकता हुई ? एक सृष्टि बना के जीवों को उस में फंसाना और नाना भांति के दुःखों में उन को डालना। इस से वह अपना क्या प्रयोजन सिद्ध करता है ? किसी जीव को मनुष्य, किसी को पशु, किसी को पक्षी, किसी को कीड़े इत्यादि इस प्रकार ईश्वर ने इन जीवों को क्यों नाना प्रकार से इन योनियों में डाल कर पिंजड़े में फंसाये फिर आप इन से दूर हो कर इन का तमाशा देखे। फिर एक को दुखी और एक को सुखी। एक को हज़ारों पर हुक्म चलाने वाला और एक को हजारों की सेवा करने वाला। एक महलों वासी और एक जंगल वासी क्यों किये। यदि ईश्वर को कर्त्ता माना जाय तो ऐसा ऊंच नीच जीवों के साथ क्यों किया। तुम ईश्वर को समदृष्टि मानते हो तो फिर ऊंच नीच कैसा। तुम उस को व्यापक मानते हो तो सब में सब को एक प्रकार क्यों नहीं बनाया ? अगर उस को सब का रक्षक मानते हो तो क्या एक प्राणी दूसरे प्राणी को मारते वक्त रक्षा क्यों नहीं करता ? यदि तुम उस को सब का पालन करने वाला मानते हो तो जीवों से जीवों का आहार कैसा ? (यानि जीवो जीवः भक्षति) यह कैसी ? और यदि एक भूखे और ठंड के मारे मरने वाले की रक्षा क्यों नहीं करता ? यदि तुम उस को सब का पितामह मानते हो तो अपने पुत्रों को आपस में लड़ने

क्यों देता ? यदि वह सब का दाता है तो एक उस के नाम पर मांगने वाले को खुद क्यों नहीं देता ? यदि वह न्याय कर्त्ता है तो अन्याइयों को अपने आप सज़ा क्यों नहीं देता। यदि उस के हुक्म से सब कारोबार चलता है तो फिर भले बुरे काम क्यों हैं ? सब काम भले ही होने चाहिये। क्यों कि पाप का हुक्म भी तो उसी का है तो फिर पापियों को नर्क न होना चाहिये। यदि वह सर्वज्ञ है तो ज्ञान ध्यान पढ़ने पढ़ाने की क्या आवश्यकता है। वे स्वयं नही पढ लिख सकते। ज्ञान और गुण सीखने की क्या जरुरत है ? यदि वह सर्व प्रकाशमान हैं तो रात्री क्यों होनी चाहिये और फिर शरीर में भी मल विक्षेप आदि के पर्दे क्यों कर रह सकते हैं यदि वह सब का विभु है तो सब प्राणियों को क्यों नहीं दीखता है ? इत्यादि अनेकानेक शंकाये पैदा होती हैं। और बड़े २ विचारकों ने इन के ऊपर कई एक नास्तिक ग्रन्थ के ग्रन्थ रच डाले हैं और रचते जा रहे हैं क्योंकि स्थूल बुद्धि वालों के दिमाग में यह अच्छी तरह से बैठ जाते हैं परन्तु जिन की बुद्धि सूक्षान्तर पारदर्शनी है यानि प्रज्ञाज्योति है उन को ये सब युक्तियां केवल हास्य प्रद है क्यों कि महान कार्य को करने वाला अपने कार्य के उद्देश्य को दूसरों को कब बतलाता है। एक साधारण से साधारण आदमी भी अपने गुप्त कार्य के उद्देश्य को छिपा कर रखता है तो फिर एक महान चतुर बुद्धिमान् ईश्वर अपने कार्य को क्यों प्रगट करने लगा ?

दूसरा उत्तर यह भी है कि वह ईश्वर शायद यह भी

बतला देता कि यह जो सृष्टि मैं बनाता हूं (वह इस लिये है) तो भला ऊपर लिखे प्रश्न करने वालों ने क्या ईश्वर को सृष्टि बनाते समय पूछा था। शायद प्रश्न कर्त्ता ने सृष्टि बनाते समय ईश्वर से पूछा हो और उस ने प्रश्न कर्त्ता को उत्तर नहीं दिया हो तो प्रश्न कर्त्ता का प्रश्न ठीक है। परन्तु उस प्रश्न कर्त्ता ने उत्तर दाता से प्रश्न पूछा ही नहीं और किसी दूसरे अपने जैसे प्रश्न कर्त्ता को ही प्रश्न पूछे तो भला क्या प्रश्न कर प्रश्न कर्त्ता को क्या उत्तर दे सकता है जो कि अनेश्वर बाद हैं और इन्हें ऐसे उत्तर पूछने हैं तो वह उस समय कहां था ? जब कि उत्तर दाता ने अपना कार्य प्रारम्भ किया था। यदि शंका करने वाला अपनी शंका का समाधान दाता से ही करे तो उस शंका का उत्तर का समाधान हो सकता है परन्तु यदि शंका करने वाला शंका वादियों से ही उत्तर पूछे तो समाधान का निर्णय कैसे हो सकता है ऐसे प्रश्न कर्त्ताओं को क्या कहना चाहिये ये आप खुद विचार कर सकते हैं मैं इस का उत्तर हजारों तरीको से दे सकता हूं परन्तु सरल से सरल तरीका यही है जो कि मैंने ऊपर लिखा है वह साधारण बुद्धि वालों की समझ में बैठ सकता है और जिस की बुद्धि गम्भीर है उन को मेरा बच्चे की उंगली की भांति इसारा काफी है।

॥ जिज्ञासु ॥

क्या तू सृष्टि पैदा करने वाला और उस पर हकूमत करने वाला ईश्वर है या वह सृष्टि से अलग है जैसे कुम्हार और उस के मटके की तरह।

उत्तर—इस प्रकार हम नहीं मानते।

जिज्ञासु—इस प्रकार न मानने का कारण बताइयेगा।

उत्तर—हमतो ऐसे ईश्वर को मानने वाले वह हैं कि अनन्त यानि बिना सीमा के और सर्व व्यापक मानते हैं और अनादि भी मानते हैं यानि वह सब से पहला और किसी से पैदा नहीं हुआ और वह खुद ही सब से आदि निराधार से अचल यानि कायम है।

जिज्ञासु—बेशक ईश्वर अनन्त और सर्व व्यापक होना चाहिये।

उत्तर—अगर ईश्वर अनन्त हैं तो उस का किसी प्रकार का आकार न होना चाहिये क्यों कि आकार में हद होती है इस के सिवाय अगर वह बे हद है तो सब ठिकाने वही होना चाहिये। यदि वह सब ठिकाने खुद ही है तो उस से सृष्टि कभी उत्पन्न नहीं हो सकती।

क्योंकि सृष्टि पैदा करने को जगह खाली कहाँ रही इस के सिवाय सृष्टि बनाने के लिये उस के बनाने वालेको गुणकर्म क्रिया करनी होगी। जो बात केवल बिना आधार वाले अकर्त्ता से नहीं हो सकती। इस लिये ऐसे ईश्वर से सृष्टि पैदा नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि यदि ईश्वर अपनी बनाई हुई सृष्टि से अलग हो तो सृष्टि बनाने को पदार्थ चाहिये वह कहाँ से लाया। इस सवाल का जवाब

होना चाहिये क्यों सृष्टि पैदा होने के पहले ईश्वर के सिवाय कोई दूसरी वस्तु थी ही नहीं ऐसा मानते हैं इस लिये कुम्हार और घड़े का दृष्टान्त घट नहीं सकता । और जिस ईश्वर को तुम एक तरफ़ न्याय कारी और दयालु मानते हो और दूसरी तरफ़ उसी ईश्वर की इच्छानुसार सब को सुख दुःख मिलना मानते हो परन्तु जब ईश्वर की ही इच्छा के अनुसार एक आदमी को जन्म से दुखी और एक जन्म से सुखी है ऐसे ईश्वर को कृपालु या न्याय-कारी कैसे कह सकते है।

चौथा सबब यह है कि जो लोग एक तरफ़ से ईश्वर को सर्व शक्तिमान मानते हैं और दूसरी तरफ़ से सब सुख दुखों का कारण कर्मों को मानते हैं तो क्या कर्मों के नाश करने की शक्ति सर्व शक्तिमान में नहीं हो सकती।

पांचवां कारण यह है ईश्वर को अनन्त और सर्व व्यापक मानते हैं उसी ईश्वर को स्वर्ग में या बहिस्त में मिलने की बहुत से लोग आशा रखते हैं। ये दोनों तरह की बातें एक दूसरे से उलटी हैं और समझ में नहीं आती हैं। याने अनन्त का तो आकार ही नहीं हो सकता, फिर वह ईश्वर स्वर्ग में या किसी भी जगह कैसे बैठे या खड़ा रह सकता है। इस लिये स्वर्ग में बैठ कर लोगों का तमाशा देखने वाला केवल नादान और स्थूल दिमाग में बैठ सकता है । परन्तु जिन की बुद्धि सूक्ष्म और पार दर्शनीय है उन को ऐसा ईश्वर मानना कबूल नहीं न तर्क शास्त्र Logic के आधार से भी ये ईश्वर साबित नहीं हो

सकता। इस लिये बुद्धिमान चतुर मनुष्यों को ऐसे कच्चे बिचारों की शंकाओं में न फंसना चाहिये।

जिज्ञासु—जब तो अब आप भी नास्तिक हो गये। नास्तिक लोग ही ऐसे बे सिर पैर की बातें किया करते हैं।

उत्तर—अनभिज्ञ दिमाग वालों के दिमागी ईश्वर को न मानने से नास्तिकपन साबित नहीं हो सकता तो तुम सब सृष्टि के पैदा करने वाले को नहीं मानते।

जिज्ञासु—तो फिर तुम कैसे ईश्वर को मानते हो वह बतलाइये।

उत्तर—हम तो एक अखंड आकार स्वरूप मूल सत्य सर्व सृष्टि का आधार हो तो मानते हैं (Absolute Abstroct spuce) यानि जिसका शुरु मध्य और अन्त नहीं है उस अखंड पारब्रह्म में से ही एक नियमित समय पर सृष्टि उत्पन्न होती है और नियमित समय तक ठहर कर फिर उसी में लय (Disolve) हो जाती है जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होता है उसी तरह यह भी होता रहता है।

जिज्ञासु—सृष्टि के पहिले क्या चीज़ थी ? क्या आप बतला सकते हैं ?

उत्तर—सृष्टि के पहले एक केवल पार ब्रह्म था जो बड़ा और बेहद पोल था यानि जगह खाली थी। (Infinite absolute space) पोल के सिवाह कुछ नहीं था उस का शुरु और आखिर न होने के कारण वह हमेशा नित्य था। यह पोल (o) असल में क्या है ? इस को समझाना सम्भव नहीं है परन्तु इस पर कल्पना करना भी वृथा हैं। यह सब शून्य (पोल) ही कुल सृष्टि का सार है जिस में से सृष्टि प्रगट होती है। सृष्टि प्रगट होने के पहले वह बेहद पोल थी यानि शून्य जो अखंड एक ही सत्य होने की वजह से न तो कम हो सकती थी और न बढ़ सकती थी न उस का काट कर खंड कर सकते हैं। न उस की जगह बदली जा सकती है क्यों कि सब जगह उस के सिवाय दूसरी चीज़ है ही नहीं। उस को पर ब्रह्म कहते हैं। यह पर ब्रह्म एक पार दर्शक अति सूक्षम चेतन्य की दशा में (Spirit Energy consciousness) प्रगट होती है और वह मूल वस्तु स्थूल और सूक्षम रुप में प्रगट होती है क्यों कि जब उस के सिवाय कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं।

जिज्ञासु—पर ब्रह्म को समझना आवश्यक क्यों है ।

उत्तर—पर-ब्रह्म सम्बन्धी कुछ भी कल्पना या विचार नहीं हो सकता क्यों कि वह अनिर्वचनीय है यानि वह वचन की वानी में उस का वर्णन नहीं हो सकता इसी वजह से वह विचार में नहीं आ सकता। इस का सबब यह है किसी वस्तु का विचार करते समय हम उस वस्तु को पहले हम अपने दिल में एक आकार या मिलान कि जिस का विचार हो सकता हैं उस की तुलना करते है क्यों कि ऐसा किये विना विचार हो ही नहीं सकता । पार ब्रह्म बेहद अखंड पोल (शून्य) होने की वजह से दूसरी चीज़ों की तरह से जुदा आकार हो नहीं सकता। जैसे शून्य का शून्य । इस वास्ते उस के विचार का बयान करना यानि लक्षार्थ करना असंभव हो जाता है । किसी भी वस्तु का विचार करते समय उस वस्तु का आकार जैसा लम्बा, चौड़ा, लाल, पीला इत्यादि उस के गुणों के वर्णन होते हैं परन्तु परब्रह्म तो निर्गुण निराकार है क्यों कि गुणों से वस्तु की हद होती है और परब्रह्म तो बे हद है इसी कारण से उस का गुण गुणी से बयान नहीं हो सकता । इतना ही जानना काफ़ी है कि सर्व व्यापक एक सत्ता जिस को परब्रह्म कहते हैं सत्त को ही अनेक धर्म वाले अनेका—

नेक नामों से उसका वर्णन करते हैं। उस सत्य पार ब्रह्म में से पानी के बुदबुदों के माफ़िक असंख्यात सृष्टियां निकलती हैं और उसी ब्रह्म में बुदबुदों की तरह बैठ कर उस में ही समा जाती हैं और पुन प्रकट होती जाती हैं। और समाती जाती हैं जैसे रात और दिन बार २ होते रहते हैं उसी तरह पर ब्रह्म में से सृष्टियां उदयास्त होति रहती हैं।

एक खास परिमित प्रमाण के समय के बाद उसी में मिल जाती हैं तो भी ध्यान रखिये कि परब्रह्म सृष्टि से अलग है। वे इस प्रकार हैं कि पूर्ण सृष्टि तीन भागों में बांट दी गई है जैसे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय यानि जो चीज़ जानने में आवे (Thing Known) और जानने वाला (Knowledge) यानि जिस से जाना गया (Knower) सृष्टि में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं हैं जो इन तीनों में से किसी न किसी भाग में न आता हो। परन्तु परब्रह्म इन तीनों में से किसी में भी नहीं आता बल्कि इन तीनों का मूल कारण है।

जिज्ञासु-जो परब्रह्म में से सृष्टि प्रगट होती है तो परब्रह्म को ही सृष्टि का कर्त्ता कहना चाहिये ?

उत्तर—परब्रह्म सृष्टि कर्त्ता नहीं हैं जैसे कि पानी में से बुदबुदे होते हैं परन्तु पानी उनका कर्त्ता नहीं कहा जा सकता इसी तरह परब्रह्म में से सृष्टियां प्रगट होती हैं तो भी परब्रह्म सृष्टि का कर्त्ता नहीं।

'जिज्ञासु—पानी में से बुदबुदे होने का कारण पानी बाहरी हवा वगैरा का कारण है। और अगर परब्रह्म सृष्टि का कर्त्ता नहीं है तो परब्रह्म में से सृष्टि का प्रकट होने का क्या कारण है।

उत्तर—तमाम सृष्टि में जैसे उन्नति के बाद अवनति और अवनति के बाद उन्नति अथवा क्षय के बाद वृद्धि और वृद्धि के बाद क्षय; इसी प्रकार रात के बाद दिन और दिन के बाद रात एक नियमानुसार होती रहती हैं उसी तरह परब्रह्म में से सृष्टि प्रगट होती है और एक नियमित काल के बाद फिर उसी में समा जाति हैं, और फिर उसी में से प्रगट होती है। जैसे रात में नींद में सोया हुआ पुरुष न होने की तरह हो जाता है और फिर नींद पूरी हो जाने पर उस को वह बिस्तर जिस पर वह सो रहा है नहीं जगाता, बल्कि वह पुरुष अपने आप ही उठ बैठता है; इस प्रकार परब्रह्म में से नियमानुसार सृष्टि पैदा होती रहती है और उस का बाकी रहा हुआ काम फिर से जारी हो जाता है; ऐसे रात दिन का होना अनादि काल से चला आता है।

जिज्ञासु—सृष्टि का उस के प्रगट होने के बाद परब्रह्म से कुछ सम्बन्ध रहता है या नहीं ?

सृष्टि जो है वह गुणों का समूह है लम्बा, चौड़ा, लाल, पीला इत्यादि गुणों के इकट्ठे मिलने को पदार्थ कहते हैं। इन गुणों को स्थिर रखने के लिये वह दिखाई देने वाला, विचार में आने वाला जो आधार है वह परब्रह्म हैं जैसे कि कागज़ के आधार के बिना तस्वीर कायम नहीं रह सकती; उसी तरह परब्रह्म के आधार के बिना सृष्टि स्थिर नहीं रह सकती।

जिज्ञासु—परब्रह्म में कुछ भान, ज्ञान, चैतन्यता है या नहीं। जो पानी के बुदबुदों की भाँति सृष्टि प्रगट होती है तो उस को बे भान या अचैतन्य कहना चाहिये।

उत्तर—परब्रह्म में तो वास्तव में पूरा भान होना चाहिये क्यों कि जिस तरह से दही से ही दूध जमता हैं पानी या तेल से नहीं। पानी से बुदबुदे होते हैं परन्तु पत्थर यानि ठोस वस्तु से नहीं; इसी तरह तिल से तेल किन्तु रेत से नहीं। इसी प्रकार बेभान से भान या चैतन्य नहीं निकल सकता। सृष्टि के प्रगट होने के प्रारम्भ में जो ये सगुण रुप नाम की जो शक्ति प्रगट होती है वह अपना स्वभाव रखती है और उसी के स्वभाव के आधार से क्रमश. सृष्टियों का क्रम चलता है इस लिये नह जिस में से प्रगट हुई हैं तो क्या वह खुद परब्रह्म कैसे अज्ञान हो सकता हैं। किसी न किसी तरह का भान परब्रह्म में अवश्य होना चाहिये।

जिज्ञासु—परब्रह्म को बे भान यानि अज्ञान (Unconscious) कहने का क्या कारण है ?

उत्तर—परब्रह्म खुद किस प्रकार का ज्ञान रखता है यह बुद्धि में नहीं आसकता क्यों कि ज्ञान होने के लिये तीन चीज़ोंका होना आवश्यक है।

पहले वह चीज़ जिस को ज्ञान होवे 'जीव इत्यादि'; दूसरी वह वस्तु जिस की मदद से ज्ञान होवे वह उपाधि (शरीर) और तीसरा वह पदार्थ जिस का ज्ञान किया जावे। परन्तु परब्रह्म में तो दूसरापन भेद विभिन्नता है ही नहीं इस वजह से वहाँ उपाधि (शरीर) धारण करने वाला कोई धारी या ज्ञाता है ही नहीं। तो इस दशा में यह बात किस प्रकार हो कि ब्रह्म में कैसा ज्ञान भान होगा। ये बातें तो एक साधारण उपाधि बुद्धि वाला अहंकारी जिसको अपने शरीर द्वारा ज्ञान की पराकाष्ठता कर सकता है या लक्ष कर सकता है; तो फिर उस परब्रह्म को वह उपाधि धारी हद वाला जीव बेहद ब्रह्म ज्ञान का ज्ञान कैसे कर सकता है। इस लिये कोई भी साइंस मैन या कोई भी बड़े २ उपाधि धारी प्रोफेसर, वैज्ञानिक यह नहीं बता सकते कि परब्रह्म ज्ञान वान है या अज्ञानवान है।

जिज्ञासु—इस सिद्धान्त से तो यह समझ में आया कि पार ब्रह्म जो कि सब का मूल है उस मे से ज्ञानवान जो सत्ता निकलती है जिसमें से यह सृष्टियां प्रगट होती हैं और कालन्तर के बाद उसी में लय हो जाती हैं और आदि जो ज्ञानवान सत्ता के आधार पर यह जो सृष्टि क्रम चलता

है उसी को ईश्वर कहना चाहिये ।

उत्तर—इस सत्ता को ईश्वर कह नहीं सकते यह पर ब्रह्म मे से जो सत्ता निकलता है उसका आभास तीन प्रकार का है। इसी को सम्पूर्ण मत मतान्तर वाले त्रिमूर्ति के रूप में मानते है। परन्तु वास्तविक मूल में एक हैं। परन्तु उपाधि भेष मे एक ईश्वर अपने का तीन रूपमें दिखला रहा है अर्थात् (द्रष्टा दर्शन दृश) और उन के काम क्रिया अलग हैं। परन्तु यह पारब्रह्म से एक ही है जैसे हमारे शरीर के अवयव। उसी प्रकार उस विराट ईश्वर के व्यक्त अवयव हैं।

इसी को वेदों में प्रत्यगात्मा, सूत्रात्मा, हिरण्य गर्भ चैतन्य ईश्वर, सच्चिदानन्द आदि अनेक नाम हैं। और दूसरे मजहवों में भी जैसे वोध वाले अवलोकीतेश्वर ग्रीक वाले लोगोस, सजदेयशनी वाले अहुरमजद ईसाई वर्ड वरव्य क्रीयोस्थ आदि अनेक नाम हैं।

जिज्ञासु—पर ब्रह्म में ऐसी सता रूप एक ही है या अनेक?

उत्तर—पर ब्रह्म में ऐसी बेशुमार सतायें रूप शक्तियें हैं इन में से ही अनन्त अगणित, अपार ज्ञाता जीव किरणों रूप में जुदा हुये हैं और इन ही शक्तियों मे समष्टी रूप में से व्यष्टी हुये है जो अव्यक्त रूप में से ये सता रूप व्यक्त सृष्टियां उस ही समष्टी अव्यक्त के भीतर समाये हुये हैं बल्कि इन ही सब का मूल हर एक प्रमाणु में भी वह सत्ता रूप शक्ति मौजूद है। वह हम में भी वही सत्ता रूप शक्ति

मौजूद है। उसकी पहचान दिव्य दृष्टि से करनी चाहिए।

जिज्ञासु—जब सृष्टि का अन्त प्रलय होता है जब क्या वह शक्ति रूप का नाश होता है या नहीं ?

उत्तर—जिस प्रकार से कि शरीर में रहने वाला जीव जो जाग्रत अवस्था में "मैं" हूं ऐसा भान ज्ञान रखने वाला नींद के समय वह न होते के जैसा हो जाता है तो भी उस जीव का उस समय सर्वनाश नहीं होता किन्तु जाग्रस्थ होते ही पुनः "मैं" हूं ऐसा ज्ञान हो जाता है। उस समय कोई नया जीव पैदा नहीं होता। इस प्रकार ब्रह्मा के जाग्रस्थ अवस्था का दिन और निद्रा अवस्था की रात्री रूप प्रलय सृष्टि के अन्त मे उसका नाश नहीं होता बल्कि वह चराचर जगत के रचने वाला ब्रह्मा पार ब्रह्म में लुप्त हालत याने अव्यक्त अवस्था में (Lotent stole) मौजूद रहता है।

जिज्ञासु—यह ब्रह्मा एक बार लय होने पर प्रलय के बाद कितने समय के बाद प्रगट होता है।

उत्तर—सृष्टि के स्थिर होने का जितना समय है उतना ही उसके लय का अन्तिम समय जानो। सृष्टि के प्रगट होने के समय को ही ब्रह्मा का दिन कहते हैं और लय का समय रात्री का है। इसी ब्रह्मा के दिन को मन्वतर और रात्री को प्रलय कहते हैं।

जिज्ञासु—तो क्या आप यह भी बतला सकते हैं कि जैसे दिन में घड़ी, पहर, पलभा अक्षर आदि एक दिन में होते हैं

वैसे ही उसके दिन को कितनी पहर, घड़ी, पलभा व्यतीत हुई होगी ? और कितने हमारे वर्षों का एक दिन होगा। इस को आप पूरे प्रमाण सहित बतलावें ।

उत्तर—यह जो ब्रह्मांड मंडल का ऋगवेद मंडल है उस की किरण सामवेद है उसकी मूर्ति यजुर्वेद है। यह सृष्टि के जगत की उत्पत्ति होने पर निगमित काल तक व्यक्त स्वरूप में रहता है। अनन्तर इस व्यक्त जगत का प्रलय हो कर अव्यक्त स्वरूप में होकर मूल परमाणु रूप में रहता है पीछे उसको व्यक्त स्वरूप प्राप्त होता है। जगत के व्यक्त स्वरूप के काल को ब्रह्मा दिन कहते हैं और अव्यक्त स्वरुप के काल को ब्रह्मा की रात्री कहते है इसी ब्रह्म दिन व रात्री को कल्प कहते हैं। ये ब्रह्मा का एक दिन हमारे १२३२००००००० वर्षो का एक दिन है । उस दिन को अभी तक १३ घड़ी ४२ पल ८ अक्षर व्यतीत हुये हैं । जिस का खुलासा विस्तार इस प्रकार है कि ४०००० वर्ष का एक अक्षर होता है इस ब्रह्म दिन में हज़ार चतुर्युगी होती है और १४ मनु होते हैं। एक मनु के ७१ महा युगों की चतुर्युगी होती है याने ४३२००००० वर्षों की होती है आगे पीछे एक एक मनु के एक एक सन्धि होती है और उस संधी का परम आदि कृतयुग के वर्ष से है यानि १५ मनु को १५ संधिया होती हैं इस से इस समय तक ६ मनु हो चुके है। अब सातवां व्यवस्त मनु वर्तमान प्रचलित है। उसके २७ महायुग व्यतीत हुये है अब अट्ठा- ईसवां २८ वां युग प्रचलित है उसमे के ३ युग अर्थात् कृतयुग १७२८००० वर्ष त्रेता के बारह लाख छयानवें हज़ार वर्ष और द्वापर के छयासी लाख चालीस हजार वर्ष होते

हैं कुल मिलाकर अठ्ठाईस लाख अठासी हजार वर्ष व्यतीत हुये हैं, कलियुग के चार लाख बत्तीस हज़ार वर्षों में से रहे हुये वर्ष कलियुग के बाद देने पर अठ्ठाईस लाख निन्यानवें हज़ार वर्ष चोदह बाकी रहे है। सब मिल कर ६ मनु के वर्ष एक अरब चौरासी करोड़ तीन लाख बत्तीस हज़ार इनकी सात संधियां हैं इनकी सात संधियां के वर्ष एक करोड़ बीस लाख छ्यानवें हज़ार सातवे ७ मनु के २७ चतुरयुगी के वर्ष ११६६४०००० और २८ वीं चतुरयुगी के भुक्त वर्ष ३८६३०१४ वर्ष हैं तो कुल जोड़ १९७२९४९०१४ वैसे ही अब रहे हुये अन्तिम के ७ मनु के २१४००४००० वर्ष होते हैं सातवें मनु मे से रहे हुये ३ चतुर्युगी के १८५-७६०००० प्रचलित २८ वीं चतुर्युगी के शेष वर्ष कलियुग के बाकी रहे हुये वर्ष ४२६९९६५ सब मिलकर विद्यमान पृथ्वी का अन्त होने के लिये २३४७०५०९६५ वर्ष बाकी हैं। इसी हिसाब से उपर्युक्त ब्रह्मा का दिन के कुल वर्ष जोड़ने से इस प्रकार होते हैं कि भुक्त ब्रह्मा के दिन के मानव वर्ष बीते हुये १९७२९४९०३५ वर्ष हे और बाकी रहे हुये २३४७०५०-९६५ हैं तो कुल ब्रह्मा के दिन इस प्रकार हैं।

१९७२९४९०३५ व्यतीत हुये
२३४७०५०९६५ बाकी है।

४३२०००००००० कुल दिन हैं।

और ज्योतिषियों के मतानुसार कल्प के प्रारम्भ काल में सूर्य चन्द्र नव गृह युगी में से मनुष्यों का १ वर्ष और देवताओं का एक दिन होता है प्रति युग संध्या और अंस ऐसे होते हैं जिसका लेखा नीचे दिया जाता है।

युग	संध्या	युग काल	संध्या अंस	संख्या
कृत	४००	४०००	४००	४८००
त्रेता	३००	३०००	३००	३६००
द्वापर	२००	२०००	२००	२४००
कलि	१००	१०३०	१००	१२००
जोड़	१०००	१००००	१०००	१२००

इसी हिसाब से यदि १२००० को यदि ३६० से गुणा करने पर मनुष्य वर्ष ४३२०००० होते है और एक कल्प में १००० महायुग होते है तो वे देव वर्ष १२०००००० होते हैं और अगर इन देव वर्षो को ३६० से गुणा करें तो मनुष्य वर्ष ४३२००००००० होते हैं।

जिज्ञासु—हाँ आपका ऊपर का बताया हुआ हिसाब तो ठीक है परन्तु क्यों वह ब्रह्मा ब्रह्म में से किस प्रकार इस सृष्टि जगत को रचता है और प्रमाण सहित कहिये कि ब्रह्मा की रची सृष्टि कैसे हैं ?

॥ ओ३म् ॥

माया का निरूपण

सर्ग प्रथम

अध्यास-दूषण

प्रकरण पहला

जिज्ञासु—आप जो कि ब्रह्म को निराकार शुद्ध अक्रिय और निर्विकार मानते हो तो फिर इसके अन्दर इच्छा और माया शक्ति आदि कहां से आई और आप इच्छा शक्ति को कहते हो तो जब कि ब्रह्म को सर्वदा निर्गुण मानते हो तो फिर वह सगुणात्मक इच्छा शक्ति किस तरह से आई, क्योंकि इच्छा सगुण में ही हो सकती है, निर्गुण में नहीं। कारण ब्रह्म आदि में ही सगुणत्व नहीं है इसलिये ही उसका नाम निर्गुण पड़ा है। तब फिर उस में सगुणत्व शक्तियां कहाँ से आई। यदि यों कहो कि निर्गुण ही सगुण हो गया तो ऐसा कहने से आपकी मूर्खता प्रगट होगी, क्योंकि कारण से कारण कैसे प्रगट हो सकता है, और यदि आप यों कहो कि वह निराकार ईश्वर करके भी अकर्त्ता है। तुम बेचारे जीव उसकी लीला को क्या जानो और उस परात्पर की महिमा बिचारा जीव कैसे जान सकता है, तो हम यों कहेंगे कि निर्गुण निर्लेप पर ज़बर-दस्ती कर्तत्व लादते हो, जब उसमें कर्तत्व बिल्कुल ही नहीं

तब करके भी अकर्त्ता कैसे हो सकता है। कर्त्ता और अकर्त्ता की वार्ता समूल मिथ्या है और यदि यों कहो कि कर्त्तापन नहीं आया तो फिर यह सृष्टि रचने की इच्छा कौन करता है यह तो बहुत पंडित लोग कहते हैं कि ईश्वर की इच्छा ! परन्तु यह नहीं जान पड़ता कि उस निर्गुण में इच्छा कहाँ से आई। तो फिर यह प्रत्यक्ष इतना किसने रचा या अपने आप ही हो गया। यह बड़ो संशय की बात है। यदि ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता कहो तो उसमें सगुणता होनी चाहिये और यदि ईश्वर आदि से ही निर्गुण है तो सृष्टि कर्त्ता कौन ? यदि ईश्वर को सगुण कहते हो तो वह गुणवान न ईश्वर होता है। यह बड़ी शंका की बात है कि यह सब चराचर जगत कैसे हुआ। यदि शक्ति, माया, प्रकृति आदि को स्वतन्त्र कहो तो विपरीत देख पड़ता है। यदि कहो कि माया को किसी ने नहीं बनाया। वह आपही आप फैल गई। इससे ईश्वर की ईश्वरता नष्ट होती है। यह कहना भी उचित नहीं देख पड़ता कि ईश्वर निर्गुण और स्वतः सिद्ध है। उसके और माया के कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह निर्लेप सत्य है और माया मिथ्या है। इनका सम्बन्ध नहीं हो सकता इन आशंकाओं का निवारण करने पर हमारा सन्देह निवृत हो जायगा। कृपा कर सविस्तार हमारा समाधान करिये, क्योंकि हमारी यह उत्कंठ जिज्ञासा है।

उत्तर-'समाधन' ब्रह्म की सगुणता की कल्पना की जाय तो कैसे क्योंकि वह तो स्वाभाविक ही निर्विकल्प है। वहाँ तो कल्पना के नाम से शून्याकार है। इतने पर भी यदि

उस की कल्पना की जाय तो वह कल्पना के हाथ मे नहीं आता बल्कि पहिचान भी नहीं मिलती, चित को भ्रम होता है, दृष्टि को कुछ दिखता ही नहीं और न मनको ही कुछ भासता है और जो न भासता है, न दीखता है । पहचाने तो कैसे ? यदि हम निराकार को देखते हैं तो मन शून्याकार में पड़ता है, यदि हम उसकी कल्पना करते है तो जान पड़ता है कि अंधकार भरा पड़ा है । कल्पना करने से ब्रह्म काला जान पड़ता है । परन्तु वह न काला है न सफेद । वह लाल, लीला और पीला भी नहीं है । वह तो वर्ण रहित है, जिसका रंग-रूप ही नहीं है । जो भास से भी अलग है, जो इन्द्रियों का विषय नहीं है । उसको कौन सी इन्द्री से पहचाने इससे तो उसको देखने में लगना, कोरा श्रम ही बढ़ाना है । वह निर्गुण व गुणातीत है । वह अदृष्य और अव्यक्त है, वह परम पार ब्रह्म है । अचिन्त या चिन्तनातीत है । जैसे—

अचिन्त्या व्यक्त रुपाय, निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्थ जगाधार, मुर्तये ब्रह्मये नमः ॥

अचिन्त की चिन्तना अव्यक्त का ध्यान और निर्गुण की पहचान किस प्रकार करें, जो देख ही नहीं पड़ता, वह मन को मिलता ही नहीं । उस निर्गुण को कैसे देख सकते हैं । अनंग का संग करना निरालम्ब, और निराधार जैसे आकाश में वास करना और निशब्द का प्रतिपादन करना कैसे हो सकता है । अचिन्त्य की चिन्तना करने से निर्विकल्प की कल्पना करने से निर्गुण का ध्यान करने से सगुण

ही उठता है, अब अगर ध्यान ही छोड़ दें और अनुसन्धान भी न लगावें तो फिर पीछे से महा संशय में पड़ते है। निर्गुण के डर से यदि उसका विचार ही न करें तो इससे हृदय को कभी शान्ति नहीं मिलती।

अभ्यास करने से आभास हो जाता है, आभास होने पर प्राप्ति में पहुँचना पड़ता है और सगुणत्व निर्गुणत्व आदि के विचार से नित्यानित्य का समाधान होता रहता है।

चराचर का चितवन करने से रचनात्मक आ जाता है और उसको छोड़ने से कुछ समझ में नहीं पड़ता तथा विवेक के बिना शून्यत्व के सन्देह में पड़ना है। इसलिए विवेक से सारासार को धारण करना चाहिए और ज्ञान के द्वारा चराचर का विज्ञान प्राप्त करना चाहिए और तार्किकों (तर्क बाज़ों) के सिद्धान्तों दलीलों के शंका-समाधानों के परपंच से बचना चाहिये और पक्ष-पात रहित होकर अपनी बात की ममत्व, अहत्व भाव को दूर करना चाहिये और सत्यासत्य का निर्णय करना चाहिये। पर ब्रह्म निर्गुण है। उसकी कल्पना करते ही सगुण इच्छा शक्ति उठती है वहाँ हेतु और दृष्टान्त कुछ नहीं चलता है। उसका स्मरण करते समय स्मरण को भूल जाते हैं। अद्भुत बात तो यह है कि विस्मरण हो जाने पर भी स्मरण रह जाता है। उस परात्पर परम पर ब्रह्म को जान करके फिर जान पन को भूल जाना चाहिये। वही जान पन सच्चा है। उसमें न भेटते हुये में भेट होती है और मिल जाने में बिछोहा पड़ता है।

ऐसी यह मूकावस्था की अद्भुत बात है। वह साधन से सधना नहीं, अथवा छोड़ने से छूटता नहीं और निरन्तर, जो उसका आन्तरिक सम्बन्ध है, वह लगातार लग रहा है, वह टूटता नहीं। वह स्पन्दन रूप सदा ही बना ही रहता है, ऐसा यह अखंड है। देखने से वह छिप जाता है और न देखने से जहाँ तहाँ प्रकाश करता है, उसके लिये उपाय भी अउपाय हो जाता है और अउपाय भी उपाय हो जाता है। अनुभव अकथनीय है। अनुभव के बिना वह कब समझ में पड़ने लगा। वह अन समझ में ही समझ पड़ता है और समझने पर भी कुछ समझ नहीं पड़ता है। वह निवृत्ति पद है, वृत्ति छोड़कर प्राप्त करना चाहिये। जब वह ध्यान में नहीं आ सकता तब चित में चिन्तना करने से चित्त ही जान लेता है। यह सारा विश्व उसमें भरा हुआ है। ऐसा वह पोला (जगह खाली पड़ी) है। परन्तु वह जगत से अलिप्त ही बना है। पता लगाने से कुछ जान नहीं पड़ता और मन सन्देह मे पड़ता है, एसी दशा में मन घबराकर सत्य स्वरूप का अभाव मान लेता है और नास्तिक बन जाता है, और कहता है कि वह है ही नहीं अथवा वह कुछ व कोई नहीं। उसे क्या देखें। लेकिन फिर भी मन में विचार आता है कि वह वास्तव में है ही नहीं, तो यह प्रत्यक्ष चराचर किसके आधार पर है और इन पृथ्वी आदि लोक-लोकान्तरों की रचना किस तरह पर रची गई है। यह विचार सगुणत्व (यानी ज्ञानगम्य) का है यानी निर्गुण में सगुण हो सकता है क्योंकि निर्गुण में सगुण की जगह (पोल) खाली है। उस खाली जगह में सगुणत्व रह सकता है, क्योंकि गुण, गुण में नहीं रह

सकता इस प्रकार गुण, निर्गुण में रह सकता है। निर्गुण और सगुण दोनों समष्टि, व्यष्टि, व्यापक, व्याप्य आदि न्याय में रहते हैं।

॥ प्रकरण दूसरा ॥

जिज्ञासु—अच्छा तो यह बतलाइयेगा कि ऐसे निर्गुण में सगुण किस प्रकार से प्रकट हुआ है।

उत्तर—जिस प्रकार धर्मात्मा में ही धर्म प्रकट हो सकता है और अधर्मी में धर्म कदापि प्रकट नहीं हो सकता, इसी न्याय से निर्गुण में ही सगुण प्रकट हो सकता है। निर्गुण के माने बिना सगुण प्रकट हो ही नहीं सकता, क्योंकि गुण के प्रकट होने में आधार की आवश्यकता रहती है, क्योंकि गुण निराधार में रह नहीं सकता, क्योंकि गुण, गुणी के आधार पर ही रह सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार सगुण निर्गुण के आधार पर ही टीका हुआ है और निर्गुण के प्रताप से ही सगुणत्व को प्राप्त होता है और सगुण में निर्गुण की ज ह खाली है और निर्गुण उसी जगह में व्यापक रहता है और निर्गुण में सगुण की जगह खाली है और सगुण उसी जगह में व्याप्त है। निर्गुण और सगुण व्यापक और व्याप्य के भेद से रहते है। निर्गुण और सगुण के पर स्पर-सम्बन्ध से अनु-बंध लगा हुआ है। सगुण और निर्गुण का संयोग वियोग का सम्बन्ध नित्य होता रहता है। जैसे सयोग में तो सगुण अपने सगुण स्वरूप मे होते हुये भी निर्गुण के सयोग में निर्गुण हो जाता है और अपने सगुण स्वरूप का अभाव हो जाता है आर निर्गुण के विरा होते ही वह फिर अपने सगुणत्व के गुण को प्राप्त हो जाता है

और सगुणत्व के गुणों से व्यापार करने लग जाता है। यह बात तर्क के दृष्टान्त और हेतु से नहीं जानी जासकती है। अनुभ व ज्ञान में ही आ सकती है। सगुण संसार के प्रलय अवस्था म निर्गुण के संयोग में रहता है; क्यों कि प्रलय काल में सर्व गुणों का अभाव हो जाता है और संसार की प्रकट अवस्था में अभाव से पुनः .भाव सगुण प्रकट हो जाता है और अपनी सगुण शक्ति के द्वार सृष्टियों का रचने वाला हो के सर्व सृष्टियों को अपने सगुण संकल्प द्वार रचता है। ऐसे यह सगुण हैं।,

॥ प्रकरण तिसरा ॥

जिज्ञासु—सगुण संकल्प कैसे उठता है और उसका स्वरूप कैसा है।

उत्तर—वह संकल्प ही एक युगल द्वंद्व रूप का जोड़ा है, जो कि स्त्री पुरूष रूप में शामिल उठता है और शामिल भी मिश्रीत रूप म ही बरता जाता ह । ये आपस में समष्टि व्यष्टि रूप में होता रहता है । और व्यक्त अव्यक्त भाव से कार्य कारण होता रहता है।

जिज्ञासु—क्या ये जोड़ा सामिल जुड़ा हुआ आप बत-लाते हैं ये कोई मन घड़न्त आपका सिद्धान्त ही होगा, नः कि वेद् सास्त्र का कोई सिद्धान्त है। जोड़ा होकर भी मिला हुआ कैसे रह सकता है? यह तो बिल्कुल झूठ है ।

उत्तर—यह सिद्धान्त वेदों का ही है । देखो इसी जोड़े को अर्द्ध-नारीश्वर और शिव-शक्ति के नाम से पुकारते हैं । समष्टि रूप में तो मिले हुये के दो रूप है और व्यष्टि रूप में अलग २ नामों से और अलग २ क्रिया मिलकर करते हैं।

जिज्ञासु—क्या आप इसके विषय में कोई प्रमाण दे सकते हैं ? यदि हाँ, तो दीजियेगा।

उत्तर—लाखों करोड़ो प्रमाण दे सकता हूँ, परन्तु ग्रन्थ के बढ़जाने की वजह से जो बात सारांश की है वही मैं इस ग्रन्थ में लिखता हूँ और मैं जितना जानता हूँ उसका लाखवा अश मात्र लिखता हूँ। यह लो कुछ प्रमाण सुन लीजियेगा ! नरसिंहोत्तर तापिनिय उपनिषद् में यों लिखा है कि—

योगेनात्मा सृष्टि विधौ. द्विधा रूपो व भूवसः।
पुमांश्च दक्षिणा र्धाङ्गों, वा मार्धा प्रकृति स्मृताः॥

अर्थात् सृष्टि के विधान में आदि दो रूप (शक्क) कि योग में (मिली हुई) आत्मा प्रकट हुई जिसके दो रूप थे। एक रूप दक्षिणा अंग के आधे में पुरुष और वाम अंग के आधे में स्त्री रूप था।

द्विधाकृत्वात्मनो देह र्द्धेन पुरूषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजम सृजत्प्रभू॥

अर्थात् एक ही देह में (आधे में पुरुष और आधे में स्त्री) दोनों विराजमान होकर सृष्टि को सरजा है।

मनुस्मृती छोन्दो उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है

सवै नैव रेमे, तस्मादे का की न रमते, स द्वितीय मैच्छत्॥
सहैता वानास। यथा स्त्री पुमां सौ संरिश्च क्तौस इममें
वात्मानं दृधा पात भततः पेतिश्च पत्नी चा भवताम्॥

अर्थात् वह अकेला रमण नहीं कर सकता क्योंकि अकेला कोई भी रमण नहीं करता। उसने दूसरे की इच्छा करते ही वह ऐसा हो गया। जैसे-स्त्री पुरुष जुड़े हुये होते हैं। फिर उसने अपने रूप के दो भाग अलग २ किये जिससे पति और पत्नी हो गये। इसीको कुरान में भी कहा है—

खलक ना मिन कुल्ले शयीन जौ जैन्।

खुदा कहता है कि मैंने सब चीजों का जोड़ा २ पैदा किया है इस विषय मे ज्यादा प्रमाण देने की क्या आवश्यकता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि न अकेला पुरुष ही सन्तान उत्पन्न कर सकता है और न स्त्री। जब तक स्त्री पुरुष दोनों आपस मे मिलकर एक रूप में एक रस में) न हो जाय तब तक सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। इससे साफ जाहिर होता है कि समष्टि सृष्टि में आदि ये दोनों एक साथ ही हुये हैं फिर व्यष्टि सृष्टि मे ये व्यक्ति गत रूप में हो गये परन्तु जो इनके परस्पर रमण कार्य का आनन्द है वे तो अब भी समष्टि युक्त होने से ही, पैदा होता है। बस ग्रन्थ बढ़जाने से इतना ही काफ़ी है।

॥ प्रकरण चौथा ॥

जिज्ञासु—अच्छा तो इनका भिन्न २ निरूपण करके हमको समझाइयेगा।

उत्तर—प्रथम पुरुष वाचक शब्दों का वर्णन करते हैं।

सर्व शक्तिमान् सर्व सृष्टा सर्वज्ञ गु श्वर साक्षी दृष्टा।
ज्ञानधन आनन्द् घन प्रमात्मा जग जीवन जग ज्योति स्वरूप।
आद पुरुष मूल पुरुष आदि अनेक नाम पुरुष वाचक है।

अब स्त्री वाचक शब्दों का वर्णन करेंगे। सुनो

आदि माया, आदि शक्ति, अन्तरात्मा, मूल माया गुण माया मूल प्रकृति चैतन्यशक्ता, आधी महालक्ष्मी, महा सरस्वती, महा काली, अखीलात्मा, परा, अपरा, विद्या, अविद्या, ज्ञान-शक्ति इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, द्रव्य शक्ति, आदि अनेक नाम स्त्री वाचक है। अब हम पहले आदि माया का ही वर्णन करते हैं। यह माया संपूर्ण सृष्टि कि और उपाधी (शरीर) की मूल कारण है। यह ही आदी अन्तरात्मा महा माया में सम्पूर्ण कल्पना समष्टि रूप में समाई हुई है और उसी कल्पना में सम्पूर्ण सृष्टि समा ही हुई है।

उसी अन्तरात्मा के दो रूप है-(१) समष्टि २, व्यष्टि। समष्टि रूप में यह अन्तरात्मा चैतन्य शक्ति कि फैलावट विस्तर अनन्त है जिस प्रकार पानी का तुषार बन कर अनन्त रेणुओं के रूप में व्यापक होता है उसी तरह यह चैतन्य आत्मा की सत्ता समष्टि रूप में चराचर में व्यापक है। इसका पुरा २ वर्णन करना महा कठिन काम है। अब इसके व्यष्टि रूपों को वर्णन करते हैं। इस अन्तरात्मा के मूल-माया, मूल-शक्ति आदि रूप है।

यह मूल माया जगत् की उपादान होकर सम्पूर्ण जगत् को अपने गर्भ शय में बीज रूप में व्याप्त रखती है। जैसे बीज के आदि और अन्त में मूल माया रहती है और बीज के सम्पूर्ण भावों को यह मूल (जड़) ही व्यक्त करती है। जिस प्रकार वृक्ष की शाखायें, प्रशाखायें, फल-फूल, पत्र-

पुष्प आदि मूल के आधार पर ही सजीव रहते हैं । यदि मूल काट दिया जाय तो वृक्ष, पत्र, पुष्प, फल, शाखाये आदि कुछ नहीं रहता । यह सब मूल के ही आश्रित है ।

बीजों को उत्पन्न, उत्साधन, उपादन आदि सब मूल ही में अवस्थित हैं । मूल ही के आदि अन्त में बीज रहता है । जब मूल ही नहीं तब उत्पत्ति भी नहीं । जैसे बीज का वृक्ष उत्पन्न करने के लिये पृथ्वी आदि की आवश्यकता होती है । बिना पृथ्वी के न तो बीज ही उत्पन्न हो सकता है और न मूल ही जम सकता है ।

मूल, बीज और वृक्ष के आदि में पृथ्वी का होना परम आवश्यक है, इसी प्रकार से अन्तरात्मा तो पृथ्वी के आधार पर है । जैसे बीज का सम्पूर्ण वृक्ष पृथ्वी के आधार पर रहता है और वृक्ष मूल के आधार पर और पत्र, पुष्प फलादि सब वृक्ष के आधार पर रहते हैं और रस वीर्य्य विपाक आदि सब पत्र, पुष्प, फल, मूल, त्वचा आदि के आधार पर है । परन्तु यह सम्पूर्ण वृक्ष उस मूल माया के गर्भशय में समष्टि रूप से व्याप्त रहता है । बीज को देखो ! व्यष्टि रूप में यानि वृक्ष का उपादान करने में मूल माया उस वृक्ष का कितना पालन पोषण करती है, जितना कि हमारी माता करती है ।

यह पृथ्वी जो कि इसकी सह धर्मणी है । उसके अन्दर चाहें कितनी कठिन से कठिन क्यों नहीं हो, मूल अन्दर प्रवेश होकर वृक्ष के खाद्य पदार्थ को अपने अन्दर लेकर सम्पूर्ण वृक्ष के अंग प्रत्यंगों को पहुँचाती है । उसी से वृक्ष

जीवित रहता है । यह सब मूल की ही महिमा है । परन्तु मूल नहीं हो तो पृथ्वी क्या कर सकती है और जड़ पृथ्वी ही के अन्दर रहती है । देखो ! पृथ्वी और जड़ में कुछ भी अन्तर नहीं है । बल्कि घनिष्ट सम्बन्ध है । मूल के फैल जाने के लिये कितनी हा कठोर पृथ्वी क्यों नहीं हो फिर भी जड़ को अन्दर घुस जाने के लिये स्थान दे ही देती है और जड़ से कितना प्रेम करती है अपनी जो आत्म जीवन शक्ति है, उस मूल को देती है और जड़ वृत्तों से कितना प्रेम करती है कि जो कुछ वह जीवन धन पृथ्वी की अन्तरात्मा से लेती है, वह वृक्ष को दे देती है और वृक्ष अपने जीवन धन को पत्र, पुष्प, फलादि मे व्यक्ति कर देता है और दिव्य दृष्टि से देखा जाय तो वृक्ष मात्रा ओषधादि स्थावर प्राणी, उस जीवन धन शक्ति को जो कि उसको जड़ और वृक्ष से प्राप्त हुई है, वह जंगम प्राणियों से प्रेम रखती है । इसलिये वह शक्ति जंगम प्राणियों को दे देती है और उस शक्ति से जंगम प्राणी जीवित रहते हैं, । यह कैसी परस्पर प्रेम की बात है । ये जंगम प्राणी (मनुष्यादि) उस जीवन शक्ति को अपने जीवन व्यापार में खर्च कर डालता है और हर समय उस जड़ स्थावर, उद्भिज प्राणियों की जीवन शक्ति का भिकारी बना रहता है । अपने मुख्य मूल को भूल जाता है । ये सब उस अन्तरात्मा, मूल धन ही का धन है । अच्छे २ सुस्वादु रस व्यन्जनों का आहार सुबह करते है । और शाम को उस धन को खर्च कर देते है । और शाम को एकत्रित किया हुआ प्रातः काल खर्च कर देते हैं ।

हर समय उस अन्न पूर्णा देवी के भिखारी बने हुये उसी की लालसा में लगे रहते हैं और उसकी भिक्षा की प्राप्ति में

नाना भांति के उद्योग, धर्म अधर्म, झूठ, कपट, दुख कष्टादि को उठाते रहते हैं और मृग-तृष्णा की भांति इधर उधर फिरते रहते हैं, जिस पर की उसकी अनुग्रह होती है वह नाना भाँति के सुख ऐश्वर्य्यादि को भोगते हैं । यह मूल माया ही की महिमा है । ग्रन्थ के बढ जाने के भय से इतना ही समुचित है ।

॥ प्रकरण पांचवा ॥

अब मूल माया का व्यक्तिगत रूपों का वर्णन करेंगे प्रथम महा अन्तरात्मा में जब, क्षोब उठता है तब व्यष्टि रूप में मूल माया उठती है और जब मूल माया में क्षोब उठता है । तब व्यक्ति गत त्रिगुणों की गुण माया उठती है और गुण माया में जब क्षोभ उठता है तब भूत माया उठती है और जब भूत माया में क्षोब उठता है, तब प्रकृति माया उठती है और जब प्रकृति माया में क्षोब उठता है तब प्रकृति रूप माया उठती है, जब रूप माया में क्षोब उत्पन्न होता है तब प्रकृति मोहो माया उत्पन्न होती है । इस प्रकार इस माया के अनन्त स्वरूप और अनन्त नाम है ।

प्रथम मूल माया में जब क्षोभ उठता है तब इस को प्रस्वधर्मणी गुण क्षोभिणी कहते हैं । ये त्रिगुण व्यक्ति गत रूप इसी में से उठते है । जिस प्रकार एक ही घर में सोये हुये पुरुष जाग उठते हैं । पहिले चैतन्य स्वरूप सत्व गुण प्रकट होता है । यह तीनों लोकों का पालण करने वाला तथा रक्षक प्राण स्वरूप है । इसके बाद ज्ञान अज्ञान मिश्रित

रजोगुण स्वरूप प्रकट होता है वह चराचर जगत और सप्त लोक लोकान्तरों को रचैता है फिर सकल संहार का कारण तमोगुण स्वरूप उठता है बस, यहाँ पर कर्तव्य समाप्त हो जाता है। मूल माया में जो ज्ञान पन है वही सत्व गुण है और सत्वगुण में जो चेतना के लक्षण है। वही ज्ञान है। क्यों कि जानना चेतना द्वारा होता है। यह एक ही चेतना शक्ति सम्पूर्ण प्राणियों में फैली है और अपने ज्ञानपन के द्वारा सर्व देहधारियों का रक्षा और पालना करती है। इसी का नाम जग ज्योति है।

सब चराचर प्राणियों के हृदय प्रदेश में यह जगजीवनी शक्ति खेला करती है और इसी की चैतन्य सत्ता के ज्ञानपन के द्वारा सम्पूर्ण जीव अपने शरीरों को भोग भोगाते हैं, बचाते हैं, छिपाते हैं। यही सारे विश्व का पालण करती है इसी से इसका नाम जग ज्योति हुआ है। इसके ही शरीर में से निकल जाने से ही जीव मरण हुआ कहते हैं।

जि०—गुरुजी ये ज्ञान पन माया में कहां से आया? क्योंकि ज्ञान पन दृष्टा के गुण हैं।

उ०—जिस प्रकार कारण शरीर में सर्व साक्षिणी तुरिया अवस्था होती है, उसी को ब्रह्माण्ड में मूल कारण मूल माया है। इसी मूल माया में ज्ञानपन का अधिष्ठान है। इसी अधिष्ठान मे मूल पुरुष के सकल्प का आरोप होता है। इसी से इस मे ज्ञान पन है। मूल माया में ये गुण अव्यक्त रूप में समाये रहते हैं। जैसे एक पुष्प के पौधे मे पुष्प अव्यक्त रूप मे समाये रहते हैं। उस पुष्प की

कली पहले आती है फिर वह खुल कर खिल जाती है, इसी प्रकार से यह मूल माया से गुण क्षोभ में आकर पुष्प की कली के अनुसार होने को ही गुण क्षोभिणी कहते हैं । जब ये गुण व्यक्ति गत स्वरूप में उठकर प्रकट होते हैं जैसे कली खिल कर खुल जाती है। तब इसको गुण माया कहते हैं । यानि कली से पुष्प नाम हुआ। इसी प्रकार गुण हुये । इन गणों को गुणात्मा कहते हैं । इसी के बाद ज्ञानपन, अज्ञानपन और ज्ञान तथा अज्ञान के मध्यम में ये तीनों गुण मिश्रित रूप में बरते जाते हैं। इस प्रकार गुणों की उत्पत्ति हुई।

जि०—ये गुण मिश्रण रूप में कदापि नहीं बरते जा सकते हैं। क्यों कि इन में परस्पर एक के गुण धर्म दूसरे के गुण धर्म के विरुद्ध है । जैसे रजोगुण उत्पत्ति करने वाला है तो तमोगुण (संहार) नष्ट करने वाला है। ऐसे होने पर भी ये परस्पर सम्मलित से कैसे बरते जा सकते हैं। जैसे सत्व गुण का धर्म ऊँचा उठने को है और तमोगुण का नीचे उतरने को है । फिर ये मिल कर कैसे बरते जा सकते हैं। ये विरुद्ध धर्म वाले होकर आपस में कार्य करने के बजाय नष्ट हो जाते हैं, फिर ये कन्दर्प रूप में कदापि नहीं बरते जा सकते ।

उ०—ये तीनो आपस में साहायकारी है और सब परस्पर मिलकर रहने से ही इनका कार्य स्थिर रहता है । देखो, ये तीनों गुण एक वैद्य में ही मिश्रित रूप से बरते जाते हैं। जैसे व्याधि की चिकित्सा में वैद्य का पहला कार्य्य

यह है कि व्याधि का समूल नष्ट करना है। अतः उस समय वह वैद्य तमोगुण का काम करता है, परन्तु तमोगुण का रुद्र का यह काम करते हुये रोग को समूल नष्ट करते समय उसको ऐसा सावधानी से रहना चाहिये कि जिसकी क्रिया से केवल रोग ही नष्ट हो, नः कि रोग के संहार के साथ २ रोगी भी संहार हो जाय । इसी लिये वैद्य रोगी के प्राणों की रक्षा करते समय वह विष्णु स्वरूप सत्व गुण का भी काम करता है और जब रोग नष्ट हो जाय तो जो धातु आदि रोगी के शरीर से क्षीण हो गये हों, उनको पुनः उत्पन्न करने के लिये पौष्टिक आहार और औषधि से उस रोगी के घटे हुये तत्वों को पुनः उत्पन्न करते समय वैद्य ब्रह्मा स्वरूप रजो गुण का काम करता है । इस प्रकार यह एक ही वैद्य रोगी के साथा में मिश्रित रूप से ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों बन जाता है, और परस्पर रिरुद्ध गुणो के मेल से ही उपाधियों की विशेषणों की रचना होती है । यदि सामान समान गुण हो तो कोई विशेषण उत्पन्न नहीं होता जैसे लाल रङ्ग मे लाल रङ्ग मिलने से कोई विशेषण प्रकट नहीं होता।

ये परस्पर सहायकारी ऐसे होते है कि जैसे ओक्षीजन (Oxygen) गैस और नाईट्रोजन (Nitrogen) गैस परस्पर विरुद्ध गुण वाले होते हैं, परन्तुज ब मिलते हैं तब मिश्रित रूप में वायु बन जाते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। इसी प्रकार से ये गुण कन्दर्प रूप से बरते जाते हैं और इनके मिलने से एक दूसरे के गुण नष्ट नहीं होते, क्योंकि एक में एक के गुण का स्थान खाली है। जैसे सत्व में रज की और रज में तम

की । उसी में ये सम्मिलित व्याप्य रूप में रहथे हैं । इसके परस्पर मिलने से क्रिया शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, द्रव्य शक्ति आदि का व्यवहार होता रहता है ।

अध्याय—तीसरा

॥ प्रकरण पहला ॥

अब भूतों की उत्पत्ति को कहते हैं । भूतों में जब क्षोभ होता है, तब मूल माया में अव्यक्त रूप में समाई हुई भूत माया क्षोभ को प्राप्त होती है उसी में ये सूक्ष्म पञ्च भूत उठते हैं और अपने कन्दर्प रूप में जान अजानपन द्वारा बरते जाते हैं ।

जि०—गुरूजी आप आश्चर्य की बात कह रहे है, कि जो आज तक हमने कभी नहीं सुनी । भूतों में ज्ञान पन कैसे आया और किसने देखा ।

उ०—यदि सूक्ष्म तौर पर देखा जाय तो यहां पर ज्ञानपन स्पन्दन को कहते हैं । यह स्पन्दन चलन शक्ति के लक्षण है तो फिर यह सभी भूत गुणादि चलते हैं । इससे इनमें ज्ञानपन और अज्ञानपन के गुण बरते जाते हैं । यह जरूर है कि वह कहीं दीखते हैं और कहीं नहीं दिखते हैं । परन्तु यह ज्ञानपन भूतों में व्याप्त अवश्य है । उसकी स्थूलता तथा सूक्ष्मता तीक्ष्ण बुद्धि से भासती है । भूतों में ये भूत सन कर पंच भूत बने हैं । वास्तव में देखने से कोई स्थूल और कोई सूक्ष्म भासते हैं ।

जिस प्रकार निरोध वायु का भास नहीं होता; उसी प्रकार ज्ञानघन के लक्षणों का भी भास नहीं होता । परन्तु लक्षणातीत में उसका बोध होता है । ये भूत अलग २ दृष्टि में आते हैं । परन्तु वास्तविक रूप में तो परस्पर मिले हुये हैं । इनका अनुभव बहुत चतुरता के साथ में प्रतीत होता है ।

जि०—आप बतलाते हो कि ये भूत परस्पर मिले हुये हैं । यह बात निःसन्देह है कि सूक्ष्म आकाश में स्थूल पृथ्वी किस प्रकार मिल सकती है ।

उ०—इसको जानने के लिये पहले अपनी बुद्धिको बिचार की कसानटी पर कसकर तेजकर लेना चाहिये। सब से पहले भूतों का सूक्ष्म रूप पहचानना चाहिये फिर उसको खोज की दृष्टि से देखना चाहिये । जब तक किसी भी पदार्थ की पहचान न हो तब तक वह कैसे पहचानी जा सकती है । इसी लिये प्रथम इन सूक्ष्म भूतों की सूक्ष्म पहचान जान कर जान लो, फिर पहचानना ।

॥ पहिचान ॥

जो कुछ जड़ और कठिन है, वह पृथ्वी है । जितना कुछ मृदु और गीलापन (क्लेद) है, वह जल है । जो कुछ उष्ण भास और तेज युक्त है, वह सर्व अग्नि है । जो कुछ चैतन्य और चंचल (स्पन्दन) है वह सर्व वायु है । जो कुछ शून्य (पोल) निश्चिल (स्थिर) है, वह आकाश है । यह पंच भूतों की सूक्ष्म संक्षिप्त पहचान हुई ।

अब यह बताते हैं कि एक २ भूत के अन्तरगत पांच पांच भूत कैसे मिले हुये हैं ?

अब पहले यह बतलाते हैं कि सूक्ष्म और व्यापक आकाश में पृथ्वी किस प्रकार से पैठी हुई है । अब जरा सावधान होकर धारणा की शक्ति स्थिर करलो क्योंकि विषय बहुत गहन है ।

अकाश अवकाश को कहते हैं, अवकाश शून्य को, शून्य अज्ञान को और अज्ञान जड़ता को कहते हैं । यहीं जड़ता आकाश में पृथ्वी के रूप में है । आकाश में जो मृदुता है वही जल है । अज्ञान से जो आकाश में शून्य का भाष जान पड़ता है, वह भाष ही अग्नि है । आकाश में जो स्तब्धता है वही वायु है । (क्यों कि वायु में भी आकश की तरह स्तब्धता है) अब रहा आकाश में आकाश, सो इसकी बताने की आवश्यकत्ता नहीं है, क्योंकि आकाश में आकाश होते हैं ॥ अस्तु ॥

अब यह सिद्ध हो गया कि आकाश में तो पंच भूत मिश्रित वर्तमान हैं । अब हम यह बताते हैं कि वायु में पंच भूत किस प्रकार मिश्रित है ।

जिस प्रकार किसी भी हल्की से हल्की वस्तु में जड़ता होती है,उसी प्रकार पवन भी एक हल्को वस्तु है इससे पवन में भी जड़ता हुई । अर्थात् स्थिती स्थापक । क्योंकि पवन का झोका लगता है, झोका लगने से वृक्ष टूटकर गिर जाते हैं पवन की क्षमता को ही पृथ्वी कहते हैं अथवा यों कहिये

कि वायु में जो भार का घनत्व है वही उसमें पृथ्वी है। जैसे अग्नि की छोटी से छोटी चिन्गारी में किसी न किसी रूप में उष्णत्वा रहती है, वैसे ही वायु के चलन के संघर्ष में अग्नि है। वायु में जो कोमलता है वही उसमें जल है । पवन में पवन की जो चंचलता है वह। पवन में पवन वर्तमान है। अब अवकाश रूप से पवन में आकाश सहज ही से मिला हुआ है इस प्रकार पवन में भी पांचों भूतों का मिश्रिण विद्यमान है।

अब अग्नि में सुनिये । अग्नि में जो तेज की प्रखरता की खर्त्वा है वही उसमें पृथ्वी है, और अग्नि के भास में जो मृदुता जान पड़ता है, जिससे प्रत्येक चीज अग्नि में गलती है, वही उसमें जल है। अग्नि मे अग्नि बताने की अधिक आवश्यकता नहीं । क्योंकि अग्नि में उष्णत्वा स्वयं है । अग्नि में जो चंचलता है, वही वायु है। अग्नि में जो व्याप-कता है वही नभ है। इस प्रकार अग्नि में पांचों भूत मिश्रित है। यह तो हुआ अग्नि में जो भूत है उनका वर्णन, अब जल के पांचों भूतों का वर्णन सुनिये।

जल में मृदुता ही जल है। जल में जो कठोरता है वही पृथ्वी है। जल में जो द्रव्यता है वही अग्नि है । जल में जो चलन शक्ति है, वही पवन है । जल जो आकाश है, वह अधिक आवश्यकता नहीं। क्योंकि वह तो स्वभाविक ही सबमें व्याप्त है। इस प्रकार जल मे जो अवकाश है वहीं आकाश है।

अब पृथ्वी मे पांचों भूतों को सुनिये । पृथ्वी में जो कठोर तत्व है, वही पृथ्वी में पृथ्वी है । पृथ्वी में जो मृदुता

है वही जल है। जो कठोरता का भास है, वही अग्नि है। निरोधता में जो कठिनता है, वही पवन है। पृथ्वी में जो आकाश है, उसने पृथ्वी को सार रक्खा है। यानि चलनी बना रक्खा है। इस प्रकार जब कि आकाश में भी पांचों भूतों का भास है, तब फिर आकाश का अन्य भूतों में होना कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि आकाश ऐसा सूक्ष्म है कि वह न तोड़ने से टूटता है, न मोड़ने से मुड़ता है, न फोड़ने से फूटता है, और न तिल मात्र भी कहीं से हट सक्ता है। इस प्रकार प्रत्येक भूत में इन पांचों का मिश्रिण सूक्ष्म अंशों में पांच २ भूत उपस्थित है। परन्तु यह बात ऊपर से स्थूल दृष्टि से नहीं जान पड़ती। किन्तु मन में बड़ा सन्देह होता है और भ्रांति वश इस बात पर वाद्-विवाद् करने का अभिमान भी आ जाता है। यद्यपि यों तो आकाश में और कुछ नहीं जान पड़ता है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से खोजने पर पंच भूतों का अस्तित्व पाया जाता है। यही पंच भूतात्मक और त्रिगुणात्मक, मूल माया, मूल प्रकृति है। खोज की दृष्टि के विहुन संदेह दूर नहीं होता और सन्देह रखना महा मूर्खता है। इसलिये सूक्ष्मता से इसका विचार करना चाहिये। ऊपर जो भूतों का मिश्रिण सूक्ष्म बताया गया है, वह अरूपा है और प्रमाण रूप में चराचर जगत के लोकलोकान्तरों के बनने से पहले का है और इसी मूल सामग्री से चराचर लोकान्तरों की रचना रचाई गई है ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि का प्रगट होना भी इस ओर की बात है। मेरु, सप्त सागर अनेक लोक लोकान्तरों चन्द्र, सूर्य तारागण आदि चराचर जगत का अव्यक्त रूप की यही सामग्री है।

जिस प्रकार सम्पूर्ण वृक्ष को चीरने से और मूल, शाखा, पत्र, पुष्प आदि को चीरने से कहीं भी फल दृष्टि-गोचर नहीं होता, तथापि फल कहाँ से आता है ? फल को चीरने पर बीज मिलता है, न कि बीज को चीरने पर फल मिलता है । अव्यक्त की सामग्री है कि एक ही बीज से अनन्त फल और एक फल में अनन्त बीज । ऐसा यह वैराट अव्यक्त है । जिसका वर्णन मैं कहाँ तक करूं । कारण यह है कि विषय अधिक लंबा और चौड़ा बन जाय । इसलिये प्रसुतित विषय को ही पूरा करना है. इसलिये अन्य विषय को संक्षेप में ही पूरा करना है, क्योंकि मै निराक्षार भट्टा-चार्य्य हूँ ।

॥ प्रकरण दूसरा ॥

इस प्रकार एक २ भूत में ये सूक्ष्म पंच २ भूतों का मिश्रिण आप को बताया गया है । अब एक २ भूत में निज स्वरूप के पांच २ रुपों को बतलाते हैं ।

(१) आकाश में आकश के रूप ।

(१) आदि महाकाश । (२) अनुपादाकाश । (३) चिदाकाश । (४) चित्ताकाश । (५) भूताकाश ।

(२) वायु में वायु के रूप ।

(१) प्राण । (२) उदान । (३) समान । (४) अपान । (५) वयान ।

(३) अग्नि में अग्नि के रूप ।

(१) पाचक। (२) रंचक। (३) साधक। (४) आलोचक। (५) भ्राजक।

(४) जल में जल के रूप।

(१) क्लेन्दन। (२) अवलम्बन। (३) रसन। (४) स्नेहन। (५) श्लेषमण।

(५) पृथ्वी में पृथ्वी के रूप।

(१) स्थिर। (२) स्थूल। (३) मूर्त्त। (४) गुरु। (५) खर या कठिन इस प्रकार एक में ये पांच २ प्रकार हैं।

अब इन भूतों में गुणों के मिश्रण को कहते हैं। योतो सभी गुण भूतों में मिश्रण है परन्तु विशेष को कहते है प्रथम प्रकाश रहित आकाश होने के कारण आकाश में तमो गुण वशिष्ट है। चंचलता की अधिकता के कारण वायु में सतो-गुण विशिष्ट है। प्रकाश और चचलता के गुण होने के कारण अग्नि में सत्व रज गुण विशिष्ट है। स्वच्छ प्रकाश और भारी होने के कारण जलमें सत्तोगुण और तमोगुण दोनों हैं, और पृथ्वीमें तमोगुण आर रजोगुण अधिकहै। ये भूत आपसे में एक दूसरे में प्रविष्ठ होकर अपने २ द्रव्यों में, सबके सब भूतों के लक्षणों को प्रगट करते हैं। ऐसा यह द्रव्य है। इस प्रकार ये एक २ के भूत के एक २ द्रव्य विशेष है। यह सब हम चराचर की रचना में वर्णन करेंगे। यहाँ तो केवल द्रव्य की उत्पत्ति बताई हैं। जैसे आकाश का गुण वायु में प्रवेश होता है तब वायु में शब्द और स्पर्श दोनों गुण है। आकाश और पवन दोनों अग्नि में प्रवेश होते हैं। इस अग्नि

द्रव्य में शब्द, स्पर्श, रूप, तीनों गुणों को प्रगट करती है। आकाश, वायु, और अग्नि ये तीनों जल में प्रविष्ट होते हैं। तब जल द्रव्य में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, आदि गुणों को प्रगट करता है और आकाशादि चारों जब पृथ्वी में प्रवेश होते हैं, तब पृथ्वी द्रव्य में, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांचों गुण पृथ्वी द्रव्य में रहते हैं। इस प्रकार एक के एक भूत द्रव्य में एक २ गुण विशेष और एक २ भूत विशेष रहते हैं, और अन्य भूतों के गुण, लक्षण मिश्रित रूप मे समाये रहते हैं। इसी से प्रत्येक द्रव्य मे पांचों के गुण पाये जाते हैं।

इस प्रकार यह सूक्ष्म भूत है। इस प्रकार से ही प्रकृति द्वारा यह अव्यक्त रूप में होकर स्थूल व्यक्त रूप को धारण करते हैं। इसी को पंच महा भूत कहते हैं। सूक्ष्म भूत तो माया में समष्टि रूप से सूक्ष्म समाये हुये रहते हैं और यह सूक्ष्म भूत व्यष्टि से अव्यक्त होकर मूल प्रकृति में अव्यक्त भाव मे समाये रहते हैं। इस प्रकार से गुण यह पंच भूत और त्रिगुण गुण मिलकर अष्टधा प्रकृति कहलाती है। यही प्रकृति हमारा सृष्टि क्षेत्र है। इसी को हमारे चराचर जगत का क्षेत्र कहते हैं। चराचर जगत इसी क्षेत्र में से प्रगट होता है।

* प्रकरण तिसरा *

॥ पंच भूतों के गुण ॥

प्रथम आकाश के गुण—शब्द, श्रोत्तेन्द्रिय के गोलक छिन्द्र, समुह, विविक्तता याने जाति और व्यक्ति के प्रत्येक भावों को भिन्न २ करना।

वायु के गुण—स्पर्श, त्वचा, इन्द्रियां गोलक, लघुता, हलका पन, स्पन्दन, चेष्टा आदि।

अग्नि के गुण—नैत्र, इन्द्रियों के गोलक रूप, पाक, संताप, तिक्ष्णता, वर्ण, दिप्तवना, क्रोध (अमर्ष) और सूरता।

जल के गुण—रसेन्द्रियों के गोलक, जिव्हा, शीतलता, मृदुता, सेन्हे गुरूता (भारीपना), शुक्र द्रव्यता आदि।

पृथ्वी के गुण—गन्ध, घ्राण इन्द्रियों के गोलक, नाक, कठिनता, स्थूलता, खटता आदि ।

जि०—वाह २ खूब कहीं। कहीं क्या आकाश का गुण माना गया है । आकाश का गुण मानना क्या सफेद झूंठ नहीं है ? यह कभी नहीं हो सकता कि आकाश गुण से हुआ है। शब्द तो शब्द कर्त्ता का गुण है। इसलिये शब्द को आकाश का गुण मानना ही मिथ्या है, क्योंकि भूत विकार वान है और आकाश निर्विकार है ।

उ०—आकाश की जो गिनती भूतों मे हुई है उसका एक मात्र कारण उपाधि ही है । पिंड (शरीर) में व्यापक होने से जीव नाम हुआ है और ब्रह्मांड में व्यापक होने से शिव नाम पड़ा है। वैसे ही आकाश भी उपाधि के कारण से घटाकाश, मठाकाश आदि कहलाता है । यह उपाधि में पड़ गया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से भासता है। बस इसी कारण आकाश भूत रूप हुआ है । ये आकाश

शेष में चारों भूतों की उपाधि से पोलेपन के रूप में भासता है। जैसे घटाकाश, जो घट में पोलापन है, वही घट का आकाश है। यदि घट में से आकाश निकाल लिया जाय तो वह घट शीघ्र ही नष्ट हो जायग।

घट में जो पोलापन है, उसमें वायु भरी हुई है यदि वायु किसी युक्ति द्वारा निकाललो जाय तो घट में अकाश रह जाता है। यदि काकाश को भी निकाल लिया जाय तो वह घड़ा तुरन्त टूट-फूट जाता है और बड़े जोर-सोर का शब्द करता है, मानो तोप की आवाज हो। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आकाश ही शब्द गुण है या शब्द ही आकाश है। यह बात प्रत्यक्ष स्वानुभूत में हो चुकी है। घट-रूप उपाधि में ये घटाकाश है और घट का आधार भी उपर वाले सिद्धान्त से आकश सिद्ध है। यदि घट बनाते समय, यदि आकाश उस घट में प्रवेश नहीं होता तो कदापि घट नहीं बनता। ये सब भूत भी उस अकाश के सूक्ष्म आधार में समलिप्त व्याप्य रूप में उस घट में वर्तमान है। जब इस सिद्धान्त से घट में सब भूत वर्तमान है और भूतों में ज्ञान—अज्ञान पन भी वर्तमान है क्योंकि भूतों में गुणों का मेल वर्तमान है और गुणों मे गुण भरे पड़े हैं, लेकिन उन गुणों का गुण, गुण के आश्रित नहीं रहता। बल्कि गुण, गुणी ही के आश्रित रहता है। इस सिद्धान्त से गुण भूतों में रहते हैं। इससे घट में गुणों का प्रादुर्भाव होना आवश्य-कीय है। जैसे गुणों का गुणत्व वटों (पिंडों) मे प्रादुर्भाव होता रहता है।

॥ चतुर्थ प्रकरण ॥

जि०—क्यों जी पंच तत्वों मे और पंच भूतों मे क्या अन्तर है ?

उ०—जो चैतन्यता के अंश है, वे पंच तत्व है और जो प्रकृति अंश है वे पच भूत है । प्रकृति के अंश विशेष से जो पदार्थ बनते हैं, वह स्थावर स्थिर स्थूल होते है और चैतन्य अश विशेष से जो पदार्थ बनते है वह जगम चर चचल सुक्ष्म होते है । प्रकृति अंश स्थूल है और चैतना अश सूक्ष्म है । इन दोनों की समानता और विशेषता अश संयुक्त से दोनों के धर्म और अर्थ मे अन्तर है । जो प्रकृति अंश विशेषतों भोग अंश है और चैतन्य अंश भोगता अश है । इन दोनों अंशों में से प्रकृति अंश त्रिविध अन्वय है अर्थात् सत्व, रज, तम गुण विशेष है । इनके दो अर्थ होते हैं । भोग और आनन्द । इनके प्रयोजन के सिद्धि करने की शक्ति वह चैतन्य अंश से हैं । पंच भूतों के अंश में अर्थ तत्व का विचार करना चाहिये कि इसमें पृथ्वी आदि जातियों का आकाशादि, धर्म कार्य्य, रूप, कारण, द्रव्य की अवस्था विशेष से ये सम्पूर्ण जगत् पंच मात्रा रूप उपादान कारण की साक्षात अवस्था है । सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणात्मक प्रकृति का कार्य रूप है । इस सिद्धान्त से प्रकृति द्रव्य सब मे भरा हुआ है, जिसके पच भूत सत्वादिक तीन गुण चरम परिणामी उपादान कारण है । ये ही सब भूतादि अंत.करण की पोशाक है । यही पोशाक अंतःकरण पर चढ़ी हुई या चढ़ जाती है । प्रत्येक व्यक्ति गत जीवों के ऊपर यह पोशाक का आवरण चढ़ा हुआ है । उसी आवरण में अन्तकरण के रुप-रुपान्तरों की अनत्ररणा है । और प्रकृति की विभक्ति

में अन्तःकरण विभक्त होता है । इसी विभक्ति को मूल प्रकृति कहते हैं ।

ये पांच भूत और तीन गुण मिलकर ही अष्ट यानि आठ होते है । इसलिये इनको अष्टाधा प्रकृति कहते है । यही अपरा भी कहलाती है । ये ही अष्टधा सूक्ष्म से स्थूल में प्राप्त होकर सृष्टि रूप में विस्तारित होती है । इसी में जरा-युज, उद्भिज, अंडज, स्वेदज नाम की चार खातियाँ और अनन्त प्रकार की योनियां और अनन्त व्यक्तियाँ प्रगट हो हो कर विस्तृत होती है और जगम् स्थावर के नाना रूप चित्र—विचित्र विकार और अमर्य्यादित रिति से फैल कर कुछ की कुछ बन कर यह देख पड़ती है । फिर नाना प्रकार के शरीर इन जीवों के दिख पड़ते हैं और फिर इनके रुपों के अनुसार नाम और जाति रखी जाती है इसी अष्टधा प्रकृति से छोटे—मोटे शरीर (पिण्ड) निर्माण होते हैं और फिर अपने २ अन्तःकरण की वृतियों के मुताबिक ज्ञान, अज्ञानपन से वरतने लग जाते हैं । ये ही तीन गुण और पांच भूतों की साम्या अवस्था को ही प्रकृति कहते हैं । हमारे इस चराचर सारे जगत् की प्रत्येक वस्तु इस प्रकृति से बनी हुई है । यथा सूर्य्य, चन्द्र, तारे इत्यादि और अनेक स्थूल शरीर आदि सब की आदि ये ही प्रकृति है । इस भौतिक जगत् की कोई भी वस्तु मुर्थ या अमुर्थ क्यों नहीं हो, अगर उसका विश्लेषण किया जाय तो आखिर इस प्रकृति में आते ही सम्पूर्ण स्थूल भाव (atoms) परमाणु इसमें लीन होकर समा जाते हैं और विश्लेषण कर्त्ता को अन्तिम चर्म सीमा आ जायगी । इसके आगे किसी भी भौतिक तथा वैज्ञानिक की पहुंच नहीं हो सकती । नियम यह है कि

स्थूल २ को देख सकता है । न कि स्थूल सूक्ष्म को इसके आगे जो सत्ता है वह दिव्य दृष्टि के द्वारा जानी जा सकती है क्योंकि वह अध्यात्मकसत्ता है, वह इन चर्म चक्षु की स्थूली करण (माइस क्रोप) से नहीं दिख सकती उसके लिये दैव अर्ज्ञ चाहिये ।

यह प्रकृति जगम और स्थावर की चारो योनियों में मूल भूत है और मूल स्वरूप में एक है । ये बहुत सूक्ष्म आन्तर सृष्टि में है । इसके व्यक्त रूप को ही रूप प्रकृति कहते हैं । इसकी साम्य अवस्था में ही सृष्टि सत्ता चैतन्यता कायम रहती है और इसकी विपमावस्था में विकृत रूप में होकर उसकी व्यष्टि शक्ति का क्षय हो जाता है। उसी को प्रलय कहते हैं । चारों खानियों में येही मूल प्रकृति रूप है । जिस प्रकार बीज थोड़ा बोया जाता है और आगे बहुत पैदा होता है । यही हाल चारों खानियों का और मूल प्रकृति का है । इस प्रकार यह प्रकृति थोड़ी सत्ता की बहुत होकर प्रबल हो गई है । इसी मूल प्रकृति से नाना विद्या, कला इत्यादि धारणा उत्पन्न हुई है । नाना प्रकार के पिण्ड ब्रह्मण्डों कि रचना नाना और अनेक प्रकार की कल्पना, अष्ट भोग, नवरस, नाना प्रकार का विलास आदि सब इसी प्रकृति के कोष में है । इस प्रकृति को ही मैथुनी सृष्टि कही है और (अमैथुनी सृष्टि) इसके परे है उसको अमैथुनी कहते हैं वह केवल संकल्प मात्रा से ही उत्पन्न कर देती है । ये ही मूल प्रकृति जीवों के संकल्प रूप बीज को कल्पना मात्रा से ही पूर्ति कर देती हैं । जैसा संकल्प इस प्रकृति में बोया जाता है वैसा ही हव इच्छा रुपी सृष्टि

को क्षण मात्रा में संकल्प कर प्रगट कर देती है। ऐसी ये मूल प्रकृति है। जिस प्रकार बट बीज में बहुत बड़ा वट वृक्ष है परन्तु बीज फोड़ कर देखने से वह दिखता नहीं इसी प्रकार इज मूल प्रकृति में चराचर जगत् है, परन्तु दिखता नहीं।

पांचवा प्रकरण

अब रूप प्रकृति को कहते हैं। ये चोरासी लाख की जो योनियां है और उनमें हरेक आकर कोई न कोई रूप जेसे मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि अनेक रूपो में ये रूप प्रकृति फैली है। ज्यो २ ये रूप प्रकृति विस्तृत होती गई, त्यों २ और का और ही बनता गया। जो विकार वान है उसका क्या नियम। जिस प्रकार काला और श्वेत मिलाने से नीला रङ्ग बनता है और नीला और पीला मिलाने से हरा बनता है इस प्रकार नाना भांति के रङ्ग मिलाने से जैसा परिवर्तन होता जाता है, वैसा ही यह विकारी रूप के द्रश्य (प्रकृति) एक दूसरे के मिलने से नाना रूप धारण करती है इस प्रकार कुछ का कुछ ही बन जाता है। विकार वान माया की लीला का कहां तक विस्तार बतलाया जावे। वह तो क्षण २ में बदल जाता है। ऐसी ये रूप प्रकृति की माया है अब हम मोह माया की प्रकृति को कहते है।

यह संसार एक बड़ा दीर्घ कालीन स्वप्न है। यहाँ मोह माया की रात्री है। अवधिया के कारोबार है। यहाँ के लोग माया की मदिरा में चकना चूर हो उन्मादित होकर यो बरराया करते हैं कि यह मेरी कान्ता है। यह मेरी कन्या, पुत्र, धन, यह मेरा राज्य पाट ऐश्वर्य, मेरा सौभाग्य, यह मेरे अश्व गजादि वैभव के भोग्योदि और यों मोह की,

यह अवध्यादि रात्रि में बराराया करते हैं । जैसे रात्री में उल्लुकादि तिमिर दृष्टि वाले पशु-पक्षी गण है। इसी प्रकार ये दिवा अन्ध वाले हैं। ज्ञान सूर्य के अस्त हो जाने से स्व-प्रकाश लुप्त हो जाता है और सर्व बुद्धि जगत्-अन्तःकरण-अन्धकार से भर जाता है और मन के चन्द्रमा की विचार चांदनी का सत्व प्रकाश भी अमावश्या की मोह रात्रि में नहीं रहता कि जिससे कुछ रास्ता दिखाई पड़े । ऐसी अवस्था में फिर दिशा शूल के भ्रान्ती के कारण सब लोग आप ही अपने को नहीं पहचानते और देह बुद्धि के अहं-कार के प्रदेश में लोग घोर निद्रा में सोये हुये घुर्राटे ले रहे हैं और विषय सुख की अभिलाषा, मृग,—तृष्णा,—वत पिपासा की प्राप्ति के लिये दुःख से तड़फाते हुये रो रहे हैं और न जाने कितने ही इस मोह माया में इस प्रकार की अवस्था में रो चुके है और अनेक पैदा होते ही रोते जाते हैं। इसी प्रकार असंख्य जीव इस सन्सार में आये और जा रहे हैं।

इति प्रकृति ॥

॥ समाप्त ॥

॥ माया की स्तुति ॥

* छन्द *

आदि माय सब जग उप जावत मानत वेद प्रमान कहोंरी।
शारद शष गनेश थके तब, मैं मतिमन्द काहाँ मति मोरी ॥१॥
आनन चंद्र समान कहाँ उपमाने लगे उपमा अस तोरी।
गावत ग्रंथ पुरान पुरातन, जाने नही तव भेद भरोरी ॥

दै वन में तुम दैविन में तुम दैत्य में तुम जग करोरी ॥
चडव मुइन को कर खरडन रूप अनुप अनन्त धरोरी ॥
नाम अनन्त व अनन्त आवत यह अभिप्राय सुधार धरोरी ॥२॥
तोरि क्रिपा कमला जब मोपर किंकर कोकर कोष दियोरी ॥
मो मती तोर प्रसाद वढी तब, मूल सिद्धातं यह ग्रंथ रच्योरी ॥
तुम पाद गहे मम काज भये मेधा अनजान अब जान गयोरी ॥
मातु क्रिपा मम पर परी पुर्ण तब पिंगल मृत्य पियुष पियोरी ॥
किन पवित्र पतित ममतनको मेट्टों पुत कपुत तुमात सुनोरीरी३
ये गुन तिन प्रविन वढे है तैार आधीन खडे कर जोरीरी ॥
शारद वीन लिये कर नारद गावत आनन्द मोद भरोरी ॥
भैरव राग ईत्यादिक शारङ्ग सोरट स्माम कल्यन व गोरी ॥
राग विहाग देस अरु मारुडव कालगड़ा सुभ फाग वोहोरी ॥
नाच परी करती सुभ गायन सुन्दर साज समाज सजौरी ॥४॥
पुजन वेद विवी कर के ममः भोजन भोग सु थाल भरोरी ॥
प्रेम प्रसाद सु जीमत जीमत जो कच्छु चाहत सों पर सोंरी ॥
जीम चुके तब हात धुला कर मातव लेकर पान गिलोरी ॥
आशिश देकर जो वर दिनां वह ममलीन यह प्रस्तार कियोरी॥५
जसराज कि कीरत को चहु ओर करो तुम शोर किशोर कीशोवी

॥ श्री गणेश–स्तुति ॥

शिवा के लाल आप, गणपत दयालु मेरा साज्ञ पुर्ण करदे ।
ज्ञानो का ज्ञान दे, ब्रह्म ज्ञान, विज्ञान से शास्त्र पूर्ण भरदे ॥
आप ज्ञान, रूप, गुणके स्वरूप, विद्याके भूप मुझे ज़रदे ।
वरदे के राज ! रख मेरी लाज, ये पूर्ण काज मेरा करदे ॥
है मूल वीच निवास, करो वुद्धि-प्रकाश अज्ञानीको ज्ञान भरदे ।
हों तुम वुद्धि राश, विद्याके खास हो, मेरी आश पूर्ण करदे ॥

करू तुम्हारी आश, मिटजाय प्यास. आकरके पास ऐसा वरदे
शारद, सुरेश, सुमरत महेश, ऋद्धि-सिद्धि महेश ऐसा वरदे ॥
जय २ गनेश, काटो कलेश, ध्यावे जशेश, विद्या वरदे ।
वेदों पुराणों में धरते ध्यान, सब गुन की खान, गुणी करदे ॥
सुमरत, संत, गुणके अनन्त नहीं आवे.अन्तऐसा यतनकरदे ।
हो एक दन्त, तुम कृपा वन्तहोतुम.मध्यग्रन्थमेंआदिजोधरदे ॥
मैंहूँ आधीन, विद्या का हीन, अति दुखित दीनके विद्या भरदे ।
है नैत्र तीन, त्रीय गुण, प्रवीन त्रिया-ताप छीनन मेरे करदे ॥
है नैत्र लाल, जैसे जलन ज्वाल, भ्रकुटी विशाल मोय दर्शनदे ।
गज-तन, सुण्ड वृक्रतुण्ड, खल रूण्ड-मुण्ड मरदन करदे ॥
मै हुं सुमीत सब दुख-दुखित अर्जी सुनकर मरजी करदे ।
मम रहा रीत सब है अनित, पावन पतीत मेरी पत रखदे ॥
ऋद्धिसिद्धि है संग नित उड़े रंग ऐसा.उमंगसे मम घर भरदे ।
मैं दास करूं विधाकी अरदास ग्रन्थ पुर्ण प्रकाश करदे ॥
हो जगमें जीत गुणीयोंमें प्रतीत ऐसान चित मोपर चितधरदे
हो ग्रन्थ प्रवीण, आयुर्वेद नवीन वेदान्त अन्तसार रसतूं भरदे
हो शिवके.लाल सुरमेंबिसाल जसराजके हालपर निहालकरदे ॥

* ओ३म् *

दूसरा सर्ग । पुरुष निरूपण ।
अध्याय तीसरा । प्रकरण पहला ।

जि०—पुरुष क्या है ? पुरुष धातु भेद से कितने प्रकार में विभक्त है ? पुरुष को किसलिये कारण कहते हैं ? पुरुष का क्या प्रभाव है ? पुरुष अज्ञान है या ज्ञाता ? पुरुष नित्य है या अनित्य है ? पुरुष का लिंग

क्या है ? अव्यक्त पुरुष क्या है ? और जब अव्यक्त पुरुष को निष्क्रिय, स्वतंत्र, स्वर्ग, विभु आदि कहते हैं और आत्मज्ञ पुरुष को व्यक्त, क्षेत्रज्ञ, सगुण, साक्षी, वसी आदि कहते हैं। पर मेरा यह संशय है कि, जो निष्क्रिय अर्थात् क्रिया-रहित पुरुष की क्रिया किस तरह से सम्पादन होती है, और उसे स्वतंत्र कहते हैं तो फिर वह अनिष्ट योनियों में कैसे वसी हो, जन्म लेता है। और यदि वह इन्द्रिय रहित है तो किस कारण वह दुखों—सुखोंत्पादक इन्द्रियों के भोगों के विकार उस पर बल पूर्वक आक्रमण क्यों करते हैं ? यदि वह सर्वांग—गामी है तो वह सम्पूर्ण वेदनाओं को क्यों नहीं जानता है ? यदि वह विभु है तो वह पर्वतों की ओट से परे क्यों नहीं देखता ? यदि वह क्षेत्रज्ञ है तो उसने या क्षेत्रने पहले जन्म लिया है या नहीं ? इस बात का संशय है। यदि क्षेत्र ज्ञय है तो बिन क्षेत्र के पूर्व हुये क्षेत्रज्ञ नहीं हो सकता और जो क्षेत्र पहले हुआ है तो क्षेत्रज्ञ नित्य नहीं हो सकता और जो कोई कर्त्ता नहीं है तो पुरुष किस-का साक्षी है जब निर्विकार पुरुष है तो फिर पुरुष के विकार वेदना क्यों होती है ? इन उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तरों के जानने की मेरी पूर्ण जिज्ञासा है सो कृपया इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर दीजियेगा।

उ०—यदि पुरुष नहीं होता तो परम्परा चिकित्सा-ज्ञातव्य--विषक, प्रकाश, अंधकार, सत्यासत्य, वेद, कर्म, शुभाशुभ, कर्त्ता और वेदिता इनमें से कुछ भी नहीं हो सकता ? इतना ही नहीं, आश्रय, दुख (पिण्ड) गति, अगति, वाक, विज्ञान, शास्त्र और जन्म--मरण इनमें

से भी कुछ नहीं होता । इसलिये कारण के जानने वाले पुरुष को ही कारण कहते है क्योंकि जो पुरुष कारण नहीं होता तो आत्मा आदिक और आकाशादि कोई भूत न होता और न इनमें कुछ ज्ञान और प्रयोजन ही सिद्ध होता। जैसे बिना कुम्हार के मिट्टी, दण्ड और चाक आदि के औज़ार करण सामग्री स्वयं घड़ा को नहीं बना सकते। इस प्रकार से पत्थर, ईंट, चुना गारादि के स्वयम कोई इमारत का निर्माण नहीं कर सकते। इसी प्रकार बिना कर्त्ता के ये पंच महा भूतादि देह (सरीर) को नहीं बना सकते हैं। और जो यह कहता है कि वह अपने आप बन गया, वह आगमन-सिद्धान्त के विरुद्ध कहता है।

कारणं पुरुषः सर्वैं, प्रमाणै रूप लभ्यते ।
येभ्यः प्रमेयं सर्वेभ्य, आगमेभ्यः प्रमीयते ॥

अर्थ—जिन सम्पूर्ण आगमादि प्रमाणों से प्रमेय की प्रतीति होती है, उन्हीं सब प्रमाणों से पुरुष का कारण जाना जाता है इसलिये ही पुरुष को कारण कहते हैं।

अनादि पुरुष नित्य होता है और इसके विपरित अर्थात् जिसका कोई कारण हो वह हेतु होता है । अकारण वान पदार्थ नित्य होता है और जिसका कोई हेतु होता है, वह नित्य नहीं होता है। नित्य पदार्थ और किसी भी पदार्थ से उत्पन्न नहीं हो सकता। वह ही नित्य हो सकता है। जिसको नित्य कहते हैं, वह अव्यक्त और अचिन्त्य है। और जो व्यष्टि पुरुष है वह चौबीस राशियों के समुदाय से व्यक्त हुआ है अर्थ वेदना पुरुष है।

येही धातु भेद से चौबीस प्रकार के तत्वों के समुदाय मे बन्धा बर्सा हुआ व्यष्टि पुरुष मानते हैं । अर्थात् चौबीस प्रकृति के क्षेत्र मे व्याप्त पुरुष को ही व्यष्टि पुरुष कहते है । यह समष्टि और व्यष्टि भेद से अनन्त है और अन्त भी है। इन तत्वों का सयोग सतोगुण की वृद्धि से रजोगुण और तमोगुण के दूर हो जाने पर यह संयोग भी छूट कर व्यक्त भाव जाता रहता है।

पुरुष कीही प्रधानता ।

पुरुष ही में कर्म फल और ज्ञान रहते है और इसी मे सम्पूर्ण ऋतुयों का निग्रह होता है और इसी में मोह, सुख, दुख, जिवन—मरण और सत्व रहते हैं। जिसको पुरुष का ऐसा पूर्ण ज्ञान होता है, वह सृष्टि के प्रलय प्रयन्त और उदय परीयन्त को भी जानता है।

व्यष्टि पुरुष के लिंग ।

श्वास का लेना, छोड़ना, पलकों का खोलना, बन्द करना, जीवन, मनकी गति, एक इन्द्रिय का दूसरी इन्द्रि में संचार, प्ररणा, धारणा स्वप्न में देशाटन करना, पंच महा भूतों का ग्रहण करना, दाहनि आँख से देखे हुये पदार्थ का वाह आँख से ज्ञान, इच्छा, द्वेष, सुख—दुख, प्रयत्न, चेतना धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार, परात्मा के लिंग है। येही पुरुष के लिंग (चिन्ह) के समुदाय पाये जाते हैं। वे ही ये परात्मा व्यष्टि पुरुष है।

वह अव्यक्त से व्यक्त पुरुष सम्पूर्ण और सर्वांग पुरुष उत्पन्न होता है। यह पुरुष प्रलय काल में इष्ट वस्तुओं से अलग हो जाता है। और फिर बारम्बार व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त होता रहता है। यह पुरुष रजोगुण और तमोगुण से युक्त हो कर कुम्हार के चाक जैसे और गाड़ी के पहिये की तरह परिवर्तित घुमता रहता है। जो रजोगुण और तमोण से आवृत है और जो अहंकार से युक्त है उसी का उदय और प्रलय होता रहता है। और जो इनसे पृथक है वह प्रलय से रहित है। अर्थात् आवागमन जन्म मृत्यु से रहित है।

॥ प्रकरण दूसरा ॥

श्री कृष्ण भगवान् ने गीता में इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को अच्छी तरह से अर्जुन को समझाया है वह यह है कि—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्र मित्यामि धीयते।
एतद्यो वेति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

गीता० अ० १३।

यह शरीर मात्रा को क्षेत्र कहते हैं और जो ऐसा जानना है कि यह (क्षेत्रमेरा है) याने यह शरीर मेरा है वह ऐसा ज्ञान जानने वाला ही इस शरीर (क्षेत्र) का क्षेत्रज्ञ है।

अब हम आपको यह बतलाते हैं कि यह क्या है और किस प्रकार का है और इसके क्या विकार है और इस क्षेत्र में से क्या २ कार्य उत्पादक होते हैं और ये क्षेत्रज्ञ कौन हैं और इसका सामर्थ क्या है?

इस शरीर का जिस अभिप्राय से क्षेत्र नाम रखा है। यह संक्षिप्त से कहते हैं। इस शरीर का (क्षेत्र) को जानने के लिये अनेकानेक मत-भेद वाद-विवाद प्रचलित है। क्या श्रुतियों, क्या स्मृतियों, क्या तर्कादि इसका निश्चय निर्धारित करने के लिये भी ये षट शास्त्रों भी मथन करते २ अन्त मे थक श्रमित होकर बैठ गये हैं और अब भी इस प्रकार के मतमतान्तरों पर परस्पर झगड़ रहे हैं। परन्तु इसका अभी तक सत्य निश्चय मतों का एक्य नहीं हो सका। और इस पर अनेकानेक युक्तियों को अपने २ पक्षपात के अनुसार लड़ा २ कर अन्त में थक कर अनेक सिद्धान्ति बैठ गये हैं।

यह शरीर (क्षेत्र) मृत्यु के पंजे मे पड़कर क्षण मात्रा में निर्थक हो जायगा। इसके भय से डर कर कोइ दिगम्बर (नगा) बनकर रहता है। कोई मुण्डन करवाता है, कोई जटा रखता है, कोई धुनी तपता है तो कोई एकान्त में निवास करता है। कोई नाखून बढ़ाता है, कोई कान फड़ाता है। कोई सुन्नत कराता है तो कोई इस क्षेत्र में राख रमाता है। कोई जप, कोई नेम, कोई आसन, कोई प्राणायाम चढाता है। कोई बड़ी २ औषधियों को सेवन करता है। कोई बड़े गढ़ और कोई बड़े कोट और कोई बड़े अस्त्र सस्त्रादि रखते हैं। कोई यम-नियम को साधन करते है। कोई निराहार रहता है तो कोई विशेष आहार करते हैं। इन का वर्णन कहाँ तक करूं। इस क्षेत्र के विज्ञान प्राप्ति के लिये श्री शङ्कर राज्य को त्याग, सम्पूर्ण उपाधियों को अपने से त्याग, समशान को (क्षेत्र)—निवास-स्थान नियुक्त कर,

दशो--दिशाओं को अपना आच्छादान मान, कामदेव को इस ज्ञान का बाधक करने वाला जान, उसको दग्ध (जला) दिया। इसी ज्ञान को प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा के भी चार मुख प्रकट हुये तो भी इसका परि--पूर्ण ज्ञान ब्रह्मा को भी नहीं मिला। इस प्रकार से इस ज्ञान की कठिनता प्रचलित है। गीता में भी यही कहा है कि इस ज्ञान को ऋषियों ने बहुत प्रकार से वेदों में भिन्न २ रूप से और भिन्न २ युक्तियों से सूत्रों में निरूपण किया है। अब हम अपनी अल्प बुद्धि अनुसार इस ज्ञान के भिन्न २ मतों के सिद्धान्तों का प्रतिवादन करते हैं—

प्रथम कर्म—वादियों का कहना है कि यह सर्व क्षेत्र (शरीर जीवों के अधिकार में है और इसकी सब व्यवस्था प्राण के द्वारा प्राणियों मे सु व्यवस्थित होती है और प्राणों पर देख रेख रखने वाला मन है और जीव के पास दो प्रकार के वाहन है। एक कर्मेन्द्रिय और एक ज्ञानेन्द्रियं। इन वाहनो द्वारा व विषय रूप क्षेत्र को जोतता बोता रहता है। कर्तव्या कर्तव्य के कर्मों के आचरणों के अनुसार न्याय अन्याय बाजों की बोहणी करता है और वासना का खाद्य डाल कर सुख दुख रूप फलों के अनुसार जीव कोटान जन्म परीयन्त दुख सुखों के भोग भोगता रहता है। इस प्रकार कर्म वादियों का सिद्धान्त है। अब हम प्रकृति वादियों के सिद्धान्त को कहते हैं।

प्रकृति वादि इस प्रकार मानते हैं कि क्षेत्र जीवों के अधिकार में नहीं है। वे कहते हैं कि जीव तो एक भ्रमण करता हुआ मुसाफिर प्रवासी है और वह मार्ग में चलता

फिरता कभी किसी क्षेत्र में और कभीकिसी क्षेत्र मे समायक बस्ती करता रहता है और क्षेत्र जो अनादि सिद्धि प्रकृति की सिद्धि करते हैं और इस क्षेत्र का मूल (जड़) भी यह प्रकृति माया है और इस प्रकृति के उदर से ही इसकी उत्पत्ति बताइ जाती है और यहाँ यह भी मानते है कि जो प्रकृति के तीन गुण है, वो इस क्षेत्र में क्रिया करते है। रजोगुण बोहर्णी करता है, सतोगुण उसका पोषण करता है (याने पानी पिलाता है) और तमोगुण क्षेत्र के तमाम फलों को एकत्रित कर फिर महत्त्व के खलो मे डाल कर, जिस प्रकार कास्तकार धान को, उसके छिलके को, घास (खाखला) में से निकालने कि क्रिया करते हैं, उसी प्रकार संसार रूप खखला (घास) में जीव को सुख-दुख रूप में रगड़ने की क्रिया करने में आती है। इतनों में अव्यक्त रूप संध्या काल आ पहुँचता है याने मृत्यु हो जाती है । अब हम संकल्प वादियों के सिद्धान्तों को कहते हैं । सुनिये—

संकल्प वादियों का कहना है कि ब्रह्म के समक्ष प्रकृति की क्या हस्ती है। उनका कहना है कि लय रूप पलंग पर शुन्य रूप शय्या मे बलवान संकल्प सोया हुआ है, वो अकस्मात् जाग्रत हुआ और वो सगुण संकल्प अपने व्यापार में नित्य तत्पर होने से ईच्छा रूप उपहार मिला और उस सगुण संकल्प को निर्गुण स्वरूप का त्रिभुवन जैसे उपवन के प्रपंच से ही स्वरूप को प्राप्त हुआ । उसके बाद अलग २ पच महाभूतों को एकत्रित करके क्षेत्र रचा और उसमें चार प्रकार के बीज यथा, जरायुज, स्वेदज, अंडज और उद्‌भीज तैयार हुये। कर्म और अकर्म रूप फल तैयार

किये और इसमें आवागम रूप संकल्प अर्थात् जन्म-मृत्यु रूप, सरल और विकट । कदापि अपने आप बन्ध नहीं होने वाला मार्ग तैयार किये तत्पश्चात् यह संकल्प अहंकार के साथ संयोग करके आयुष्य हो, जहाँतक स्थावर और जनमें रूप वृक्षों का आरोपण किया। इस प्रकार चिदाकाश में संकल्प रूप संसार बंधन का मूल हेतू हुआ । अब हम स्वाभाव वादियों के सिद्धान्तों को कहते हैं।

स्वभाव वादियों का मत यह हैं कि ये सब स्वभाव सिद्ध हैं कि देखो आकाश में बादलों में पानी कौन देता है ? और अन्तरीक्ष में जो निराधार नक्षत्र है, वे नीचे क्यों नहीं पड़ते, उनको किसका आधार है और आकाश रूप तम्बू के बीच झोल नहीं है, वह एक सरीखा तटस्थ बंध तणा हुआ है और उसको कौन, कब और किसने ताणा है और वायु को नित्य नियमित रूप से बहने का किसने कहा है ? हमारे शरीर पर जो रोमावली दिखती है उसको कौन पानी पिलाता है और कौन एक पंक्ति में बोता है ? वर्षा की बुन्दों और पानी की धाराओं को उत्पादक कौन करता है। इसको देखते प्रतक्ष यह प्रमाण मिलता है कि ये क्षेत्र स्वभाव सिद्ध है। इसका कोइ उत्पादक या कर्त्ता कोइ नहीं है देखो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जीवों के शरीर के उपर ही स्वभाव से ही उनके शरीर का निर्माण हुआ है जैसे—सीप, सख, घोंघादि के शरीर उनके उपर ही बनता है। इस प्रकार ये स्वाभाव से ही उत्पन्न होता और नाश होता है । जो इससे परिश्रम करता है उसी को ये फल दायक होता है और जो इससे परिश्रम नहीं करता उसको यह फल प्रद

नहीं होता । अब हम काल वादियों के सिद्धान्त को कहते हैं ।

काल—वादियो का सिद्धान्त यह है कि जो उपर वाले सिद्धान्त यदि सत्य हो तो इस क्षेत्र पर काल की सत्ता किस तरह पर चल सकती है तथापि अनिवार्य काल का चक्र के सपाट मे जाले का जानते हुये भी जो लोग मिथ्या अभिमानी बनते है वे तो अपने मत का ही पक्ष—पात कर समर्थन करते है। सिंह की गुफा के तुल्य मृत्यु भयंकर जानते हुये भी अपने शरीर के विषय में व्यर्थ बकवाद करते रहे तो भी यह बाद विवाद कभी पूरा सत्य होने का नहीं है । ये काल महा लोको को गले में बाद कर ब्रह्म देव के सत्य लोक तक के स्थानो को अपने पंजे मे ले लेता है और ये काल स्वर्ग के उपवन में पहुँच कर नित्य नवीन २ आठ लोकपालों को उत्पन्न करके आठो दिशाओ के एरावतों को भी सांहार कर लेता है और इसी के आगे वायु के आघात से जीवो के जीवन—मरण-मृत्यु हो होकर निर्जिव होकर भ्रमण करते है । इस प्रकार काल ने अपने हाथ के पंजों को कितना दीर्घ फैलाया है । वो इस पर ही जाना जाता है । ये जगदा कार रूप हस्ती को ये काल रूप अनल पक्षी अपने पंजे में पकड़े हुये उड़ रहा है । इस प्रकार सब पर काल की सत्ता है । इस प्रकार ये काल ही सब क्षेत्रों का हेतु है । अब हम ब्रह्म वादियो के मत को कहते हैं ।

ब्रह्म वादियों का कहना है कि चेतन्य रूप अव्यक्त क्षेत्रज्ञ में से ॐ कार रूप व्यक्त वृक्ष (क्षेत्र। ऊर्ध मूल मध्यस्थ

शाखायें फूट निकलती हैं और उसके सतोगुणी भाग अन्तः-करण चतुष्टय के रूप में प्रकट होते हैं और मध्यस्थ में जो शाखायें निकलती हैं जिससे रजोगुणी रूप पंच प्राण उत्पन्न हुये हैं और उप शाखायें तमोगुणी रूप ॐ कार से निकल कर पंच तन्मात्रा, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां, और पंच माहा भूत इस प्रकार पंची करण, पंचक का विस्तार स्थूल रूप मे प्रकट हुआ है । इसके वाहाम्य भाव का आकार तो मनुष्य के शरीर को सिद्ध कर दिखाता है और आन्तरा कार वृक्ष के रूप का सूक्ष्म भाव को सिद्ध करता है, इस सिद्धान्त पर ही मनुष्य के शरीर को ब्रह्म—ज्ञानियों ने निश्चय पूर्वक दिव्य दृष्टि द्वारा प्रतक्ष देख कर इसके आकार का मिलान अश्वस्थ नाम के वृक्ष से किया है और इसासे मनुष्य शरीर को उल्टे वृक्ष की आन्तर अवस्था को देख, उपमादेकर इसके ज्ञान को अनेक प्रकार के दृष्टान्तों से समझाया गया है और गीता के पन्द्रहवा अध्याय में श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को भली भांति समझाया है ।

अब यह विवेचन करना है कि इस शरीर को नित्य कहने का हेतू क्या है और इसको अनित्य कहने का हेतू क्या है। इसको अनित्य कहने का हेतू यह कि ब्रह्म—ज्ञानियों ने इसकी क्षण २ मात्रा में इसकी अवस्था के परिवर्तन देखकर ही अनित्य कहा है। जिस प्रकार बादलों का अषाढ़ मास में क्षण २ में नानाप्रकार के रङ्ग रूप, आकार आदि बदलते रहते है, उसी प्रकार से ही इस शरीर के नाम का अनुभव कर (क्षेत्र) क्षण २ में बदलने वाला रखा है । क्योंकि प्रत्येक क्षण में इसका भाव विराम होता रहता है अब इसको नित्य कहने

वालों का गूढ़ अर्थ गर्भीत ज्ञान इस प्रकार से है, जिस प्रकार समुद्र के पानी को बादल अपने अन्दर खींच कर अन्य जगह लेजाकर वर्षा देते हैं और वो वर्षा हुआ पानी वहाँ से नदियों में होता हुआ पुन. समुद्र में आ मिलता है। इस क्रिया से वो महा सागर न तो खाली ही होता है और न बढ़ता ही है। वह तो हमेशा जल से परिपूर्ण ही रहता है परन्तु वह परिपूर्ण उस समय तक ही रहता है जिस समय तक उपयुक्त दोनों क्रियायें समान रूप से प्रारम्भ हो। जहाँ बादलों का और नदियों का, इन दो में से एक का विभाग में विभाजित होते ही यह महासागर की पूर्णता नष्ट हो जाती है। इस प्रकार जहां तक जीव और शरीर की परस्पर सम्बन्ध क्रिया समान रूप से प्रचलित है वहाँ तक यह नित्य होने की कल्पना करली जाती है जैसे अतिवेग पूर्वक चलता हुआ चक्र अथवा गाड़ी का पहिया अपने शीघ्राति-शीघ्र वेग का अति क्रम से भूमि को न स्पर्श करता हुआ मालूम पड़ता है और उसकी प्रगति देखने वालों को न दिखने से स्थिर भाषती है इसी प्रकार इस शरीर का कालाति क्रम से इसकी प्रगति का ज्ञान न होने से यह नित्य भापता है। जिस प्रकार प्रावट ऋतु में बादलों पर बादलों का चढ़ आना और जाना ज्ञात नहीं होता, इसी प्रकार वायु की लहरों पर लहरें आवागमन कर रही है पर यह मालूम नहीं होता की कौनसी तरह समाप्त हुई और कौनसी प्रारम्भ हुई। इसी प्रकार हमको भी यह नहीं मालूम होता है कि हमारे शरीर कौनसा मरा और कौनसा जन्मा! इस अतियोग से यह नित्य है। ऐसा केई सिद्धा-

न्तियों को भास हो जाता है इसलिये इसको नित्य ऐसा मानते हैं कि ये कब और किस काल में पैदा हुआ, इसको जानना महा कठिन तत्व है।

॥ प्रकरण–तिसरा ॥

अब प्रश्न यह उठता है कि क्षेत्र पहले उत्पन्न हुआ या क्षेत्रज्ञ। इसके विषय में इतना ही जानना पर्याप्त है कि न तो क्षेत्र पहले था और न क्षेत्रज्ञ। पहले तो वह सिर्फ अव्यक्त ब्रह्म था। जब से व्यक्त हुआ तभी से ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ एक साथ ही उत्पन्न हुये। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि पहले कौन उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार हमारे शरीर के अवयव में से पहले कौनसा उत्पन्न हुआ। तो सम्पूर्ण शरीर के अव्यव एक साथ ही उस अव्यक्त में से प्रकट हुये, उसी प्रकार यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों एक साथ ही प्रकट हुये हैं, परन्तु इसमें भी केई मतों का परस्पर विरोध है जैसे—सांख्य वालों का कहना है कि यह क्षेत्र पहले हुआ और अन्य मतों का कहना है कि क्षेत्रज्ञ पहले हुआ और यह जीव अपने मन मुताबिक क्षेत्र की रचना करली।

क्षेत्र में बल और सामर्थता।

उस अनन्त--अपार--पार--पर ब्रह्म में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं और उस अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में अनन्त कोटि पिंड (शरीर) भरे हैं उन अन्त कोटि क्षेत्रों में

अनन्त कोटि क्षेत्रज्ञ भरे हैं, जिनकी गणना करना ही महा कठिन नहीं बल्कि असंभव भी है परन्तु उस पार पर ब्रह्म में तो आदि और अन्त दोनों समान रूप से है । ब्रह्मांड के आदि मे भी वही ब्रह्म है और अन्त मे भी वही ब्रह्म है जैसे वृक्ष के आदि में भी वही वीज है और अन्त में भी वही बीज है । इसप्रकार इस एक ब्रह्मा के ब्रह्माण्ड में आदि और अन्त वही है । इस प्रकार उस पर ब्रह्म में अनन्त विष्णु और अनन्त शिव और अनन्त शक्तियां समाइ हुई है तो भी वह बड़ा बेहद. विस्तीर्ण, निर्गुण, निर्मल, निश्चल. विमल, अमल. शाश्वत सर्व काल प्रकाशित अनन्त रूप से सर्वस्व सघन फैला हुआ निराभास पाताल मे अन्तराल में चारों ओर कहीं भी उसका अन्त नहीं है । कल्पान्त काल और प्रकट-काल में यह संचित ही अचल बना रहता है । यह ब्रह्मा का संसार रूप वृक्ष है । यह इकीस स्वर्ग और सात पातालों में विस्तीर्ण रूप से फैला हुआ है । ब्रह्म लोकों में जिसका मूल है स्वर्ग में जिसकी साखाये हैं और मृत्यु लोक में जिसके पते है और पाताल में जिसके तनों से फूटी हुई उप शाखाये हैं । यह एसा ब्रह्मा का कल्प वृक्ष है और कल्पना रूप जिसके फल है और विषय रूप जिसमें से रस (मद) झरता है, जिसके अनन्त फल, फूल, सुगन्ध, रसाल आदि लगते हैं उनके विपय सुस्वाद आदि लेने के लिये नाना प्रकार के शरीरों की आवश्यकता है और उन शरीरों में विषयो को भोगने के लिये और उनके गुणों को जानने के लिये ज्ञान इन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों की आवश्यकता है इस प्रकार से सब के सब एक शरीर मे होते हुये भी उनके विपय और गुणों की ग्राहकता अलग २ है । इस शरीर में (जीव)

मिलकर देह भर में ये निसंग भ्रमण करता है और सब ज्ञानेन्द्रियों और सब कर्मेन्द्रियों के विषय आनन्द रहस्य के विलास को भोगता है।

देखो विषय तो अच्छे निर्माण हुये परन्तु वह बिना शरीर और इन्द्रिय के नहीं भोगे जा सकते हैं। इसलिये नाना शरीर और इन्द्रियों का विस्तार किया है। देखने में तो यह शरीर अस्थीमास मज्जा मल का पुतला है परन्तु उसमें दिव्य दृष्टि से देखा जाय तो इस शरीर के समान कोई भी अमूल्य पदार्थ नहीं है, न कोई बलवान और न इसके समान रत्न है, न कोई यंत्र है। छोटे बड़े सब प्रकार के शरीर विषय—भोग से ही उत्पन्न होते हैं और विषय भोगों से ही पाले जाते हैं। शरीर तो अवश्य ही हाड मास मल का समुदाय है परन्तु उसमें विवेक और विचार भरा है। यह शरीर अज्ञ होते हुये भी सम्पूर्ण विद्या और सिद्धियों का ज्ञाता हो जाता है। अणीमादि अष्ट और अष्टादश सिद्धियों का यही भंडार है। बिना इसके साधन के कोई भी सिद्ध सिद्धियों प्राप्त नहीं कर सकता है। परन्तु शरीर भेद अनेक है। कार्य कारण के लिये ही यह भेद शरीरों में किया गया है। इस भेद में बहुत कुछ रहस्य छिपा हुआ है, वह बिना आत्म—ज्ञान के कैसे मालूम हो सकता है। सब कुछ इसीसे कार्य कारण करना है, इसलिये भेद भाव हुआ है और इसी के भेद जानने से ही अभेद हो जाता है। अभेद के होते ही वह सब कुछ जान जाता है। भेद और अभेद के बीच में माया का पड़दा है और माया के आच्छादित से इसकी महिमा मालूम नहीं होती है।

चाहे चतुर—मुख ब्रह्मा क्यों न हो ? वह भी माया के मोह में आसक्त हो, सन्देह के सागर में पड़ जाता है इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को विवरण करते हुये मेरा मन बहुत आतुर होता है और अनवेषण तथा तीक्ष्ण तर्क करते २ मन हैरान हो जाता है परन्तु मैं जिज्ञासुओं के प्रबोध के लिये यह सब कुछ करना पड़ा है, क्योंकि जहाँ तक जिज्ञासा की पिपासा प्रकट है वहां तक जिज्ञासु की अवस्था है । इसी अवस्था को दूर करने के लिये यह प्रतिभा का प्रयास किया जाता है ।

इस शरीर में सब कुछ लगता है परन्तु पुरुष में कुछ नहीं लगता । शरीर के सामर्थता के अनुसार सब कुछ कर सकता है । जिस शरीर में सामर्थता अधिक हुई, उसी को अवतार कहते हैं । शेष, कुर्म, बराह इत्यादिक अनेक बड़े २ शरीर धारी हो गये हैं । इसी प्रकार यह सृष्टि रचना होती रही है । वह भी अव्यक्त ईश्वर अपने विचित्र सुत्र से सुत्रधार हो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का आधार हो रहा है और उनको अपनी मर्य्यादा में चला रहा है । सब सृष्टि रचना सम भाग से चल रही है । ऐसे २ अनन्त भेद इस क्षेत्र के और क्षेत्रज्ञ के है सबो को जानने वाला तो एक जनार्दन है, दूसरा कोई नहीं इसका विवेचन करते २ मन की धज्जियाँ उड़ जाती हैं । ऐसी मेरी सामर्थता नहीं कि मै इसको पूरा करूं । इस कारण यहाँ ही समाप्त करता हूँ ।

॥ अध्याय चौथा ॥

प्रकरण पहला ।

जि०—आप अब पुरुष का निरुपण कर के समझाईयेगा, क्योंके अव्यक्त और व्यक्त पुरुष की विस्तार पूर्वक जानने की हमारी पूर्ण जिज्ञासा है ।

उ०—जिस प्रकार माया का निरुपण है, उसी प्रकार पुरुष का भी । परन्तु पुरुष सत्व, तत्व के जो २ विशेषज्ञ भाव है, उनको हम संक्षिप्त में ही बतलाना उचित समझते हैं क्योंकि ग्रन्थ के बढ़ जाने का भय है और जो हमारा ध्येय हैं, वह दीर्घ सूत्र बन जाता है । इसलिये हम आपको संक्षिप्त में ही बतलाते है ।

जिस प्रकार अपने घर में जो गुप्त धन है, उसे बिचारे नौकर लोग नहीं जानते हैं ॥ वे तो सिर्फ बाहरी धन को ही जानते हैं, परन्तु इसके विपरीत अनुसन्धानी लोग भीतरी गुप्त धन का अनवेषण कर लेते हैं । इसी प्रकार अनुसन्धानी उस अदृश्य पुरुष और उसकी रचना को ढूढ लेते हैं । इसी सिद्धान्त पर किसी ने ठीक ही कहा है कि—

"जिन खोजा तिन पाहियां, गहरे पानी पैठ ।
वो बारे ढूढन गये, रहे किनारे बैठ" ॥

अनुसन्धान विवेकी मनुष्य माया के बाहरी दृश्य को देख भीतरी परम पुरुष को ढूढ निकालते हैं और अन्य लोग

माया के दृश्य जाल में ही फसकर, माया के कृत्रिम नीर को ही देख, डूबने की शंका मनमें घर यातो डूब ही जाते हैं या किनारे पर ही बैठ कर जप तपने लग जाते हैं। जिस प्रकार यदि कोई द्रव्य भीतर रख, उपर से बहुतसा पानी भर दिया जाय तो पूछने पर लोग यह बतायेंगे कि यह पानी से भरा हुआ सरोवर है। उनको उस भीतरी द्रव्य का पता नहीं चलता। पर इसके विपरीत अन्तरदृष्टी वाले यह बतादेंगे कि इस सरोवर में द्रव्य रखा हुआ है। इसी प्रकार जो अनुसंधानी लोग है वे ही अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा द्विव्य-दृष्टा को प्राप्त कर लेते हैं। बाकी के अन्य पुरुष दृश्य—पदार्थों को ही जानते हैं दृष्टा को नहीं।

देखिये पारस और चिन्तामणि ये दोनों गुप्त है, कंकर और कांच प्रकट है, सुवर्ण और रत्नों की खाने गुप्त है; पत्थर और मिट्टी प्रकट है। कल्प तरू नहीं देख पड़ते परन्तु आक और धतुरा (कनक) बहुत है। चन्दन सब जगह नहीं है परन्तु बेर, बवूल बहुत है। ऐरावत जो इन्द्र के ही पास है परन्तु अन्य गज गयंद बहुत से हैं। राज्य-भोग—ऐश्वरीय राजा लोग ही भोगते हैं और अन्य लोग कर्मानुसार दुख ही भोगते हैं। व्यापारी लोग अपने आप को धनवान समझते है, परन्तु कुबेर को महिमा तो कुछ और ही है। इसी प्रकार इस परम पुरुष के दर्शन करने वाले कोई योगेश्वर विरला ही है। परन्तु अन्य योगी पेट के दास माया के योगी नाना मत—मतान्तरों को टटोलते फिरते हैं और साथ ही साथ साधारण लोगों को ब्रह्म-ज्ञान का दृश्य बता कर धोखा देते हैं और डकेतियाँ करते फिरते है।

जिस प्रकार योगेश्वर नितनाथ ने कहा है कि शरद काल की इन्द्राणी को सिन्दुर में मिलाकर, तेल में अंजन कर उतरायण में नेत्रों में लगाने से निधी के दर्शन हो जाते हैं, उसी प्रकार यदि आप अपने नेत्रों में इस पुस्तक की ब्रह्म विद्या का अंजन लगाने से वह परम पुरुष के दर्शन हो सकते हैं।

संसार का त्याग न करते हुये और परपंचों की उपाधियों को न त्यागते हुये केवल ज्ञान—मात्रा से ही जीवन सार्थक हो सकता है। यह अनुभव सिद्ध बात है।

अभ्यास द्वारा इसका अनुभव करना चाहिये। यह बात निःसन्देह है कि अनुभवी पुरुष ही केवल पुरुष है। जैसे अनुभव और अनुमान (उधार और नकद सौदे के मानिन्द है) अथवा मानस पूजा और प्रतक्ष दर्शन में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर अव्यक्त पुरुष और व्यष्टि मनुष्य में है। अब जरा चित्त को सुचित कर दंत्त चित्त हों जाइयेगा और जो बताया जाय उसको मनमें स्थान देना चाहिये। देखिये और बिचारिये कि हमें जिस गांव या देश में रहना हो तो पहले उस देश या गांव के मालिक से मिलना चाहिये। उसके न मिलाप से कभी सुख नहीं मिलेगा। यह राजनीति का नियम है। इसलिये जिसको जहां निवास करना हो उसे चाहिये कि वह निवासस्थान के मालिक से मिले इससे सब प्रकार का सुख हो आता है।

मालिक की भेट न करने से मान का अपमान होना और महत्व के जाने में देर नहीं लगती और न चोरी करने

पर चोरी लगती है और राज्य के कर्मचारियों की बेगार भी लगती है। इस कारण राव से लेरक रंक तक, जो कोई वहाँ का नायक हो, उससे अवश्य मिलाप करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते उन्हें अपने जीवन में अनेकों दुखों का सामना करना पड़ता है यह प्रसिद्ध बात है।

देखो गांव में गांव का आधिपति बड़ा कहा जाता है और देशाधिपति उससे बड़ा होता है और देशाधिपति से भी नृपति बड़ा होता है और राष्ट्र भर का स्वामी होता है, उसे राजा कहते हैं। तथा महाराजाओं का भी जो राजा होता है, वह चक्रवर्ती राजा कहलाता है। जैसे एक नृपति होता है, एक गजपति होता है, और एक अश्वपति होता है, और एक भूपति होता है, परन्तु इन सबमें बड़ा तथा शासन करने वाला चक्रवर्ती होता है। इसके आगे मनुष्यों में नहीं, परन्तु इससे भी उपर जैसे लक्ष्मी पति, यज्ञ पति, प्रजापति आदि है जो चक्रवर्ती से भी उपर बड़े है। इसी प्रकार हमारे शरीर में भी चित्त, मन, बुद्धि आदि चक्रों के चक्रपति है जैसे बुद्धि पति आदि। ये भिन्न २ चक्रों के खंडों में बैठे हुये पुरुप भी अपने २ ग्राम, नगर और देश के भूपति है। परन्तु वो महान् परम पुरुष तो इन सब पर शासन करता है और सबसे जुदा है और जिसको मै मै कहते हैं उसका तो वहा कहीं पता ही नहीं है। खोज किसका किया जाय, ये जो कुछ भौतिक तत्व है, वे तो जहां के तहां मिल जाते हैं और तितर—बितर हो जाते हैं और चैतन्य पुरुप वह अविनाशी रहता है।

हमारे शरीर में, जिस मे हम निवास करते हैं, इसके स्वामी से तो मिलना दूर रहा, परन्तु कभी उस को याद तक नहीं करते और अहंकार के ममत्व मे ही रत रहते है और मैं, मैं के अतिरिक्त दूसरे की हस्ती को कुछ नहीं जानते और मनमाना मत बना लेते है। ईश्वर, परमात्मा, खुदा या गॉड आदि का नाम लेने पर उसकी मुर्खता प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं पर अपने विज्ञान के गर्व के आगे अपनी प्रत्यक्ष हस्ती की ही हद मान लेना और अपने जड़-पदार्थ के यन्त्रों और दूरदर्शनीय यन्त्रों (दुरबीनों) के आगे आविष्कार कर करके नित नये सिद्धान्तों की रचना रचना और आगे किये हुये सिद्धान्तों को झूठे बतलाना। इस प्रकार आज कल के आविष्कार वाजों के अनुमान की दौड़ में दौड़ रहे हैं।

आज तक हमने अपने परम पुरुष स्वामी को जाना ही नहीं, उसको कुछ माना ही नहीं, उसको अपनाया ही नहीं, उसका आदर सत्कार कभी किया ही नहीं और उसका आतिथ्य तक किया नहीं। न उससे कभी बात चीत की, न उसको कभी अपना हाल ही सुनाया और न उसका ही हाल कभी सुना, न उसका कभी स्वरूप ही देखा और न अपना स्वरूप ही कभी दिखाया।

हम लोग अपने जन्म—मरण को नहीं देख सकते हैं, दूसरों के जन्म—मरण को देखते हैं। दूसरों के जन्म-मरण को देख उन पर हर्ष—शोक कहते हैं। लेकिन हम लोग यह नहीं सोचते हैं कि जन्म—मरण है किसका और क्या

चीज़ ? क्यों होता है ? कैसे होता है ? आदि २ प्रश्नों का उत्तर नहीं सोचते हैं। यह बात तो सब मंजूर कर लेते हैं कि हमें भी ऐसे ही मरना है जैसे अमुक पुरुष मरा है यह हमारा स्वभाव सिधान्त हो गया है। लेकिन कब और कैसे मरेंगे ? यह हमें मुतलिक मालूम नहीं है।

हमने कभी भी अपने मालिक परम पुरुष को अपने में नहीं देखा और न सुना, न जाना। अपने मालिक को तो क्या परन्तु जो हमारे रात दिन का आराम गृह है, जिसमें हम नित्य सोते, जगते, उठते, बैठते हैं, और खाते, पीते याने नाना तरह के भोगों के विषय का बोध कर उनका आनन्द लूटते हैं। ऐसे अपने शरीर तक को देखा नहीं, जाना नहीं।

इस शरीर में क्या २ रचना भरी है ? शरीर क्यों बनाया है और किसने ? हमने इस शरीर को बनाया है। या और किसी चतुर कारीगर की कारीगरी से बना है ? या स्वयं भूत। यह हमें मुतलिक मालूम नहीं। यह शरीर मर जाने के लिये ही है या और कुछ काम के लिये बनाया है ? हम अपने शरीर का क्या उपयोग कर रहे हैं और क्या उपयोग करना चाहिये। आदि २ बातों के मुतलिक जानते नहीं।

प्रकरण दूसरा।

जि०— आप हमें परम पुरुष अव्यक्त की रचना के परम ज्ञान को सप्रेम बतलाइयेगा।

उ०—अव्यक्त परम पुरुष का ज्ञान तो परमानन्द में प्राप्त होने से पूरा हो सकता है और वह अव्यक्त अकथनीय है, अलक्ष, अभेद, अगम, अपार, अगोजर आदि है तो भला मैं एक उपादि धारी परपंच वाला प्रकृति—पुरुष, भूत—पुरुष, क्षर—पुरुष कैसे जान सकता हुँ। परन्तु जो कुछ मै ने अभ्यास, अनुभव और नाना भांति के सास्त्रों से और परस्पर की सत—सगती से जाना है वह आप को संक्षिप्त में सुनाता हुँ। चित्त को एकाग्रह कर ध्यान पूर्वक सुनियेगा। सोचो, बिचारो, समझो, खोजो और अभ्यास करो असम्भव कुछ नहीं है।

वह परम पुरुप अव्यक्त पुरुष है। भला इसकी रचना कोई कैसे जान सकता है, परन्तु वह अव्यक्त परम परमेश्वर मूल पुरुष है। अव्यक्त पुरुष के मायने यह है कि जिसमें देश—काल दिशा, न कोई अवयय, न कोई इन्द्रियां, न कोई परिणाम, न कोई परिणाम वाला है। न वह गुण, कर्म और स्वभाव वाला है। इस प्रकार वह अव्यक्त पुरुष है। न उसके माता है न पिता, न उसके भाई, न उसके भगिनी है। ऐसा वह अव्यक्त पुरुष है। न उसके हाथ है, न उसके पांव' न उसके उपस्थि आदि कोई इन्द्रियां है। वह विदुन इन्द्रियां होते हुये भी सम्पूर्ण कर्म और विषय करता है। विदुन हाथ--पांव वाला होते हुये भी सर्वस्थान पर व्याप्त है। ऐसा वह अव्यक्त परम पुरुष है। और अव्यक्त के लक्षण इस प्रकार है जिस प्रकार प्रातः काल होते ही आकाश मे नक्षत्रों (तारों) का जिसमे लोप हो जाता हैं और दिन का दिवाकर (सूर्य) शांयं काल होते ही जिसमे लोप हो जाता है

और सम्पूर्ण वृक्ष जैसे आकार पर्यंत बीज के अन्तर्गत लोप होता है जिस प्रकार सम्पूर्ण कर्म वासना में अन्तर्गत लोप होते है जिस प्रकार वस्त्र के अन्तर्गत तंतु लोप होते है· इसी प्रकार माहा भूतों का समुदाय अपने स्थुलादि धर्मों को त्याग कर सूक्ष्म हो कर जिस मे अंर्तध्यान हो जाते हैं वही अव्यक्त है ॥

जि०—पिताजी ! असंभव ! असंभव !! एक दम असंभव !!! आपकी कही हुई इस बात को कौन मानेगा। जो पढ़ेगा वह सुनेगा सो कहेगा कि—यह अघटित असंभवनीय है यह अतियुक्ति निरी गप्प है । कहीं बिना इन्द्रियों के भी विषय भोगे जा सकते है ? और विदुन अवयव के पुरुष हो ही नहीं सकता । यह बात बिलकुल झूट है । इसका कोई प्रमाण है या आप अपने मूंह से ही कहते है।

उ०—अपाणि रेवाऽखिल माद देहं, व्रजामि सर्वत्र पुनस्त्वपदः। पश्याम्य चक्षुश्च शृणोम्य कर्णः ॥

अर्थात्—बिना हाथ ही ग्रहण करता है और बिना पांव सब स्थान चलता है. बिना आंख सब कुछ देखता है और बिना कान सब कुछ सुनता है। ऐसा वह अव्यक्त पुरुप है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुति मल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

(गीता अ० १३ मं० १३)

अर्थात्—वह सब ओर से हाथ पैर वाला एवं सब ओर से नेत्र, सिर और मुख वाला तथा सब ओर से श्रोत्र वाला है, क्यों कि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

(अ० १३ मं० १४)

वह अव्यक्त सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित और गुणों से अतीत हुआ भी अपनी संयोग माया से सबको धारण पोषण करने वाला और गुणों को भोगने वाला है।

वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥

(अ० १३ मं० १५)

अर्थात्—सम्पूर्ण भूतों में अन्तर बाहिर व्याप्त है और चराचर में भी व्यापक होता है और वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है और वह अति समीप में और अति दूर में भी स्थित है। ऐसा वह अव्यक्त परम पुरुष है। वह अव्यक्त परम पुरुष कैसा है ? यह हम अपनी रचना से समझाते हैं। ध्यान पूर्वक सुनियेगा।

प्रथम रामायण में श्री गो स्वामि तुलसीदासजी ने इन्ही अव्यक्त पुरुष की रचना थोडे से शब्दों में यों कही है ॥

॥ चौपाई ॥

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आंनद रासी ॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा । मति-अनुमान निगम यश गावा ॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु कर्म करै विधिनाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बाणी वक्ता बड योगी ॥
तनु बिन परस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्राण बिनु वास अशेखा ॥
अस सब भांति अलौकिक करणी । महिमा तासु जाई किमि बरणी ॥

॥ छन्द ॥

वह अव्यक्त पुरुष है, जात नहीं ।
सब जाति में है, वह अजात नहीं ॥
प्रत्यच्च है, पर वो दिखात नहीं ।
यह भेद भी वेद से पात नहीं ॥
वो अलच्च है, लच्च में आत नहीं ।
सब ठौर है, आवत जात नहीं ॥
वो लघु से लघु है, लखात नहीं ।
कोई नहीं जान सके यह भी बात नहीं ॥
वो हृदय में है और ज्ञात नहीं ।
दस इन्द्रियों में है और लुभात नहीं ॥

न उपस्थ पायु, न हाथ नहीं ।
सुत दारा न भ्रात वो तात नहीं ॥
नहीं जन्म धरं न मेर है कभी ।
भा भाग्नि, भुवा और मात नहीं ॥ १ ॥
जन्म मरण और घात नहीं ।
और व्याधी का संग और साथ नहीं ॥
चित्त, मन और बुद्धि समात नहीं ।
अहंकार वहाँ कभी जात नहीं ॥
कुछ पुण्य न पाप न साथ नहीं ।
सुख—दुःख में वो लिपटात नहीं ॥
न मन्त्र जपे वो जपात नहीं ।
न तो वेद पढ़े वो पढ़ात नहीं ॥
वो तो भोजन भोग लगात नहीं ।
नहीं भूख लगे अरु खात नहीं ॥ २ ॥
वहाँ दिन भी नहीं अरु रात नहीं ।
वहाँ सन्ध्या नहीं और प्रातः नहीं ॥
क्या कहुं कुछ मुंह से कहा जात नहीं ।
कहे बिना रहा जात नहीं ।
सब शब्द सुने वो सुनात नहीं ॥
समझै है पर वो समझात नहीं ।
निर अक्षर है निरखात नहीं ।
कछु वा के तो कांना मात नहीं ॥

जहाँ बुद्धि की पहुँचे जमात नहीं ।
कोई आप में आप समात नहीं ॥
अद्वैत है वो द्वैत विभ्रांत नहीं ।
न भेषन पक्ष न पात नहीं ॥ ३ ॥
कछु बन्दन में बन्धात नहीं ।
विषय भोग में वो लिपटात नहीं ॥
अविनाशी है, काल भी खात नहीं ।
बिन जाने बिन संसय जात नहीं ॥
प्रत्यक्ष है पर वो दिखात नहीं ।
यह भेद भी वेद से पात नहीं ॥ ४ ॥

जि०—अव्यक्त पुरुष जब ऐसा है तो हम उसको किस प्रकार से जान सकते हैं ? ऐसी कोई युक्ति भी आप नहीं बतलाते हैं । फिर हमको इसका कैसे अनुभव हो । कोई युक्ति बतलाइएगा ।

उ०—हम उसको पहचानने के लिये युक्ति कहते हैं । ध्यान से सुनियेगा और समझियेगा । अगर तुम ज्ञान में धारण करोगे तो कुछ अनुभव में भी आवेगा । अच्छा सुनिये चित्त को एकाग्र करके और मन को स्थिर रख करके ।

॥ छन्द ॥

सूक्ष्म स्थूल को सम करके ।
फिर अव्यक्त में ध्यान से ज्ञान लगा तो सही ॥

वहां न उखाड़ सके एक बाल तेरा ।
यम काल भी देख डरा तो सही ॥
स्थुल में पूरण प्राण भरो ।
फिर सूक्ष्म में ठहरा तो सही ॥
तूं व्यक्त से अव्यक्त को देख जरा ।
वो अलक्ष पुरुष लखा तो सही ॥
बिन मुख से बोलत चालत है ।
बिन जिव्हा के करे वो बात सही ॥
बिन दांतन चावत वस्तु सभी ।
बिन रसना के जाने स्वाद सब ही ॥
बिन कानन टेर सुने सभ की ।
बिन नैनन देखत रूप सब ही ॥
बिन कंठ के राग वो गावत है ।
बिन नाशिका सुघे सुगन्ध सब ही ॥
सब ठोर फिरे बिन पावन से ।
सब करम करे बिन हाथ सही ॥
बिन इन्द्रियन भोगत भोग सभी ।
बिन उद्र के वस्तु समातो सही ॥
बिन देह के देह धरे अद्भुत ।
बिन बीज के वृक्ष लगात सही ॥
बिन पेड़ के देखे लगे हमने ।
फल—फूल लता और पात सही ॥

तूं ज्ञान नैन से देख अदृष्ट को ।
दिव्य दृष्टि से दिखात सही ॥
तुम ज्ञान का भानु प्रकाश करो ।
वह अज्ञान अन्धेरा उड़ा तो सही ॥
बिन शब्द करे वो शब्द सुने ।
तेरे कानन बिच सुना तो सही ॥
बिन बादल दामन दमक रही ।
वै पावस हो बरसा तो सही ॥
बिन पावक ज्योति जगे है वहां ।
उस ज्योति से ज्योति मिला तो सही ॥
ये भेद खुले छिन में तेरा ।
तूं अव्यक्त में चित जमा तो सही ॥

अब इस अव्यक्त का कहां तक वर्णन करें । इसका विस्तृत वर्णन, जब हम 'शरीर—कारण' का वर्णन लिखेंगे तब इसकी रचना में, करेंगे । अब ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से जिज्ञासुओं के लिये इतना ही काफी (पर्याप्त) है । किसी ने सत्य ही कहा है कि—'अकल-बदों के लिये इशारा ही काफी है ।' याने पढ़े लिखे मनुष्यों को किसी बात का इशारा बता देना ही ठीक है । अब हम व्यक्त पुरुष का वर्णन करते हैं । कृपया 'वक—ध्यान' होकर सुनियेगा और समझियेगा । अच्छा सुनिये—

॥ प्रकरण तिसरा ॥

सगुण व्यक्त पुरुष समष्टि ।

यह व्यक्त पुरुष अव्यक्त का ही परिपूर्ण सर्वांग समष्टि पुरुष है । यह समष्टि रुप नें अव्यक्त का व्यक्त भाव मे उलता है यह समष्टि मुखों वाला, समष्टि हाथों वाला, समष्टि अन्तः करणों वाला, समष्टि मनो वाला, इन्द्रियों वाला, समष्टि विषयों वाला, समष्टि ज्ञान समष्टि ज्ञेय समष्टि प्रजा वाला ईत्यादिः इस के ही अनेक नाम है, प्रजापति, पुरूसोतम, आदि पुरुष, व्यक्त माहा पुरुष, विश्व पुरुष, विश्व बाहु, विश्व श्रोता, विश्व चक्षु, विश्व नियंता; आदि अनेक नाम हैं; जिनका कहां तक वर्णन करें ।

अब समष्टि व्यक्त पुरुष के समष्टि अंगोंका वर्णन करते हैं ।

अष्टधा प्रकृति जिसका मस्तिष्क हैं जिसके जरायुज, अण्डज, दो हात हैं स्वेदज, उद्‌भिद्‌ज दोनों पांव हैं पंचीकरण जिसका पेट हैं निवृति जिसकी पीठ है नाभी के उपर के भाग कंठ तक, अष्ट देव स्वर्ग हैं मध्यम भाग जिसका मृत्यु लोक है कमर के निचे चरण कि ऐड़ी तक, सप्त पाताल लोक हैं ॥ अभय, मरीची, और मर, ये तिनो लोक जिस बालक के झुलने का हिंडोला है (पालना) हैं; चोरासी लक्ष योनियों जिसके बिसों उगलियों के पोरवो कि रेखायें हैं ये भिन्न २ सृष्टियां उगलियां हैं और भिन्न २ शरीर उन के

पैरवे हैं ब्रह्मा इस की बाल्य अवस्था हैं विष्णु इस कि युवा अवस्था हैं सदा शिव इस की वृद्धा अवस्था है रजो गुण इसका प्रातः काल है सतो गुण मध्यान काल हैं तमो गुण सांयंकाल हैं इस प्रकार इसकी उत्पत्ति, स्थिति, और लय ये तीन काल हैं; माहा प्रलय जिस कि अनन्त शय्या हैं॥ जिस में यह अपने ऐश्वर्य के खेल खेल कर सो जाता हैं पुनः कल्प का उदय होते ही विपरीत ज्ञान से पुनः जागृत होता हैं॥ नेत्रो के पलकों का खोलना मीचना जिसका दिन रात हैं और दिन कि चारों पहर, चारों युग हैं, जिसके एक स्वास मे चारों युग समाप्त हैं और दिन की घड़ियों मन-वन्तर हैं मिथ्या माया के ग्रह मे ये काल गति के योग से पांव भरता है वह चरों दिशाये हैं और जिसका जीवन विस्मर्ण ज्ञान है और मृत्यु आत्म ज्ञान है॥

चिद्दा काश इस का राज्य है और चिताकाश मुख्य राज्य धानी है और हृदय मे इसके आराम ग्रह का मुख्य स्थान हैं और इस के राज्य का दरबार करने के लिये मस्तिष्क के मनो काश (चंद्राकाश मे राज्य सिहांशन है)॥ जिस पर बैठ कर यह ब्रह्माण्ड पति अपना राज्य शासन की क्रिया और कलाओं का और अपने ऐश्वर्य का उपभोग करता है और अपनी कल्पनाओ के द्वारा प्रजाजनो को उत्पन्न कर उन का उचित न्याय से प्रबंध करता है॥

जब वह अपने राज्य सिंहासन पर बैठ कर अपनी कल्पनाओं के संकल्प विकल्प आदिकों का दरबार करता हैं; जब उस को मन कहते है और जब वहे इन कल्पनाओं के संकल्पादिको का विचार विवेककी जानने की इच्छा

करता है जब इसको बुद्धी कहते हैं जब यह पहचान कर याद रखता है जब इसको अहँकार कहते हैं। इन सब के समुह को अन्तः करण कहते हैं। अब इन की क्रियाओं को कहते हैं।

इन अन्तः करण की क्रियाओं के दो विभाग बन जाते हैं (१) ज्ञान विभाग (२) कर्म विभाग, ये दोनों विभाग फिर अपने ५ पांच २ प्रकार के ज्ञान और चेष्टाओं के रुप मे विभाजित हो जाते हैं। अब इन विभागो को बतलाते हैं।

जब यह देखता है तब इस विभाग का नाम चक्षु होता है, जब यह सुनता है तब इस विभाग का नाम श्रवण होता है, जब यह स्पर्श करता है तब इस विभाग का नाम त्वचा होता है, जब यह चखता है तब इस विभाग का नाम रसना होता है, जब यह सूँगता है तब इस विभाग का नाम घ्रांण होता है, ये ही पञ्च ज्ञान के विभाग हैं, इन ही विभागों के समूह को ज्ञानेन्द्रियां कहते हैं।

अब इसके दूसरे कर्म विभाग को कहते हैं, जो कि मन की चेष्टाएं हैं, जब यह बोलता है तब इस विभाग को शब्द (वाक) कहते हैं, जब यह पकडता है तब इस विभाग को हाथ (पाणी) कहते हैं, जब यह चलता है तब इस विभाग को पाव (पाद) कहते हैं, जब यह छोडता है तब इस विभाग को गुदा (पायु) कहते हैं जब यह आनन्द नीय भोग पाता है तब इस विभाग को शिश्न (उपस्थ) कहते हैं, यही मन कि चेष्टाओं के समुहों को कर्मेन्द्रियां कहते हैं, क्रिया और क्रियाओं के विभाग को मिला कर सब के समु-

दाय को अन्तः करण के नाम से कहते हैं ॥ अब हम अन्तः करण शब्दार्थ के अर्थ को बतलाते हैं ॥ 'अन्तः' अव्यक्त, को कहते हैं, और (करण) उस को कहते है जिसके द्वारा क्रिया सम्पादन होती है. यह अन्तः करण का मतलब हैं। दर्शन इन्द्रियों का मुख्य अधिष्ठान आँख है। श्रोत्र का कान है स्पर्श का मांस और चर्म हैं। रस का जिह्वा है। घ्राण का नाक है। वाकय का वाणी है। ग्रहण का हाथ है। गमन का पाव है। पायु का गुदा है। आनन्द का जननेद्रि है। इस प्रकार यह एक एक क्रिया कि इन्द्रिका एक एक मुख्य अधिष्ठान हैं ॥

इसी कारण ही आख से देखना, कान से सुनना, जीभ से चखना, चर्म से छूना, नाक से सूंघना, मुख से बोलना, हाथों से पकडना, पावों से चलना, गुदा से मल त्याग करना, जननेद्रिय मैथुन (स्त्री भोग) करना, होता है ॥

यद्यपि यह व्यक्त पुरुप अव्यक्त ब्रह्म का ही परिपूर्ण समष्टि पुत्र है यह अव्यक्त की तरह ही व्यापक हो कर पञ्च ज्ञानेन्द्रियों और पञ्च कर्मेन्द्रियों के रूपो मे व्यापक हो कर प्रत्येक जुदे २ स्थानो मे बैठ कर खास २ काम करता है ॥ वह अपने व्यापक पिता के तुल्य सब के ऊपर प्रभू रूप से सब पर आज्ञा चलाता हुवा शासन करता है।

जब ये चाहता हैं तब आख खुलती और देखता है जब यह चाहता है जब वाणी बोलती है । इस प्रकार सब इसके आधीन हैं और इसके हुकम मे रहते हैं इस प्रकार यह अव्यक्त ब्रह्म परम पुरुष का पुत्र ही समष्टि प्रजापति

पुरुष है। और अपने अव्यक्त पिता जिस प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डों पर राज्य करता है। उसी प्रकार यह अपने एक ब्रह्माण्ड पर राज्य करता है॥

जिस प्रकार मनुष्य का मन हृदय प्रदेश मे खुलता हुवा सोच विचार रुपों मे होता है। उसी प्रकार प्रजापति का मन चिताकाश मे खुलता हुवा ज्ञान और क्रिया रूप होता है। जिस प्रकार हमारे हृदय से मस्तिष्क और नेत्रों तक जो खाली स्थान आकाश है वह हमारे मन का स्थान दरबार हाल है॥ इसी प्रकार चंद्रमा से सूर्य तक जो खाली स्थान आकाश भाग है वही देव लोक है येही चिताकाश हैं॥ व्यक्त पुरुष का मन इसी लोक मे खुल कर फेलता हुवा विचार करता है। इसी देव लोक में जब वह समष्टि पुरुष देखता है। जब उसका नाम आदित्य देवता कहते हैं। जब वह सुनता है तब इसको दिग देवता कहते हैं। जब यह स्पर्श (छुता) है जब इसको मरुत (वायु) देवता कहते हैं। जब यह चखता है तब इसको वरुण देवता कहते हैं। जब यह सुंघता है तब इसको अश्विनी देवता कहते हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण देवता इस प्रजापति से ही प्रकट होते हैं॥

जिस प्रकार दर्शेन्द्रियों का खास स्थान आंख हैं ऐसे ही आदित्य का मुख्य स्थान सूर्य है। और दिग का दिशायें कान हैं। और मरुत का पवन है। वरुण का जल है। अश्विनी का मुख्य स्थान अश्विनी कुमार है॥

जिस प्रकार हमारा मन आंख, कान, नाक आदि मे जो इन्द्रियां हैं उन से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार ही

इस प्रजापति का मन हमारे सब अंस रूप मनों से सम्बंध रखता हैं। क्यों कि हम चक्षु से देखते हैं तो उस आंख की देखी हुइ वस्तु को मन से पहचानते है । और जब हम सुनते हैं तो सुनी हुइ वस्तु को मन से याद करते हैं और यह प्रकट है कि जो देखता है वही याद भी करता है, जो सुनता है वही स्मरण करता है। यद्यपि आंख देखती है परन्तु सुनती नहीं। यद्यपि कान सुनता है परन्तु देखता नहीं ! तो भी मन आंख से देखी हुई वस्तु को देखता है और कान की सुनी हुई को सुनता है, इस लिये एक ही मन सम्पूर्ण इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है। और इनका केन्द्र है परन्तु इन्द्रियां अपने अपने स्वरूप में भिन्न २ अधिकार रखती हैं॥

प्रजापति का मन भी हमारे मनो के साथ मे सोच करता है और हमारे मनो के विचार मे विचार करता है। यद्यपि हमारे संसारी प्राणियों मे एक के मन के सोच विचार दुसरे के मन के सोच विचार नहीं करते हैं। तथापि प्रजापति का मन सब प्राणी मात्र के मनों से सब सोच-विचार पाता रहता हैं इस कारण ही वह सब के मन की बात जानता है और अपने निज के सोच विचार तो चन्द्रा-काश मे करता है॥

जि०—यह बात समझ में नहीं आई कि यदि सब प्राणियों के मनो के सोचविचारों के साथ यदि प्रजापति करता हो तो वह विचारा रात दिन दुनिया के दुःखों से ही दुखित रहता होगा।

उ०—देखो मेशमेरेजिम विद्या में जब साधक के मन पर साधने वाला सिद्ध अधिकार कर लेता है, जब वह साधक की तमाम इन्द्रियों को अपने अधिकार में

समष्टि रूप कर लेता है जब साधक बेभान अचेतनसा हो जाता है और सिद्ध के मन से साधक का मन मेल पा-जाता है फिर वह साधक को सिद्ध जैसे जैसे रंग रूप स्वाद आदि बताता है साधक उसी उस माफिक स्वीकार कर लेता है अथवा साधक को किसी मकान में या उस के आंखों के उपर पटी बांध कर सुला देते है फिर वह साधक दर्शक लोगों के जिस जिस अँग को छुता है वह साधक उसी उस अँग के स्पर्श को बता देता हैं या सिद्ध जिस २ रङ्ग रूप का विचार करता है उसी उस रङ्गरूप का बयान साधक बता देता है ॥ इस से यह सिद्ध होता है कि साधक का मन सिधक के मन के देखे हुवे को देखता हैं सोचे हुवे को सोचता है विचारे हुवे को विचारता है और जाने हुवे को जानता है ॥ यदि उस वक्त सिद्ध के अङ्ग में कही भी किसी भी सख्त का आघात करने से फोरन वो आघात साधक को हो जाता है, इसी प्रकार से हमारे मनो में प्रजापति का मन है । फिर जब वह सिद्ध उस साधक के मन पर से अपना अधिकार हटाने, और साधक अपनी (व्यष्टि) असली दशा में आने पर वह जो जो बातें अथवा घटनाये उस प्रयोग की वक्त उसने कही सुनी या देखी हैं अथवा विचारी थी उनको नहीं जान सक्ता है बलकि प्रयोग की वक्त खुद साधक के मन और इन्द्रियों से कही हुई है परन्तु ताहम भी वो उनका ज्ञान नहीं जानता है । उनका ज्ञान तो सिद्ध ही जानता है ॥ इसी प्रकार हमारे किये हुवे कर्मों को दूसरे जन्म में हम नही जानते बलके प्रजापति जानता है ॥ जैसे प्रयोग का प्रयोग करता सिद्ध जानता है साधक नही ॥ यह दृश्य बाजीगर लोग सरे आम में कर के

दिखाते है सायत कभी आपने अवश्य देखा होगा । जैसे आंख का देखना मन का देखना है । कान का सुनना मनका सुनना है । इसी प्रकार सृष्टि के प्राणियों का सोचना विचारना प्रजापति का सोचना विचारना है । और इन्द्र वरुण आदि देवों का सोचना विचारना प्रजापति का सोचना विचारना है । इस प्रकार क्या देवता, क्या मनुष्य, क्या पशु, और क्या पक्षी सब के अन्तः करण वास्तविक में प्रजापति के व्यष्टि (टुकड़े) हैं और प्रजापति का अन्तः करण उन सब हरेक व्यष्टियों का समष्टि है । और यह सिद्ध है कि समष्टि हरेक व्यष्टि का केन्द्र होता हैं इसी लिये प्रजापति का अन्तः करण हरेक व्यष्टि जीवों के अन्तः करण का केन्द्र है ॥

जब प्रजापति का मन हरएक मन का केन्द्र है और हर एक का मन हर एक इन्द्रियों का केन्द्र है । इस सिद्धान्त से यह सिद्ध होता है कि जो हम देखते हैं या सुनते हैं उसको वास्तविक में प्रजापति देखता या सुनता है ॥ जो हम बोलते हैं अथवा चलते हैं वह भी प्रजापति का बोलना चलना है ॥ जिस प्रकार हमारे अन्तः करण मन तथा इन्द्रियों का और प्राणो का हमारे इस शरीर में सम्बन्ध है ऐसे ही प्रजापति की इन्द्रियां मन और प्राणों का हमारे शरीर में सम्बन्ध हैं ॥

यद्यपि हमारा मस्तक एक है परन्तु प्राणी मात्र के सब मस्तक प्रजापति के हैं । हमारी आंखे दो हैं परन्तु सम्पूर्ण आंखें प्रजापति हैं । हमारे कान दो हैं परन्तु सब कान प्रजापति के हैं । इसी लिये प्रजापति को वेद के मन्त्रो में

हजारो मस्तक वाला, हजारो आंखों वाला, हजारो कानो वाला, हजारो पावो वाला कहते हैं ।

इस प्रकार कथा देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि सकल चराचर भूत और भौतिक सर्व रूप प्रजापति है यह चरा चर का समुह रूप जगत उसका विशाल शरीर है और यह ही माहा प्राण उसमें साक्षात उस का प्राण हैं इस लिये वही विराट भगवान की सुरत में हमको प्रत्यक्ष आंखों के सामने दिखाइ देता है ॥ जिन देवताओं का उपर वर्णन किया गया है वह सब उसके ही अवयव हैं और वह सब में व्यापक हो कर अपने आप का साक्षात परिचय दे रहा है ॥

देव लोक उस का असली मस्तक है सूर्य उस की आंख है। दिशायें उसके कान हैं । पृथ्वी उसके चरण हैं समुद्र उसका मुत्राशय है अग्नि उसका मुख है। इस भांती हरएक पदार्थ उसके ही अवयव हैं। यह विराट मय प्रजापति पुरुष ही सबका पूज्य पिता है सबका पालन करता सृष्टि रूप शरीर से प्रकट हो रहा है। हम सब उसके ही पुत्र पौत्रादिक अङ्ग हैं और उसके ही उतराधिकारी हैं ॥

वह चिताकाश (चन्द्रलोक) में स्वयम् सोचविचार करता हुवा हमारे अन्तः करण और मनो में विद्यमान हो कर सोच विचार करता है । सुर्य में विराजमान हो कर सबो को देखता हुवा हमारी आखों में देखता है । हमारा देखना उसका ही देखना है और उसका देखना हमारा देखना है । हमारे भोग उस के ही भोग हैं । हमारे सुख

उसके ही सुख हैं। हमारे पुण्य उसके ही पुण्य हैं। परन्तु हमारे पाप उसके पाप नहीं और न हमारे पाप उसको छु सकते है और न हमारे दुःखों से वह दुखी हो सक्ता है॥

जि०—यह खुब कही के जब हमारे सुखो में उसके सुख और हमारे भोगों में उसके भोग फिर दुखों में उसके दुख क्यों नही यह तो उस कहावत की बात है कि! खावे सूर और मार पडे पाडों को॥ इसका क्या कारणहै॥

उ०—इस का यह कारण है कि उसनें पहले कल्प में अपने सुकृत पवित्र कर्मों से दुवारा यह प्रजापति का अधिकार पाया है और उन ही सत्य कर्मों के कारण से अब वह समष्टि रूप में उठा है इस कारण सकल सुख और ऐश्वर्य के लिये वह सबका स्वरुप हुवा है कि वह समष्टि रूप से सब के पुण्य और सूखों को भोगे॥ हमारे कुकर्मों के फल दुःखो की सुरत में हमको व्याकुल करते हैं। परन्तु प्रजापति में अपना प्रभाव नहीं डाल सक्ते हैं यह ही संचित कर्म हमारे प्रारब्ध हैं॥ जो प्रजापति से मेल पाने में बाधित है॥ जिस प्रकार तेल और पानी मिला कर यदि दीपक जलाया जावे तो वह तेल तोजल कर प्रकाश रूप में हो जायगा और पानी ज्यों का त्यों रह जायगा॥ बलकि पानी को दीपक की लो कदापी प्रकाश नहीं करेगी बलके तुरन्त वो प्रकाश बुझ कर अन्धकार हो जायगा। इसी प्रकार से हमारे और प्रजापति के मेल पाने मे जैसे पानी और तेल प्रकाश के मेल पाने में पानी बाधित है बलकि संचय रूप से दीपक के पात्र मे एकत्रित रहता है ऐसे ही हमारे कुकर्म (दुष्कर्म) बाधित होते हैं।

क्यों कि वह प्रजापति में मेल नही पाते बलके संचित रूप में संचय मान होकर हमारे प्रारब्ध भोग बन जाते हैं। जो हमारे पुर्व जन्म को व्यष्टि कर के हमको अपनी तरफ आकर्षित करते हैं॥

जिन देवताओं का वर्णन उपर प्रजापति में हो चुका है। वह भी प्रजापति कि समान अपने २ स्वतन्त्र हैं और अपने २ काम के लिये सकल ब्रह्माण्ड में फैले हुवे हैं और उनके २ अधिकार के कामों को करते हैं। तो भी वे देवलोक में पुण्य रूप खास मूर्तियें धारण करके अपने २ अधिकार के अनु-सार अपने २ पुण्य को भोगेते हैं । और उनही पुण्य के कारण से हमारे पुण्य और सुखों के अधिकार भी प्रजापति की समान पाते हैं। इसलिये ही लिखा है कि देवता पुण्य लोक मे प्राप्त होने वाले पुण्य के भागी हैं और पापमय योनियां केवल पाप की भागी है। परन्तु मनुष्य को पुण्य पाप के मेल से बनाया गया है वह सुख और दुःख दोनों को पाता है॥

इन देवताओं की खास मूर्तियां जो देवलोक मे विद्यमान हैं। उनके बताने की आवश्यकता नहीं क्यों कि पढे लिखे लोग उनको पुराणों में जान सक्ते हैं।

उन मूर्तियों के इलाके के कारण वह उसी भाँति वर्त्ताव करते हैं जिस प्रकार हम हमारे शरीर के इलाके के कारण इसलोक में वर्त्ताव करते हैं। क्यों कि वह अपने २ उत्तम पुण्य के कारण से पुण्य लोक को पुण्य से पाते है और हमारे भोग व उन्नति के वे द्वार (जरिया) है इसलिये

ही वह बड़े और पूज्य हैं तथा उनकी शास्त्रीय मूर्तियों से वे ध्यान के योग्य हैं जो उनकी मूर्तियें देव लोक में विद्यमान् प्रत्यक्ष हैं।

जिस प्रकार प्रजापति की चित वृतियें हमारी चित वृतियों की केन्द्र हैं। और जिस प्रकार प्रजापति की ज्ञानेन्द्रियां हमारी ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र हैं इसी प्रकार ही पञ्च प्राण हमारी करमेन्द्रियों का केन्द्र हैं। ये पञ्च प्राण प्रजापती की समष्टि कर्मेन्द्रिया हैं जिस प्रकार हमारी कर्मेन्द्रियां इन जुदे जुदे प्राण के आधीन हैं इसी प्रकार ही वे पञ्च प्राण भी उस प्रजापती के समष्टि मन के आधीन हैं क्यों की हमारा जैसा संकल्प होता है उसके अनुसार ही ये कर्मेन्द्रियां काम करती हैं ऐसे ही चंद्राकाश। चिताकाश। में जैसा जैसा प्रजापति संकल्प करता है वह समष्टि प्राण भी वैसा २ ही काम करते है।

जिस प्रकार ये हमारा छोटासा शरीर हमारे भोग का साधन है ऐसे ही विराट शरीर प्रजापति का शरीर है तथा उसके भोग का साधन है और जिस प्रकार हमारा मन पृथक २ ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से मिलकर सब का समूह रूप सूक्ष्म का अन्त. करण कहलाता है इस प्रकार ही वह प्रजापति समष्टि अन्तःकरण मन और सकल देवाताओं से मिलकर हिरण्यगर्भ कहलाता है।

प्रजापति जिस प्रकार अपने विराट शरीर और हिरण्यगर्भ से संयोग पाकर जीवित पुरुष है। इसी प्रकार हम भी अन्तः करण और इस छोटे से स्थूल शरीर से संवन्ध पाकर

जीवित मनुष्य या जीती जागती जान है जिस प्रकार वह ब्रह्मांड में काम करता हुवा अपना राज्य शासन करता है ऐसे ही हम भी इस चराचर के छोटे से जगत में राज्य करते हैं ।

देखो जब हम चाहते हैं कि एक ॐ कार लिखें तो पहले हमारे हृदय कमल में इच्छा रूप स्फूर्ण होता है फिर मस्तिष्क में उसका मानसिक आकार चित्त में बनता है फिर कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा वही विचारा हुवा ॐ कार का आकार कलम और स्याही से बाहर कागज पर बनाते हैं ।

इसी प्रकार प्रजापति भी जब किसी पदार्थ को बनाना चाहता है तब पहले उसकी इच्छा चिदाकाश में स्फूरित होती है और उसका सूक्ष्माकार चित्ताकाश (चंद्राकाश) में विचार जाता है फिर देवताओं तथा नक्षत्रों की सहायता से उसी नियम से इस पृथ्वी लोक में चेष्टा होती है और वह विचारा हुआ आकार पदार्थाकार में उत्पन्न होजाता है इस प्रकार सब अध्यात्म अधिदेव और अधि भौवतिक पदार्थों की उत्त्पत्ति हुवा करती है । और सकल देवता तथा पितृ और नर नारी उस उत्पत्ति के साधन हैं । कोई पदार्थ तो केवल देवताओं की सहायता से बनते हैं और कोई मनुष्यों की सहायता से बनते हैं, इसलिये वह प्रजापति सब साधनों (करणों) का प्रेरक कहलाता है ।

प्रजापति का संकल्प अपने भोग और एश्वर्य के लिये अपने पुण्य कर्मों के वसमें है परन्तु दूसरों के भोग के लिये

उनके ही कर्मों के आधीन है। जैसे २ उनके कर्म प्राणियों के होते हैं वैसे ही वैसे उनके संकल्प उनके दुख और सुख के भोग के लिये उठते हैं और वैसा ही होता है इस कारण से ही वह सत्य संकल्प और न्याय करता कहलाता है।

समष्टि ईश्वर की महिमा।

॥ छन्द ॥

कोटिन ब्रह्माण्ड रचे क्षण में। कोटिन भानु प्रकाश करे॥
उदित करे चंद्र कोटिन। कोटिन तम को नाश करे॥
कोटिन लोक लोकान्तर कोटिन। कोटिन भवन प्रकट करे॥
कोटिन शेष महेश कोटिन। कोटिन ब्रह्मा प्रकट करे॥
कोटिन नेत्र करण कोटिन। कोटिन शिश प्रकट करे॥
कोटिन मुख जिह्वा कोटिन। कोटिन शब्द उचार करे॥
कोटिन भुजा उदर कोटिन। कोटिन चरण बिस्तार करे॥
कोटिन पग पाताल छुवे। कोटिन आश आकाश करे॥
कोटिन कर्म नाम कोटिन। कोटिन भेष विशेष करे॥
कोटिन इन्द्र वरुण कोटिन। कोटिन देवो को प्रकट करे॥
कोटिन शक्ति माया कोटिन। कोटिन काया में वास करे॥
कोटिन राज्य साज कोटिंन। कोटिन ग्रामो में वास करे॥
कोटिन वेद तंत्र कोटिन। कोटिन मंत्र उचार करे॥

कोटिन पूजा यंत्र कोटिन । कोटिन अन्तः निर तंत्र करे ॥
कोटिन के मन में सुख देवे । कोटिन के तनमे त्रास करे ॥
कोटिन जनको राज्य देय । कोटिन को मौहुताज करे ॥
कोटिन को गुणवान करे । कोटिन को अज्ञान करे ॥
कोटिन का नित जन्म करे । कोटिन का नित मरण करे ॥
कोटिन लहर चले उसमें । कोटिन रंग तरंग करे ॥
कोटिन सिंधु भरे नित के । कोटिन ताल खलास करे ॥
यस कोटिन का लेय हमेशा । कोटिन यस यस राज करे ॥

(व्यष्टि पुरुष का बंधनागर)

यह अखिल ब्रह्माण्ड माया प्रकृति का एक कारागार है और उस कारागार के अन्दर जगम और स्थावर प्राण धारी सब कैदी हैं और इन कैदियों के बंधन के निमत्त प्रकृति के गुण और भूतों की बेड़ी और शृंखलाये हैं जिन से जीव मात्रा बंधे हुवे हैं ॥ देखो !

जीव जिसका नाम पड़ा है वह माया के पास बन्धनों में बन्ध जाने से ही पड़ा है । यदि जीव के तमाम बन्धन छूट जाय तो यह जीव कभी भी जीव संज्ञा में नहीं रह सकता है और मुक्तता को प्राप्त होने पर जीव संज्ञा के बजाय ईश्वर संज्ञा होजाती है । जिस प्रकार एक स्वतन्त्र विचरने वाले मनुष्य को राज्य किये बन्धन में डालने से उसकी तमाम व्यवस्था पलटाकर उसका नाम कैदी संज्ञा में होजाता है । इसी प्रकार स्वतन्त्र ब्रह्माण्ड में विचरने वाले

आत्मा को एक छोटे से पिण्ड में बांधेजाने पर जीव नाम पड़ जाता है। और माया के बन्धनों में बन्धा हुवा सुख दुखों को भोगता है और ऊंच नीच योनियों में जन्म लेता है इसलिये कोई भी जीव मात्रा निरबन्धन नहीं है। इस जीव के चार प्रकार के माया बन्धन हैं। जिनको कारण बन्धन भी कह सकते हैं और दो प्रकार के कर्म्म बन्धन हैं जिन को जीव अज खुद बनालेता है और ऊपर वाले चार बंधनों को जीव के निमित्त माया की योनी प्रकृति बना देती है।

(माया के बंधन)

प्रकृति बंधन, अध्यात्मा बंधन, अधिदैविक बंधन, अधि· भौवतिक बधन, ये माया के चार बंधन हैं और वासना और राज्य यह कर्म्म बंधन हैं अब प्रकृति बंधनों का वर्णन करेंगे।

प्रकृति के दो रूप हैं प्रथम अपरा और द्वितीय परा इन अपने दो प्रकार के बंधनों की सृष्टी को रचती है।

(अपरा के बंधनों के रूप)

अपरा के बंधन आठ प्रकार के हैं जिन में तीन गुण और पांच भूत मिलकर के यह जड प्रकृति कहलाती है और गुण भूतों के वंधनों व्यवहार से जीव को बांधती है।

(परा के बंधनों के रूप)

परा के बंधन (ज्ञान अर्थात् इच्छा प्रवृति शक्तियां) (क्रिया प्राण शक्तियां) (चैतना संजीवन शक्तियां) इन रूपों को धारण कर अपरा जीव के बधनों के व्यवहारों की रचना करती हैं।

अध्याय पांचवा ।

प्रकरण पहिला ।

॥ व्यष्टि पुरुष ॥

ममै वांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानिद्रियाणि प्रकृतिस्थनि कर्षति ।.७॥अ०१५गी०
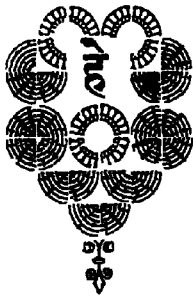
अर्जुन ? जीव लोक में जो जीव भूत हैं, वह मेरे ही सनातन अंश जीव हैं । मन और इन्द्रियों के स्थान जो प्रकृति है, उसमें ही यह जीव आकर्षित हो जाता है । अर्थात् प्रकृति के गर्भ स्थान में यह खिचकर चला जाता है । और उसके बंधन में आजाता है ।

मम योनिर्मह ब्रह्म तस्मिनगर्भ दधम्यहम् ।
संभव सर्व भूतानां ततो भवति भारत ॥३॥अ०१४ गी०

हे अर्जुन ? मेरी माया सर्व व्यष्टि-भूत पुरुषों को गर्भाधान उत्पत्तिस्थान की योनि है और मैं उस योनि में अपना व्यष्टि रूप बीज स्थापन करने वाला पितामह हूं ।

सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तय सभन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्यो निरहं बीजं प्रदः पिता ॥आ०१५गी०

हे अर्जुन ! यरु जो मूर्तियों की योनि प्रकृति है और इन सब योनियों में व्यष्टि-रूप-बीज को स्थापन करने वाला

पिता मैं हूं। मेरे ही संकल्प के संयोग द्वारा व्यष्टि जीवों को उनके संकल्प विकल्प (कल्पना) के अनुसार जीवात्माओं की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार से गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्रजी ने अपने जिज्ञासु, अर्जुन को व्यष्टि पुरुष जीवात्माओं की उत्पत्ति वहुत गुढ़ तत्व में निरूपण की है। अब हम भी इस व्यष्टि-पुरुष की उत्पत्ति को यथामति, यथाक्रम संक्षेप में बताते हैं।

जब समष्टि–पुरुष अपने निज स्वरूप के संकल्प रूप, वीज को अपनी अव्याकृत माया में स्थापित करता है; तब वह संकल्प अविछिन्न रूप से माया के गर्भ–कोष में प्रविष्ट होकर धारण होता है प्रकृति के उदर में अष्टधा रूप से बढकर प्रकृति का पुत्र जीव प्रगट होता है,यही व्यष्टि पुरुष है।

अव यह बतलाते हैं कि यह अष्टधा प्रकृति किस प्रकार से इस जीव को अपने बन्धन में लाकर अपने मजबूत बंधनों से जकड़ती है। जिस प्रकार एक सुन्दर लावण्य युक्त, चतुर, युवा स्त्री पुरुष को अपने प्रम फांस में जकड़ कर मोह के बंधनों मे ऐसा बांधती है कि वह बिचारा उसके प्रेम के जाल में वंधा हुआ; जन्मान्तरों में भी नहीं छूटता, और उस स्त्री के कुटुम्व और पुत्र पौत्रादिकों के मोह फांस में बंध जाता ह। जैसे पहले तो स्वयम् स्त्री अपने लावण्य भोगों में बांधती ह, फिर उसके तरुण अवस्था के चले जाने पर वह उन्म, जीव को अपने त्रिविध कुटम्ब के मोह में वांधती है। जिस से वह मूर्ख, वंधे हुए घाणी के बैल की तरह पर असीमा वद्ध होकर मोह माया के अन्धकार में

जन्मान्तरों के चक्कर लगाया करता है। भ्रांति के वश भ्रमित होकर ज्ञान के दिशा शूल हो जाता। कुटम्ब के तापों से संतापित हो और नाना भांति की तृष्णा की पियासा में मृग-जल-वंत मानसिक चौकडिये भरा करता है। नाना प्रकार के संकट और दुःख-दलदल में फंसा हुआ अपने कर्मों को दोष देता है———अथवा निर्दोष को दोषी बनाता है——अथवा अपने भाग्य को दोषी ठहराता है—अथवा परमात्मा, ईश्वर को दोष देता है। इस प्रकार अलिप्त, निर्दोष, निर्विकार जीवात्मा को यह, प्रकृति अपने गुणों और भूतों द्वारा बंधनों में लाती है। वह बंधा हुआ जीवात्मा अपने को भूतों और गुणों के अनुरूप ही समझ बैठता है और अपने निज स्वरूप को विसमर्ण हो जाता है: अपने को क्षुद्र कर, अल्पज्ञ मान बैठता है। अगले प्रकरण में यह बतायेंगे कि प्रकृति के गुण और भूत इसको किस भांति बांधते हैं।

प्रकरण दूसरा

॥ अपरा प्रकृति गुणों का बंधन ॥

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः।
निबंध्नत्ति महाबाहो देहे देहिनम् व्ययम् ॥५॥अ० १४गी०

हे अर्जुन! सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण, ये प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस जीवात्मा को शरीर से बांधते हैं—अर्थात् इस जीव को यह प्रकृति अपने गुणों और भूतों के संयोग को मिलाकर इस की ग्रन्थी बांधकर इसपर अपने

बंधनों का आवरण लगाकर, इसको अपनी नाना प्रकार की योनियों में प्रगट करती है। प्रकृति के बंधनों में बंधा हुआ, प्रकृति के ही गुणोंमें वर्तता हुआ, अपने स्वरूप को भूल जाता है। गुणानुरूप ही बनकर जरायुज आदि चारों खानियों में ऊँच नीच गुणों की प्रबलता के अनुसार प्रवृत होता रहता है। अब गुणों के गुणानु-बंधनों को बतलाते हैं:—

सत्व गुण में गुण प्रकाश करने वाला है, वह सुख की आशक्ति में और ज्ञान के अभिमान मे बांधता है? रजोगुण में गुण रागरूप है, वह कामनाओं की आशक्ति से जीव को कर्मों की तरफ और उनके फलों को आशक्ति में बांधता है। तमो गुण में गुण मोहने वाला है. वह अज्ञान की आशक्ति से प्रमाद तथा आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है—— अर्थात् सत्व गुण सुखकी ओर आकर्षण करता है, रजोगुण कर्मों की तरफ और तमो गुण इन सब ज्ञान को आच्छादित करके प्रमाद की तरफ इस प्रकार से ये तीनो गुण अपनी २ प्रबलता की ओर प्रवृत कर, अपने प्रभाव से बरतते हैं।

इस तरह वह निर्लिप्त होते हुए भी अपने आप को लेपायमान और वन्धनों में जान लेता है। जैसे—पानी निर्मल, निर्विकार और निस्वादि होते हुये भी जैसे २ रंगों मे मिलाया जावे, वैसे २ ही रंगो के रूपों को और जैसे २ रस डाला जावे वैसे २ ही रसको अर्थात् जायके को धारण करलेता है। इस प्रकार यह जीवात्मा गुणों मे मिलने से, उनके गुणों के अनुसार प्रवृत होता रहता है। अब इनकी प्रबलताओ को बताते हैं:—

सत्व गुण, रजो गुण और तमोगुण को दवा कर प्रबल होता है। तमोगुण, रजोगुण और सत्व गुण को दवाकर प्रबल होता है। रजोगुण, तमोगुण और सत्व गुण को दवा-कर प्रबल होता है। इन गुणों की प्रबलता और हीनता के अनुसार ही जीवात्मा के अन्तः करण में प्रवृतियां उत्पन्न होती रहती हैं। जैसे—सत्वगुण की प्रबलता में चेतना और ज्ञान शक्ति बढ़ती है। रजोगुण की पत्रलता में भोगों और कर्मों की वृद्धि होती है तमोगुण की प्रबलता में प्रमाद और निद्रा वढती है।

इसलिये यह व्यष्टि पुरुष इन गुणों के गुण द्वारा वर्तता हुआ, इनके अनुसार ऊँच-नीच आदि लोकों में वह योनियों में भ्रमण करता है; क्यों कि वह स्थूल शरीर के भोगकी उत्पत्ति के कारण रूप, तीनों गुणों में बंधा हुआ जन्म, जरा, मृत्यु रूप दुःखों को और व्यसन आदि भोगों को प्राप्त होता है।

प्रकरण तीसरा

(अपरा प्रकृति भूतों का बंधन)

अब यह बतलाते हैं कि पंच भूतों के द्वारा वही पुरुष को किस प्रकार बांधते हैं ?

यह पंच भूत जब पुरुष के संयुक्त होते हैं तव इन भूतों के सूक्ष्म पंच तत्व बन जाते हैं और वह पंच तत्व अपनी २ विभक्तियों के स्वरूप द्वारा तन्मात्राओं और विषय और धर्मों द्वारा एक २ तत्व अपनी २ पांच विभक्तियों के स्वरूपों के द्वारा बंधते हैं।

इन के पांच पांच विभक्तियों के रूप इस प्रकार हैं:—

(आकाश के स्वरूप)

' अन्तःकरण, व्यान श्रवण, वाक और शब्द हैं। '

(वायु के स्वरूप)

' मन समान, त्वचा, पाणी (हाथ) और स्पर्श हैं। '

(अग्नी के रूप)

' बुद्धि, उदान, नयन, (नेत्र) चरण (पग), और रूप। '

(जल केरूप)

' चित्त, अपान, जिह्वा, शिश्म (लिंग और रस। '

(पृथ्वी के रूप)

' आकार, प्राण, घ्राण (नासिका), गुदा और गंध हैं।

यह ऊपर पंच तत्वों के पांच २ स्वरूपों की विभक्तियां बतलाई गई हैं। यह ध्यान लगाने पर समझ में आजावेगी क्योंकि यह गूढ़ भेद हैं।

जि० यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि यह सूक्ष्म और अचर अलिप्त आकाश किस प्रकार से हमारे इस स्थूल शरीर में वर्ता जा सकता है ?

उ० यह अपने २ गुणों और स्वभाव के द्वारा व्यवहार से स्थूल शरीर में अपने पांच-पांच प्रकार के गुणों

उपयोग से वर्त्ता जाता है। अब इनके वर्तावों की पांच विभक्तियों को बतलाते हैः—

(आकाश–भूत के गुणों की विभक्तियां)

'काम, क्रोध, शोक, मोह और भयः यह पांच प्रकार से आकाश का बर्ताव है।'

(वायु–भूत के गुणों की विभक्तियां)

'चलन, वलन, प्रसरण, निरोधन और आकुचन; यह पांच प्रकार से वायु का बर्ताव है।'

(अग्नी–भूत के गुणों की विभक्तियां)

'क्षुधा, तृषा, आलस्य' निद्रा और मथुन, यह पांच प्रकार से अग्नि का वर्ताव है।'

(जल–भूत के गुणों की विभक्तियां)

'वीर्य, रक्त, लाल, मूत्र और स्वेद (पसीना), यह पांच प्रकार से जल का वर्ताव है।'

(पृथ्वी–भूत के गुणों की विभक्तियां)

'अस्थी, मांस, त्वचा, नाड़ी और रोंम, यह पांच प्रकार से पृथ्वी का बर्ताव है।'

इस प्रकार से यह भूत कार्य व्यवहार से अपने गुण धर्म द्वारा शरीर में बर्ते जाते हैं।

इस तरह यह अपरा प्रकृति के तीन गुण और पांच भूतों के गुण रूपादिक जो इस जीवात्मा को व्यष्टि स्वरूप में बांधते हैं जिनको निरूपण करके आपको संक्षेप में बतला दिया गया है

जि—आपने इन भूतों की विभक्तियां जो बर्ताव में आती हैं उन का वर्णन किया परन्तु आकाश के जो काम क्रोधादि बर्ताव कैसे हो सक्ता है क्योंकि आकाश तो शून्य कार है और काम क्रोध आदि चंचल प्रवृत मान विकार है इसी प्रकार अग्नि का भी निन्द्र आदि गुण बताया सो अग्नि तो खुद जाग्रति मान प्रकाश मान है जैसे सोते हुवे मनुष्य के हाथ में यदि अग्नि रखदी जावे तो वह फौरन जाग्रत हो जाता है तो फिर यह कैसे सम्भव है कि दाहक अग्नि से निद्रा प्रकट हो यह उलटी वातें समझाइयेगा ।

उत्तर-हम ऊपर प्रत्येक भूत के पांच पांच विभक्तियां बतलाई हैं वह एक एक भूत के अन्तर गत चार २ अन्य भूतों की मिलावट से प्रकट होती हैं परन्तु वह उस मुख्य भूत के अन्तर गत ही बरती जायगी। इसी कारण प्रत्येक भूत में एक निज की और चार अन्य भूतों के समावेश की है इसीलिये यह पांच पांच प्रकार के हैं द्रष्टान्त ? जैसे कोई पांच मित्र गण आपस में फलों की गोठ करें और प्रत्येक मित्र अपनी २ रुचि के माफिक एक २ प्रकार के फल आम केला इत्यादि लावें और उनके दो दो भाग करके आधा २ भाग तो निज के वास्ते रखलेवें और बाकी आधे भाग के चार २ भाग करके परस्पर

चारों मित्रों को विभाग कर देवे तब प्रत्येक मित्र के पास पांच २ फलोंके परस्पर मिश्रण हो जाते हैं जिसमें प्रत्येक मित्र के पास आधा निजका भाग और आधे भाग में चारों मित्रों के फलों का भाग हो जाता है और उसके मिश्रल गुण प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार एक भूत के तो गुण प्रकट रुप से और अन्य भूतों के गोण रूप होते हैं। अब इस की व्याख्या कर के समझाते हैं।

आकाश के भागों का याख्या।

(१) शोक, ये आकाश का मुख्य भाग है, देखो जब शरीर में शोक उत्पन्न होता है जब शरीर शून्य कार हो जाता है इसी प्रकार आकाश भी शून्य कार है इससे यह साबित होता है कि शोक आकाश का मुख्य भाग है।

(२) काम, ये आकाश के अन्दर वायु के भाग की विशेषण विभक्ति है क्यों कि काम की कामना रूप वृति चंचल है और वायु भी चंचल है इसलिये यह वायुका गोण भाग है।

(३) क्रोध ये आकाश में अग्नि का मिश्रण भाग विभक्त विशेषण है जैसे क्रोध के शरीर में आने से तमाम शरीर तपार्य मान होजाता है और अग्नि भी तपाय मान है।

(४) (मोह) यह आकाश में जलका विशेषण है जैसे पानी की प्यास के रोकने से मोह बढता है और पुत्र

पौत्रादिकों में भी मोह प्रसरता है और पानी की बूंद भी प्रसरती है इस लिये मोह जलका गोण भाग है।

(५) (भयः) यह आकाश के अन्दर पृथ्वी का विशेषण है क्योंकि भयकी दशा में शरीर स्थंभित और जड़ होकर अक्रिय होजाता है इसी प्रकार पृथ्वी जड़ता और स्थभित स्वभाव वाली है इससे वह पृथ्वी का विभाग हैं।

वायुकी व्याख्या।

(१) धावन वायु कामुख्य भाग है क्योंकि धावन भगने दौड़ने को कहते हैं और वायुभी दौड़ता है इसलिये यह वायु का मुख्य भाग है।

(२) प्रसरण, यह वायु के अन्दर आकाश का विशेषण है प्रसरण के माने फैलाव के हैं और आकाश भी फैला हुवा है क्योंकि आकाश के अन्दर ही हरेक वस्तु मिलती है। इसलिये प्रसरण वायु में आकाश का भाग है।

(३) बलन, यह वायु के अन्दर अग्नि का भाग है बलन नाम जलाने का है क्योंकि वायु को जोरसे चलने वाला याने संघरसण किया जाय तो वह जलन होजाती है इसलिये आगसे भी जलन होजाती है।

(४) चलन; वायु के अन्दर पानी का भाग है क्योंकि चलन नाम चलने का है और पानी भी चलता है इसलिये यह जल का भाग है।

(५) आकुचन यह वायु के अन्दर पृथ्वी का भाग है क्योंकि आकुचन नाम संकोच का है और पृथ्वी भी संकोच को पाई हुई है इससे पृथ्वी का भाग है।

(अग्नि के भागों की व्याख्या)

(१) निद्राये अग्नि के अन्दर आकाश का भाग है क्योंकि जब निंद्रा आवे जब शरीर शून्य हो जाता है और आकाश भी शून्यता वाला है। इससे आकाश का भाग है।

(२) तृषा यह अग्नि के अन्दर वायु का भाग है क्योंकि तृषा लगती हैं जब कंठ सूकता है और वायु भी शोषक है देखो गीले वस्त्रादि को वायु सूखा देता है इसीसे वायु का भाग है।

(३) क्षुधा–यह अग्नि में अग्नि का मुख्य भाग है क्योंकि भूख लगे जब जो खावे सो सबही भस्म हो जाता है और अग्नि में भी जो डालो सो सब भस्म इसकी ज्यादा क्या व्याख्या करें यह अग्नि का मुख्य भाग है।

(४) कान्ती–अग्नि के अन्दर जो जलका भाग मिला हुवा है वोही हैं क्योंकि कांति धूप से घट जाती है और जल भी धूप से घट जाता है इसलिये कांति अग्नि के अन्दर पानी का भाग है।

(५) आलस्य, यह अग्नि के अन्दर पृथ्वी का भाग है क्योंकि आलस्य आवे जब शरीर जकड़ कर कठोर होजाता है

और पृथ्वी भी कठोर है इसलिये यह पृथ्वी का भाग है।

अब पानी के भागों की व्याख्या करेंगे।

(१) शुक्र में जलका मुख्य भाग है क्यों कि शुक्र गर्भ का हेतु और शुक्ल वर्ण है और पानी भी बीजका हेतु और शुक्ल वर्णी है इसीसे यह जलका मुख्य भाग है।

(२) शोणितः पानी में पृथ्वी का भाग है क्यों कि खून में गध गुण है और पृथ्वी में भी गध है। इसलिये यह पृथ्वी गुण भूयष्टि है।

(३) स्वेदः पानी के अन्दर वायुका भाग है क्यों यह साफ जाहिर है कि पसीना श्रम करने से होवे और वायु भी पंखा आदि से श्रम करने से होवे इससे यह वायुका भाग है।

(४) मूत्रः पानी के अन्दर अग्नि का भाग है क्यों कि मूत्र भी तैज और द्रावक गुणवाला है और अग्नि भी तेज और द्रावकर गलाने वाली है।

(५) लाल–यह पानी में आकाश के भाग है क्योंकि लाल भी पारदृशक है और आकाश भी पारदृशक है इसलिये पानी में यह आकाश के भाग है।

अब पृथ्वी के भागों की व्याख्या।

(१) अस्थिः यह पृथ्वी का मुख्य भाग है क्योंकि हड्डी खर तत्व वाला है और पृथ्वी भी तत्व खर वाली है इसलिये यह मुख्य भाग है।

(२) मासः-यह पानी का भाग है क्योंकि पानी में पिछली तत्व विशेष है और मासभी पिछलित गुण वाला है इसीसे जलका भाग है।

(३) नाड़ी-यह अग्नि का भाग है क्योंकि नाड़ी से ही तापकी परीक्षादि होती है और अग्नि भी ताप रूप है किरणे वाली है क्योंकि अग्नि के किरणे हैं वोही नाड़ीयां हैं।

(४) त्वचा-यह पृथ्वी के अन्दर वायुका भाग है। क्योंकि त्वचा चमड़ी से स्पर्श शीत उष्ण आदि मालूम होते हैं इससे चमड़ी स्पर्श गुण वाली है और वायु भी स्पर्श गुणवाला है।

(५) रोंम यह आकाश का भाग है क्योंकि आकाश शून्य है तो रोंम भी शून्य है क्योंकि बालोंको काटने में दर्द पीड़ा मालूम नहीं होती इसीसे यह आकाश का भाग है.

यह पंचभूतों के अन्तरंग मिश्रण की विभक्तियों की व्याख्या करके आपको समझादी गई है अब समझ में बैठ गई होगी।

प्रकरण चौथा।

(परा प्रकृति का अधिष्ठान)

अन्तः करण का ज्ञान।

जो निर्विकल्प अवस्था में——अर्थात शून्याकार वृति होने पर जो स्फुर्ण उठता है, वह अन्तःकरण है—अर्थात जो चेतना शक्ति का प्रतिविम्ब जिसमें प्रथम प्रादुर्भाव होता है अर्थात् एक शुद्ध स्वर्ण के रज (कण) के अन्दर जिस प्रकार से हमारा प्रतिविम्ब पड़ता है, वह उस कणम्य स्वर्ण के रंग को लिये रहता है। यदि हम अन्त करण को दर्पण की उपमा दें तो कोई अत्युक्ति नही हो सकती। जिस प्रकार मुख देखने से दर्पण मे हमारे मुख (बिम्ब) का प्रतिबिम्ब दिखलाई देता है, उसी प्रकार से अन्तःकरण में पुरुष के बिम्ब का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। अतएव साधारण कांच में तो दोनों तरफ आर पार दीखता है, परन्तु जब कांच के एक तरफ मसाले की कलई करदी जावे तो फिर उस कांच के दर्पण में एक तरफ के ही पदार्थों का प्रतिबिम्ब पड़ेगा और दर्पण के पीछे दूसरी तरफ के पदार्थों का भास सामने देखने वाले-को नहीं पड़ेगा। यदि कांच की कलई उतार दी जावे तो कांच के पीछे की जो वस्तु है दिखलाई देने लगेगी इसी तरह अन्तःकरण के पीछे जो चिदानन्द आनन्द-घन, परम पुरुष स्वरूप चिदाभास के

दर्शन हो रहे हैं, वह अन्त करण की ओट में है। जब अन्तः करण के चिदाभास की तरफ माया' (प्रकृति) के आवरणों की कलई चढ़ ज ती है। तव वह द्रष्टा अन्तःकरण के अन्तरचिदाभास के बिम्ब के आभास को नहीं देख सकता। कलई के कारण अपने मुख के ही प्रतिबिम्ब को देख सकता है। नियम यह है कि बिम्ब को प्रतिबिम्ब का ज्ञान है, और प्रतिबिम्ब को बिम्ब का ज्ञान नहीं होता है। इसी तरह जीव को ईश्वर का ज्ञान नहीं है; परन्तु ईश्वर को जीव का ज्ञान है।

कांच और दर्पण की विशेषता——— कांच में कई प्रकार के गुणों के विशेषण होते हैं। जैसे——— छोटी वस्तु बड़ी दीखने वाली और बड़ी वस्तु छोटी दीखने वाली: समीप की वस्तु दूर दीखने वाली और दूर की वस्तु समीप दीखने वाली। अब दर्पण के गुणों को बताते हैं:—

कई दर्पण ऐसे मसाले से तैयार किये जाते हैं, जिसमें मुंह देखने वाले का मुंह गधे का; कुत्ते का अथवा बन्दर का सा दीखता है ऐसे कांच के दर्पण बनाने की विधितन्त्र शास्त्रों में बहुत है। यह गुण अन्त करण में भी वर्तमान है जैसे २ योनियों के शरीर होते हैं। वह जानवर अपनी २ जाति के शरीरो की आकृति को पहचानते हैं। ऐसे दर्पण भी सुनने में आये हैं कि चाहे जितने कपड़ों की पोशाक होते हुये भी साफ नंगे दिखाई देते हैं। यह गुण भी अन्त करण में है जैसे—हमारे शरीर चाहे कितने ही पोशाके क्यों न पहने हुये हो। परन्तु हम हमारे अन्तःकरण में तो नंगे हैं। किसी ने सच कहा है, अपने २ कपड़ों में सब नंगे हैं। जिस प्रकार चोरी अथवा हिंसक के हृदय में तो वह चोरी

ज्यों की त्यों नगी है। जैसे यह कहावत प्रसिद्ध है कि क्या चित्त से चोरी छिपी है ?

अब हम दर्पण में मुख देखने के सिद्धान्तों को बतलाते हैं।—

विद्वानों ने इसके देखने के भी अनेक प्रकार के सिद्धान्तों के नियम सिद्ध किये हैं। वह इस प्रकार हैं—प्रथम हम आज कल के साइन्स वादियों के सिद्धान्तों का वर्णन करते हैं। दर्पण में जो प्रतिबिम्ब दीखता है वह साइन्स के नियमानुसार उल्टा होकर दीखने लगता है। साइन्स वादियों का मत है कि जो नियम सूर्य अथवा दूसरी प्रकाश की किरणों के प्रतिबिम्ब पडने के विषय में है, वही नियम दृष्टि की किरणों के विषय में हैं। जब किरणें किसी स्वच्छ पदार्थ पर पड़े और उसमें से रुकावट होने के कारण, निकल कर आगे को पार न जा सकें तो वापिस लौट जाती हैं। जैसे कांच की पीठ पर कलई होने के कारण किरणें लौट आती हैं अर्थात—'अ' और 'ब' किरण 'ज० द' भूमि पर पड कर 'अ० ब० द' (कोण) को उत्पन्न करतीं हैं, परन्तु 'अ० ब' किरण लौटते समय 'अ० ब० द' कोण को बराबर काट कर 'ब० ह' की लाइन में लौट जाती है और 'ह' के स्थान पर जो पदार्थ विद्यमान है, उसको दिखाती है। वह देखा हुआ पदार्थ वास्तव में आंख की उस किरणने देखा है जो आंख से निकल कर गई थी और कलई की रुकावट के कारण लौट आई। इस प्रकार से मानते हैं।" परन्तु यदि देखा जाय तो दर्पण में कोई सूरत (शकल) उत्पन्न होती तो बहुत सी शक्लों के पैदा होने से दर्पण मेला हो जाता, अथवा कोई

चिन्ह पैदा हो जाता या बहुत से मनुष्य एक ही दर्पण को सामने रखकर भिन्न २ सुरतें कैसे देख सकते और यह भी संभव न था कि दर्पण के छोटे से टुकड़े में मनुष्य बड़े भारी आकाश को या बड़े २ पहाड़ों को या और बहुत से दृश्यों वो देख सकते। इस लिये ऊपर वाला विज्ञान सूरज वे साइन्स वादियों का है।

अव हम आपको फोटो ग्राफरों के साइन्स वादियों के सिद्धान्तों को बताते हैं। वह इस प्रकार से हैं मस्तिष्क हमारा केमरा है और वह हमारे धड़, पांव आदि स्टेन्ड पर रखा हुआ है, और अन्तः करण अन्दर की पलेट है। चित्त रूप माया का मसाला लगा हुआ है। आंख लेस हैं और मन उसकी सटर है। जो दृश्य सटर के खुलने और लेस के प्रति विम्ब को चित्त की पलेट पर पड़ते ही, बुद्धि उसको डिवेलिप कर अहंकार को धारणा करा कर, उस दृश्य को दृष्टा को बता देते हैं। यह तरीका तो फोटो ग्राफरों का है। अब और भी तरीके बतलाने पर ग्रन्थ के बढ जाने की संभावना है। इसलिये इतना ही पर्याप्त है। अब हम वेदान्त के सिद्धान्त वतलाते हैं, सुनिये।

मन दृष्टि के द्वारा वाहर निकल कर जिस पदार्थ के साथ टकराता है, उसी पदार्थ की सूरत (शक्ल) में बदल जाता है और उस मन के आकार को बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि में प्रवेश होकर वह ज्ञाता जान जाता है। यह आकार विज्ञान मय कोष में से निकल कर जब आनन्द मय कोष में पहुंचता है। जब वहां यह -आकार वान दृश्य संचय मान होकर विद्यमान रहता है। नकि सर्वथा नष्ट प्राप्त होजाता है। जब

तक वह आकार मनो मय कोप और विज्ञान मय कोप (बुद्धि) में वर्तमान रहता है, तभी तक वह दृश्य वर्तमान स्मरण रहता है, और जब वह इन दोनों कोषों से निकल कर आनन्द-मय कोप में जाते ही मन और बुद्धि से ओझल हो जाता है। और जब वे आनन्द मय कोष में जाकर अन्तः करण से अड़ता है। बस वहां ही से चित्त लहराने लग जाता है और उस लहर को वृति कहते हैं और वह वृति जब आनन्द मय कोष में लीन हो जाती है तब उसको संस्कार कहते हैं।

वास्तव में तो नियम यह है कि जब एक बार चेष्टा (स्पन्दन) उत्पन्न होता फिर वह अपने आप वन्द नहीं होती है. किन्तु जीवन अवस्था तक वर्तमान (जारी) रहती है। परन्तु सामने कोई विरुद्ध प्रकृति विद्यमान होती है तो उससे वह टकरा जाती है और यदि वह विरुद्ध पदार्थ के पार नहीं जा सकती है तब वह फिर लौट आती है। यहां से ही लहर युक्त वृति आनन्द मय कोष में पहुंचकर न मालूम सी होकर संस्कार रूप में विद्यमान रहती है। प्रायः समूल नष्ट नहीं होती है। क्योंकि जब हम मनको सकल्प विकल्पों से जबरन रोका जाता है और हम समाधी लगाने की इच्छा से एकान्त शून्य स्थान में वैठते हैं और सब इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोकने लगते हैं, तो विना किसी इच्छाओं के संकल्प न होते हुए, बल्कि रोकने की इच्छा होते हुए भी वह संस्कार रूप वृतियां मन में आकर उप-स्थित होजाती है, जो चिर काल पूर्व या दीर्घ काल पूर्व से चित्त में विलीन सोई हुई सी थी, परन्तु समाधी के समय

यह बलात्कार से आकर्षमण कर आती हुई मालूम पड़ती है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जो दृश्य मान वृतियां संस्कार रूप होकर आनन्द मय कोष में गई थी, वही चित्त से टकरा कर पुनः लौट आई। यह नियम केवल एक आंख का ही नहीं, बल्कि तमाम इन्द्रियों के विषय में हैं। दर्पण में हम यह भी आश्चर्य देखते हैं कि दर्पण को हिलाने से असली पदार्थ, जो दर्पण में प्रति विम्बत हो रहा है, वह हिलता हुआ दिखलाई देता है। दर्पण की चेष्टा से असली पदार्थ की चेष्टा होती मालूम होती है और उल्टा सुलटा दिखाई देता है, जो सर्व शक्ति मान होते हुये भी अन्तः करण की उपाधि से अल्प शक्ति मान होजाता है। जो अखंड होने के कारण स्वयं स्थिर है। वह अन्तः करण की स्पन्दनता से चेष्टा करता हुआ मालूम पड़ता है। वह सत्य चित्त में संचित्त होकर आनन्दित अवस्था को प्राप्त होता है, इसलिये तो उसका सच्चिदानन्द स्वरूप का नाम पड़ा है। जो अन्तः करण मे विम्बित होता है, उस बिम्बित उपाधि का नाम जीव संज्ञा है। और कहा भी है।

मुखा भासको दर्पणे दृशमाने। मुखत्वा त्पृथक त्वेन नैवा॥
स्तिवस्तु चिदा भासको धीषु। जीवोऽपित द्वत् स नित्यो॥
पलब्धि स्वरूपोऽयमात्मा॥

अर्थात्—जैसे मुख का प्रति बिम्ब जो दर्पण में दिखाई देता है वह मुख रूप ही है, उससे भिन्न नहीं, ठीक वैसा ही है। चेतना का प्रतिबिम्ब जो शुद्ध स्वच्छ अन्तः करण के

प्रदेश में पड़ता है, वह अपने शुद्ध चेतन बिम्ब से भिन्न नहीं स्वद्रूप ही है, यही प्रतिबिम्ब जीव है। बुद्धि से उपाधि कृत अनन्त अन्तःकरण (दर्पण) अनन्ता अनन्त है। इस लिये एक बिम्ब अनेकों अन्तःकरण में अनेकों जीव प्रतिबिम्ब हैं।

पाँचवा प्रकरण।

(पराकारूप इच्छाशक्तियाँ)

(चित्त)

पहले कारण का अधिष्ठान चित्त सम्पूर्ण वृतियों का मूल कन्द है। और सम्पूर्ण मात्राओं का यह ही चित्त स्थान है, इससे सम्पूर्ण विषयों की मात्रायें बिम्बाकार के स्वरूपों में प्रवृत होती है, और उनके आकारों को सिद्ध कर चित्ताकाश में आलेख्य करती है। चित्ताकाश में स्थित हुये जीवात्मा को भूताकाश की मात्राओं के विषयों का बोध कराती है:— जैसे यह जो कुछ दृश्य भूताकाश की सृष्टि के हैं, वह सब बाहर के हैं। जीव अन्त करण के अन्दर चित्ताकाश में बैठा हुआ किस प्रकार भौतिक सृष्टि के पदार्थों को जान सकता है? इसका कारण यह है कि अन्तः करण के चित्ताकाश में जो भूताकाश के पदार्थों का प्रतिम्बिब पड़ता हैं, वह अन्त करण के हृदय के चित्ताकाश में बैठा हुआ व्यष्टि पुरुष

(द्रष्टा) जान लेता है इस प्रकार द्रष्टा और दृश्य में कोई बीच नहीं रहता क्यों कि दृश्य उसके समीप उपस्थित हो गया, इसलिये द्रष्टा अपने दृश्य को देख लेता है।

जब भूताकाश का दृश्य चित्त पर प्रतिबिम्बित होता है, तब वह चित्त, उस आकार के सदृश्य आकारों का दृश्य प्रकट कर देता है—इसी आकार को वृति कहते हैं। व्यष्टि पुरुष इसी वृति को साक्षात अनुभव करता है और उस अनुभव का ही नाम बोध, ज्ञान इत्यादि है—

यह वृतियाँ व्यष्टि पुरुष के सामने चित्ताकाश में साक्षात्कार उत्पन्न होती हैं, इस लिये इसको वृतियों का साक्षी कहते हैं क्यों कि साक्षी वही है कि जिसके सामने (रूबरू) (चश्मदीद याने दीदे दानिस्ता) प्रत्यक्ष घटना हुई हो। अब चित्त के सात गुणों के व्यवहारों को कहेंगे।

सम्पूर्ण व्यष्टि जीवों का त्रिगुणात्मक सम्बन्ध है, और इन ही तीन गुणों का प्रत्येक पदार्थ परिणाम विशेष है, तो फिर चित्त भी इन्हीं गुणों का परिणाम विशेष ही है; इसी लिये चित्त में गुणों के परिणामों का वर्णन करके बताते हैं, सो सावधान होकर सुनोः—

चित्त में जो प्रकाश का भास है, वही सत्व गुण का परिणाम विशिष्ट है, इसीलिये चित्त सत्व गुण स्वभाव है।

चित्त में जो प्रवृतियां उत्पन्न होती हैं, यही रजोगुण का परिणाम विशिष्ट है; इसीलिये चित्त में वृतियों के उत्पन्न करने का स्वभाव है।

चित्त में वृतियां निरुद्ध होकर लीन हो जाती हैं, इसी से तमोगुण का परिणाम विशिष्ट है, अतएव चित्त में तीनों गुणों का केन्द्रिय परिणाम विशिष्ट है।

चित्त में जब २ जिस २ गुण का परिणाम विशेषता की प्रधानता होती है तब २ उसी २ गुण का स्वभाव प्रकट होजाता है, चित्त की बनावट में सत्व गुण प्रधान है और आकाश तत्व है, इसीलिये प्रकाश उस अवस्था में भी साथ रहता है। जबकि चित्त में रज और तम की प्रधानता विद्यमान हो, इसीलिये इसको चित्त सत्व कहते हैं।

१—अब गुणों के साथ चित्त की अवस्थाओं का

निरूपण करेंगेः—

प्रथम अवस्था का नाम क्षिप्तावस्था है। जब चित्त सत्व के साथ में रज और तम का व्यापार करता है, तब चित्त में ऐश्वर्य और विषयों से प्यार करता है। क्योंकि सत्व की प्रधानता से, चित्त पदार्थ के कारण तत्व को ढूंढना (खोजना) चाहता है, परन्तु तमोगुण उस तत्व को ढके रहता है और रजोगुण उसको पदार्थ के स्वरूप पर टिकने नहीं देता, जैसे हिलते हुए पानी में चन्द्रमा का प्रकाश हिलता मालूम होता है——इसी प्रकार द्रष्टा को तत्व के स्वरूप की असलियत का ज्ञान स्पष्ट नहीं होता। जिससे उसको पदार्थ के साथ केवल स्नेह मात्र रह जाता है, यही क्षिप्तावस्था चित्त की है और यही अवस्था साधारण संसारियों की है।

(२) द्वितीय मूढ़ावस्था है।—जब चित्त में से रज को जीत कर तम प्रवल फैल जाता है। तब अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की तरफ झुकता है, यही मूढ़ावस्था चित्त की है। यह अवस्था तमोमय ज्ञान की है; इसीलिये नीच स्वभाव के जीवों की है इसीसे जीव नीच योनियों में प्राप्त होती है।

(३) तृतीय चित्त की विक्षिप्तः—अवस्था है। यह अवस्था; जब तम का परिणाम चित्त से विल्कुल क्षीण हो जाता है और रज की मात्रा ही शेष रहती है। ऐसी अवस्था में चित्त स्वच्छ, निर्मल और विमल दर्पण की तरह पूरा चमकने लग जाता है और धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की तरफ झुक जाता है। इस अवस्था में चित्तमें रज की अल्प-मात्राओं का सम्बन्ध वना रहने से चित्त कभी २ स्थिर हो जाता है; परन्तु अधिकतर तो चञ्चल ही वना रहता है—यह चंचलता इसकी स्वभाविक होती है अथवा व्याधि आदि अन्तरायों के कारणों से भी होती है———यही विक्षिप्त अवस्था है। यह अवस्था जिज्ञासुओं की है और स्थिरता जो कुछ मात्रा में होती है, वह अप्रधान सी है।

(४ चतुर्थ अवस्था एकाग्र है। यह अवस्था चित्त में उस समय होती है, जब रज की लेशमात्र भी शेष नहीं रहती। जैसे वायु दीपक को चञ्चल रखता है, इसी प्रकार रजो गुण चित्त को चञ्चल रखता है। विना वायु की जगह में दीपक निश्चल हो जाता है उसी प्रकार रज शून्य चित्त भी निश्चल हो जाता है। तब स्थूल से क्रमशः सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और

सूक्ष्मतम में प्रवेश करता हुआ निज स्वरूप को प्राप्त कर लेता है और स्वरूपों के भेदों को दर्शाता है। यह अवस्था पदार्थों के सत्य २ स्वरूपों को प्रतीत कराती है। क्लेशों को दूर हटाती है, गुणों के बन्धनों को ढ़ीला करती है और चित्त बोध का भास कराती है।

(५) चित्त की पांचवीं अवस्था को विवेक ख्याति कहते हैं; जिसके द्वारा सत्यासत्य का निर्णय होता है और प्रत्येक पदार्थों के कारणों को जाना जाता है। द्रष्टा दर्शन और दृश्य का विवेचन कर लेता है और परम वैराग्य को प्राप्त हो जाता है। भेद, ज्ञान की ग्रन्थी खुल जाती है जिससे प्रत्येक तत्व का भेद जाना जाता है और श्रद्धा, उत्साह आदि को जान जाता है। यही विवेक ख्याति है।

(६) षष्ठ चित्त की निरुद्धावस्था है। चित्त जिस प्रकार वाह्यस्थ विषयों की वृतियों को अपने चित्ताकाश में रख कर द्रष्टा को दिखा देता है तथा वृतियों को निरूध कर और उन की मात्राओं के विषयों को विलीन कर चिदाभास के बिम्ब स्वरूप को दिखाकर द्रष्टा को अनुभव करा देता है अब यह अनुभव करगया कि यह चित्त की अवस्थायें सदा नहीं रहतीं, " पर मैं सदा रहूंगा " यह गुणों की अवस्था है, मैं निश्चय निर्गुण हूं

अब चित्त के अन्दर न तो कोई गुण रहा, न गुणों का परिणाम रहा और न वृति और विषय ही रहे। यही निरुद्धा वस्था का असम्प्रज्ञान नाम का समष्टि के साथ व्यष्टि का मेल (योग) है। यह आपके जिज्ञासुओं को यह संक्षेप में बतला दिया है अगर विशेष जानना हो तो पातंजली सूत्रों को देखो

—: छठा प्रकरण :—

मन

मन के विषय में नाना भांति के शास्त्रकारों ने नाना सिद्धान्त बना रखे हैं। सांख्य-वादी इसको एक इन्द्री मानते हैं और २ वेदान्ती इसको इन्द्रियों का अधिपति मानते हैं। और कई सिद्धान्त मानने वाले इसको मनुष्य मानते हैं। कई इसको वायु तत्व का अर्क मानते हैं, उपनिषदों में इसको प्राणका पुत्र मानते हैं, गीतामे इसको प्राणक पुत्र जीव माना हैं। कईइसको रजोगुण से उत्पन्नहुआ बताते हैं इस प्रकार इसको नाना प्रकार के सिद्धान्तियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है। परन्तु मन है, है जरूर. इसमें कोई सन्देह नहीं, अब हम भी यथामति इसका वर्णन करेंगे।

जो इन्द्रियों और बुद्धि के उभय सन्धि में माया के रजो गुण के स्कन्ध अग्रभाग में चमकता है वह मन है। इसके मनों (काश) कोष मय हैं, इस मनोकोष के एक तरफ तो चित्ताकाश (आनन्द मय) कोष के प्रति बिम्ब का आभास पड़ता है और दूसरी ओर में भूताकाश का चित्र सूक्ष्म रूप में खीचता है। परन्तु मन का सम्बन्ध इन्द्रियों और विषयों के साथ ऐसा है जैसे गृहस्थी को अपने परिवार के साथ होता है। इसलिये मन को भूताकाश के चित्रों के विषयों को देखे बिना चैन नहीं पड़ती और वह अपनी अवस्था में ठहर नहीं सकता। मनमोह माया के संग में मोहा अन्ध होकर ऐसा आदी हो जाता है कि वह जागृत अवस्था में प्रत्यक्ष देखे हुये भूताकाश के चित्रों के विषयों का (चाहे प्रत्यक्ष दर्शन न होने पर) वह

मन अपने मनोभूता काश के अन्तराकांश में उनकी सहदृय सूक्ष्म आकृतियां बना कर, अपने संकल्पों की कल्पना के द्वारा बाह्यस्य सृष्टि की रचना रच लेता है और उसका स्मरण करता रहता है। यह मन विषयों में सदैव निमग्न रहने से विषयों का भाव उसको सत्य प्रतीत होने लग जाता है. परन्तु चिदाकाश का जो बिम्ब मन में पड़ता रहता है उस पर भूताकाश का चित्र बना कर यह मन द्वन्द्वों को उत्पन्न करता है और अविद्या की द्विविधा रूप मूर्ति को रचता है। अर्थात् मन के पर्दे के एक तरफ दो मूर्तियों के बनने से दोनों के आकार शुद्ध दिखाई नहीं देते। मन साक्षात कल्पना की कल्पित मूर्ति है जो क्षणमात्र में अष्ट प्रकार की सृष्टि* को रच डालता है।

जो बुद्धि के अन्दर और अहंकार के ऊपर जबरदस्ती अपना महत्व जमाये हुये बैठा है. वह मूर्ति मति कल्पना है और जिसके द्वारा ईश्वर को अपना अंश (जीव) संज्ञा स्वीकार करता है, जो इन्द्रियों के विषयों में लगता है, जो एक क्षणमात्र में मनोरथों का ढेर लगा कर बढ़ा देता है और तत्काल ही उनको बिखेर कर तोड़ देता है, जो भ्रम का भूत है जो अपने आगे बुद्धि का कुछ असर नहीं चलने देता है, ऐसा यह मन है।

---

* (१) कल्पना सृष्टि (२) शाब्दिक सृष्टि (३) प्रत्यक्ष सृष्टि (४) चित्रालेख्य सृष्टि (५) स्वप्न सृष्टि (६) गन्धर्व सृष्टि (७) ज्वर सृष्टि (८) दृष्टि बंध सृष्टि।

इसी के संकल्प की शृंखलाओं के द्वारा कल्पनाओं की कामना सिद्ध होती है। जिस पदार्थ की कल्पना के ऊपर मन को फेंकने से, यह मन उस पदार्थ की तसवीर खड़ी करता है और यदि लगातार से उस तसवीर पर लक्षवैध करते रहने से, वह तसवीर साक्षात् (प्रत्यक्ष) में मूर्तिमान सी हो जायगी और यदि उस पर संयम का अधिकार जमा दिया जावे तो वह मूर्तिमान कल्पना उसी के हुक्म के अनुसार कार्य करेगी, मन की फैलावट और वेग का अनुसंधान लगाया है, जो बिजली या अन्य हवाई या प्रवाई आदि पदार्थों का वेग मन की विचार शक्ति के वेग के मुकाबले में बहुत कम है। प्रोफेसर पेलीशाग्रे (Prof Elisshagrey) अपने ग्रन्थ Miraclesof Matnie में इस की गणना ४००००००००००००००० चालीस नील मील प्रति सैकिण्ड मानी है। यह स्वीकार करते हैं कि मनके प्रकाश वेग को और उसके सूक्ष्म शब्द ध्वनीको सिवाय-तत्व ज्ञाता के अन्य कोई भी शख्स जान नहीं सकता। इसके वेग के स्पन्दन को कोई भी पदार्थ नहीं रोक सकता, परन्तु सूर्य की किरणें इसके शृंखला बद्ध स्पन्दन (Vibration) बखेर देती है। जिससे दिन के प्रकाश में मन के स्पन्दन के वेग का प्रवाह कम प्रमाण में हो जाता है। यह मन सूक्ष्म भूतों के सूक्ष्म परमाणुंओं को अपनी कल्पना की इच्छानुसार पकड़कर उनका रंजन कर अपने संकल्प के अनुरूप बना कर, उन परमाणुं को मूर्तिमान कर देता है। यह मन का अद्भुत चमत्कार है। यह भेद मन के तत्व का आपको अति गूढ और गुप्त तत्वं समझा दिया गया है और विशेष जानने के लिये यदि अवकाश मिला तो मन-के ऊपर स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना करेंगे।

अब आपको मन के अन्दर जो त्रिगुणों का परिणाम विशिष्ट है उसको बतायेंगेः—

मनके संयोग से जीवके जीवन गुण ।

व्यष्टि पुरुष के सुखः-(स्वभाव के अनुकूल), दुःख (स्वभाव के प्रतिकूल), इच्छा (अभिलाषा), द्वेष (अप्रीति), प्रयत्न (कार्यारम्भ में उत्साह), प्राण अपान स्वासों का स्वास वक्त संचारो (उन्मेषानेत्र पलकों का खोलना मीचना निमेंप) बुद्धि का संचार संकल्प विकल्प, चितवन, विसर्जन, क्रियाओं का व्यापार, विषयों की उपलब्धि, तर्क, यह गुण मन के संयोग से जीव में जीवन गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

गुणों के संयोग से मन के गुण ।

प्रथम सत्व युक्त मन के गुणः—अकर्म में अप्रवृतिअर्थात् दुष्ट कर्मों की अनिच्छा; सविभाग रुचिता अर्थात् सबको समान भाग देकर फिर भोगने की इच्छा; क्षमा (सहन-शीलता); सत्य भाषण; मन, कर्म, और बचन से सुचरित्रता (सब से विनय पूर्वक रहना); आस्तिक्य (देवता और ईश्वर आदि को सत्य मानना); आत्म ज्ञान और जिज्ञासा, बुद्धि (तत्काल विषयों को ग्रहण करने वाली शक्ति); मेधा (ग्रंथाव धारण शक्ति); स्मृति (जाने हुये विषयों को याद रखना); [1]धृति (जो जातिय कर रूप वैर को मिटा कर उनको अपनी सत्ता में रखने को ही धृति कहते हैं; आदि यह सत्व युक्त मन के गुण हैं ।

---

[1] टिप्पणी-पंच भूतों का जाति स्वभाव से परस्पर वैर देखने में आता है याने पानी पृथ्वी को हड़प करता है, अग्नि पानी को शोषण

रजोगुण युक्त मन के गुण.—राग, अत्यन्त दुःख भ्रमण, में इच्छा. मन की अधीरता, क्रोध. मिथ्या भाषण में रुचि, निर्दयता, दम्भ, मान, हर्ष, काम, इत्यादि हैं।

तमोगुण युक्त मन के गुणः—मूढता अविवेक नास्तिकता (खुद खुदाई याने अपने ही को मानना) अविश्वास अधर्म्माचरण बुद्धि का निरोध; अज्ञान, दुर्मेधा (दुष्टकर्म में प्रवृति) अत्यन्त अल्पज्ञ इत्यादि। अब मन के विषयों को कहेंगे।

चिंता के योग, विचार के योग, तर्क के योग, संकल्प के योग वाले इत्यादि मन के विषय हैं।

मन के लक्षण

लक्षणं मन सो ज्ञानस्या भावो भाव (Feeling and willing).

अर्थ—ज्ञान का होना या न होना अथवा एक समय में दो ज्ञान का न होना।

---

*करती है, वायु अग्नि को भी शोषण कर लेती है और आकाश वायु को सहज ही भक्षण कर जाता है। इस प्रकार यह पंच महाभूत कदापि परस्पर मिलकर कार्य नहीं कर सकते। यह परस्पर में विरुद्ध गुणो के होते हुए भी इनको जो एकत्र कर इनके विवाद के विषयो को छुड़ा कर परस्पर [एक से दूसरे भूतको] मित्रता पूर्वक परस्पर पोषण करते रहते हैं इस प्रकार जो स्वभाविक बैरको [जो कदापि न होने वाली मित्रता को] दूरकर जिसके योग से स्वभाविक द्वेष दूर होजाता है ऐसी यं धृति धैर्यवान है। इसी के द्वारा सम्पूर्ण भूत जीवके वस होकर जीवकी हुकूमत [सत्ता] के अनुसार वरते जाते है; ये ही धृति है।

मन के दो गुण

लेना और देना

मन का योग।

आत्मा, इन्द्रिय, और इन्द्रियार्थ इनका संयोग होने पर भी विना मन के योग होने के इन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है इन्द्रियो के समूह जो अपने २ विषयों को ग्रहण करते हैं वह मन की ही सहायता से करते हैं। उससे परे मन गुण तथा दोष द्वारा हुए अपने कार्यों की कल्पना करता है। उस विषय में फिर निश्चयात्मक और संस्यात्मक भेद होजाते हैं। मन जो कुछ कहता है वह करना चाहता हैं, और वह बुद्धि की प्रेरणा से करता है।

॥ इति मन प्रकरण छठा ॥

सातवाँ प्रकरण।

(बुद्धि) ज्ञानशक्तियां।

बुद्धि की उत्पत्तिः-चैतन्य का प्रकाश जब चित्त में पड़ता है, तब चित्त में प्रकाश की प्रज्ञा नाम की उप ज्योति प्रतिविम्ब रूप बुद्धि प्रकट होती है वह आत्मा और जीव के उभय सन्धि में स्थित रहती है; जिसके पीछे की तरफ तो कारण त्रिपुटी है और आगे की ओर सूक्ष्म और स्थूल दो त्रिपुटियां हैं। जब बुद्धि का लक्ष्य कारण त्रिपुटी की तरफ होता है, तब जीव को दिव्य दृष्टि का दिव्य बोध होता है और चैतन्य के ज्ञान की रचना को विस्वाकार मय देखता है। जब सूक्ष्म

की तरफ लक्ष्य होता है तब जीव अनन्तर जगत का सूक्ष्म ज्ञान का अनुभव प्राप्त करता है और जब बुद्धि का लक्ष्य स्थूल त्रिपुटी की ओर होता तब जीव स्थूल सृष्टि की दृष्टि चर्म परिणाम प्रत्यक्ष द्रष्टा होता है। जिस प्रकार एक लालटेन के तीन कांच, तीन रंग के, तीन तरफ अलग २ हों और देखने वाला जिस तरफ के कांच के प्रकाश के रंग को देखेगा। वह उसी तरफ के रंग रूप का ज्ञाता होगा। दूसरी तरफ के कांच के रंग का भास पड़ रहा है पर वह उसको नहीं जानेगा ? इसी प्रकार से जिसकी बुद्धि जिस तरफ की त्रिपुटी में लक्ष्य बेध करेगी वह उस प्रदेश के ज्ञान का अनुभव सिद्ध करेगा और अन्य के ज्ञान का खण्डन करेगा। इस से यह सिद्ध नहीं होता है कि अन्य त्रिपुटियों का प्रकाश है ही नहीं बल्कि यह सिद्ध होता है कि द्रष्टा को अन्य प्रकाशों के भासों के देखने का साधन ही नहीं है।

बुद्धि की उपमाः—जो विज्ञान तत्व की महा मूला है; जो सत्व गुण की अन्तिम शिखा है; जिसके द्वारा विचार को विवेक करते हैं, जो अनुभव की अनुभूति है; जो सत्य की सत्यवन्ती स्त्री है जो काम वेग की परिशिलन है; जो मन सहित इन्द्रियों के विषयों के समुदाय को जीत लेती है; जो अहंकार रूप दुःसासन से वेर रखती है; जो मोह के तिमिर की प्रतिभाज्योति है जो सम्पूर्ण सिद्धियों की सिद्धि दात्री है; जो तीनों प्रकार की दृष्टि है, जो सत्य गुण की लीला है; जो परमार्थ मार्ग का विचार है; जो सारासार का विचार बता देती है; जो शब्द बल से भव सिन्धु को पार लगा देती है। वह स्वयम् सिद्धि रूप होकर अन्तः

करण के दिव्य रत्न सिंहासन पर विराज मान है। वही बुद्धि है और तीनों बाचाओं के द्वारा अन्तः करण के अन्तर भावों को चौथी वाचा द्वारा वाहय्य प्रगट कर देती है। इसी लिये कर्तृत्त्व करणी माता है—जो निर्गुण की पहचान है; जो अनुभव की निसानी है; जो घट २ में व्यापक है, जो वेद और शास्त्रों की महिमा है, जो निर-उपमा की उपमा है; जिस के योग से परमात्म परमात्मा कहा जाता है; जो विद्याकला, सिद्धि औग सूक्ष्म वस्तु का शुद्ध ज्ञान स्वरूप है; जो बड़ों २ को ज्ञान के अभिमान से फसाती है—जो कुछ दृष्टि से देखा ज़ाता है, शब्द से पहिचाना जाता है, और मन को जिसका भास होता है उतना सब इसी का स्वरूप है। इसी के द्वारा विलक्षणता उत्पन्न होती है जो आगमन आदि प्रमाणोंको सिद्ध करती है, जो प्रवृति और निवृति की सुबोधनी है, जो कारज और अकारज, भय और अभय, बन्धन और निरबन्धन की साधनी है, यही संग और कु संगत की सुलक्षणी और विलक्षणी है। कार्य के संपादित करने में जो इधर की उधर दौड़ती है जैसे मार्ग की भूली हुई मृगनी। यह बुद्धि मनकी कल्पना के वासना के साथ इस तरह भ्रमण करती है जैसे भ्रमर के साथ भ्रमरी। जहां २ मन जाकर अपनी कल्पना के संकल्प की वासना का प्रवाह फैलाता है ठीक वहीं २ बुद्धि भी अपनी कल्पना-शक्ति की प्रवृति को विखेरती है।—

जैसे मधु मक्खियों की भ्रमरी (रानी) जहां २ जाकर वैठती है तहां २ अन्य मक्खियाँ भी जाकर बैठ जाती हैं और उसके कार्य को सिद्ध करने में प्रवृत हो जाती हैं। इसी प्रकार से मन के मनोरथों को सिद्धि करने के लिये बुद्धि

अपनी प्रवृतियों को मन के मनोरथ अनुकूल वना कर, उनके सिद्ध करने में संलग्न, संयोगाकार वनकर मनोरथों को सिद्ध करती है इसी गूढ़ अभिप्राय को अनुभवी लोग ही जानेंगे। अन्य लोगों को केवल वाक्य गाथा ही जान पडेगी, यह गागर में सागर की उपमा सिद्ध करदी गई है।

यह भावकी प्रवोधिका है, मन के मथन की मथनी है, योगियों की सिद्धिदात्री है, जो वेद माता ब्रह्म सुता है। शब्द मूला है, शब्द स्फुर्ति को उठाती है, वैखरी के द्वारा अपार वचन वुलाती है। जो शब्द का अभ्यान्तर अर्थात् भीतर का भाव प्रत्यक्ष कर देती है। जो हठ योगियों की समाधि है। जो निश्चयीपुरुषों की कृत वुद्धि है, अथवा दृढता है, जो स्वयम् विद्या रूप होकर अविद्या की उपाधि को तोड़ डालती है।

महापुरुषों की अति सलग्न भार्या है जिसके तुर्या अवस्था के योग से ही योगी लोग महत्व कार्य में प्रवृत हुये हैं। जो अन्नत ब्रह्माण्ड रचती है, और लीला विनोद से ही विगाड़ डालती है; प्रत्यक्ष देखने से देख पड़ती है। ब्रह्मा आदि को जिसका पार नहीं मिलता जो सारे संसार नाटक की कला अर्थात् मूल सूत्र है, चित्त शक्ति की निर्मल स्फुर्ति है, जिसके कारण स्वानंद का सुख तथा ज्ञान शक्ति मिलती है, जो सुन्दर स्वरूप की प्रेम शोभा है, जो पार ब्रह्म-अव्यक्त की प्रभा है, शब्द रूप से वना वनाया दृश्य है, मोक्ष श्रीया अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी और मगला है। सतरहवों जीवन कला है, वह यही वुद्धि है। अव गुणों के अनुसार वुद्धि की प्रवृति के लक्षण वतायेंगे:—

सत्व युक्त बुद्धि के लक्षण— जो प्रवृति और निवृति मार्गों को जानती है, जो कर्तव्य और अकर्तव्य को पहचानती है भयाभय का बोध कराती है, और बन्धन और मोक्ष बतलाती है। वह बुद्धि सत्व गुणयुक्त सात्वकी है।

रजो गुण युक्त बुद्धि के लक्षण—जो धर्मा धर्म, कर्तव्याकर्तव्य को यथार्थ में नहीं जानती है जो कर्मों के फलों के परिणाम को नहीं जानती है जो न्यायान्याय को नहीं पहचानती है। वह रजोगुण युक्त बुद्धि है।

तमोगुण युक्त बुद्धि के लक्षण—जो विपरीत ज्ञान रखती अर्थात् अधर्म को धर्म समझ बैठती है, तथा और भी अर्थों को विपरीत समझती है, वह बुद्धि तामसी है।

—: आठवां प्रकरण :—

अहँकार की उत्पत्ति

अहंकार की उत्पत्ति को अब हम हमारे आयुर्वेद के सिद्धान्तरगत जो सांख्यामत का समावेश है उसी के अनुसार इसकी उत्पत्ति का वर्णन शुश्रुत के शारीरिक स्थान प्रथम अध्याय के अनुसार ही वर्णन करते हैं। वह इस प्रकार है कि सम्पूर्ण कर्म पुरुषों का आश्रय यह मूल प्रकृति है। यहां पर कर्म पुरुषों को ही व्यष्टि पुरुष माना है, क्यों कि यह कर्म पुरुष मूल प्रकृति के द्वारा अपने कर्मों को और क्रियाओं को सम्पादित करता है, क्यों कि कर्मों के करने को आश्रय की आवश्यकता है। और वह आवश्यकता प्रकृति के

द्वारा होती है। क्यों कि, फलों को भोगने के पहले उनके कर्म करने होते हैं। उदाहरणार्थ, एक किसान विना खेती के कर्म किये उसके फलों को कैसे प्राप्त कर सकता है। ये ही सिद्धान्त पार्वती को श्री महादेवजी ने रसायन शास्त्र का मूल सिद्धान्त वतलाते समय कहा है, कि हे पार्वती! जो बिना जोते बोये खेत के वीज के उत्तम फल को चाहता है, वह वैद्य और किसान दोनों ही मन्द बुद्धि हैं। इस सिद्धान्त से साफ प्रगट होता है कि हम जीवों ही को सांख्यवादियों ने कर्म पुरुष माना है और इसी को वेदान्तियों ने व्यष्टि पुरुष माना है। और यह जो जीव लोक विशेष है, वह ही इन जीवों का कर्म क्षेत्र है अर्थात् कर्म लोक है। जिस प्रकार से वीज और वीज के बोने के कारण (सामग्री) किसान के पास होते हुए भी वह विना खेत के क्या फल पैदा कर सकता है। इसी प्रकार से यह जीव लोक कर्माकर्म का क्षेत्र है। इसी लिये सांख्य ने इस व्यष्टि पुरुष को ही कर्म पुरुष माना है। और इस कर्म पुरुष का आश्रय ही वह प्रकृति है; जिसका वर्णन पहले हो चुका है, अब हम कर्म पुरुष के कर्म सामिग्री के उपादान करणों में से वुद्धि के अनन्तर अहंकार का वर्णन करेंगे।

क्योंकि, सांख्य का मत है कि जब तक पहले वुद्धि न हो तब तक अहंकार की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती है। अत एव, सांख्य ने यह निश्चय किया है कि अहंकार यह वुद्धि का करण है।

अहंकार की उत्पत्ति

उस अव्याकृत प्रकृति से सत्व, रज, तम स्वभाव वाला महतत्व उत्पन्न होता है, और उस सत्व रज तम स्वभाव वाले महतत्व से सत्व रज तम गुण वाला अहंकार उत्पन्न होता है। इस प्रकार से, अहंकार की उत्पत्ति सांख्यने आयुर्वेद में बताई है। महतत्व को सांख्य वालों ने बुद्धि को कहा है। इस लिये बुद्धि के अनन्तर अहंकार का वर्णन किया है।

अहकार के भेद

यह अहंकार तीन प्रकार के गुण भेदों में विभाजित हो कर तीन प्रकार के कार्यों को सम्पादित करता है। वह इस प्रकार से है, वैकारिक, तेजस और भूतादिक, अर्थात् सत्व गुण के प्रभाव से यह वैकारीक और रजो गुण के प्रभाव से तेजस और तमोगुण के प्रभाव से भूतादिक। इस प्रकार अहंकार के विकार हैं।

अहंकार का कार्य।

गुणों और भूतों की सूक्ष्म और अखण्डित अवस्था को यह अहंकार खण्डित कर द्रव्यों के आकारों में वर्गीकरण कर भिन्न २ आकारों में प्राप्त होता है। यही अहंकार का आकारों को उत्पन्न करना प्रसिद्ध कार्य है।

अब त्रिविध अहंकार के कार्यों को बताते हैं।

तेजस अहंकार वैकारीक से युक्त होकर एकादश इन्द्रियों के आकारों मे प्रगट होता है। और भूतादि अहंकार वैकारीक से युक्त होकर पंच तन्मात्राओं में प्रगट होता है।

इस से यह सिद्ध होता है कि अहंकार के जो तीन भेद बता ये गये हैं । वे वास्तव में यों हैं, कि वैकारिक अहंकार का तो ऐसा कार्य समझो कि जैसे पारे को जमीन पर गिरने से उसके छोटे छोटे प्रमाणु रूप गोलियां वन जाती हैं । इस प्रकार से यह वैकारीक तो प्रकृति गुण भूतों को विच्छिन्न रूपकार में विभाजित कर उनका प्रथक तत्व करता है और इनके वर्ग उत्पन्न करना यह सब वैकारीक की सहायता से होता है । इस लिये वैकारीक हर एक गुणों व भूतों के अन्दर से समाई हुई इन्द्रियों आदि द्रव्य पदार्थों को विश्लेषण करने वाला है इसी से इसको वैकारीक कहते हैं ।

अब इस के बाद में अहंकार के तेजस और भूतादिक दो भेद रह गये । इस में से तेजस को इन्द्रियां विशिष्ट अहंकार कहतें हैं और भूतादिक को इन्द्रियां रहित अहंकार कहते हैं । और वैकारीक इन दोनों में संयोग वियोग वान होता रहता है ।

तेजस अहंकार वैकारीक होकर इन्द्रियों में विभक्ति हो जाता है, और प्रत्येक इन्द्रिय में अपने तेज के प्रकाश द्वारा गुणों का प्रादुर्भाव उत्पन्न करता है; जिसकी सहायता से प्रत्येक इन्द्रिय अपने २ तेज के प्रकाश से प्रकाशित होकर अपने २ विषयों को ग्रहण करती रहती हैं; परन्तु इसका मुख्य अधिष्ठान स्पर्श इन्द्रिय में है ।

इस तेजस अहंकार का ऐसा प्रकाश है कि यह अन्तः करण के चित्ता काश में भी अपने तेज पुञ्ज का प्रकाश देता है और वाहरी भूताकाश में भी इसके प्रकाश का आकार

पड़ जाता है। और अपने संयोगी वैकारीक के द्वारा जैसी २ भूताकाश की विषयों के विषयाकार का बोध होता है, वैसे ही तत्क्षण उस आकार को चित्ताकाश में प्रगट करदेता है। चित्ताकाश के वृतान्तों को भूताकाश में वृतान्तरिक कर सिद्ध कर देता है कि यह सब इस तेजस अहंकार का ही प्रताप है, कि जो मैं हूं। मैं जानता हूं, मैं सोता हूं, मैं कर्ता हूं; मैं अकर्ता हूं; मैं देता हूं; लेता हूं; इत्यादि भाषना है।

अब भूतादिक अहंकार के भेदों को कहते हैं।

यह अहंकार सूक्ष्म भूतों के मिश्रणों को पृथक २ आकार में कर, उनके भिन्न २ भागों को विभाजित कर, द्रव्यों को और विषयों को उत्पन्न कर, पेड़, पत्थर और पानी अथवा भिन्न २ पदर्थों में बाट देता है। जब विविध और अवयव सहित द्रव्यात्मक व्यक्त रूप प्राप्त होता है; तब इस प्रकार अहंकार से प्रकृति में भिन्न २ पदार्थ के बनाने की शक्ति आजाती है। इस प्रकार से अहंकार द्वारा प्रकृति, द्रव्यों की दो संख्यायें होजाती हैं। या इस प्रकृति जगत के दो भेद होते हैं। एक जंगम सइन्द्रिय और दूसरा स्थावर निरेन्द्रिय। इन द्रव्यों के अतिरिक्त किसी भी तीसरे द्रव्य का होना कदापि संभव नहीं है; इस लिये यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अहंकार से दो से अधिक शाखायें निकल सकती हैं। इसमें निरइन्द्रिय की अपेक्षा इन्द्रिय शक्ति श्रेष्ठ है। इसलिये अब हम इन्द्रिय वान द्रव्यों की व्याख्या करेंगे:—

सरांश यह है कि जब अहंकार अपनी शक्ति से भिन्न २ पदार्थों को उत्पन्न करने लगता है, तब उसी मे एक बार

सत्व गुण का उत्कर्ष होकर एक तरफ पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियां और मन को मिला कर इन्द्रियां सृष्टि के मूलभूत ग्यारह इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। और दूसरी तरफ तमोगुण का उत्कर्ष होकर उससे निरिन्द्रिय सृष्टि के मूल भूत पंच तंन्मात्रायें-द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पांच तन्मात्रायें निरिन्द्रिय सृष्टि की मूल स्वरूप है। और मन सहित इन्द्रियां सह इन्द्रियां सृष्टि का वीज हैं। इस विषय के लिये सांख्य शास्त्र की उत्पत्ति विचार करने योग्य है कि निरिन्द्रिय सृष्टि के मूल तत्व (तन्मात्रा) पांच ही क्यों और सइन्द्रियां सृष्टि के मूलतत्व ग्यारह क्यों माने जाते हैं। आधुनिक सृष्टि साइंस वादियों ने सृष्टि के पदार्थों के मूल तीन विभाग में किये हैं (ठोस, घन्न), (द्रव्य, पतला), (गेस, वायु रूपी) ये किये हैं। परन्तु सांख्य शास्त्र का वर्गीकरण इससे बिल्कुल भिन्न है। सांख्य का कथन है कि मनुष्यों को सृष्टि के सब पदार्थों का वर्ग केवल पांच ज्ञानेन्द्रियों से हुआ करताहै।

आंखों से सुगन्ध नहीं मालूम होती और न कान से दीखता है। त्वचा से मीठा कड़वा नहीं समझ पड़ता और न जिह्वा से शब्द सुना जाता है और नाक से सफेद और काले रंगों का भेद नहीं मालूम होता है। इसी प्रकार जब पांच ज्ञानेन्द्रियां और उनके पांच विषय शब्द, स्पर्श, गन्ध, रूप, रस निश्चित होते हैं। तब यह प्रगट होता है कि सृष्टि के पदार्थों के वर्गीकरण भी पांच से अधिक नहीं हैं। यदि हम अपनी कल्पना से यह मान भी लेवें कि विषय पांच से

अधिक होंगे तो यह कहना नहींहोगा कि उनको जानने के लिये हमारे पास कोई साधन या उपाय नहीं है। इन पांच से भी प्रत्येक के अनेक भेद हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, यद्यपि शब्द-गुण एक ही है तथापि उसके छोटे, मोटे, तीव्र, कोमल, कर्कश, भद्दा; फटा हुआ अर्थात् गायन शास्त्र के अनुसार निषाद, गंधार षडज, धैवत आदि और व्याकरण के अनुसार कंठ, तलुआ, ओष्ठ आदि अनेक प्रकार हुआ करते हैं। इसी तरह यद्यपि रूप एक ही गुण है तथापि उनके भी अनेक भेद हुआ करते हैं। जैसे सफेद, काला, नीला, पीला, हरा, इत्यादिक इसी तरह यद्यपि रस, एक ही गुण है तथापि उसके खट्टे, मीठे, कटु तिक्त, कषाय आदि अनेक भेद होते हैं।

इसी प्रकार यदि इन तन्मात्राओं के गुणों के मिश्रणों पर विचार किया जाय तो यह गुण विचित्र अनन्त प्रकार से अनन्ता हो जाते हैं। परन्तु चाहे जो हो पदार्थ के मूल गुण पांच से कभी अधिक नहीं हो सकते। क्योंकि इन्द्रियां केवल पांच ही हैं। और प्रत्येक को अपने २ गुण का बोध हुआ करता है। इसी लिये सांख्य ने यह निश्चय किया है कि पांच ज्ञानेन्द्रियों के पांच विषय हैं।

केवल शब्द गुण को केवल स्पर्श गुण को पृथक २ मानो। परन्तु दूसरे गुणों के मिश्रण रहित पदार्थ हमको देख पड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मूल प्रकृति में निरा· शब्द, निरास्पर्शु निरारूप, निरारस और निरा गंध है अर्थात् शब्द तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गन्ध तन्मात्रा ही है। अथवा यों कहो कि मूल प्रकृति के यही पांच भिन्न २ सूक्ष्म तन्मात्रा विकार द्रव्य है।

इस प्रकार तन्मात्राओं की उत्पत्ति इंस अहङ्कार के द्वारा हुई है। अब हम इन तन्मात्राओं के विषयों को कहते हैं:—

प्रथम विषय शब्द हुआ, जो शब्द है, तो उसका अर्थ होना आवश्यक बात है। कोई न कोई अर्थ शब्द का प्रतिपादन जरूर होगा। बिना अर्थ के कोई शब्द रह नहीं सकता, यह सम्पूर्ण शास्त्रों का सिद्धान्त है। शब्द का अर्थ ही स्पर्श है। जैसे शब्द का शब्दाकार होता है तो आकार वाले पदार्थ की परधि होती है इस लिये शब्द की परधि ही स्पर्श है। जहां शब्द और शब्द की परधि हुई वहां रूप हो ही जाता है। जैसे परधि है वह सीमा वाली है और सीमा वाली के जरूर रूप होता है। जैसे लम्बी, चौड़ी, गोल, लाल पीली इत्यादि। जब शब्द और शब्द की परधि और परधि का रूप हुआ। तब जरूर रूपवान वस्तु है वह अवश्य रसवान होगी। क्यों कि, रूप में स्वाद (जायका) जरूर होगा। क्यों कि, रूप से स्वाद पहचाना जाता है। जैसे कई फल रंग रूप से खट्टे, मीठे पहचाने जाते हैं। और जिस द्रव्य में रूप और रस है उसमें अवश्य दुर्गन्ध या सुगन्ध होगी, यही पांच तन्मात्राओं के पांच विषय हुए।

(अब पांच भूतों में ये तन्मात्राओं का वर्णन करेंगे)

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन्हीं मात्राओं के ये विषय हैं:—

शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल, और गन्ध से पृथ्वी, इस प्रकार से इन भूतों में पंच मात्राओं का समावेश है और उत्तमोत्तम एक से दूसरे

तत्व में वृधीवत है। जैसे आकाश तत्व में शब्दकी एक मात्रा है और वायु तत्व में शब्द और स्पर्श दो गुणों की मात्रा है अग्नि से शब्द स्पर्श रूप मात्रा अधिक है जल में शब्द स्पर्श रूप रस से अधिक है। पृथ्वी तत्व में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध ये पांच मात्राओं का समावेश है।

इन तत्वों में ये मात्रा सूक्ष्म और गोण रूप में समाई हुई रहती हैं। पंचज्ञानेन्द्रियों में अपना व्यापार और कर्मेन्द्रियों में क्रिया किया करती है।

(अब इन्द्रियों के प्रत्येक विषय को कहते हैं)

कान का शब्द, त्वचा का स्पर्श, चक्षु का रूप, जिह्वा का रस और नासिका का गंध ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हुए। अब कर्मेन्द्रियों के कहते हैं। वाणी का सम्भाषण हाथ का ग्रहण, उपस्थ का विषयानन्द, गुदा का मल त्याग और पावों का गमन।

॥ इति अहंकार प्रकरण ॥

नवां प्रकरण

वासना की उत्पत्ति

कोई भी कार्य का मूल उपादान करण है। जिसके संयोग से वासना की उत्पत्ति होती है। यह वासना नित्य अहंकार की स्पर्धा (नकल) किया करती है, क्योंकि अहंकार प्रकृति के विभिन्न परमाणुओं को करता है। और

वासना उन परमाणुओं को सूक्ष्म आकार में आकर्षित कर उनका सूक्ष्म आवर्ण बनाकर उनमें इच्छा आदि गुणों के अनुसार रंजन कर उनका वेष्ठन तैयार कर लेती है। वह चित्ताकाश में उस चित्त, मन, बुद्धि, और अहंकार आदि की इच्छाओं के अनुसार आकार उत्पन्न कर देती है। और वह आकर चित्ताकाश में तैयार होता रहता है। इसलिये वासना अहंकार की स्पर्धा (नकल) किया करती है। अहं-कार अभिमान के आकारों को अपने वासना भवन में एकत्रतिकर उन की वस्तु के आकार में सिद्धि करती है, इसीसे वासना कही जाती है। येही हमारे जन्म की जन्मान्तर सिद्धि हैं; यह अन्तःकरण के ऊपर पहला आवर्ण है। इसी से ये जीव जिस २ योनि में जाता है, उसी २ की वास-नाओं का वेष्ठन (आवर्ण) चढ़ा लाता है। उसमें इच्छाओं के अनुसार उस योनि की कामना व आदतें और गुणों को प्रकट करता रहता है, जिसको वासना कहते हैं। वासना ही के द्वारा इच्छाओं वो लागणी (लगन) हविस कामना और आशा बंध जाती हैं। प्रत्येक भाव इसी में उत्पन्न होते हैं और इसी में लीन रहते हैं और वह भाव स्थूलाकार में बंध जाते हैं। अहंकार के आकारों को भावों में परिणित करना यह वासना ही का काम है कि उन भावों को बांधकर जत्थे के जत्थे ढेर रूप में लगा के इच्छा विचारों के अनुसार सजा देती है। प्रत्येक भाव के आकार को ये वासना अपने वस्त्र के वेष्ठनों (लपेटनों) में बांधकर व्यक्ताव्यक्त करती है। उदाहरणार्थ जिस प्रकार एक बन्दूक में गोली बारूद भरकर तैयार रखते हैं और किसी भी प्राणी के ऊपर नि-शाना लगा कर छोड़ने से वह गोली या तीर प्राणी के

जिस्म में प्रवेश हो जाती है। इसी प्रकार से यह वासना एक बन्दूक है, और इच्छा बारूद है और विचार गोली या तीर है और आशा का निशाना लगा कर जिसके ऊपर लक्ष्य वेध किया जावे तो वैसा ही कार्य होता है जैसाकि एक बन्दूक से, परन्तु यह विद्या बिना गुरु के प्राप्त नहीं होसकती है; ये ही ब्रह्म विद्या है जिसके द्वारा ब्रह्म ऋषि उस पारब्रह्म में अपना लक्ष्य बेधकर ब्रह्माकार होगये हैं बस जिज्ञासुओं के लिये ये पर्याप्त है और इसकी विशेष व्याख्या वासना शरीर में करेंगे। इस लिये अब इच्छा को कहेगेः—

इच्छा की उत्पत्ति।

पूर्व जो पदार्थों का उपभोग लिया गया है, उसका जो स्मरण किया जावे और उस स्मरण से जो चित्त में वृति उत्पन्न हो; उन विषयों (भोगों) का बारम्बार चिन्तन करे वह इच्छा है। और जो इन्द्रियाँ और विषयों के संयोग मिलते ही जो चित्त में आनन्द का क्षोभ उत्पन्न हो और उन विषयों की बारम्बार सन्तत रूप से चिन्तन करे जो मन को इधर उधर डुलावे जो मनको जबरदस्ती से इच्छित स्थान की तरफ आकर्षित करे और इन्द्रियों को अपने इच्छित पदार्थ मेंप्रवेश करे और बुद्धि को विमोहित कर अपनी प्रबलता से तदाकार कर डालती है; इसीको इच्छा कहते हैं। वासना के अन्तर इच्छा की उत्पत्ति होती है। इसीलिये वासना के अन्तर इच्छा को बताई गई है। और इच्छा के ही द्वारा सुख और दुख भी उत्पन्न होते हैं वह इस प्रकार से हैं।

॥ सुख ॥

जिसकी प्राप्ति होनेसे दूसरी सभी वस्तुओं का विस्मर्ण होजावे। जो काया, वाचा और मन सहित सर्व इन्द्रियो को अपने आनन्द में आमंत्रण कर स्मृती को भुला देता है, जिसकी प्राप्ति से सत्गुणो को वक्र कर रजोगुण की वृद्धि कर देता है। सम्पूर्ण विषयों को एकत्रित कर हृदय रूप एकान्त वास में पसार कर जीव को सन मोहनी अवस्था में डाल देता है। विशेष क्या कहूँ जीवको जिस स्थान में आनन्द का लाभ होता है, वही सुख के नाम से पहिचाना जाता है। और इसके विपरीत स्थान को दुःख के नाम से पहिचानते हैं।

॥ दुःख ॥

जब इच्छा उत्पन्न होते ही जो उसको इच्छित पदार्थ न मिले तो उस वक्त वह इच्छा विरुद्ध (उल्टा) रूप धारण कर दुःख के रूप को प्राप्त होती है।

अध्याय छठा

अपरा की क्रिया शक्तियाँ

अब अन्तः करण की क्रियाओं को कहते हैं ।

यहाँ तक तो हमने अंतः करण के समुदाय का वर्णन किया है, और अब हम अन्तः करण की प्रक्रियाओं का वर्णन करेंगे । अन्त करण की क्रिया प्राणों के द्वारा होती है इसलिये इस अध्याय में अन्तः करण के अनन्तर प्राणों का वर्णन करेंगे ।

प्राण क्या है ?

कोई प्राणों को वायु मानते हैं, कोई प्राणों को अग्नि मानते हैं कोई प्राणों को जीव मानते हैं, फारसी में प्राणों को रूहे आज़म कहते हैं। कोई सूर्य से निकलने वाले धूप के परमाणुओं को कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मतावलम्बी अपनी अपनी पहुँच के अनुसार प्राणों का वर्णन करते हैं। इसलिये अब हम भी अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार प्राणों के विषय में अपना मत प्रगट करते हैं।

प्राण की उत्पत्ति ।

हम पहले समष्टि पुरुष के प्रकरणों में बतला चुके हैं, यह प्राण भी उस समष्टि पुरुष का महा प्राण है और उसीसे इस प्राण का विकाश हो रहा है, और यह जो क्रिया चलरही

है. उसी की प्रक्रिया है। उसीकी ठोकर है जो समष्टि को व्यष्टि हो रही है, यह ठोकरों का प्रति वेग ही उसका प्राण है जो सब अन्त. करणों में समान रूप से चलरहा है यह प्राण सब प्राणियों में सूत्र धार होकर यह प्राण ही प्रक्रिया कर रहा है। उदा हरणार्थ, एक लकड़ी की पुतली को नचाने वाला प्रत्यक्ष उसमें सूत्र को बांधकर मन माना नाच नचाता है। इसी प्रकार हमारे अन्तः करणों को क्रिया देता है। इसको गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है।

चौ० शारद दारु नारि सम स्वामी,
राम सूत्र धर अन्तरयामी।
जेहि पर कृपा करिहिं निज जन जानी,
कवि अरु अजर नचावहिं वानी॥

इसी प्रकार हमारे अन्तः करणों के प्राणों के सूत्र ग्रन्थी में बांधकर, वह परमात्मा समष्टि-प्राणियों के हृदय प्रदेश में अन्तः करण को क्रिया दे रहा है, यह सब उस परमात्मा ईश्वर का प्रभाव है। जो उस समष्टि चैतन्य से निकलकर व्यष्टि चेतनाओं को सजाग्रित करता है। यही उस व्यष्टि पुरुष जीव का जीवन है। और इस जीव लोक में आने जाने का जीव मार्ग है। इसी मार्ग से यह जीव अपने जीव स्वरूपों का साक्षी. ज्ञाता. अभिमानी, अनुभवी होता है। और इसी से सम्पूर्ण जीव प्राणधारी कहलाते हैं।

(प्राणों के तीन स्वरूप)

प्रथम प्राण का कारण स्वरूप है। दूसरे में प्राण का सूक्ष्म स्वरूप है। तीसरे में प्राण का स्थूल स्वरूप है। इस प्रकार प्राण के तीन स्वरूप हैं और इन में प्राण की पांच शक्तियां, व क्रिया, काम करती हैं। अब हम पहले प्राणों का कारण स्वरूप का वर्णन करते हैं।

प्राणों का पहिला स्वरूप निस्पन्दन है और समाधिस्त स्वरूप है और इसका साक्षी चैतन्य चिदाकाश में निवास करता है। और उसके दर्शन जिज्ञासुओं को चिद् ग्रंथी के खुलने से और चिदाभास का स्वरूप लय होने से होता है। अर्थात् स्थूल स्वरूप में अभ्यास करने पर और सूक्ष्म स्वरूप में श्रुति की साधना करने पर जब कहीं इसका कारण स्वरूप का लक्ष जाना जाता है। नाभि, हृदय, भ्रकुटी ये ध्यान के मुख्य स्थान हैं। इन में से नाभि द्वारा प्राणों की स्पन्दन रूप क्रिया बनती है। जिस पर श्रुति को शब्द पर लगाकर अभ्यास किया जाता है। दूसरा स्थान हृदय है, जहां पर श्रुति के शब्द से एकता करने पर प्राणों का निस्पन्दन रूप होता है। और प्राण अपान की शक्तियां तुली हुई प्रतीत होती हैं। तीसरा स्थान भ्रकुटी है जिसमें प्राण के स्पन्दन और निस्पन्दन दोनों रूप लय होजाते हैं। और एक विलक्षण अवस्था प्रकट होती है। जिसका वर्णन करना अयुक्त पूर्वक है, परन्तु अभ्यासी स्वयं अनुभव कर सकता है। जिसका अनुभव अकथनीय है। इसलिये अब हम इसका विशेष वर्णन नहीं करेंगे, क्योंकि यह जिज्ञासुओं के काम में नहीं आती है। अब हम प्राणों के सूक्ष्म स्वरूप के अगले प्रकरण में वर्णन करेंगे।

प्रकरण पहला

(प्राणों का सूक्ष्म स्वरूप)

प्राण के सूक्ष्म रूप में प्राण के पांच रंगो का सूक्ष्म प्रति भास हो रहा है। जिनके पारिस्परिक सम्बन्ध से हृदय में चिदाभास रूपी ग्रंथी ऐसी पड़जाती है। जैसे दो रस्सियों में डेढ़ गांठ लगाकर फन्दा बनाया जाता है। एक रस्सी के प्राण और उदान नाम के दो सिरे ऊपर की ओर हैं। और गांठ नीचे है और दूसरी रस्सी के उदान और व्यान नाम के दो सिरे नीचे की ओर हैं और गांठ ऊपर है। मध्य में दोनों गांठों से जो फन्दा पड़ता है वह चिदा भास की ग्रंथी है। जब तक यह ग्रंथी बनी रहती है। जव तक प्राणों का आवागमन नहीं छूटता। परन्तु ग्रंथी के छूटते खुलते ही प्राण मोक्ष हुआ कहते हैं। इस भूक्ष्म स्वरूप में प्राण के पांच रग और पांच शक्तियां और पांच क्रियाओं की पहचान अभ्यास द्वारा जानी जाती है। यदि हृदय की सूक्ष्म दृष्टि द्वारा देखा जाय तो उसमें प्राण का ऊपर का रंग नीचे की ओर से नीचे की ओर उतरता हुआ हृदय के नीले स्थान में जाता है। मौर अपान के लाल रंग वाले गुदास्थान तक पहुंच जाता है। और लाल रंग वाली अपान शक्ति गुदा स्थान से ऊपर को जाती है और हृदय के नीले स्थान में से होती हुई नासिका पर्यन्त प्राणों को विंधती हुई जाती है। इस प्रकार प्राण और अपान का मैथुन से द्वन्द उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् अपान की शक्ति जिस का व्यान नाम है,

और हलका नीलारंग है वह ऊपर की तरफ प्राणों को घेर लेती है। और नीचे अपान के अधिष्ठान में सब से बाहिर चक्र बांधती है, और प्राण की शक्तियां जिसका उदान नाम है और भाटियालाल रंग है। वह नीचे की तरफ अपान को घेरती है। और ऊपर जाकर प्राण के स्थान में सब से बाहिर अपना चक्र बनाती है। हृदय के मध्य स्थान में समान शक्ति का निश्चल रूप से बसा है। और उसमें से ऊपर की चारों शक्तियां का आवागमन होता है इस प्रकार ऊपर वाले भाग को देखने से प्रतीत हो सकता है कि प्राण और उदान नामी शत्रु भाव रखने वाली शक्तियों के मध्यस्थ समभाव रखने वाली उदान शक्ति स्थित हुई है। इन शक्तियों में से किसी की भी विषमता होने पर व्याधि उत्पन्न होती है और देह नष्ट हो जाती है।

(प्राण की सूक्ष्म क्रियायें)

प्राणों की गति पर आन्तरीय दृष्टि रखने से अभ्यासी को पवन की चाल मन्द होती हुई प्रतीत होती है। अन्त में समान रूप से ठहरी हुई भासती है। तब वह प्राण शक्तियों की उन क्रियाओं का अनुभव होतीं हैं। जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। प्राण के अधीन मन और इन्द्रियों के सर्व व्यापार निश्चित होते हैं और समान वायु के स्थान में प्राण शक्ति के उदय होते ही जगत सूझ पड़ता है, और शक्ति के अस्त होते ही संसार लय हो जाता है। उदय का रूप दिन और अवस्था जाग्रत है। अस्त का रूप रात्री और अवस्था स्वप्न है। जाग्रत अवस्था में श्रुति ब्रह्माण्ड की

ओर प्रकाशवत् होती है। और स्वप्न में अनुभय का तेज पिण्ड के अन्दर ऐसा भासता है, जैसे किसी घट के भीतर दिया (दीपक) जल रहा हो। वृति के वहि मूर्ख होने का नाम उदेय है। और अन्तर मुख होने का नाम अस्त कहा जाता है। इस सूक्ष्म शरीर का अधीष्ठाता वही प्रजापति है। जैसे सूर्य का चक्षु में, चन्द्रमा का मन में, अग्नि का मुख में, और दिक का कानों में स्थान है वैसे ही प्रजापति का प्राणों में है।

जब प्रजापति अपने प्राणों के चक्र को चलाता है जब सब देवों का उदय हो जाता है। और जब रोकता है, जब सब का प्राणों में लय हो जाता है, इसी कारण प्राणों को भी प्रजापति कहते हैं।

॥ इति एकादश प्रकरण ॥

प्रकरण दूसरा

(प्राण के स्थूल स्वरूप का वर्णन)

स्थूल रूपमें प्राणों के ढांचे पर यह देह का कोष मढा हुआ है, इसका अधिष्ठाता अभिमानी है और देवता मरुत जिसके आधीन क्रिया है। प्राणियों के शरीर में एक पवन श्वांस होकर चलती है, परन्तु वह क्रिया रूप और स्थान के विभाग से पांच प्रकार की मानी जाती है। अब उनका वर्णन करते हैं।

१--प्रथम समान वायु है, जो निश्चल होकर आकाश के रूप को धारण करती है और सब के आधार गमन को सिद्ध करती है उसका नाभि में स्थान है, जहां से आकर्षण शक्ति प्रगट होती है।

२—दूसरी प्राण वायु है जिस की क्रिया अपेक्षपण है अर्थात् बाहिर की पवन को अन्दर खींचना और जिस का पवन रूप है और हृदय स्थान विशेष है।

३—तीसरा अपान वायु है, जिस की क्रिया उत्क्षेपण है अर्थात् अन्दर की पवन को ऊपर नीचे उल्टा निकालना और जिसका रूप अग्नि और गुदा स्थान विशेष है।

४—चौथी व्यान वायु है जिसकी क्रिया प्रसारण है, अर्थात् पवन का देह के अन्तर सर्व अंगों में प्रवेश करना है और जिसका रूप जल है; ललाट स्थान विशेष है।

५—पांचवी उदान वायु है जिसकी क्रिया आंकुचन है अर्थात् शरीर के सर्व अंग प्रतिगो से पवन को सिकोड़ना और जिसका रूप जल है और कंठ स्थान विशेष है।

मनुष्य के शरीर को एक भाप के यंत्र के समान जानना चाहिये जिसमें सब से नीचे अपान वायु अग्नि का काम देती है। और समान वायु भांड़ा बनाती है और प्राण वायु जलका कार्य सिद्ध करती है इन तीनों के व्यापार से जो भाप उठती है, वह सिर के ढकन में एकत्र होकर देह के सब अगों में फैल जाती है और उसका नाम व्यान कहा जाता है। जब भाप कार्य हो चुकता है तब वह द्रव्य रूप

होकर ढकने पर रस विन्दुओं को उत्पन्न करता है; इसका नाम उदान वायु है।

यथार्थ में यह क्रिया इस प्रकार से चलती है कि प्राण और अपान दो शक्तियाँ हैं और उदान और व्यान उनकी दो युक्तियाँ हैं। प्राण का सम्बन्ध उदान से और अपान का व्यान के साथ है। जैसे पानी में से मिट्टी के परमाणु तहसीन होकर बैठा करते हैं। और अग्नि भावको उठाती है। इन चारों का अधिष्ठान समान वायु है. जो कि आकाश वत् निर्लेप रहती है। और जिसमें से आकर्षण शक्ति वाहिर की प्राण वायु को देह के अन्दर खींचती है। खींच के समाप्त होते ही तत्काल अपान शक्ति पवन को देहसे वाहिर निकालना आरम्भ कर देती है। इस प्रकार श्वास के अवागमन से एक चक्र बंध जाता है; जो लुहार की धौंकनी के समान रात दिन चलता है, और क्षणभर नहीं ठहरता, इसी अवस्था का नाम जीवन है।

श्वाँस के अन्दर खींचते हुये वाह्य पदार्थों का संग चेतन्य के साथ इन्द्रियगोचर द्वारा होता है। और श्वाँस के वाहिर की तरफ निकलते हुये चैतन्य के रूप का प्रतिविम्ब विश्व में भासता है। इन्हीं दोनो क्रियाओं की समता में वाणी की उत्पत्ति होती है, और उनके परस्पर संघर्षण से जठराग्नि निकलती है; जिस करके अन्न पचता है। पांचों पवनों को प्राण इसलिये कहते हैं कि पवन तत्व का निज रूप प्राण है, अन्य में और तत्वों का अंश मिश्रित होता है। यह प्राण वायु पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में परिपूर्ण व्यापक है और यदि पिण्ड की वायु का ब्रह्माण्ड की वायु से सम्बन्ध टूट जावे

तो देह का तत्काल पात (नाश) होजाता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की वायु का वर्णन आगे पिण्ड, और ब्रह्माण्ड के अध्याय में करेंगे ।

अब समान की विशेषता का वर्णन करेंगे ।

समान के अवकाश में अन्य चार पवनों का परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार है कि प्राण की अपान से मित्रता उदान से शत्रुता और व्यान से समता है। अपान का प्राण से मित्रता व्यान से शत्रुता और उदान से समता है । व्यान की उदान से मित्रता अपान से शत्रुता और प्राण से समता है। उदान की व्यान से मित्रता प्राण से- शत्रुता और अपान से समता है ।

इन चारों पवनों की परस्पर पृथक भाव होने पर भी एक पिण्ड में निर्वाहा करना ये समान की सहायता से होता है और अब इन मेंसे जो शरीर के तीन दोष उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति का वर्णन करेंगे ।

प्राण से वायु दोष प्रगट होता है, क्योंकि प्राण चलन शक्ति को कहते हैं. और अपान से पित्त दोष प्रगट होता है । क्योंकि पित्त का मूल अग्नि और अग्नि का मूल अपान है। इसलिये अपान से पित्त उत्पन्न हुआ और व्यान से कफ दोष प्रगट होता है, क्योंकि जल के कार्य को सिद्ध करने में व्यान ही उस जल में भापरूप से और रस रूप है । इसलिये कफ रस रूप जलसे उत्पन्न होता है; इस प्रकार से यह दोष प्रकट होकर उदान रूपो देहकी स्थिति सिद्ध होती है । इन्हीं

पांच पवनों का समूह होने पर संकल्प उठता है और मन का अध्यासचिदग्रन्थी में होता है।

इन प्राणों के संयोग से पांच उप प्राण उपजते हैं, जिनको नाग, देवदत्त कुर्म, कुकल और धनंजय कहते हैं। इनकी भी क्रिया होती है। जैसे नाग से डकार आती है, देवदत्त से जवाहीं आती है, कूर्म से पलक खुलते हैं। और मिच जाते हैं। कुकल से क्षुधा प्रगट होती है और धनंजय मृतक के होनेपर देहको फुलाता है। इस प्रकार प्राणों के तीनों स्वरूपों का वर्णन संक्षेप में कर दिया है।

॥ इति दूसरा प्रकरण ॥

तीसरा प्रकरण

प्राणों के परिमाण कालका निरूपण।

प्राणों के परिमाण काल को जानने के लिये हमारे पास कोई यंत्र नहीं है। कोई एक दूसरे का अपेक्षा ही नहीं है। अब जो कुछ है वह केवल हमारा शरीर ही है। इसलिये प्राणों का परिमाण काल निकाला जाय तो हम हमारे शरीर के यंत्र द्वारा ही निकाल सक्ते हैं। क्योंकि अनुमान के बजाय प्रत्यक्ष प्रमाण ही सबको माननीय है। इसी नियम से अब हम आप को प्राणों के परिमाण काल की सूक्ष्म व्याख्या करेंगें। अन्तर दृष्टि के करने पर यह निश्चय होता है के हम जो श्वांस बाहिर से अन्दर खेंचते हैं और अन्दर से बाहिर निकालते हैं यही प्राण का परिमाण काल है। इसी का सूक्ष्म हिसाब लगाने से प्राणों के काल का नाप तोल मिल सक्ता

है। अब हम इस का वर्णन करते हैं विषय सूक्ष्म और गम्भीर है इसलिये ध्यान से पढ़ना और समझना चाहिये।

श्वाँस पर ध्यान जमाने से यह निश्चय होता है कि एक ही श्वाँस में चारों युगो के परिमाण काल निकल आता है। वह इस प्रकार से हैं। जाहां से प्राण की खेंच का आरम्भ होना है वहां से सत युग आरम्भ होता है और प्राण का बाहिर से शरीर के अन्दर आना त्रैता की अवस्था है और उसका अन्दर आकर ठहरना द्वापुर का स्वरूप है और प्राण का अन्दर से बाहिर जाना यह कलयुग है इस प्रकार से एक श्वाँस में चारों युगका परिमाण निकल जाता है। इसी प्रकार से एक दिन में चार पहर का प्रमाण बांधा जाता है।

हमारे वर्त्तमान काल का परिमाण सूर्य चन्द्र पृथ्वी की अपेक्षा से अंक द्वारा बांधा गया है वह इस प्रकार से है। चन्द्रमा का वार्षिक चक्र ३५५ दिन का और सूर्य का ३६५ दिन का है और इन दोनों को जोड़ने से ७२० अंक बनता है जिसका आधा भाग ३६० की संख्या का है जो हम भूमण्डल निवासियों को अनुभव कराता है परन्तु काल का त्रिगुणात्मक रूप और देश में चार दिशाओं का विभाग होना अवश्य है इस कारण ३६० को बाराह से १२ गुणा करने पर ४३२० का अंक सिद्ध होता है सारांश यह कि ४३२० दिन का अर्थात् १२ वर्षोका भूमण्ड के युग परिमाण है। जैसे शून्य में नव अंक गुप्त होकर १० बना देती है वैसे ही प्रत्येक मण्डल का अनुमान नीचेके मण्डल से १० गुणा होना है अर्थात् चन्द्रमण्डल का युग भूमण्डल से दस गुणा अधिक होता है।

और उसका प्रमाण ४३२०० की संख्या है इसी विधि से सूर्य मण्डल की युग की संख्या ४३२००० है जिसको कलयुग के मनुष्यों की आयु मानते हैं। जो हमारे १२० वर्ष है।

अब हम हमारे श्वाँस के परिमाण को कहते हैं मनुष्य शरीर के श्वांस की संख्या २१६०० बताई जाती है जो एक घड़ी भर की श्वांसो को गिन कर एक दिन रात का अनुमान कियां जाता है तो इतना ही होता है कि प्रत्येक श्वांस की दो गति है एक बाहिर से अन्दर जाना और दूसरा अन्दर से बाहिर आना इसलिये २१६०० को दुगना करने से ४३२०० अंक बन जाता है और एक श्वांस के साथ पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां का व्यापार मिश्रित होने के कारण ऊपर वाले अंकों को दसगुना करने पर ४३२००० की संख्या उत्पन्न होती है।

प्राणों की चेष्टा पलक के खुलने और मीचने में जितनी समय व्यतीत होती है उसको स्मृती प्रमाणी निमेष कहते हैं ऐसे १५ निमेष के तुल्य एक काष्ठा होती है और ३२ काष्ठा की एक कलाकहलाती है और तीस ३० कला एक मुहूर्त होता ह और ३० मुहूर्त का एक दिन रात का प्रमाण है अर्थात् एक अहोरात्री में १५-३२-३०-३० इस प्रमाण से इतनी ४३२००० निमेष के रूप में सिद्ध होती है। मनुष्य की पुरी आयु स्मृती प्रमाण में १२० वर्ष की है और एक वर्ष के ३६० दिन होते हैं इस विधी १२०+३६० को गुणा करने पर वही ४३२००० दिन श्वासों के अंक सिद्ध होते हैं और इस सख्या को प्रत्येक दिन के १२ भागों में से संध्या के समय केदो भाग घटाकर

१० का गुणा करने पर वही ४३२००० मानुषी आयु का प्रमाण बन जाता है। दिनके १२ भागों में से दो भाग घटाने का कारण यह है कि सम्पूर्ण दिन रात का छटा भाग प्रात सायं की संध्या समय होके व्यतीत होता है और उस समय प्राणों की गति निस्पन्दन रूप होजाने पर समाधी की अवस्था प्राप्त होती है (इसीलिये प्रात और संध्या में लोग जप ध्यान किया करते हैं) क्योंकि जहां बाहर की पवन कलयुग का प्रवेश नहीं है।

ऊपर क्रिया अंको का वर्णन स्थूल रूप से है जो स्थूल त्रिपुटी है। जो पृथ्वी, जल, और अग्नि जो रूपवान प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर है। स्थूल त्रिपुटी से ऊचे मंडलों में जो पवन आकाश मन बुद्धि आदि का अधिष्ठान है इनके युगों के अंकों का हिसाब और ही फैशन का है जिस का वर्णन परमाणुं वाद में किया गया है।

चारों युगों का विभाग अन्तःकरण के चतुष्ट रूप के अनुसार सिद्ध होता है अर्थात् अहंकार की अवस्था को सत सत युग जानो और चित्त के व्यवहार को त्रैता मानो और बुद्धि को द्वापुर और कलयुग के मनकी रचना मानो। इसी प्रकार से चार वाणी और चार अवस्थाओं का भी युगों से परस्पर मेल है जिसका समझना अति सूक्ष्म है। जैसे अन्त करण में किसी रूप का विशेष भाव किसी का सामान्य भाव होता रहता है तो भी चारों रूप अवस्थित होते हैं वैसे ही युगों की अधिकता और नूनता होने पर भी चारों युग नित्य बने रहते हैं। देखो सोचो समझो विचारो कि जिस समय मन बुद्धि को अपने आधीन कर लेता है जब उस

अन्त:करण में कलयुग प्रकट होजाता और जब बुद्धि मनको बस करलेती है जब द्वापुर अन्तकरण में प्रकट हो जाता है। जब यह तीनों चित्त; मन, बुद्धि अहंकार में लय हो जाते हैं तब सत युग अन्त करण में प्रकट हो जाता है क्योंकि अहंकार का अज्ञान दूर हो जाता है और ज्ञान का प्रकाश भान उदय होजाता है यही चारों युगो का सूक्ष्म भेद बताया गया है ज्यादा खोलने से किताब का मैटर बढता है और छपाई का पैसा पास में नहीं है इस लिये बहुत थोड़ा जो सार बात बताई गई है।

॥ इति प्राण है ॥

अध्याय सातवाँ

प्रकरण पहिला

अवस्थाओं का वर्णन अर्थात् चेतना शक्ति।

॥ अब हम अवस्थाओं को संक्षिप्त में वर्णन कर बतावेंगे ॥

न अवस्थाओं की सिद्धि जीव, शरीर और सृष्टि के संयोग से होती है। अर्थात् यदि अकेला जीव हो और शरीर न हो तो भी वह किसको जाने और यदि जीव नहीं और केवल शरीर ही होतो क्या जाने और यदि जीव भी हो और शरीर भी हो परन्तु सृष्टि न होवे तो क्या जाने इसलिये, जीव, शरीर, सृष्टि यह तीनों जब एक ही समीकर्ण भवन में हों तब अवस्थाओं की व्यव-

स्था होती है। इनमें से यदि एक की भी विच्छेदा व्यवस्था होजाये तो अवस्था की व्यवस्था का भंग होजाता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध बात है। इसलिये चाहे कोई भी अवस्था क्यों न हो उसमें जीव, शरीर और सृष्टि (लोक या भवन कोष) का होना जरूरी बात है।

पृथक २ शरीर और पृथक २ लोक या सृष्टि पृथक २ कोष इनमें से जब जीवात्मा जिस २ शरीर में और लोक या कोष में जहां वह निवास करता है उसी उसी के अनुसार अवस्थाओं का अनुभव लेता रहता है। और अपने को वहीं का वासिन्दा समझ बैठता है। और इन अवस्थाओं का साक्षी होते हुये भी इनके अनुकूल होकर मोहित होजाता है। उसी को गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्रजी ने यों कहा है।

श्लोक—देहिनोऽस्मिन्यथादेहे, कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्ति र्धीरस्तत्रनमुह्यपि ॥२।१३॥

इससे साफ प्रकट होगया है कि यह अवस्थाये (देह, शरीर के द्वारा देही) जीवात्मा में भासती हैं परन्तु इनके द्वारा जो ज्ञान में धीर गम्भीर है उनको इन अवस्थाओं में पड़कर मोहित न होना चाहिये। क्योंकि यह प्रतीक्षण में बदलती रहती हैं, परन्तु अवस्था के पलटने पर जीवात्मा नहीं पलटता है। यह तो सम्पूर्ण अवस्था में साक्षी भाव से बना रहता है। और अवस्थाओं का अनुभव लेता रहता है। और अवस्थाओं का अभिमानी द्रष्टा बनकर अपने अनुभव में आप करता रहता है। और दार्शिनिक पदार्थों का प्रदर्शन करता रहता है। अब हम इन अवस्थाओं का निरूपण करेंगे।

प्रकरण-द्वितीय

चेतना शक्ति।

अब हम अवस्थाओं के भेदों को बतलाते हैं।

अवस्थाओं के मूल में दो भेद हैं।

अवस्था

अव्यक्त	व्यक्त
समष्टि	व्यष्टि
सुषोप्ति	जाग्रत

इस प्रकार ऊपर दो भेद बताये गये हैं, परन्तु व्यष्टि के और भी भेद होते हैं, उनको बताते हैं:—

व्यष्टि

पुरुष मय ज्ञान के सप्त हैं।

१ शुभेच्छा।
२ विचारना।
३ तनुमासा।
४ सत्व मति।
५ अंश शक्ति।
६ पदार्थ अभावनी।
७ तुरिया।

प्रकृति जीव मोह की दो हैं।

जीव मोह की सप्त हैं।	प्रकृति मय शरीर की सप्त हैं।
१ बीज जागृत।	१ जन्म से
२ जागृत।	२ बाल्य ३ वर्ष तक
३ महा जागृत।	३ कुमार २५ वर्ष तक
४ जागृत स्वप्न।	४ युवा ५५ वर्ष तक
५ स्वप्न।	५ वृद्ध ७५ वर्ष तक
६ स्वप्न जागृत।	६ जरा १०० वर्ष तक
७ सुषोप्ति।	७ महाजरा १२० वर्ष तक।

अब प्रथम पुरुष मय मोह की अवस्थाओं का लक्षण वर्णन करेंगे।

१ जो शुद्ध चित्त में चेतना का अँग है उसी का नाम जीव है। यह अवस्था सर्व जीवों की बीज रूप है। इसीलिये इस अवस्था के बीज जागृत कहते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण जीव धारियों की एक समान होने से ही इसका नाम बीज पड़ा है यह निरेन्द्रिय जागृत है।

२ जब जीव को अपने अहंकार में दृढ़ चेतना हुई और जब यह मेरा शरीर है यह प्रतीत हुआ और जन्मान्तर का बोध भासने लगा इसी को जागृत कहते हैं।

३ जो शब्दादिक बोध का होना और उनके अर्थ में दृढ प्रतीत हो जावे, उसको महा जागृत कहते हैं।

४ जो महा जागृत में दृढ होकर फिर मन में अन्दर जो विचार उत्पन्न हो और वह उत्पन्न विचार यदि दृढ हो भासने लगे वह जागृत स्वप्न अवस्था है अर्थात् जागृत में विपर्यास हो उदाहरणार्थ जेवरी में सर्प, सीपी में चांदी इत्यादि जागृत में भ्रम को जागृत स्वप्न कहते हैं।

५ जो इन्द्रियावस्था में उदान वायु में बैठकर अपनी कल्पनाओं को करे और नाना भांति की कल्पित कल्पना करके भासे जब जागृत में आवे तब उनकी स्मृति असत्य रूप को जाने वह स्वप्न अवस्था है।

६ अब जो स्वप्न हुआ उसमें दीर्घ काल बीत गया हो और उस स्वप्न और निन्द्रा से पृथक जन्म मरण आदि देखता जाय उसको स्वप्न जागृत कहते है।

७ ऊपर वाली छओं अवस्थाओं का जहां अभाव हो जावे और जड़ रूप हो उसको सुषोप्त कहते हैं; इस प्रकार यह पुरुष मय मोह की है और इसके अनन्तर पुरुष मय शरीर की है। वह दूसरा भाग जो मनुष्य की उत्पत्ति लिखेंगे; उसमें वर्णन करेंगे। अब हम पुरुष मय ज्ञान की जो सप्त अवस्था हैं उनका वर्णन करेंगे।

प्रकरण तृतीय

अब ज्ञान मय पुरुष की अवस्थाओं के लक्षण कहते हैं।

(१) प्रथम शुभेच्छा इसके लक्षण यह हैं कि जिसको यह जिज्ञासा उत्पन्न होवे कि मैं मूर्ख हूं, मैं झूठा हूं अथवा मेरी बुद्धि खराब है। पापों में लग रही है, मैं पाप करता हूं, मैं कौन हूं, यहां जन्म लेने का क्या कारण है। मर कर कहां जाना है। मरना क्या है। सत्य असत्य क्या हैं; ज्ञानाज्ञान क्या है। धर्माधर्म क्या है। ईश्वर परमात्मा क्या है; जीव क्या है इत्यादि। अपने आपको और सत्य की खोज को जो जानने की इच्छा करे, उसे शुभेच्छा कहते हैं।

(२) विचारणा यह है कि मुझको अब क्या करना चाहिये, इस प्रकार सत्य की खोज करनी चाहिये, असत्य को जानकर त्यागना चाहिये। सत्य शास्त्रों को विचारना प्रत्येक पदार्थ में सत्यासत्य का विचार करना यह विचारना है।

(३) तनुमानसा अर्थात् जो विचार की सत्य की हुई मन की मन्सा को अपने व्यवहार में लाना अर्थात् जैसा कहना वैसा बनना और जो तन (शरीर) के मानसा विषय विकार तृष्णा आदिकों का निगृह करना यह तनुमांस हुई।

(४) सत्व पति इस अवस्था में जो ऊपर बताई हुई तीनों अवस्थाओं का मनन निदिध्यासन और अभ्यास करके उसके तत्वसार (सत्वों) को छांट २ अपने अन्दर स्थित करना। उदाहरणार्थ जैसे राज हंस पानी और दूध के मिले हुये को अपनी चोंच से भिन्न २ करके दूध को पी जाता है, और पानी को छोड़ देता है। इसी प्रकार से इस में सत्य शास्त्रों का विवेक कर उनके अन्दर से सत्व (सार) को अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा जान लेता है।

(५) यह अशशक्ति कहते हैं। ऊपर जो चार अवस्था बताई गई हैं उनके फल को विभूति कहते हैं। उस फल में अंश शक्ति रखना अर्थात् जो कुछ सिद्धियों में प्राप्त हों उनमें आसक्त होकर न बैठ जाना, और जो दुःख सुख, हानि, लाभ जीवन मरण इत्यादि जो विकार हैं जैसे काम, क्रोध, मोह लालच; उनमें भी न पड़ कर इन सब द्वन्दों को असत्य मान कर अपना ध्येय ईश्वर में रखे रहना अर्थात् ईश्वर जैसे रखे उसा में सन्तोष करना! सुख दुःख में भेद न करना किसी दूसरे के बहकाने में न आना। अपने स्वधर्म के ध्येय को न छोड़ना न दूसरे के लालच में आना; अपने में अटल रहना। किसी की सगति में पड़कर अपने आप को न भुलाना।

(६) पदार्थ अभावनीय इसमें भोग के पदार्थ हैं उनका अभाव करना अर्थात् उन पदर्थों से वैराग्य हो जाना और

पदार्थों के दोषों को जानना सो जिनसे प्रत्येक सुख के पदार्थ दुःख रूप हैं। जो हमारे सुन्दर कमनीय मनोहर अंग हैं, वह भी जब रोग युक्त होते हैं जब दुःख दाई हो जाते हैं। इसी प्रकार राज पाट महल, हुक्म हुकूमत, सुन्दर सवारियां गज घोड़े आदि जो संसार के मनकूल व गैर मनकूल अर्थात् जंगम और स्थावर आदि सब और सुन्दर नव योवन कामणीय आदि जो भोग और पदार्थ उनमें दोष दृष्टि से देखना। भाव में और अभाव में मन को आशक्त न होने देना और इन भौतिक पदार्थों को तुच्छ समझना और इसी प्रकार से वर्तना यह पदार्थ अभास नीय हैं अर्थात् अष्ट सिद्धियों पर ठोकर लगाकर ईश्वर में अपना भाव लगाना यही पदार्थ अभावनीय है।

(७) जब सप्तमी अवस्था पदार्थ अभावनीय का अभ्यास करके दृढ होकर भेदकल्पना का अभाव करके अपने स्वयं में दृढ परिणाम हो जाता है और जहांपर ऊपर वाली छःओं अवस्थाओं का एक ही कारण प्राप्त हो उसको तुरिया ज्ञानावस्था कहते हैं, यही जीवन मुक्त अवस्था है।

इस प्रकार इस ज्ञान की सप्त अवस्थाओं का वर्णन ऊपर करके दिखाया है यह सब उस चेतना का खेल है। जैसे चित्त के बिना चेतना अनुभव में नहीं आसकती और बिना ज्ञान के अनुभव नहीं आसकता और अपने आप को जाने बिना ज्ञान नहीं आसकता। इस सिद्धान्त से अपने स्वरूप को जाना ही ज्ञान है; और उस ज्ञान का जो ज्ञाता है वह पुरुष विशेष है; क्योंकि ज्ञाता से विहीन ज्ञान क्या कर सकता है। कारण कि ज्ञान, ज्ञान के आश्रय नहीं टिक सकता

है। ज्ञाता के आश्रय ही ज्ञान रहता है और ज्ञाता पुरुष ही है। यह जो ऊपर चैतनाओं का ज्ञान कहा है, जैसे ज्ञान अनेक होने परभी ज्ञाता एक ही होता है। क्या ज्ञान, क्या ज्ञाता, क्या ज्ञेय यह सब के सब उस चैतन्य पुरुष मय हैं। यह पुरुष जिस २ अवस्थाओं का ज्ञाता होता है। उसी उस के अनुसार सृष्टि लोक लोकान्तरों का अनुभव लेता है। यह जो जागृन, स्वप्न, सुषोपति जगत की जागृत अवस्था में हैं और: जो तुरिया है वह जीवन मुक्त हैं और पंचवीं छठी जो हैं वह विदेह मुक्ति के हैं। अब कोषों के अन्दर अवस्थाओं का वर्णन करेंगे।

प्रथम अन्नमय कोष को कहेंगे। यह स्थूल पुरुष ही अन्यमय रस पुरुष है। यही कर्म पुरुष कह लाता है और जब यह जीव इस कोष में ज्ञाता अभिमानी रहता है वहीं तक अहंकार मय पुरुष कहलाता है. इस अवस्था को जागृत कहते हैं। जब यह पुरुष प्राणमय कोष में चला जाता है और चेतता है उसको विराट पुरुष कहते हैं। जब इसकी अवस्था वैश्वानर रूप की होती है। जैसे जागृत अवस्था ने अपना अनुभव लेते हैं। वैसे यह विराट का लेने लग जाता है। जब यह पुरुष मनोमय कोष में जाकर मन भवन में चेतता है। जब उस अवस्था को तेजस रूप होती है और मन माना दृश्य देखता है। जब यह पुरुष विज्ञान मय कोष जागृत होता है तो विज्ञान का ज्ञाता ब्रह्म रूप हो जाता है और अपनी ज्ञानावस्था तुरिया में अनुभव लेता हैं। और जब यह पुरुष आनन्द मय कोष में जाता है और वहां जागृति होती है। तब चैतन्य ईश्वर बन जाता है और वह

आनन्द अवस्था को प्राप्त होकर समष्टि रूप का अनुभव करता है। इस प्रकार सबही कोषों में और भवनों में यह पुरुष ही अवस्थ ओं का साक्षी ज्ञाता अभिमानी होता रहता है और अनुभव प्राप्त करता रहता है जैसे प्रवासी मनुष्य।

॥ इति अवस्था ॥

अध्याय अष्टम

प्रकरण पहिला

॥ बाणी की उत्पत्ति ॥

ये बाणी भी उस समष्टि पुरुष की मुख वाक बांणी जो परा से उत्पन्न होकर बैखरी में सिद्ध होती है। जैसे हमारे छोटे से शरीर में उस दिव्य परमात्मा की दिव्य बाणी है। वह हमारे मुख से प्रकट होती है। इस प्रकार से वह परा बाणी परमपिता के मुख से प्रकट होती है। इस प्रकार के हमारे शरीर में अपान और प्राण के प्रति वेग में बाणी की प्रवृति होती है। अर्थात् बाणी का अधिष्ठान अपान है और अपान का अधिष्ठान अग्नि है और अग्नि का अधिष्ठान प्रजापति का मुख है और बाणी का देवता अग्नि है। इस लिये प्रजापति के मुख से ही बाणी की उत्पत्ति हुई।

अब प्रथम परा बाणी को कहते हैं।

परा का स्थान हमारे शरीर में नाभि स्थान में स्पन्दन-आत्मक है। और लक्ष्य इसका जानना है। और ध्वनि इसका

स्फुरण है। वह सम्पूर्ण जड़ चैतन्य पदार्थों में होता है परा का स्फुरण का आघात होते ही कंम्पनों की क्रिया (Vebration) की तरंगें उठकर प्राण वायु द्वारा नाद प्रकट होता है (नाद की उच्चता अथवा नीचता) सूक्ष्म गम्भीरता इन तरंगों पर निर्भर है। उच्चनाद छोटे तरंगों से निकलता है और छोटा नाद लम्बे तरंगों से निकलते है, एवम्; सूक्ष्म तरंगों से गम्भीर नाद और गम्भीर तरंगों से सूक्ष्म नाद होता है। सब से हल्के नाद के १५ तरंगों से हमको सूक्ष्म सुनाई देता है, और इन तरंगों की लम्बाई ३० फीट तक होती है। सब से ऊंचे नाद के ५०००० तक तरंग होते हैं। उसके ऊपर और १५ से नीचे हमको सुनाई नहीं देते है और उनकी लम्बाई एक लाख फीट तक होती है। इस प्रकार से इनके अन्य तरंगों की गणना के अनेक भेद हैं। परन्तु उनको हम यहां नहीं बतलाते हैं। इस प्रकार जब पराके तरंग जब प्राण वायु क्रिया माण होकर लगातार ध्वनियों के स्फुरणों का यन्त्रीय भवन हृदय में होकर पश्यन्ति बाणी से व्यक्त होते हैं।

(पश्यन्ति बाणी)

पश्यन्ति बाणी का स्थान हमारे शरीर में हृदय है। और यह बाणी ऋणात्मक है। परा से जो ध्वनि (नाद) उत्पन्न होकर पश्यन्ति में आकर वह रणँकार रूप में होता है और प्रतिध्वनियों को उत्पन्न कर उनके सूक्ष्म तरंगों को मिलाकर उनके कालान्तरों की व्यक्त कर देती है। जिस नाद का रणँकार बन जाता है और हृदय से निकलकर कंठ प्रदेश में जाकरके क्रिया माण रणँकार स्वरात्मक होकर अपने को मध्यमा से व्यक्त करता है।

(मध्यमा वाणी)

मध्यमा वाणी का स्थान कंठ प्रदेश में है और यह स्वरात्मक है। जो रणुंकार पश्यन्ति में से व्यक्त होकर इस मध्यमा में आकर स्वर बन जाते हैं और अपने रागों के अनुसार ऋषभ, षडज्य और कोमल मध्यम तीव्र होकर वैखरी में जाकर यह स्वर अक्षर रूप बन जाते हैं।

(वैखरी वाणी)

वैखरी का स्थान मुख है। और मध्यमा के प्रकट स्वरों को यह वर्णात्मक करके यह अक्षरों को प्रकट करती हैं और उनके अर्थों में उच्चारण करती है। इसी से चारों वेद और व्यारकण की उत्पत्ति हुई है।

अब इन वाणियों की प्रक्रियाओं को कहते हैं।

वाणी, विचार, श्वाँस, शब्द और अर्थ अवस्था, इनकी उत्पत्ति मूलकन्द से एकही है। और हमको जो भिन्न भासती है। वह भिन्न २ क्रिया और रूप के कारण से भिन्नता प्रकट होकर हमारे समझ से वाहिर है। यदि वाणी समझ में आई तो अर्थ नहीं आता। यदि अर्थ वाणी दोनों समझ में आती हैं तो अक्षर समझ में नहीं आते। और श्वाँस को जाने तो विचार नहीं जानते और विचार को जाने तो श्वाँस को नहीं जानते। इस प्रकार एकसे दूसरे में भिन्नता है। परन्तु परा वाणी के अन्दर तो इन सबकी समीकरणता एक होकर वाणी विचार आदि का सम्पूर्ण ज्ञान जानने में आजाता है।

यह मूलकन्द स्पन्दन–विचार का स्फुर्ण विज्ञान घन्न तत्व की सीधी अवस्था है। यह स्वाभाविक सहज समुद्भुता शक्ति है। और शरीर के कण २ में भरी हुई है। इस चैतन्य प्रकाश शक्ति से यह विज्ञान धन तत्व अखण्ड उन्मुख अखण्ड स्पन्दन स्फुर्ति मान है। यह स्पन्दन विचारान्दोलन (Thought vibration) कारण रू होके जिन २ कार्यों में प्रवेश करता है। उनको चैतन्य उन्मुख करता है अर्थात् असीमता पंच तन्मात्रा आदि द्रव्यों में प्रवेश करता है। यह विज्ञान घनतत्व जड चैतन्य की लीला है। मुख्य जगत का यहस्पन्दन ही केन्द्र है। और इसका आदिम स्फुर्ण भविष्य में उदय पाने वाली वर्णात्मक वाणियों का मूल बीज है। इसलिये इसको प्रथम परा वाणी कहते हैं। यहीं से (ॐ) की प्रथम मात्रा, अ, का उदय होता है। यह परा विशेष उन्मुख होके हृदय स्थान प्राणको देखती है। तब उसे पश्यन्ति कहते हैं। यहीं से (ॐ) की द्वितीय मात्रा (इ) का उदय होता है। उसके आगे यह वाणी बुद्धि की वृत्ति सम्मलित होती है और मर्म व्यूह (Nervous Syston) के ज्ञान ततुओं (Sensory nervous) का आन्दोलन करके कंठ प्रदेश में विचार का रूप धारण करती है। इसी-लिये इसको मध्यमा वाणी कहते हैं। स्पन्दन विचार के रूप में परिवर्तित स्फुर्ण प्राण वृत्ति में सम्मिलित होकर वाणी स्थान में रहे हुए मर्म व्यूह की क्रिया तन्तु (Motor nervous) को संचालित करके वर्णात्मक रूप धारण करती है। उसे वैखरी वाणी कहती हैं। यही 'ऊ, की अर्ध मात्रा (म) समाप्त होके ओष्ठ बन्द होजाते हैं। और अक्षर बनकर वाणी तिरोहित होती है। इसी प्रकार परा, पश्यन्ति,

मध्यमा, और वैखरी क्रिया करती है जब नाद, विचार अक्षर श्वांस, अर्थ आदि का क्रम विकास होता है। इसीलिये शास्त्रों में वाणी को ज्ञानमूला कहते हैं।

जगत भर के परिचय के अभ्यास का एवम् ज्ञान का कारण यही परा वाणी का स्फुर्ण ध्वनि रूप नाद अनाहत हृदय कमल में गुंजाय मान होके (ॐ) रूप से, सोंऽह 'हंस, बनकर श्वांस प्रश्वांस द्वारा व्यक्त होता है। इस प्रकार से बाणियों की क्रिया होकर अक्षरों को उत्पत्ति होती है। जो अक्षर और स्वरों से ही छन्दादि बनते हैं। अब अक्षरों के उत्पत्तियों को वर्णन करेंगे।

द्वितीय प्रकरण

अक्षरों की उत्पत्ति।

प्रथम तीन शब्द अ, इ, उ, निकले हैं, जिन्हें लघु स्वर कहते हैं और जिनका उच्चारण अति सुलभ है। इनकी वृद्धि होने पर आ, इ, और उ, क्रम से प्रकट होते हैं, और दीर्घ स्वर कहलाता हैं। अ. इ, के परस्पर सम्बन्ध से ए, उत्पन्न होते हैं। और आ, ए के मिलने से ऐ; सिद्ध होता है, अ, और उ, के मिलने से ओ, और आ, तथा ओ, मिलने से औ, बनता है और यह चारों गुण कहलाते हैं।

श्वांस को नासिका द्वारा बाहर निकालते हुए 'अ, के उच्चारण करने से अनुस्वार बनता है। और (अं) रूपसे लिखा जाता है। श्वांस को मुख से निकालते हुए, अ, को

उच्चारण करने से विसर्ग बोला जाता है। और वह 'अ, के रूप में लिखा जाता है। इस प्रकार प्रथम तीन शब्दों को चौगुना करने से १२ स्वर सिद्ध होते हैं।

ऋ ॠ और ऌ ॡ भी स्वर माने जाते हैं। परन्तु यह चारों व्यञ्जन अक्षर के सम्बन्ध होने पर प्रतीत होते हैं। व्यञ्जन अक्षर की संख्या ३३ है और उनका विस्तार इस प्रकार से है।

क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब, यह दस अक्षर प्राण वायु द्वारा अर्थात् श्वांस को बाहिर से अन्दर की ओर खैंचने से उत्पन्न हो बोले जाते हैं।

ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, ह यह ११ अक्षर अपान वायु अर्थात् श्वांस को अन्दर से बाहिर को निकालते हुवे उत्पन्न हो बोले जाते हैं।

ङ, ञ, ण, न, म. यह पांच अक्षर उदान वायु द्वारा अर्थात् श्वांस को नासिका द्वारा निकालते हुए बोले जाते हैं।

य, र, ल, व, श, ष, स, सात अक्षरों की उत्पत्ति समान वायु से हैं। और इनके उच्चारण में और व्यञ्जनों से परिश्रम थोड़ा होता है।

सकार शब्द सबसे उत्तम और निरायास हैं। और वह इस कारण हंस मंत्र का पहिला अक्षर होकर आत्म भावको दिखाता है। हकार भी अपने वर्ग के उन दस अक्षरों के उच्चारण का हेतु है। जिनकी उत्पत्ति अपान वायु द्वारा ऊपर कही गई है और वह उन सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये

हकार हंस मंत्र का दूसरा अक्षर माना गया है। और उससे अनात्म भावका लक्ष्य पहिचाना जाता है।

जब प्राण और अपान व्यान में लय होजाते हैं। तब वैखरी बाणी बनती है अर्थात् स्वर से व्यञ्जनों को व्यक्त करती है।

व्यंजन अक्षरों की उत्पत्ति के स्थान भिन्न २ हैं, जिन्हें कंठ रूप बाणी के परदों के समान समझना चाहिये उसका विस्तार इस प्रकार है।

(१) गलेसे, क ख ग घ, निकलते हैं और गला निषाद के परदेके तुल्य है.
(२) तालुसे, च छ ज झ ,, और तालु धैवत ,, ,,
(३) जिह्वासे, ट ठ ड ढ ,, और जिह्वा पंचम ,, ,,
(४) दांतोंसे, त थ द ध ,, और दांत मध्यम ,, ,,
(५) ओष्ठोंसे, प फ ब भ ,, और ओष्ठ गंधार ,, ,,
(६) नाकसे, ङ ञ ण न म ,, और नाक ऋषभ ,, ,,
(७) मुखसे,य र ल व श ष ह ,, निकलते हीं और मुख स्वर परदे के तुल्य है।

इस प्रकार इन सात स्थानों से सात स्वर निकलते हैं और प्रत्येक स्वर उदात, अनुदात और श्रुति के भेद से तीन प्रकार का है। सात को तीन से गुणा करने से २१ भांति के स्वर सिद्ध होते हैं। इसीलिये सब वाजों के सम्पूर्ण ठाठ २१ स्थान हुआ करते हैं। जिनका विस्तार तीन ग्राम और सात स्वरों के अनुसार है। यहां से ही वाणी अथवा सांगीत का

कुछ परिणाम उत्पन्न होता है। अर्थात् उसके उच्चारण करते थोड़ा या वहुत समय का अनुमान किया जाना है; जिसका नाम छन्द है। और जिसको साम विद्या वाले ताल और लय कहते हैं अर्थात् साम छन्दों में आकर लुप्त होता है और विभक्तसा प्रतीत होता है।

छन्दों में छन्द उत्तम माना जाता है कि उसमें परिणाम का नियम नहीं होता है।

इस प्रकार अक्षरों की उत्पत्ति हुई और अक्षरों से ही गद्य अथवा पद्य की रचना होती है।

॥ इति द्वितीय प्रकरणम् ॥

प्रकरण तृतीय

वाणी की महिमा।

वाणी की महिमा अगाध है, जिसका पार पाने में ब्रह्मा विष्णु इत्यादि असमर्थ हैं तो मैं कैसे इसकी महिमा गा सकता हूं। देखो ऋग्वेद १० मण्डल के १२५ वें सूक्त में इसकी दिव्य महिमा का उद्गायन। आम्भृण नाम के महर्षि की दुहिता (पुत्री) वाक्, नाम्नी कन्या का गाया हुआ है। उसको ही हम यहां उद्धरित करके वाणी की महिमा वतलाते हैं।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ॥
अहं मित्रावरुणोभाविभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मांत उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत ! श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाउ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥७॥

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥८॥

अर्थ—मैं सूक्त उद्गायत्री 'वाक' आम्भृणी जगत् कारण ब्रह्म चैतन्य रूप होके रुद्रों के और वसुओं के साथ विचरती हूं। मैं आदित्य और विश्व देवों के साथ विचरती हूं। मैं ब्रह्मी भूत होके मित्र एवं वरुण-दोनों को धारण करती हूं॥ १ ॥ मैं शत्रुओं को हनन करने वाले स्वर्ग में रहने वाले देवतात्मक सोम को धारण करती हूं। हविसे युक्त देवताओं को सुन्दर हविसे तृप्त करने वाले सोम रस

को बढ़ाने वाले यजमान के लिये योग फल रूप धन को मैं ही धारण करती हूं ॥ २ ॥ मै राष्ट्री अर्थात् जगत की ईश्वरी हूं। मै सब धन को एकत्रित करके उपासकों को प्राप्त कराती हूं। जो यज्ञ के योग्य है, उनमें मै ही प्रथम मुखिया हूँ। बहुधा प्रपंचात्मक होकर मैं भूरी २ भोली प्राणियों के जीव भावसे आत्मा में प्रविष्ट करती हूं। इसलिये मुझे देवताओं ने बहुत स्थानों पर प्राप्त किया है। अर्थात् मेरे विश्व रूप होकर रहने से देवता जो २ बाणी करते हैं। वह सब मुझको ही करते है ॥ ३ ॥ मेरी ही भो क्तृत्व शक्ति से खाते हैं। वह देखते है व श्वासोच्छ्वास लेते है और कहना सुनते है। किन्तु जो अन्दर में रहने वाली मुझ (परा) को नहीं जानते वह अज्ञान वश संसार में दीन हीन होते है। हे श्रुत श्रवण किये हुए मित्र ? (जीवात्मा) मै तुझको श्रद्धा युक्त जो कहती हूं सो सुन ॥ ४ ॥ मैं देव और मनुष्यों की सेवायमान होकर स्वयमेव (परा विधा) यानि आत्म विद्या का उपदेश करती हूं। जिसपर मै प्रसन्न होती हूं। जिस को मै चाहती हूं। उसको सबसे श्रेष्ठ करती हूं। उस को ब्रह्मा, विश्व सृष्टा करती हूं। एवं ऋषि आत्मदर्शी तथा सुमेधा बुद्धिमान बना देती हूं ॥ ५ ॥ त्रिपुर बिजय के समय ब्रह्म द्वेषी हिंसक त्रिपुर निवासी असुर को मारने के लिये महादेव के धनुष की प्रतंचा मै ही चढाती हूं। शत्रुओं के साथ स्तुति करने वाले जनों का समग्र मै ही करती हूं। मैं द्यौ और पृथ्वी में प्रविष्ट हूं॥ ६ ॥ मै द्यौ पिता को उस परमात्मा के मस्तक पर उत्पन्न करती हूं , मेरी उत्पत्ति वही अन्तरिक्ष समुद्र से है। मै सर्वत्र विश्व में प्राणी मात्र में भूत जाति में प्रविष्ट हूं। और उस द्यौ अन्तरिक्ष को मैं अपने

कारण भूत-मायात्मक देह से छूती हूं ॥ ७ ॥ मैं ही सब भवनों में कारण रूप होके कार्य का आरम्भ करती हूं। वायु के तुल्य स्वछ वेगसे वहती हू। मैं द्यौ-अन्तरिक्षक और पृथ्वी से परे अर्थात् सब विकार भूत जगत से परे (परा) रहती हूं। अर्थात् संग रहित-एकाकी उदासीन कूटस्थ प्रज्ञा चैतन्य रूप होकर मैं अपनी महिमा और शक्ति से ऐसी बनी हुई हू ॥ ८ ॥

यह उद्गात्री (वाक) नाम्नी थी और स्वयम् अपने को परमात्मा स्वरूप मानती थी अथवा यों कहा जा सकता है, कि यह प्रत्यक्ष, संविन्मूल वाक थीं, जो परा से उदय पा कर पश्यन्ति में परमात्मा कोदेखती हुई मध्यमा में स्वर स्वरूप बनकर वैखरी मे स्फुट होकर सूक्त रूप बनी है। जैसे परालक्ष्य करती है, पश्यन्ति देखती है, मध्यमा मनन करती है, और वैखरी बोलती है। इस प्रकार से (वाक) प्रकट होता है। इस से अधिक वाणी की क्या महिमा हो सकती है।

॥ इति वाणी प्रकरणम् ॥

द्वादश-प्रकरणम्

व्यष्टि पुरुष की विभक्तियां।

व्यष्टि पुरुष की आठ विभक्तियां होती हैं। अब इन आठ विभक्तियों को बतलाते हैं।

(१) शरीरस्थ पुरुष (२) काम मय पुरुष (३) आदित्य पुरुष (४) श्रोत पुरुष (५) छाया पुरुष (६) प्रतिबिम्ब पुरुष (७) जलस्थ पुरुष (८) पुत्र पुरुष।

इस प्रकार यह व्यष्टि पुरुष की आठ विभक्तियां होती हैं। अब उनके पृथक २ लक्षण और आश्रय का वर्णन करेंगे।

१ त्वचा, मांस तथा रुधिर आदि शरीर नाम के पुरुष के लक्षण और आश्रय रूप है।

२ स्त्री के भोग की इच्छा रूप काम काममय नाम के पुरुष का आश्रय रूप स्त्री है।

३ शुक्ल, नील, पित्तादि अनेक प्रकार के रंग रूप आदित्य नाम के पुरुष नाम के आश्रय हैं।

४ प्रतिध्वनि रूप शब्द में विशेष करके जीव व्यक्ति वाला श्रोत नाम का पुरुष है। इस का आश्रय रूप आकाश है इसीको छिद्रमय पुरुष कहते हैं।

५ अंधकार रूप तक छाया मय के पुरुष का आश्रय रूप है।

६ प्रति बिम्व को ग्रहण करने योग्य दर्पणादि स्वच्छ पदार्थों में प्रतिबिम्ब नाम का पुरुष है। इस पुरुष का आश्रय रूप भास्कर है।

७ जल २ में रहे हुए पुरुष का आश्रय रूप वरूण है।

८ उपस्थ (लिंग) इन्द्रिय पुत्र नाम के पुरुष का आश्रय रूप है। इस प्रकार इन विभक्तियों ने पुरुषों के लक्षण और आश्रय बतलाये हैं। अब इन के कारणों का वर्णन करेंगे।

१ शरीर रूप पुरुष का कारण अन्नमय रस है। वह परिणाम को प्राप्त होकर अमृत रूप शरीर पुरुष का कारण है।

२ स्त्री ही काम मय पुरुष का कारण है। अर्थात् जो स्त्री है वही काम मय पुरुष है। क्योंकि स्त्री के रूप को देखते ही काम जाग्रत होता है।

३ आदित्य पुरुष का कारण चक्षु (नेत्र) इन्द्रियां हैं।

४ श्रोत पुरुष का कारण रूप दिशा है।

५ मृत्यु छाया मय पुरुप का कारण रूप है।

६ प्राण प्रतिबिम्ब पुरुष का कारण रूप है।

७ जल जीवस्थ पुरुष का कारण रूप है।

८ प्रजा पति पुत्र नाम के पुरुष का कारण रूप है।

इस प्रकार व्यष्टि पुरुष की आठ विभक्तियां आठ आश्रय और आठ कारण हुये। ये आठ प्रकार की विभक्तियों में कारण रूप से तो एक ही व्यष्टि पुरुष इनमें प्रवेश होकर अपना अपना व्यवहार करने में समर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, जैसे तन्तु रूप कारण पट रूप कार्य प्रवेश करके शीत की निवृति आदि कार्य करता है। इसी प्रकार वह जीवात्मा सर्व कार्य प्रपंचों में प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यवहार सिद्ध करता है। जैसे तन्तु रूप कारण पट रूप कार्य को कार्य पन से रहित करके केवल कारण रूप से रहा हुआ होता है। इसी प्रकार यह जीवात्मा प्रंपचों के उपाधि के संहार काल में सर्व कार्यों से रहित होता है और फिर समष्टि से ही सर्व कार्य कारण का व्यवहार होता रहता है। जैसे समष्टि का कार्य व्यष्टि में और व्यष्टि का कार्य अन्तःकरण में और अन्तःकरण का कार्य इन्द्रियों में और इन्द्रियों का कार्य रूप आदि विषयों में और विषयों का कार्य भूतों में और भूतों

का कार्य स्थूल सूक्ष्म शरीर (पिण्डों में) और प्राणों का कार्य शरीरों में। प्राण का अपान में, अपान का व्यान में, व्यान का उदान में और उदान का समान में होता है। इसी प्रकार अव्यक्त का व्यक्त और व्यक्त से व्यष्टि में और व्यष्टि से विभक्तियों में होता रहता है। यह सब विभक्तियां उपाधियों के भेद से भेद ज्ञान और कार्य कारण प्रतीत होती है यह आपको गूढ ज्ञान व्यष्टि पुरुष का कहा है।

* इति द्वितीय सर्ग *

पुरुष विभक्तियों का नकशा

संख्या	किस्म पुरुष	शरीर किस्म	किस्म अवस्था	तत्व	समष्टि व्यष्टि
१	अन्नमय पुरुष	स्थूल	जागृत	पृथ्वी	व्यष्टि
२	रसमय पुरुष	स्थूल	जागृत	जल	व्यष्टि
३	तेजमय पुरुष	स्थुल वैश्वानर	जागृत	अग्नि	व्यष्टि
४	वायुमय पुरुष	सूक्ष्म	स्वप्न	वायु	व्यष्टि
५	व्यापकमय पुरुष	सूक्ष्म	स्वप्न	आकाश	व्यष्टि
६	मनोमय पुरुष	सूक्ष्म	स्वप्न	आत्मा	व्यष्टि
७	विज्ञानमय पुरुष	कारण	तुरिया	बुद्धि तत्व	व्यष्टि
८	आनन्दमय पुरुष	कारण	तुरिया	ज्ञान	व्यष्टि
९	अव्यक्त पुरुष	कारण	सुषोंपति	निर्विकार	समष्टि

नोटः—व्यष्टि पुरुष की विभक्तियां अन्य २ प्रकार से होती हैं जिस में से पहले ८ प्रकार की बताई हैं अभी अव्यक्त को छोड यह भी आठ प्रकार की हैं ।

तृतीया सर्ग

अध्याय पहला

(जड़ाअद्वैतवाद, अर्थात् परमाणुंवाद)

प्रकरण पहला

जिज्ञासू—हमने आपके माया पुरुष और प्रकृति वाद के सृष्टि क्रम को तो बताया परन्तु हमारी यह जिज्ञासा है कि हम परमाणुं वाद के सृष्टि क्रम को जानें। आजकल के वैज्ञान वाद के युग में पुरुष और माया को कोई नहीं जानता अपितु परमाणुंओं को सब कोई जानते हैं और युक्ति पूर्वक प्रत्यक्ष सप्रमाणित सिद्ध कर परमाणुओं से सृष्टि क्रम के विकाश का अनुभव कराते हैं। नाना भांति के पदार्थों की उत्पत्ति परमाणुंओं के द्वारा करके बताते हैं। यह अनुभव सिद्ध बात है फिर भी आप परमाणुंओं का खंण्डन ही करते हैं। इस से हमको यही ज्ञात होता है कि आप परमाणुंओं के सृष्टि ज्ञान को कतेई नहीं जानते लेकिन हम इस बात को मान नहीं सकते कि आप परमाणुओं के रचना ज्ञान से अनभिज्ञ हों क्योंकि जब शास्त्रों में परमाणुओं का वर्णन आया है तो अवश्य आपको इन का ज्ञान होना जरूरी बात है अतएवः हमारी जिज्ञासा है कि आप हम को यह ज्ञान बताकर हमारी जिज्ञासा की पूर्ती करेंगे।

उत्तर—पिछले सर्गों में यह बताया गया है कि इस सृष्टि के मूल तत्व पुरुष और माया है। इसके पश्चात् जीव

और प्रकृति का वर्णन किया है। यह वर्णन वेद वेदांत उपनिषदों और गीता सांख्या के सिद्धांतों पर ही किया गयाहै। वेदांत में तो अद्वेत ब्रह्म वाद का ही सिद्धांत है। उपनिषदों में माया और पुरुष का सिद्धांत है और कपिल मत्तांतर सांख्या में पुरुष और प्रकृति के सिद्धांतों का प्रति पादन किया गया है। पुराणों और स्मृति शास्त्रों में भी इन्हीं शास्त्रों के मता-अनुसार ही सृष्टि क्रम का प्रति पादन किया गया है और इन सब के सिद्धांतों का समावेश का वर्णन एक गीता के अन्तर गत कर दिया गया है अद्वेत ब्रह्मवाद के मतानुसार एकही ब्रह्म सृष्टि को और सृष्टि के सभी लोक लोकांतरों की रचना की और फिर भी वह निर्विकार और निराकार ही है। इसपर अन्य मत मत्तांतर वालों ने अनेक शकांओं के विवाद करते हैं कि निर्विकार वान से यह विकार वान सृष्टि जो क्षण २ में पलटने वाली कैसे उत्पन्न हुई और फिर भी वह निर्विकार ही रहा यह विरुद्ध बात कैसे बन सकती है। इस प्रकार अनेकानेक वाद विवाद की शंका समाधान हैं जिन को पूरा करें तो एक वितण्डा ग्रंथ हो जावे जिस से जिज्ञासा की पूर्ती नहीं होती और प्रस्तुतित विषय लम्बा हो जाता है और समझने में भ्रमण हो जाता है।

इस उत्तर को देने के लिये वेदांती ब्रह्म अद्वेत वादी प्रचलित हुवे और उन्होंने (बहुस्या प्रजायें) अर्थात् मैं एक से बहुत हो जाऊं इसी प्रकार अनेक युक्तियों को दे देकर अपने मत की पुष्टि करते हैं। इसके बाद यही प्रश्न उपनिषद वालों के सामने पेश हुवा तब इन्होंने ब्रह्म के साथ माया को लगाकर सगुण ब्रह्म का वर्णन किया इस के बाद न्याय

वादियों में यह प्रश्न उपस्थित हुआ तो कपिल मुनि ने इस विषय की पूरी खोज की और प्रकृति और पुरुष का प्रतिपादन किया इसी से कपिलजी को सिद्धा नाम कपिलो मुनि माना है। और गीता में भी भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने सांख्य मतके सिद्धांत को प्रमुख मान कर रखा है जिस को सभी मत्तांतर वाले नीर अपवाद से स्वीकार करते हैं। गीता के प्रत्येक सिद्धांत इतने जटिल और गूढ तत्वों में निरुपण किये हुवे है कि जिन को बडे २ धुरन्धर विद्वानों ने महा सागर का थहा नहीं पासके हैं। हमने भी जगह २ इस के ही प्रमाण दिये हैं ताके प्रत्येक जिज्ञासु सुगमता से जान लेवे। अन्य शास्त्रों की नामावली से फिजूल विषय को लम्बा चौड़ा बना कर अपनी विद्वाता दीखानी है लेकिन जिज्ञासुओं के हक में तो अधिक प्रयास ही करना होगा क्योंकि प्रमाणों के प्राप्त करने में श्रम करना पड़ेगा नाना शास्त्रों को खोजना पड़ेगा और गीता के प्रमाण सुगमता से मिल जायेंगे और नतीजा वही निकलेगा जो अन्य ग्रंथों से निकलता है इस से हम गीता के प्रमाणों को अधिक महत्व समझते हैं।

कपिल मुनि की खोज इतनी गहरी है कि जिस के सामने अद्वेतवाद ने अपनी दुम दबा ली कि जिस को जन्म ही से ज्ञान था। इस की श्रेष्ठता का वर्णन करने के पहले यह कहना उचित होगा कि सांख्या शब्द के दो भिन्न २ अर्थ होते हैं जिस में पहला अर्थ कपिलाचार्य द्वारा प्रतिपदित सांख्या शास्त्र है और इसके सिवाय सब प्रकार के तत्व ज्ञान को भी सांख्या कहने की परिपाटी है और इसी

सांख्या शब्द में वेदांत शास्त्रों का भी समावेश किया जाता है। परन्तु शब्द शास्त्रों का यह कथन है कि सांख्या शब्द सं-ख्या धातु से बना है इसीलिये इसका अर्थ शब्द शास्त्री गिनने वाला लगाते हैं। इसी से कपिल शास्त्र के मूल तत्व गिनती के सिर्फ पचिसा है। इस कारण शायद इसको भी साख्यां नाम दिया गया है इस के बाद सांख्या शब्द का अर्थ बहुत व्यापक हो गया और उस में सब प्रकार के तत्व ज्ञान का समावेश होने लगा। इसीलिये पहले पहल कपिल के मतानुयाईयों को सांख्या कहने की परिपाटी प्रचलित हो गई जब वेदांती सन्यासियों को भी यही नाम दिया गया होगा। कुछ भी हो सांख्या में तो कपिल मुनि प्रणीत ही सांख्या शास्त्र है। इसीलिये गीता में १०-२६ में यों कहा है कि सिद्धो में, कपिल मुनि मै हूं। अब यह खोजना है कि कपिल मुनि की प्राचीनता को ? तथापि कपिल ऋषि कब और कहा हुवे-शांतिपर्व के ३४०-३६७ में यह लिखा है कि सनत्कुमार सनक संनदन सनत्सुजात सन सनातन और कपिल ये सातों ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। इन्हों को जन्म से ही ज्ञानं हो गया था इसी ज्ञान को भीष्म ने कहा है कि ज्ञानं च लोके यदि ह्यस्ति किंचित सांख्या गतं तच्च मह-न्महात्मन्) शान्ति वर्प ३०१-१०६ अर्थात् इस लोक का सब ज्ञान सांख्या से ही प्राप्त हुवा।

भगवत में यह कहा है कि कर्दम ऋषि के तप और विद्या से प्रसन्न होकर विष्णु भगवान ने स्वायंभूमनु की कन्या देवहूती से विवाह करने को कहा और उसके गर्भ से आप अपने अंश रूप कपिल अवतार लेकर लोगों को सांख्या

ज्ञान का निर्णय करने को वरदान दिया इस प्रकार देवहूती के गर्भ से कपिल भगवान की उत्पत्ति बताई गई है। चाहे जैसे हो परन्तु सांख्या का सिद्धांत सब को मान्य है और इसी का ज्ञान सब शास्त्रो में कई रूपों से पाया जाता है। आजकल सांख्या शास्त्र का अभ्यास प्राय लुप्त सा हो गया है इसी की नकल में आज कल साइंस है इसीलिये यह प्रस्तावना करनी पड़ी।

प्रकरण दूसरा

अब हम यह बताते हैं कि सांख्या के मुख्य सिद्धांत यह हैं कि इस विश्व में कोई नई वस्तु अथवा शक्ति उत्पन्न नहीं होती इसका सारांश यह कि जो गुण कारण में है वही कार्य में प्रकट होते हैं (सां का: ९) भावार्थ यह कि बीज में जो अव्यक्त रूप में समाया हुवा जो वृक्ष है वह व्यक्त भाव में उत्पन्न होता है। परन्तु जड़ा अद्वैत वाद ऐसा नहीं मानता उसका सिद्धांत है कि क्रिया द्वारा वस्तुओं का परिवर्तन होकर नई वस्तुएँ बन जाती हैं जैसे बीज के नष्ट होने से अकुर और अंकुरादि के परिवर्तन से वृक्ष होता है इसी प्रकार दूध से दही और लकड़ी के जलने से राख आदि प्रत्यक्ष होते हैं। परन्तु सांख्या का कहना है कि क्रियाओं के परिवर्तन से मूल तत्त्व नहीं पलटते उनके रूप रंग और आकार पलट जाते हैं परन्तु मूल द्रव्य नहीं पलटते जैसे बीज का नाश नहीं होता बल्के पृथ्वी आदि दूसरे द्रव्यों को अपने अन्दर खींच कर अंकुर का नया स्वरूप

होकर वह वृक्षाकार में व्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार लकड़ी के जलने में यदि उसके धुवें राख आदि पदार्थों का संगठन किया जाय तो वह लकड़ी के मूल तत्त्व ज्यों के त्यों मिल जाते हैं केवल रंग रूप और आकार ही नाश होता है न कि मूल तत्वों का इसी प्रकार जैसे सोने के जेवर हैं उन जेवरों के नाम आकारों से वह जुदे २ हैं परन्तु जब इन जेवरों को गलाया गया अग्नि में तब इनका नाश हुवा कहते हैं परन्तु जेवर के मूल धातु सुवर्ण का नाश नहीं होता बल्के उस सुवर्ण से अन्य नाम रूपाकार के अन्य जेवर बन जायेंगे और अन्य नाम की ओपमा पायेंगे इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के नाम रूप आकारों का नाश है न कि उसके मूल तत्वों का यह मुख्य सिद्धांत है।

यदि हम यों मान लें कि कारण में जो गुण नहीं है वह कार्य में स्वतन्त्र रीति से उत्पन्न हो जाते हैं इसमें क्या हर्ज हैं। अगर ऐसा ही है तो पानी से दही क्यों नहीं जमता। तात्पर्य यह है कि जो कारण में है ही नहीं वह कार्य में कहां से आया। अर्थात् असत्य के अस्थि तत्व ही नहीं न असत्य सत्य होता है इसकी पुष्टि में छान्दोग्योपनिषद में कहा है कि (कथ मसतः संज्ञायते। ६-२) मूलमें जो सत्य है ही नहीं उससे सत्य कैसे हो सक्ता है। इसी को गीता में यों कहा कि नासतो विद्यते भावना भावो विद्यते सत्त. २-१६ इससे यह साफ सिद्ध होता है कि जिस कारण में सत्य का लवलेश मात्रा में भाव है ही नहीं उससे कभी सत्य भाव उत्पन्न होते नहीं देखा और न सत्य का कभी नाश होता है न सत्य का कभी अभाव ही होता है और जो असत्य है

उसका हमेशा नाश होते देखा है जो असत्य के भाव हैं नाम रूप आकार इनका हमेशा नाश होते देखा है। सांख्या वादियों का सिद्धान्त है कि यह जो नाम रूप आकार के गुणों की भिन्नता है वह मूल में सब अभेद रूप से एक ही अव्यक्त है।

आधुनिक रसायन शास्त्रज्ञोंने पहले ६२ पदार्थों की खोज की थी फिर आखिर खोज करते २ यह निश्चय कर बताया कि ये ६२ पदार्थ मूल तत्व अथवा स्वयम सिद्ध नहीं है। किन्तु इन सब के मूल में कोई न कोई एक ही पदार्थ है वही स्वयप्रसिद्ध मूल तत्व है और यह जो अन्य पदार्थ हैं वह इसकी ही विकृतियां हैं। इसलिये अब इस सिद्धान्त का अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं सृष्टि के सब पदार्थों का जो मूल तत्व है उसको ही सांख्या में प्रकृति कहते हैं। इसी को सांइन्स वादी नेचर कहते है।

तीसरा प्रकरण

(अद्वैत मत)

यह अद्वैत मत दो प्रकार का है। एक केवल ब्रह्म वाद और दूसरा केवल जड़ वाद। यह जड़ अद्वेत के ही अन्दर परमाणु वाद है। परमाणु वादियों का यह कथन है कि सृष्टि और सृष्टि के पदार्थ केवल परमाणुओं से बने हैं। ब्रह्म अद्वैत वादी कहते हैं कि सृष्टि और सृष्टि के पदार्थ केवल ब्रह्म से बने हैं। इन दोनो मे अन्तर इतना है कि ब्रह्मवादियों का ब्रह्म चैतन्य विशेष है और जड़वादियो का परमाणु क्रिया

विशेष है। सांख्यावाद का मत इन दो से भिन्न है वह प्रकृति और पुरुष का है यह अद्वैतवाद के बजाय द्वैतवाद है अर्थात् दो तत्वों से सृष्टिक्रम को मानते हैं परन्तु वास्तविक गहन खोज की दृष्टि से देखा जाय तो ऊपर वाले दोनों अद्वैत वादों का समावेश एक सांख्या मत के अन्दर हो जाता है। जैसे ब्रह्म वादियों का ब्रह्म चेतन्य पुरुष है और परमाणु-वादियों का परमाणु पुरुष जड़ विशेष है। परन्तु सांख्या में जड़ को प्रकृति और ब्रह्म को पुरुष माना है। इससे जड़ और चेतन्य दोनों का ही समावेश सांख्या मतान्तगत हो गया है इसी का एक दृष्टान्त है। एक गांव में दोनों प्रकार के अद्वेत मतवाले बराबर रहते थे इनमें अद्वेत ब्रह्म वादी तो आंखों से सूझते हैं परन्तु हाथ पांव आदि अंगों से क्रिया रहित हैं और अद्वेत जड़ वादी हाथ पावों से तो क्रियावान परन्तु आंखों से अन्धे हैं। इत्तफाकिया गांव में आग लग गई अब दोनों मतों वाले घबराये कि इस आफत से कैसे बचें इतने में कहीं से इत्तफाकिया सांख्या वादी आ गया और इन दोनों मतों वालों को अपने २ मत की पक्षपात में फसे देख कहा कि तुम लोग जब तक पक्षपात रहित नहीं होंगे, तब तक इस आफत से बच नहीं सके। इस पर दोनों मतों ने अपनी बात की पक्षपात छोड़ कर सांख्या के मत को स्वीकार किया जब उसने यह बताया के अन्धों के कधों पर सूझते वैठो और आपस में एक मिल जावो और आपस में उपकार्योकार द्वारा इस आफत से छूट जावे। याने अन्धों को सूझते मार्ग बतावे और अन्धे सूझतों को अपने ऊपर बैठाकर गांव से बाहिर हो जावे। उन्होंने ऐसा ही किया और दोनों मत वाले अपने अभिष्ट स्थान कल्याण मार्ग के

द्वारा मोक्ष पद अभयपद को पहुँच गये। इससे दोनों अद्वेता बादियों के सिद्धान्तों में थोड़े २ सांख्या के सिद्धांत पाये जाते हैं इससे इन दोनों मतों का अन्तर भाव एक ही सांख्या मत में समावेश हो जाता है जैसे अन्धों के कन्धे सूझता यही सांख्या की श्रेष्ठता है।

—: अध्याय दूसरा :—

(पहला प्रकरण)

* परमाणुवाद के अन्वेषण कर्त्ता *

जहां अद्वेत वाद की प्राचीनता का तो पता नहीं चलता परन्तु ये दोनों अद्वेत वाद दो सगे भाइयों की भांति से इन की उत्पत्ति हो तो कोई असम्भव नहीं है। इसी के अन्तर गत जो परमाणु वाद है वह कणाद मुनी का अन्वेषण बताया जाता है। कणाद मुनी कब और कहां हुवे इनका अब पूरा पता नहीं चलता परन्तु कणाद कृत जो वेशेषीक दर्शन है उसके पहले सूत्र से ही यह अर्थ निकलता है कि वह आदि धर्म के ज्ञाता थे अनुमान होता है कि विश्व को धर्मोज्ञान के आदि आचार्य यही महात्मा कणाद भगवान थे और इनके ही सिद्धान्तों से अन्य बौद्ध जैन आदि धर्म पंथ निकले हैं और इनका मुख्य सिद्धान्त यह कि कणमये केन्द्र कैं सगठन से यह चराचर जगत बना है। इसीसे इनको कणाद कहा है। अब इनके सिद्धान्तों की मुख्य २ अनविष्णा करेंगे।

यह प्रमेय वर्ग की परीक्षा करते २ नीचेसे ऊपर के वर्ग की ओर चढ़ते हैं इसी सिद्धान्त से सृष्टि के मूल वर्ग कितने है और उनके गुण धर्म क्या हैं और इनसे अन्य द्रव्यों की उत्पत्ति कैसे होती है और इनके मिश्रण से किन पदार्थों की सिद्धि होती है इत्यादि सिद्धान्तों का समावेश इस मत में है।

सिद्धान्त यह कि केन्द्र के संघठन से यह प्रत्यक्ष सृष्टि बनी हैं और केन्द्र परमाणुओं से संगठित हुवा है और वह परमाणु जगत के मूल कारण हैं। क्योंकि परमाणु (परम+ अणु) कहने से भी यही अर्थ बोधित होता है कि जिस के आगे प्रमेय की हद अर्थात् किसी भी पदार्थ का विभाग करते २ अन्त में जब २ विभाग नहीं हो सके और उस की हद हो जावे वही अविभाजित पदार्थ परमाणु है।

यह जगत पहले से ही सूक्ष्म और नित्य परमाणुओं से भरा हुवा है परमाणुओं के सिवाय इस जगत का मूल कारण और कुछ नहीं है जब सूक्ष्म और नित्य परमाणुओं के संयोग का आरम्भ होता है जब सृष्टि के व्यक्त पदार्थ बनने लगते हैं यह जड़ अद्वैत वाद की कल्पना है। उलखित परमाणु वाद का वर्णन पढ़कर अंग्रेजी विज्ञान पढने वालों को अर्वाचिन मीः डालटा के परमाणु वाद का अवश्य स्मर्ण होगा परन्तु सृष्टि शास्त्रज्ञ डार्विन ने डालटा के सिद्धांत की जड़ ही उखाड डाली इसी प्रकार भारत वर्ष में भी प्राचीन समय में कपिल के सांख्या मत ने कणाद के मतकी बुनियाद ही बिखेर डाली जिसका कारण यह कि कणाद के अनुयाई

यह नहीं बता सकते कि परमाणुओं को गति कैसे मिलती है इसके अलावा इस बात का भी यथोचित निर्णय नहीं कर सकते कि मनुष्य आदि सचेतन प्राणियों की क्रमश बढ़-ती हुई श्रेणियां कैसे बनी और अचेतन को सचेतना कैसे मिली। इस बात का निर्णय पश्चमी देशों में उन्नीसवी सदी में लेमार्क और डार्विन ने तथा हमारे यहां प्राचीन समय में कपिल मुनि ने किया है दोनों का नेचर और प्रकृति एक ही है। पहले भारतवर्ष में फिर युरुप में भी परमाणु वाद पर विश्वास नहीं रहा इसी लिये हमने परमाणु वाद का खण्डन किया था। लेकिन आप की जिज्ञासा की पूर्ती के लिये परमाणु वाद का तत्व निरूपण करेंगे।

अध्याय तीसरा

प्रकरण–पहला

परमाणुं वर्णन।

परमाणू दो प्रकार के होते हैं, चर, और अचर, यह परमाणुं अपने २ गुण और धर्मों के द्वारा पदार्थ और द्रव्यों की उत्पत्ति होती हैं।

अचर के लक्षण।

यह स्थिति स्थापक निश्चल सघन अटल और आकाश की तरह शून्यकार पोल वाले हैं।

चर के लक्षण।

जिस प्रकार आकाश में वायु चलता उस प्रकार यह चर चंचल गतिमान है इन को यदि हम मधु मक्खियों की उपमा दें तो कोई अयुक्ति नहीं होगी। जिस प्रकार हजारों मक्खियों का झुन्ड उड़ता नजर आता है और उस में प्रत्येक मक्खी स्वतंत्रा पूर्वक जिस तरफ को चाहे उड़ सकती है किन्तु वह अपने सहयोगी झुन्ड को छोड़ कर वाहिर नहीं जाती है और जहां पर वह झुन्ड जाकर बैठता है वहीं पर नवीन छत्ता बना लिया जाता है। इसी प्रकार से चंचलों का प्रति आकर्षण हो २ कर अपने केन्द्रिय भवन का संगठन करते हैं और इन चंचलों की धारा प्रवाह को चाहे जिस दिशाओं में युक्ति पूर्वक चला सकते हैं जिस प्रकार हवा का प्रबल झोका सब मक्खियों को एक ही साथ किसी भी दिशा विशेष में ज़बरन उड़ा कर ले जाता है इसी से इन चंचलों को अपनी विद्या अथवा युक्ति द्वारा इच्छा अनुसार आकर्षण विकर्षण और रंजन कर सकते हैं और इन की गति परगति आदि को भी पलट सकते हैं। शीतलता ऊष्णता (पानी अग्नि) बल वेग प्रकाश काल (Time) मान (तोल नाप) आदि इनकी ही क्रिया और गुण कर्मों का परिणाम हैं। सृष्टि का कोई भी द्रव्य पदार्थ गुण कर्म इन से बाहिर नहीं बल्के इन परमाणुओं का संघात है

प्रकरण--दूसरा

परमाणुओं का मैथुन ।

यह दोनों प्रकार के परमाणुओं का आपसमें युक्त व्यक्त रूप का सम्मेलन होता रहता है । इनके युक्त व्यक्त होने के लिये एक से दूसरे गुण धर्मों की जगह रहती है और इस खाली जगह में ही ये युक्तायुक्त होते हैं । इन परमाणुओं में आपसमें व्यापक व्याप्य के धर्म की वजह से इनके विरुद्ध गुण कटते नहीं हैं । जैसे निश्चल में चंचल की जगह खाली है और इसी खाली जगह में यह युक्त व्यक्त का सम्मेलन होता रहता है । क्योंकि व्यापक का व्याप्य घर है और व्याप्य के अन्दर व्यापक की जगह खाली रहती है जैसे मनुष्य अपने घर में घुसने को जावे और घर में जगह खाली नहीं हो तो वह घर में कैसे दाखिल (व्यापक) हो सकता है इसी प्रकार इन परमाणुओं में जगह खाली रहती है ।

जब यह परमाणुं अपना युक्त व्यक्त रूप का सम्मेलन करते हैं तो इस सम्मेलन की क्रिया से कार्य उत्पन्न होते हैं। इस सम्मेलन क्रिया से ही सृष्टि क्रम चलता है । जैसे निश्चल में चर मिलने से चञ्चलता प्रकट होती है । अवेग वान अचर में जव चर मिलता है चर वेगवान तब गति मान होता है और आभास मान में भासमान मिलने से प्रकाश मान अचेतन अचर है और चेतन चर है इनके मिलने से चैतन्यमान प्रकट होता है । इस प्रकार इन के सम्मेलन क्रिया से पदार्थ और द्रव्यों की उत्पत्ति होती है और इन से ही विशेषणता और उपाधियां की विभक्तियां भी इन से ही उत्पन्न होती हैं ।

जिज्ञासु—यह सब रचना तो एक प्रकार के परमाणुओं से हो सकती फिर दो प्रकार के परमाणु क्यों माना जावे शास्त्रों में तो इसका प्रमाण नहीं है फिर आप किस प्रमाण से दो प्रकार के परमाणु बतलाते हो।

उत्तर—एक प्रकार के परमाणुओं से यह रचना नहीं हो सकती है जैसे सफेद रंग में चाहे कितना ही सफेद रंग मिलाया जाय तो कोई नया रंग नहीं बनता और अगर दो प्रकार के विरुद्ध रंगों को मिलाया जाय तो एक तीसरा रंग पैदा हो जायगा जैसे पीले नीले के मिलने से हरा बन जायगा। इसी प्रकार दो प्रकार के परमाणुओं के मिलने से ही सम्मेलन बना एक से नहीं जो इनके नामों से ही यह जगत बना है इस जगत को चराचर जगत कहते हैं इस से यह दो प्रकार के परमाणु चर और अचर के साथ जुड़ जाने से ही इसके बने हुए जगत का नाम चराचर जगत पड़ गया और दूसरा सबूत यह भी है जो इस स्थूल भू लोक में नित्य अनुभव में आता है। एक तो अंधेरे के परमाणु दूसरे उजाले प्रकाश के परमाणु यह दोनों प्रकार के परमाणु मौजूद हैं और इनके गुण कर्म भी एक दूसरे से उलटे हैं। प्रकाश के परमाणु चर और अंधेरे के परमाणु अचर हैं जिस वक्त प्रकाश दीखता है उस वक्त हमको अंधेरे के परमाणु नष्ट हुए मालूम होते हैं और हम को प्रकाश भासता है। परन्तु वास्तविक में अंधेरे के परमाणु नष्ट नहीं हुए बल्के अंधेरे के परमाणुओं में जो जगह खाली थी उसमें प्रकाश के परमाणु व्यापक हुए हैं और दोनों के मिलने से प्रकाश

प्रचलित होता है। जब प्रकाश के परमाणु अंधेरे के परमाणु से भिन्न हो जाते हैं परन्तु अंधेरे के परमाणु अपनी सत्ता में ज्यों के त्यों कायम रहते और हमको अंधेरा भासता है वास्तविक में अब सिद्ध हो गया कि परमाणु अंधेरे और उजाले के दो भिन्न २ हैं। यह एक दूसरे से मिलते भी हैं और जूदा भी होते हैं जब तक यह दोनों मिले रहते हैं तभी तक प्रकाश की क्रिया चालू रहती है। जब इन के मैथुन की युक्त व्यक्त रूप संघर्षण की क्रिया समवाय में होती रहती है इसी से प्रकाश पैदा होता जाता है इसी क्रिया से विजली पैदा होती है।

इसी बात की पश्चमी देश के इङ्गलैण्ड में सन् १८९७ ई० में सर जे जे. टामसन जो पदार्थ ज्ञान के तत्व ज्ञाता थे जिन्होंने परमाणु के उद्घाटन में भवतिक लोक के पदार्थों का विशलेशण करके सप्रमाण सफलता प्राप्त करके यह दिखा दिया कि प्रत्येक तत्व पदार्थ इन दो प्रकार के परमाणुओं का संघठन है। इन्होंने इन दोनों के नाम इस प्रकार रखे जो चंचल चर हैं जिस को इलैक्ट्रोन और अचर के नाम प्रोटनों रखें यह नाम सब से पहले युरुप में जे जे. टामसन के रखे हुवे हैं। इन्होंने तत्वके अणुओं के विशलेशण कर कर के इन का और अणुओं का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था। इन्होंने पानी के अणु हाईड्रोजन से इलैक्ट्रोन की तुलना करके बताया कि पानी के तत्व हाईड्रोजन के अणुओं से बहुत छोटे होते हैं इन व्यास प्राय हाईड्रोजन के अणु २५००० गुणा कम होता है और भार में भी २०००० गुणा कम होता है भिन्न २ तत्वों के अणुओं में इन इले-

क्ट्रानों की संख्या भिन्न है इन तत्वों के अणुओं में से इन को पृथक् भी किये जा सकते हैं जिन द्रव्यों में इन की संख्या अधिक होती है उनको चालक द्रव्य कहते हैं और जिन में कम होती है उनको जड़ द्रव्य कहते हैं। ये इलेक्ट्रन जिस तरफ की गति का वेग करे उसको ही विद्युत (विजली) की धारा कहते हैं। इन की गति वेग की दौड़ का अनुमान ११ अर्ब मील प्रति सैकड़े की लगाई है।

प्रकरण तीसरा

द्रव्याणु।

इसके वाद् १८ वीं सदी के अन्त में प्रसन्ली और सर ओलीवर लोभ इन्होंने कुछ तत्वों के द्रव्याणुओं की क्रियाओं से तत्वों का वनना वताया था वह इस प्रकार है जो इस हमारे लोक के अंतिम द्रव्याणु हैं वह कहते हैं कि सव द्रव्यों के अणु एक समान नहीं होते इनका विस्तार और व्यास प्राय एक मिलोमीटर का ४० लाखवां भाग है अर्थात् ४०००००० लाख अणु वरावर एक पंक्ति में रखे जायें तव कहीं उस पंक्ति की लम्बाई एक मिलोमीटर होगी। इस हिसाव से अणुओं का आयतन प्राय एक घन सेन्टी मीटर का २३ अर्ववां भाग होगा परन्तु हाईड्रोजन का अणु इससे भी छोटा होता है उसका भार एक ग्राम का ६-१०-२३ वां भाग है इस महा संख्या के लिये भाषा में कोई नाम नहीं है इतनी वड़ी महा संख्या का समुच्चय भार केवल १२ रति

है इस प्रकार द्रव्याणुओं के अनुमान की दौड़ का क्या ठिकाना है इन्होंने चार प्रकार के द्रव्याणु और उनसे तीन प्रकार के द्रव्य माने हैं वह इस प्रकार हैं, ठोस, कठोर पृथ्वी आदि गैस (हवा आदि) तरल (पानी आदि) द्रव्याणु ओक्सीजन,हाईड्रोजन,नाईट्रोजन, और कारवोन,इन द्रव्याणुओं के मेल से यह द्रव्य बने हैं जो इस प्रकार हैं।

ओक्सीजन और नाईट्रोजन के मेल से वायु बनता है। ओक्सीजन और हाईड्रोजन के मेल से पानी बनता है। ओक्सीजन और कारवोन के मेल से अग्नि बनता है। अब इनके बनने की क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

प्रकरण चौथा

(वायु)

यह निश्चय हुवा है कि हवा कोई स्वयंभून द्रव्य नहीं है बल्के मिश्रत तत्व है। जो दो प्रकार के द्रव्याणुओं के मेल से बना है ओक्सीजन और नाईट्रोजन है आश्चर्य जनक बात तो यह है कि यह पृथक २ गैस परमाणुओं से बनी है और वायु इन ही दो गैसों का मिश्रण पदार्थ है यह वायु प्राण धारी जीवों के जीवन का सब से बड़ा आधार है। यह दोनों गैस एक दूसरे से विरुद्ध गुण कर्म वाले हैं परन्तु जब यह अपने २ परिमाण के अनुसार मिलते हैं तब एक दूसरे के विरुद्ध गुण कर्मों को अपनी मैथुन रूप क्रिया से पलट कर एक नया द्रव्य बन जाता है।

ओक्सीजन के गुण कर्म ।

ओक्सीजन स्वभाव से ही मानसिक और शारीरिक शक्तियों का उत्तेजक है इसी लिये यह इन्द्रियों में स्फूर्ति तीक्ष्णता साहस अव्यवों में जाग्रती और समस्थ शरीर में शक्ति पैदा करता है परन्तु यह जिस प्रमाण से वायु में उपस्थित है यदि उस से मात्रा में अधिक या कम हो जाय तो तत्क्षण में वायु दूषित होकर वायु धारी जीवों का जीवन संकट में पड़ जाता है।

नाईट्रोजन के गुणकर्म ।

यह ओक्सीजन से उलटे गुण कर्म वाला है। नाईट्रोजन मानसिक शारीरिक और चेतना को मन्द कर देता है और सम्पूर्ण शरीर को जड़ बना देता है न तो यह जीवों के अनुकूल ही है न यह प्रतिकूल ही है न यह प्राण नाशक विष ही है। जब यह दोनों मिलकर युक्त व्यक्त रूप का मैथुन करते हैं तब उनके प्रस्व से वायु नाम का द्रव्य बन जाता है जो अमृत की सामानता रखता है।

वायु में ओक्सीजन और नाईट्रोजन का यह परिमाण है कि घन फल के अनुसार वायु के १०० अणुओं में ओक्सीजन के २१ अणु नाईट्रोजन के ७९ अणु और तोल के अनुसार ओक्सीजन २३ और नाईट्रोजन ७७ हैं और ठोसपने में दोनों बराबर हैं इसी कारण दोनों २ पूर्ण रूप से मिल जाते हैं यह दोनों तत्व पृथ्वी के पृष्ठ भाग से लेकर वायु के अन्त तक दोनों तत्व वायु में उपस्थित हैं ।

(पानी)

पानी भी हवा के भांति दो द्रव्याणं का मिश्रण है वह ओक्सीजन एक भाग और हाईड्रोजन दो भाग बोझ में ओं:८ भाग और एक भाग हाई: है जब यह युत्तायुत्त क्रिया मैथुन के द्वारा मिलते हैं तब इसके परिमाण रूप पानी बन जाता है। जो साक्षात पीयुष है।

(अग्नि)

अग्नि का भी अस्थित्व ओक्सीजन के कारण से ही है। ओक्सीजन और कारबोन मिलने से एक प्रकार का मैथुन, (रसायनिक संघेषण) का आरम्भ होता है उस वक्त उस में से एक प्रकार की उष्णता पैदा होती है और यह गर्मी वहीं तक रहती है जब तक कारबोनिक एसीड़ गैस बन नहीं चुकती है। इस प्रकार पश्चमी सांईस की खोज है। और ये खोज भूलोक के अन्तिम स्थूल परमाणुओं की है न कि वो असली कारण परमाणुओं की।

वह स्थूल द्रव्य ठोस का मिलान इस प्रकार से मानते हैं कि अणुचार (Atoms) आटम्स के मिलने से एक मोली क्युज (Molecuse) और चार मोली क्युज के मिलने से एक शेल(Cell)बन जाता है ये ही स्थूल पृथ्वी का केन्द्र है। इनके ही आप से जुड़ जुड़कर यह स्थूलाकार पृथ्वी ठोस पदार्थ बन जाता है।

(द्रव्याणु का विस्तार)

बहुत से वैज्ञानियों का कहना है कि एक बून्द पानी की किसी दिव्य शक्ति से पृथ्वी के आकार की बराबर विस्तार

रीत कर फिर उस अणु के आकार के विस्तार को देख जाय तो प्रत्येक अणु प्राय नारंगी के आकार से कुछ बरोबर-ही होगा इस हिसाब के इन अणुओं का जानना कितना कठिन है इस प्रकार यदि हम एक अनुमान करें कि हमारे शरीर में कितने अणु होंगे तो इसकी हमारे पास कोई संख्या या गणना नहीं है शायद एक बून्द रक्त के अन्दाजे का अनुमान की दौड़ दौड़ा सकें तो एक बून्द खून में १२० नील १,२०००००००००००००००$\frac{1}{1}\frac{3}{0}$-१८ अणुओं का एक बून्द खून है इस प्रकार हमारे शरीर के तमाम कणों की संख्या कौन कर सक्ता है आखिर हमको हार कर उस अनन्त भगवान का ही सहारा लेना पड़ता है बिना अनन्त के सहारा लिये अनुमान चल ही नहीं सक्ता।

अध्याय चौथा

प्रकरण—पहला

काल की अपेक्षा।

इस अध्याय में काल, मान (तोल लघु गुरु) युग, दिशा गति शक्ति (शीत ताप) ये परमाणुओं के ही परि-णामों की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। अब इस अध्याय में इनका वर्णन करेंगे।

ऊपर वाले पदार्थों को जानने के लिये किसी न किसी प्रकार की अपेक्षा की जरूरत रहती है। सूर्य के उदय और अस्त से हम दिन और रात को जानते हैं। चन्द्रमा से हम

तिथियों को और शुक्ल कृष्णपक्षों को जानते हैं नक्षत्रों से हम ऋतुओं को जानते हैं इस प्रकार हम सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदिकों को मान कर इन की गणना करते है।

नियम यह कि जो ग्रह अपनी धुरीपर जितने दिनों के अन्दर एक परिक्रमा पूरी करे उतने ही दिन अथवा काल का उस ग्रह का एक वर्ष अर्थात् सम्वतसर होता है। यदि हम जिस पर (पृथ्वी) वसते हैं इस के प्रमाण को न मान कर अन्य ग्रहों को प्रमाण समझें तो हमारे वर्ष युग आदि में अन्तर पड़ जायेगा जैसे हम शनी के ग्रह का प्रमाण माने और उस की अपेक्षा करें तो हमारा एक वर्ष २९½ साढे उन्तीस वर्ष के बराबर होगा। इसी प्रकार वृहस्पति को प्रमाण मानें तो हमारा एक वर्ष १२ बारह वर्षों का होगा। कोई भी ग्रह अपनी धुर पर परिक्रमा से उस के दिनमान माने जाते हैं यह ज्योतषी विद्या का सिद्धांत है।

छोटे मानों को जैसे घड़ी पल घंटा मिनट सेकिण्ड आदि की कल्पना भी सपेक्ष ही है। जैसे कटोरे में छेद के द्वारा जितनी देर में पानी भर जाता है अथवा बालू का एक पात्र में से सूक्ष्म छेद्र द्वारा दूसरे पात्र में चली जावे या घड़ी के काटों का मान के जिन पर कांटे पहुंचना इन की अपेक्षा को ही घंटा मिनट और सेकण्ड मानते हैं और यह भी प्रसिद्ध है कि बाबर बादशाह मोमबत्ती के जल जाने से समयकी अपेक्षा करता था।

काल की अपेक्षा में हम चाहे सूर्य चन्द्र शनी वृहस्पति पृथ्वी आदि बडे ग्रहों की गति से काल के अनुमान की

अटकल करे अथवा वालूका यंत्र जल घटी छाया घटी आदि छोटे परमाणुओं से काल को मापे परन्तु काल के जानने से सभी दशाओं में किसी न किसी प्रकार की अपेक्षा की गति अवश्य प्रमाण होगी। अब हम परमाणु के काल का वर्णन करेंगे।

॥ प्रकरण दूसरा ॥

(काल का वर्णन)

जितना टाइम (Time) दोनों प्रकार के परमाणुओं के मिलने में लगता है उसको काल कहते हैं। यह काल अपने परिणाम को प्राप्त होकर वर्ष युग कल्पों को प्राप्त होता है। अब इसको बताते हैं।

दो प्रमाणुओं का एक अणु और तीन अणुओं का एक त्रसरेणु और तीन त्रसरेणु की एक त्रुटी और सौ त्रुटी का एक वेध और तीन वेध का एक लव और तीन लव का एक निमेष और तीन निमेष का एक क्षण और पांच क्षण की एक काष्ठा और पन्द्रहकाष्ठा की एक लघुता और पन्द्रह लघुता की एक घड़ी और दो घड़ी का एक महूर्त और चार महूर्त की एक पहर और चार पहर का एक दिन और आठ पहर की एक अहोरात्री अर्थात् एक दिन रात और पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष और दो पक्षों का एक महीना और दो महीने की एक ऋतु और तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयन का एक सम्वत्सर (वर्ष) होता है चार हजार आठ सौं वर्षों का सतयुग और तीन हजार छै सौ वर्षों का त्रैता

और दो हजार चारसौं वर्षों को द्वापुर एक हजार दो सो वर्षों का कलियुग इस प्रकार ऐसे एक हजार चतुरयुगों का एक कल्प होता है।

(मान का वर्णन)

गुरु और लघु का मान भी परमाणुओं का सा ही पढ़न है अब इनको बताते हैं दो परमाणुओं का एक अणुं और तीन अणुओं का एक त्रसरेणु और छै त्रसरेणु की एक मरीची और छै मरोची की एक राजी का और तीन राजिका की एक सर्षप और तीन सर्षप का एक यव और चार यव की एक गुजा (रत्ती) और आठ गुजा का एक मासा और चार मासों का एक सांण और दो सांण का एक कोल दो कोल का एक कर्ष (तोला) पांच तोला की एक छटांक दो छटांक का अर्ध पाव दो अर्धपाव का एक पाव दो पाव का आधा सेर दो आधा सेर का एक (एकसेर) पांच सेर की एक घड़ी आठ घड़ी का एक मन इस प्रकार ये मान कैई प्रकार से कैई देशों का भिन्न भिन्न है इस प्रकार से जल वायु जमीन आदि अनेक तत्वों का मान निकाल सक्ते हैं।

(काल का निरुपण)

इन परमाणुओं के अलावा काल का कोई अनुभव नहीं आता जब से परमाणुओं का मेल हुवा जब से ही काल अनु-भव में आया चर और अचर के अतिरिक्त काल का स्थान ही कहां है जब तक चर है तभी तक काल कह दो वैसे लौकिक अर्थों में काल के कैई अर्थ होते हैं जैसे जन्म काल मरण काल सुख काल दुख काल प्रातः काल सायंकाल ये सब प्रशगां अनुसार काल के कैई भेद हैं।

॥ तीसरा प्रकरण ॥

(प्रमाणु युग)

अब यदि हम अपने वर्ष युग कल्पादि का मान परमाणु के अनुकूल रखे तो इस हिसाब से चार अरब बत्तीस किरोड़ परमाणुओं के वर्षो का एक अणुकल्प हुआ जो हमारे ६ घंटे ४० मिनट के बराबर होता है। ब्रह्मा का एक अहोरात्रि दो कल्पों का होता है। और ३६० अहोरात्रि का एक ब्रह्म वर्ष होता है। और ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु मानी जाती है। इस हिसाब से हमारे पार्थिव वर्षो के ५५वर्ष के लगभग परमाणु ब्रह्माण्ड की आयु हुई। अर्थात् मनुष्य की साधारण आयु में प्रमाणु युग के लाखों कल्प बीत जाते हैं। साधारण ज्ञान के हिसाब से यदि हम विचार करें तो जितनी देर में हमारा एक सेकिन्ड बीतता है उतनी ही देर में अणु ब्रह्माण्ड के करीब एक लाख अस्सी हजार वर्ष बीत जाते हैं। और अणु मानवों की सृष्टि गणना से हमारी साधारण आयु अनादि और अनन्त है। अणु मानव हमारी तरह पर यह विचारता होगा कि पार्थिव मनुष्य अनादि और अनन्त नित्य सत्य निरामय गोतित और निर्विकार होगा और एक पक्ष से यह भी सम्भव है कि वह हमको निराकार भी समझेगा। और हमारे को अपनी कल्पना के बाहिर जानेगा। इसका सविस्तार से वर्णन करना बहुत लेख बढने से इतना ही पर्याप्त है।

इस प्रकार काल का परिणाम भेद बता दिया गया है।

—: चौथा प्रकरण :—

(काल की दशा)

भूत, भविष्य, वर्तमान ये काल की तीन दशा भी आपेक्षिक ही हैं, जो बात किसी के लिये कल भूतकाल में हुई उसी का किसी और के लिये भविष्य या वर्तमान में होना सम्भव है। अथवा जो बात हमारे लिये भविष्य में होने वाली है, बहुत सम्भव है कि किसी और के लिये वही घटना भूतकाल में हो चुकी हो। आज आकाश मण्डल में ज्योतिर्विद् एक अद्भुत दृश्य देखता है। दो तमोमय तारे आपस में टक्कर खाते हैं, और एक तीसरा तेजोमय पिण्ड प्रकट हो जाता है। यह एक नये ब्रह्माण्ड की रचना है। जो आज ज्योतिर्विद् अपनी आंखों से देख रहा है। हिसाब लगाने से पता चलता है कि प्रकाश के पहुंचने में और शब्द के पहुंचने में बहुत देर लगती है। जो घटना हम को इस समय दीख रही है। वस्तुतः पांचसौ वर्ष पहले हो चुकी थी। उस पिण्ड के जितने दृश्य हम देख रहे हैं। वह सब पांच सौ वर्ष पहले के हैं। इसी प्रकार हमारी कल्पना में यह बात भी आसकती है कि यदि किसी तारा जगत में जहां से प्रकाश को पृथ्वी पर आने में साढे चार हजार वर्ष लगते हैं। ऐसे जीव जो अपनी अद्भुत शक्ति और विशेष यन्त्रों के द्वारा पृथ्वी पर की घटनाओं को देख व सुन सकते हैं, तो उनको हमारे यहां की महाभारत की लड़ाई वर्तमान काल की तरह पर दिखाई दे रही होगी और आज कल का यूरुपियन महा युद्ध उनके लिये साढे

चार हजार वर्ष बाद भविष्य में होने वाली घटना होगी। और उस समय की घटना वहां के लोग इस समय देख रहे होंगे। और इधर का पांच हजार वर्षों का पार्थिव इतिहास यही उनको आज ही किसी युक्ति द्वारा मिलजाय तो उनके लिये भविष्य पुराण होगा। इसी प्रकार हमारे लिये भी हमारे होने वाले पिण्डों के ज्ञान से भविष्य पुराण हो सकता है। भूत, भविष्य वर्तमान नाम के यह काल की तीन दशायें कर्म और घटना के सम्बन्ध के सुभीते के लिये नियत किये गये हैं। एक ही काल प्रत्येक क्षण भविष्य काल के अक्षय कोष में से निकल कर सतत् और निरंतर भूत काल के नित्य वर्द्धमान कोष में चला जा रहा है। इस प्रकार भविष्य से भूत होने में जितनी देर लगे उतनी ही देर को वर्तमान काल कहते हैं। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी पर आने में आठ मिनट लगते हैं। जो आठ मिनट का अन्तर है वही भविष्य भूत और वर्तमान हुवा। जैसे एक धोबी अपने कपड़े नदी के उस पार पाटे पर पटक २ कर धो रहा है। पटकने का शब्द हमको तब सुनाई पड़ता है। जब वह दुबारा पटकने के लिये ऊंचा उठा लेता है। मान लीजिये कि इसमें तीन सेकण्ड की देर लगी। तो स्पष्ट है कि जो शब्द तीन सेकन्ड पहले पाटे पर हो चुका है, वह हमें अब तीन सेकन्ड बाद सुनाई पड़ा। एक ही घटना धोबी के लिये भूत काल में हुई हमारे लिये भविष्य काल में होगी

॥ इति काल दशा ॥

———

प्रकरण-पांचवां

काल गति।

काल गति वल, वेग, उष्णता, शीलता आदि यह कोई पदार्थ अथवा वस्तु नहीं है। यह सब परमाणुओं के गुण कर्म भेद हैं इसी शक्ति द्वारा प्रत्येक द्रव्यों की क्रिया और आकर्पण आकुचन द्रव्यों में उत्पेक्षण आदि परमाणुओं के गुण और कर्म प्रगट होते हैं और इसी शक्ति को द्रव्य शक्ति भी कहते हैं। जैसे पिण्ड शब्द विद्युत प्रकाश और अन्तर वाह्य इत्यादि एक इन्हीं परमाणुओं के अनन्त कार्य और समस्त व्यपार व्यवहार जिसकी अनेक क्रिया हैं। इस का योग सदा समान रहता है। उसमें किसी प्रकार की घटती या वढ़ती नहीं होती है यह समानता से परि पूर्ण रहती है। यह व्युक्ता व्यक्त हो होकर उनके रूपों को धारण करतीं हैं। पहिले काल भेद के वतलाये अब गति के रूपों को वतावेंगे गति के तीन रूप हैं (१) वल, (२) ताप, (३) शीत, प्रकार गति के तीन रूप होते हैं। जव यह गति किसी मुख्य दिशा विशेप में चले, उसे वेग कहते हैं। जव यह वेग स्थिति होकर निरुद्ध भवन में रुद्ध हो, तव उस वेग को वल कहते हैं। उदाहरणार्थ, जैसे जव हम किसी वस्तु को उठाते हैं, तव हमको वल लगाना पड़ता है। जव हम वल से उठाते हैं, तव हमारे चलते हुए श्वांस के वेग को रोकते हैं, जव ही हम से वह वस्तु वल पूर्वक उठती है। जैसे इञ्जन में उत्पन्न हुई भाप को निरुद्ध करके एक सूक्ष्म मार्ग से लेजाकर इञ्जन के सिलेन्डर के यंत्र से टकराई जाती है। तव वह भाप स्वयं होकर कितना वलवान वन

कर हजारों घोड़ो के वेग का बल धारण कर रेल जहाज आ-दि बड़े २ कारखानों को चलाती है, इससे साफ प्रगट होत है कि गति के वेग को रोकना ही बल है। यदि गति नहीं तो बल भी नहीं। और काल नहीं तो गति नहीं। काल के परिणाम से ही गति की उत्पत्ति होती है। अब गति के दूसरे रूप ताप को कहते हैं।

किसी भी गति को अति वेग से बढाकर किसी सूक्ष्म छिद्र द्वारा निकाली जावे अथवा गति के वेग का द्वन्द्व रूप से संघर्षण की क्रिया के करने से वह गति ताप के परिणाम को पहुंच कर ताप के रूप को धारण करेगी इसी को हम ताप कहते हैं। यही ताप की उष्णाता बढकर अग्नि के रूप में हो जाती है। यह ताप भी गति मान है जैसे एक लोहा आदि पदार्थ के टुकड़े को ताप के परिणाम से खूब गर्म करो फिर उस को ठन्डे पानी में डाल दो वह तुरन्त ताप उस वस्तु से निकल कर पानी में चला जायगा। जिसके फल स्वरूप पानी गर्म हो जायगा और लोहा ठन्डा हो जायगा। इस से साफ प्रकट होता है कि ताप भी गति का ही रूप है। जो गति मान होकर पानी में चली गई और पानी की ठन्डक लोहे में आ गई। यह गति अपने रूपों के गुण धर्मों को प्रत्येक द्रव्यों को देती है और द्रव्यों के रूपान्तरों को भी बदल देती है अब गति के तीसरे रूप शीत को कहते हैं।

शीत भी कोई भिन्न पदार्थ नहीं केवल ताप की कमी को ही शीत कहते हैं जैसे कि अमुक वस्तु ठन्डी है इस का अर्थ यह होता है कि उस में गर्मी नहीं है। इस सिद्धांत पर

शीत कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। केवल ताप के ही अन्तर गत है। जब हम किसी वस्तु में से युक्ति द्वारा ताप के परिणाम को कम करदें अथवा निकाल लें। जब वह पदार्थ हम को ठन्डा जान पड़ता है यही शीत हुवा। इसी शीत को उष्णता देने से पानी बन जाता है। और इस पानी मेंसे उष्णता को घटाने से वर्फ बन जाता है यही शीत हुवा।

इस गति में बड़ी भारी क्षमता है जिस से हमारे बड़े २ कार्य सम्पदान होते हैं इसी के रूप विद्युत प्रकाश शब्द आदि रूप गुणों का पारा वार ही नहीं इस लिये अब अधिक लेख बढ़ाने से हम इस गति का वर्णन यही समाप्त करते हैं और अगली सर्ग में सप्त लोकों का वर्णन करेंगे।

अध्याय-पाचवां

प्रकरण पहला

परमाणुओं की शक्तियों का महा कोष।

परमाणुओं के सयोग से उत्पन्न शक्तियों का यह अटूट और अखण्ड अनन्त खजाना है जिस में से ज्ञान शक्ति चैतन्य शक्ति और द्रव्य शक्ति आदि अरोहित होती रहती हैं सृष्टि की सम्पूर्ण शक्तियों का यही समष्टि कोष है जिस के भंडार ग्रह में यह जमा होती है जिस प्रकार मेगनेट से उत्पन्न बिजली की शक्ति वैटरी में जमा रहती है इसी प्रकार

परमाणुओं से उत्पन्न शक्तियां इस महा कोष में जमा होती हैं और यहां से प्रत्येक शक्तियां व्यक्त होती है जैसे बिजली के पावर हाऊस के उत्पन्न करन्ट पावर को एक करंट कोष में जमा करते हैं और वहां से फिर भिन्न २ केन्द्र (स्टेशन) को वह पावर परिणाम नाप तोल से देते हैं जिसको बिजली वाले ट्रान्स्फोरमर कहते हैं। उदाहरणार्थ जैसे कपड़े का कारखाना हैं उस में कच्चे माल का पक्का माल बनाते हैं। कपास कच्चा माल है जिस का सीधा कपड़ा नहीं बनता कपास की रुई, और रुई का सूत, और सूत का कपड़ा बनया जाता है इसी प्रकार से परमाणु कच्चा माल है और उसका पदार्थ पक्का माल है वह अपने कारखने के कोष में जाकर सृष्टि के पदार्थ की शक्तियों में विभाजित हो जाता है। यही परमाणुओं का कोष है।

अब इस कोष में से तीन प्रकार की शक्तियां उत्पन्न हो कर अपने २ गुण कर्मों के माफिक इस जगत की रचना करती हैं उसका वर्णन करते हैं।

पहले ज्ञान शक्ति उत्पन्न होकर ब्रह्म से आखिले सप्तलोक और सप्त मंडलों को उत्पन्न करते हैं। जिसका वर्णन इसमें आगे करेंगे।

ब्रह्म लोक।

ज्ञान शक्ति में जब ज्ञानाग्नि प्रकट होते ही ब्रह्म लोक उत्पन्न हुवा इसका स्वरूप बुद्धि मंडल है। वह सब से ऊपर और सब को घेरे हुवे है और अध्यात्मा में इसका स्थान

ब्रह्म रन्ध्र है इस में संयम करके चैतन्य का ध्यान करने से ब्रह्म लोक प्रत्यक्ष दृष्टि में आ जाता है इसी लोक से हमारी ज्ञानेन्द्रियां का यवहार होता है।

तप लोक।

जब ज्ञानाग्नि क्षोभ को प्राप्त होकर उष्णता उत्पन्न होती है तब तप लोक उत्पन्न होता है इसका स्वरूप मनका मंडल है इस से हमारे कर्मेन्द्रियों का व्यवहार होता है और अध्यात्मा में इसका स्थान ललाट है यहां पर प्रकाश के रूप का संयम करने से मन का अंधेरा दूर होकर तप लोक का अनुभव प्राप्त होता है और ज्ञाता का रूप पहचाना जाता है।

जन लोक।

जब ज्ञान की उष्णता में क्षोभ उठने से तेज की उत्पत्ति हुई तब जन लोक उत्पन्न हुवा इसका स्वरूप आकाश का मण्डल है अध्यात्मा में इसका अधिष्ठांत भ्रकुटी (दोनों नेत्रों का का सन्धि प्रदेश) में यहां से चक्षु दृष्टि देखने की शक्ति उत्पन्न होती है यहां पर संयम करके ध्यान करने से पांच महा भूतों की सिद्धि और इनपर जय प्राप्त होती है और भूत ज्ञान का बोध होता है।

महर लोक।

जब ज्ञान के तेज में क्षोभ उत्पन्न होने से प्रकाश फैला तब महर लोक उत्पन्न हुवा इसका रूप पवन मण्डल है

अध्यात्मा में इसका अधिष्ठान कंठ प्रदेश है जहां पर संयम करने से सूर्य चन्द्र आदि ग्रह पिण्डों का ज्ञान होता है और उनकी गति प्रगति का अनुभव होता है।

(स्वर्ग लोक)

जब ज्ञान का प्रकाश में क्षोभ उठाकर अग्नि ने अपना रूप को दिखाया तब स्वर्ग लोक उत्पन्न हुवा जिस का स्वरूप अग्नि मण्डल है अध्यात्मा में इस का अधिष्ठान हृदय है जहां से संकल्पों की प्रवृत्ति उठती है यह इच्छा शक्ति का अधिष्ठान है जहां पर संयम करने से श्रुति निश्चल होकर समाधि में संकल्पों की जय सिद्धि होती है और स्वर्ग लोकका अनुभव होता है।

भूर्व लोक।

जिस प्रकार अग्नि से धुम्र निकलता है इसी प्रकार ज्ञान की वासना जो ज्ञान का धुम्र है उसी से भुर्व लोक उत्पन्न होता है इसके जल का मण्डल है अध्यात्मा में इसका अधिष्ठान्त नाभी प्रदेश है जहां पर संयम करने से शब्द ज्ञान का बोध होकर शब्द सिद्धि होती है।

(भूलोक)

जिस प्रकार धुम्र के इकट्ठे (केन्द्रित) होने से काजल बन जाता है इसी प्रकार ज्ञान की वासना केन्द्रित होकर दिग की उत्पत्ति होती है यही हमारा स्थूल भूलोक बनगया है इसका स्वरूप पृथ्वी मण्डल है अध्यात्मा में इसका अधिष्ठान्त गुदा है और इसका हमको प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है? ये ज्ञान शक्ति के सप्त लोक हैं।

प्रकरण-दूसरा

लोकों और मण्डलों की व्याख्या।

हमारे नजदीक प्रथम पृथ्वी मण्डल है जिस के ऊपर भूलोक वसा हुवा है। यह पृथ्वी मण्डल सात द्वीप और नव खण्डो में विभाजित है जिस में अनेक प्रकार के लोग वसते हैं यह सब भूलोक का ही विस्तार है यदि इसको ज्यादा देखना होतो पुराणों को देखो इस भूलोक के चारों तरफ ऊपर नीचे एक वासना लोक है जो भूलोक का ही सूक्ष्म भेद है यह वासना लोक भूलोक की प्रजा के विचारों का ही वना हुवा उपलोक है जिस में नीच स्वभाव के प्रणियों का वसा हुवा है। जब मनुष्य इस भूलोक की वासना को अपने मन में दृढ करके भूलोक की वस्तुओं से अधिक प्यार करने से मरने पर वह इस भुलोक के वासना लोक में प्रकट हो जाता है जैसे कोई यह कहता है कि यह राज गद्दी मेरी है यह मोती महल कंचन महल रंग महल मेरे हैं यह राज्य राज सत्ता हकूमत खजाना मेरा है मैं कैसे खर्च करूं यह हाथी घोडे मोटर पालकी वघी मेरे हैं यह पुत्र पौत्र स्त्री कुटुम्ब मेरे हैं इन में अपनी ममता को ज्यादा वढा देते हैं और इस लोक के अलावा अन्य लोकों का हाल नहीं जानता है न अन्य लोकों को सत्त ही मानता न वेद पुराण आदि सत्य शास्त्रों को झूठा वताता है जो इस लोक के अलावा किसी लोक की वस्तु की हस्ती को स्वीकार नहीं करता और रात दिन इस स्थूल लोक के पदार्थों से ही प्रेम करता लोभ लालच खुद की खुदाई हिरण्य कपि

शके माफिक नास्तिक रहता है वहप्राणी मरने के बाद इस स्थूल वासना भवन में सजाग्रत हो जाता हैऔर भूत पिशाच आदि योनियों को धारण करता है और भूलोक के प्राणियों को सताता है। इस लोक में ज्यादा वही मनुष्य सजाग्रत होता है जो के भूत पलीत शमशानो को जगाते फिरतेहैं उन को भी इसी लोक में सजाग्रत होना पढेगा। यह वासना भवन हमारी इच्छा कामना विचारों के आकारों के माफिक रंग रूप बनाता है। जिस प्रकार हमारे सामने फोनोग्राम की चूडी हमारे स्वरों और शब्दों के माफिक रेकार्ड बन जाता है इसी प्रकार वासना में हमारा रेकार्ड बन जाता है यही हमारा वासना लोक है। जैसे हमारा इस भूलोक में यह प्रत्यक्ष शरीर है ऐसा ही शरीर हरेक सप्त लोकों में मौजूद पड़ा हवा है जिस को दिव्य दृष्टि द्वारा देख सकते हैं वह शरीर सुषोप्त अवस्था में पड़ा रहता है और हम जैसा२ इस सजाग्रत स्थूल शरीर से स्थूल लोक से भाव अर्थात् कर्म विचार भावना वासना इच्छा संकल्प करते हैं उनका आकारों की रंग रूप की छापों उस शरीर पे पडती जाती हैं। (जिस प्रकार सिनेमा की फिल्मों में) और उस शरीर पर उन आकारों और भावों का एक आवंण परदा के पुडत जमते जाते हैं और जब हम इस स्थूल शरीर को छोड़ देते हैं जब जिस २ लोकों के पदार्थों की वासनाओं के अनुसार उसी लोक में शरीर के सजाग्रत हो जाते हैं। और उसी लोक का व्यवहार करने लग जाते हैं। इसी प्रकार दूसरा भूर्व लोक हैं जो जल के मण्डल के आधार पर बसा हुवा है और चन्द्र ज्योति वहां को प्रकाशती हैं। यहां भी अनेक खण्डन द्वीप और भाग हैं इस लोक के दो

भवन हैं एक पित्र और दूसरा प्रेत भवन हैं प्रेत भवन भुर्व लोक का वासना भवन है इसी प्रकार भुर्व लोक का भी वासना भवन है जो पित्रों से वर्ण शंकर हो ज़ाते हैं वह इस भुर्व लोक के वासना लोक में सजाग्रत हो जाते हैं और पित्रों को दुःख देते हैं। इस लिये ही हमारे मृतक मनुष्य की पित्र क्रिया करते हैं ताके उनका प्रेत लोक का वासना शरीर छूट जावे और पित्र शरीर में सजाग्रत हो जावे। इन लोकों के शरीर छूटने में सिर्फ इसी प्रकार का अन्तर है के जैसे हमको जाग्रत से स्वप्न, और स्वप्न से जाग्रत। क्योंकि हमको जो स्वप्न होता है वह वासना लोक में होता है जिस का सवूत यह है कि हम मृतकों को स्वप्न में देखते हैं। और मृतकों का अत्यन्ताभाव होता तो हम स्वप्न में नहीं देख सकते थे स्वप्न में मृतकों को देखने से विदित होता है कि मृतको का स्वर्था अभाव नहीं हुवा बल्कि स्थूल भूलोक से परिवर्तन हुवा है। क्योंकि वे हमारे वासना भवन में वर्तमान है यदि हमारी जाग्रन चेतना वासना लोक में हो जावे तो हम उस लोक का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं वासना भवन में तीन प्रकार के लोग देखने में आते हैं एक तो वहां के मुस्तकिल और एक भुलोक के यहां के और एक सिद्ध हैं जो वहां भी रह सकते हैं और यहां भी रह सकते हैं जो लोक के उस शरीर को भी इच्छा के माफिक खोल सकते हैं और यह भी इच्छा के साथ बन्द कर सकते हैं वहदृश्यादृश्य दोनों हैं जिन को हम सिद्ध ही कह सकते हैं। यह सिद्ध हठ योगी हैं जिन को जडा अद्वैत वादी कहना चाहिए इन की वात चीतों से पता चलता है इन को कैई विद्याओं का ज्ञान होता है जो सब क्रिया रूप

सिद्धिया हैं। जिन का वर्णन इस ग्रंथ में सिद्धि स्थान में किया गया है। इसके अलावा उपासना का बड़ा भारी गुण यह है कि हम जिस देवता की भगती दृढ़ प्रेम पूर्वक करेंगे तो जिस लोक का वह रहने वाला देवता होगा वह मनुष्य भी उसी लोक में उस देवता के पास जाग्रत हो जायगा। तप लोक में ऐसी आत्माओं को उपासना करते देखा गया है क्योंकि उपासना की वासना वाले जल्दी ही उस उपासक देवता के पास सजाग्रत हो जाते हैं क्योंकि उनकी वासना का आकषर्ण उसी देवता के पास हो जाता है। क्योंकि उस के अन्दर उसी देवता की गुणों और भावों की छाप होती है। इसीलिये यह अन्य लोकों में नहीं ठहर सकता है इसी से लोगों की दन्त कथाओं में यह कहावत प्रसिद्ध है कि अमुक मनुष्य को जम ले गये और अमुक को देवता लेने के लिये आये, क्योंकि वह देवताओं का भक्त था।

भुर्व लोक के बाद स्वर्ग लोक है जो अग्नि मण्डल के ऊपर बसा हुवा है यह सूर्य ज्योति रूप से प्रकाश रहा है यह देवताओं का लोक है यहां पर प्राणी दिव्य भोग भोगते हैं यह तीनों मिलकर त्रिलोकी कहलाती हैं यही स्थूल त्रिपुटी है यहां से ही हमारा दुबारा जन्म होता है क्योंकि स्थूल त्रिपुटी की यह अंतिम हद है और हमारी स्थूल वासना यहां लीन हो जाती है और फिर यहीं से वापिस स्थूल वासना का प्रारम्भ होता है इस के आगे सूक्ष्म वासना वाला जाता है जो स्थूल से प्रवृति के क्षीण होने से सूक्ष्म प्रवृति में मिलता है वह यह लोक से आगे जाता है वरना यहां ही से पुनः लौट आता है इसके बाद महर लोक वह पवन मण्डल पर बसा हुवा है इसके रहने वाले लोग सिद्धाचारण

गांध्रव आदि हैं और सन्त कुमार आदि भी इसी लोक में रहते हैं जो बड़े ज्ञानी और भक्त होते हैं और जिन को आत्म ज्ञान भी होता है वह इस लोक में जाग्रत होते हैं इस के वाद जन लोक है वह आकाश मण्डल पर अंतरिक्ष में बसा ह्वा है इसके लोग स्वच्छाचारी और व्यापक सत्ता वाले होते हैं जिन के बडे २ अधिकार सत्ता हाथ में होती हैं जो मनुष्यों का वड़ा उपकार कर सकते हैं भूत उनके वसी· भूत होते हैं और अमर कहलाते हैं।

इसके ऊपर तप लोक है वह मन के मण्डल पर वसा हुवा है इस में रहने वाले लोग मानसिक सत्ता वाले होते हैं जिन में वासना का लव लेश नहीं रहता है और यह ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाते हैं ऋषि मुनी और ब्रह्म प्राप्त मनुष्यों का यह लोक है जो शुभ्र भगती सेवा उपासना से अन्तः करणों की सुध रखते हैं प्राणी मात्र पर दया उपकार करते हैं जो धर्म निष्ट वाले लोग इस तप लोक में आते हैं इसके बाद ब्रह्म लोक है जो बुद्धि मण्डल पर बसा हुवा है यह ब्रह्म प्राप्त लोगों का है यहां पर वहुत कम आत्मा पहुचती है जो दिव्य ज्ञान का भंडार है जो ब्रह्म ज्ञान वाले हैं यह समष्टि ज्ञान वालों की एकता हो जाती है यहां पर अपना जो कुछ व्यष्टि ज्ञान है वह सब भूल कर एक नया ज्ञान ही प्राप्त होता है जो समष्टि ज्ञान है।

यह लोक आपस से व्यापक व्याप्य मान में है जैसे पृथ्वी के ऊपर नीचे अन्दर बाहर जल व्यापक है और जल के अन्दर अग्नि व्यापक है और अग्नि के अन्दर वायु व्यापक है वायु के अन्दर आकाश व्यापक है और आकाश के अन्दर

मन व्यापक है मन के अन्दर बुद्धि व्यापक है इसी प्रकार यह सप्त लोक आपसमें व्यापक व्याप्य मान हैं जो एक दूसरे से सूक्ष्मतर सूक्ष्म है। इन लोकों के प्रत्येक पदार्थों के कम्पन (Vibration) जुदा २ हैं जिस के प्रभाव से हम एक लोक की हालत दूसरे लोक का रहने वाला नही जान सकता है तात्पर्य यह कि जैसे हमारे लोक भू पृथ्वी लोक में सभी लोकों के पदार्थ मौजूद हैं इसी प्रकार अन्य सभी लोकों के पदार्थ मौजूदा हैं फर्क केवल इनके सूक्ष्म स्थूल का ही है और इन प्रत्येक लोक के पदार्थों की लहरों और चढाव उतार चढाव की सूक्ष्म स्थूलता का है। इसी लिये हम प्रत्यक्ष में विना किसी साधना के इन लोकों के लोगों का हाल नहीं जान सकते हैं जिस का कारण यह कि हमारे लोक की इन्द्रियां इतनी स्थूल हैं कि हम दूसरे लोक के बासी की विषयों को ग्रहण नहीं कर सकते जैसे हमारी कान की इन्द्रि वह १८ से लगाकर ५००० तक के शब्द कम्पनों की लहरों को पकड़ सकती है इस से कम ज्यादा को नहीं ग्रहण कर सकती इसी प्रकार आंख भी रूप ग्रहण करने के लिये ४०० से ५७६ तक ग्रहण कर सकती है इसी से कम ज्यादा को नहीं इस हिसाव से यदि कोई दूसरे लोक का वासी हमारे सामने खड़ा होकर हम को कुछ कहता हो तो जो १२ कम्पनों तक हो या ५०0००० तक हो तो उसकी वात सुन नहीं सकते और १०० से ५००० तक को देख नहीं सकते यह नियम प्रत्येक लोक की लोगों की प्रत्येक इन्द्रियों का है इसी लिये हम एक दूसरे लोकों के वासिंदों

की जान पहचान नहीं कर सकते हैं चाहे वह हमारे पास ही खड़ा रहता क्योंकि न हो। स्थूल लोक का सूक्ष्म तक और सूक्ष्म से स्थूल तक यही नियम लागु होता है। यह लोकों का वर्णन संक्षिप्त में बता दिया गया है।

॥ इति लोक ॥

—अध्याय छटा—

प्रथम प्रकरण।

अब हम परमाणुओं की दूसरी शक्ति चैतन्य का वर्णन करते हैं।

यह चैतन्य शक्ति दो प्रकार के रूप धारण कर क्रियाओं का कार्य करती है। एक क्रिया रूप स्थूल जिसमें पंचप्राण और पंच तत्व और तत्वों से उत्पन्न ग्रह पिण्डों को उत्पन्न करती है और दूसरी संजीवन शक्ति जो सूक्ष्म प्राणियों के पिण्ड शरीरों को उत्पन्न करती है जिस में पहले स्थूल रूप प्राण शक्ति की क्रियाओं का वर्णन करते हैं।

यह प्राण शक्ति जब द्रव्यों में प्रवेश होकर अपनी क्रिया ओं को करती है तब द्रव्यों को द्रवितकर यथा नाम पंच तत्वों की उत्पत्ति होती है और वह तत्व अपने २ गुणों के अनुरूप द्रव्यों को कार्य रूप में परिणत करते हैं और सूक्ष्म से स्थूल करते हैं यह गुण खास तत्वों का हैं और द्रव्यों

के व्यापार को विश्वाकार में प्रकट करते हैं। प्राणों के केन्द्रों के अनुसार द्रव्यों के केन्द्र (चक्र) बांधकर उनके आकारों की स्थूल मूर्ति प्रकट करते हैं।

यह तत्व चैतन्य की शक्ति द्वारा द्रव्यों में प्रवेश होते हैं और अपनी क्रियाओं के अनुसार कार्य की रचना करते हैं अन्तःकरण की क्रिया शक्ति को किसी भी पदार्थ के अनुरूप लक्ष बेध करने पर यह तत्व तुरन्त उस पदार्थ की वासना के अनुसार पदार्थों की रचना करदी जाती है यह काम तत्वों का है। यदि तत्व नहीं होते तो यह बाहिरी रचना भिन्न ही होती यह सारा खेल पिण्ड और ब्राह्माण्ड का हमको जो प्रत्यक्ष और सत्य प्रतीत हो रहा है वह इन पांच तत्वों का ही इन्द्रजाल है न कि कोई सत्य पदार्थ है। यह केवल अन्तःकरण की कल्पना के कल्पित मनोरञ्जन बाल क्रीड़ा है जिस को हम प्रत्यक्ष अपनी मिलकियत (मौरुसी) समझ बैठे हैं और नाना भांति की कल्पना, कामना, वासना, संकल्प, विकल्पों के मनोरथों का ढेर के ढेर असंख्यात में लगाकर स्वर्ग तक खीड़क देते हैं और उन्ही के अनुरुप हम ही बन जाते हैं और इन कल्पनाओं के कल्पित सुख दुःख के खजाने के खजानची बन बैठते हैं।

अब हम इन प्राणों से पृथक २ तत्वों की उत्पति को कहेंगे,

प्रकरण–दूसरा

पंच प्राणों से पंच तत्वों की उत्पत्ति।

यह महा प्राणापान मिलकर पांच प्रकार के प्राण होते हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान यह पांच प्राण हैं

और इनके ही सहयोग से पांच तत्व-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी उत्पन्न होते हैं। इन से आकाश प्रथम हुवा है।

आकाश।

समान नाम का जो प्राण है वह पिण्ड और ब्रह्माण्ड में व्यापक आकाश समान रहता है।

वायु।

प्राण नाम का जो प्रस्पन्दन प्राण है वह ब्रह्माण्ड में वायु होकर चलता है और पिण्ड में श्वांस होकर वाहर से अन्दर जाता है।

अग्नि।

अपान नाम का प्राण ब्रह्माण्ड में अग्नि ज्योति होकर रहता है और पिण्ड में जठरानल बनकर श्वांस को अन्दर से वाहर की ओर फेंकता है।

जल।

व्यान नाम का प्राण ब्रह्माण्ड चन्द्र ज्योति होकर रहता है और पिण्ड में भाप बनकर रुधिर को नाड़ियों में चक्र देता है।

पृथ्वी।

उदान नाम की प्राण ब्रह्माण्ड में लोक लोकांतरों में प्रामाणु रूप से ठहरी है और पिण्ड में स्थूल रूप बनी है जिस पर सर्व कर्मइन्द्रियां के कार्य सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार पिण्ड और ब्रह्माण्ड में इन पांच प्राण और पांच तत्वों का खेल हो रहा है। परन्तु फरक यह है कि प्राणों का और तत्वों का व्यवहार स्थान भेद से ब्रह्माण्ड में और ही प्रकार का और पिण्ड में और ही प्रकार का बिम्भ व प्रतिबिम्बवत है अर्थात् प्राण से तत्व उल्टे वास्तिविक में तो सारांश यह कि पंच प्राण सूक्ष्म आकार हैं और पांच तत्व इन प्राणों की स्थूल पूर्ती है। अब इन तत्वों से जो २ बाह्म्य जगत् के ग्रह नक्षत्रों के पिण्डों की उत्पत्ति को बतावेंगे।

तीसरा प्रकरण ।

(तत्व प्रबोध)

नाम तत्व	रंग	स्वाद	आकार	स्वभाव	गति	परिणाम	स्थान	विषय इंद्रिय ज्ञान	कार्य
आकाश	काला	फीका	कर्णाकार	शून्य	निस्प नन्दन	शून्य	मस्तक में	शब्द मय कान	काम, क्रोध लोभ, मोह मत्सर
वायु	हरा	खट्टा	चक्रा	चंचल	सरपा कार चर	८ अंगूल	नाभी के मूल में	स्पर्शमय त्वचा	दौड़ना कूद ना हिलना आदि
अग्नि	लाल	चरपरा	त्रिकौन	उष्ण दाहक	अर्ध	४ अंगुल	दोनों नेत्र	रूप मय देखना नेत्र	भूख प्यास नींद आदि
जल	श्वेत	लवण	अर्धचंद्राकार	शीतल	अधो	१८अंगूल	चरण के नीचे	रस मय जिह्वा	मल मूत्र कफ आदि
पृथ्वी	पीला	मीठा	चोकौना	कठिन	स्थिर	१६अगूल	जानू में	गंध मय नासिका	चर्म मांस नाडी आदि

प्रकरण चौथा

जगत् की उत्पत्ति ।

यह जगत चराचर जगत के नाम से बोला जाता है जिस में चर (गति मान अचर अगति मान का समावेश है इसी से इसको चराचर जगत कहते हैं। इस की सीमा जहां तक चन्द्र और सूर्य ज्योति प्रकाश हो वहां तक की है जिस में सूर्य चन्द्र आदि के ग्रह पिण्ड और ब्रह्म से आदि भूले लोक तक सप्त लोक जिस में शामिल हो उसको एक जगत कहते हैं। अब इन में पहले आप को ग्रह पिण्डों और सूर्य चन्द्र आदि नक्षत्रों की उत्पत्ति को बताते हैं कि यह किन २ तत्वों से उत्पन्न हुवे हैं।

ग्रह पिण्ड ।

अग्नि से सूर्य और मंगल जल से चन्द्रमा और शुक्र वायु से राहु और शनिश्चर आकाश से बृहस्पति पृथ्वी से बुध।

अब नक्षत्रों के तत्वों को कहते हैं।

पृथ्वी से ।

धनिष्ठा, रोहीणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजीत, उत्तराषाढा ।

जल से ।

अशालेखा, मूल, आद्रा, रेविती, उत्तराभाद्रपदा, सतभिषा ।

अग्नि से ।

भरणी, कृतिका, पुष्प, मघा, पूर्वाफालगुनी, पूर्वाभद्रा, स्वाति ।

वायु से ।

उत्तरा,फालगुनी हस्त चित्रा पुनर्वस अश्वनी, मृगसरा ।

इस प्रकार यह ग्रह मंडल है इस में तारे धुम्रकेतु पूछ वाले तारे नक्षत्र उलका वा आदि सब सम्मिलित है। हमारी पृथ्वी भी इनके ही शामिल है अब इन की गति व्यास आदिकों का वर्णन करेंगे ।

पाचवां प्रकरण ।

सूर्य ।

यह अपनी धुरि पर २५$\frac{1}{2}$ दिनों में घुमता है सूर्य पृथ्वी से ३००० गुना बड़ा है ९३००००० मील दूरी पर है सूर्य का व्यास ८६६४०० मील है अथवा पृथ्वी के व्यास से ११० गुना बड़ा है ।

चन्द्रमा ।

यह अपनी धुरि पर २७$\frac{1}{3}$ दिनों में घुमता है और इतने ही दिनों में वह पृथ्वी के चारों ओर एक परिक्रमा पूरी

करता है यह पृथ्वी से छोटा है इसका व्यास २१६३ है मील पृथ्वी से यह २३८००० मील की दूरी पर है यह पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व को घुमता है जितने कालमें पृथ्वी अपनी धुरि पर एक पूरी परिक्रमा करती है उससे कम में चन्द्रमा $\frac{२६}{२७}$ में घुमता हे इसी लिये चन्द्रमा का उदय $\frac{१}{२७}$×२४ अर्थात् ५४ मिनट प्रति दिन देरी में होता है इसी से चन्द्रमा २९½ दिन का होता है चन्द्रोदय से चन्द्रोदय परियन्त का समय २४ घटा ५४ मिनट का होता है हमारी पृथ्वी से सूर्य तथा चन्द्रमा का बिम्भ समतुल दिखाई देता है जिस का कारण यह कि समीप के पदार्थ बड़े और दुरुस्त के छोटे इस लिये दोनों बिम्भ सम दीखते हैं।

मंगल।

यह बहुत बातों में पृथ्वी के समान ही है इसी से इस को भूमी पुत्र के नाम से कहा है यह अपनी धुरि पर २४ घंटे ३७ मिनट २२ सेकन्ड में घुमता है यह सूर्य के चारों ओर ६८७ दिनों में प्राय हमारे दो वर्षो में एक परिक्रमा पूरी करता है इस का व्यास ४१०० मील का है सूर्य से १४५१८६००० मील दूरी पर है।

बुद्ध।

यह प्राय अपनी धुरि पर २४ घंटा ६ मिनट में घुमता है और सूर्य के चारों ओर ८८ दिनों में एक परिक्रमा पुरी करता है इस का व्यास २९८४ मील है यह सूर्य से ३६८८५००० दुरी पर है।

बृहस्पति ।

यह अपनी धुरि पर १० घंटों में घुमता है और सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा ४३३२½ दिन में पुरी करता है जो हमारे बारह वर्ष हो जाते हैं इस का व्यास ८७३८० मील है और इसके चारों दिशाओं में चार उप तग्र है वह घुमते और चन्द्रमा जैसे है जिन को अंग्रेजी में सेन्टलाईट कहते है यह प्राय इतने ही बडे हैं जितने हमारे चन्द्रमा हैं इस के चारों ओर वर्तुलाकार कुड़ली है यह सूर्य से ४६५७५१००० मील दुरी पर है ।

शुक्र ।

यह अपनी धुरि पर २५½ दिन में घुमता है और सूर्य के चारों ओर एक पूरी परिक्रमा प्राय २२५ दिनों में करता है इसका व्यास ७७१३ मील है यह सूर्य से ६८१२३००० मील दूरी पर है ।

शनिश्चर ।

यह अपनी धुरि पर १०¼ घंटों में घुमता है और इस को सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा करने में १०७५९¼ दिन लग जाते हैं जो हमारे २९½ वर्ष के बराबर होते हैं। इसका व्यास ७४९३२ मील है सूर्य से ८८६०००००० मील दूरी पर है इसके चारों ओर दस उपग्रह हैं और चौकड़ी सी है यह तीन तरह के रंगों में चमकता है इस के भी वर्तुलाकार चक्र है ।

राहु ।

यह ग्रह पृथ्वी से चार गुना बड़ा और इसके साथ में ६ उपग्रह हैं यह दोनों ग्रह उल्टे घुमते हैं पहचान इसके

ऊपर चोटी होती है इसको एक परिक्रमा करने में ३०६८७ दिन अथवा ८३९$\frac{1}{6}$ वर्ष लगते हैं इसका व्यास ३२८०० मील है और यह सूर्य से १७८२००००००० मील दूर है।

केतु।

इसके चोटी नीचे होती है यह सूर्य के चारों ओर ६०१०१ दिन में यानी १६४ वर्ष में एक परिक्रमा पूरी करता है यह सूर्य २७९१०००० ० मील दूरी पर है।

पृथ्वी।

पृथ्वी जोकि जिस पर हम बसते है एक गोल ग्रह है जिस का विषवत्‌रेखा पर व्यास ७९२६ मील है और परिधी विषवत रेखा पर २४९०० मील है अपनी धुरि पर २३ घन्टा ५६$\frac{1}{10}$ मिनट में प्रति दिन घुमती है सूर्य के चारों ओर एक पुरी परिक्रमा ३६५ दिन ६ घन्टा ९ मिनट ९सेकन्ड में करती है यह सूर्य से इतनी दूरी पर ९३०००००० मील है आधा भाग जो सूर्य की तरफ रहता है उस में दिन और दूसरे आधे भाग में रात्री होती है और ऋतुओं का परिवर्तन भी इसी के घुमने से और दिन रात में भी कमी बेसी इसी से होती है। और पृथ्वी के चलने के मार्ग को कक्षा कहते हैं इस कक्षा के वाक्रांति वृत को किसी सड़क या सड़क या सड़क का मार्ग न समझना चाहिये यह एक कल्पित आकाश मार्ग है जिस से पृथ्वी सूर्य की प्रदीक्षणा करती है इसको वृताभा कहते हैं वृतों की गोलाई उन के व्यास से $\frac{22}{7}$ गुना अधिक होती है यानी ५८३०००००० मील की होती है इस हिसाब से सूर्य की प्रदक्षणा करने

में जो ऊपर बताये दिन लगते हैं उन दिनों में ५८३०००००००
मील मार्ग क्रम से तय करना पड़ता है, वर्ष भर में इतनी
बड़ी यात्रा समाप्त करने के लिये पृथ्वी को एक सेकन्ड में
१८ मील दौड दौडनी पडती है और एक घन्टे में कोई
६५७०० मील की वेग से गति करते हैं।

तारा लोक।

जिस प्रकार प्रमाणु दो प्रकार के हैं उसी तरह पर यह
तारे भी दो प्रकार के हैं एक निश्चल और एक चल वि
चल स्थर तारे इस लिये कहलाते हैं कि वह सदा नहीं
घुमते वह अपनी धुरि के केन्द्र में ही कायम रहते हैं वह
सदा किसी भी ग्रह के जितने दूर नजदीक फासले से रहते
हैं वही अपनी कक्षा में कायम रहते हैं और वह घुमते
मालूम होते हैं उनका कारण केवल दूसरे ग्रहों के घुमने
से है यह सम्भव हो सकता है हमारे सूर्य जगत् के समान
वे भी और सृष्टियों या लोकों के केन्द्रहों और अधिक दूर
के भवनों को प्रकाशित करने वाले सूर्य और तारे इतनी
दूरी पर हैं कि जो तारे हमारी पृथ्वी से सब से अधिक
निकट हैं उसकी दूरी ७६०००००००००० छ यन्तर खरब
मील की दूरी है यह छोटे बडों की कक्षा के होते हैं यह
आकाश गंगा में भी इनकी कक्षा हैं।

नक्षत्र।

उसे कहते हैं जो आकाश में एक स्थान पर बहुत से
तारे एक त्रित हो और उन को पहिचानने के लिये किसी

पशु आदि के आकारादि के नाम रख दिये गये हैं। जैसे अश्वनी, मेख, बृख, इत्यादि यह तीन प्रकार के होते हैं।

१ रासी चक्र २. उत्तरी ३ दक्षिणी।

यह ब्रह्माण्ड अति विशाल और अनन्त है जितना हम देख सकते हैं उसी पर उसकी सीमा निश्चय नहीं है कई ग्रह पिण्ड मृतक हो रहे है और कई ग्रह पिण्ड आगे होने वाले सूर्य पृथ्वी आदि बन रहे हैं कितने ही ग्रह तो इतने बडे ह कि पृथ्वी से सूर्य का जितना अन्तर है उसे उनमें का प्रत्येक तारा व्याप्त करलेगा इनसे दूर रहने वाले तारे तो इन से भी अधिक प्रचण्ड विशाल एव तेजस्वी हैं, जैसे हमारे पृथ्वी ग्रह में सूर्य है ऐसे ही इन तारों में भी सूर्य और चन्द्र हैं और उन के चारों ओर वह तारे घुमते हैं यह अत्यन्त दुरुस्त होने से केवल तारों के समान दिखलाई पड़ते हैं घुमते विदित नहीं होते हैं और उनके प्रकाश में भी बहुत कुछ अन्तर पडता है कई के प्रकाश तो जब से सृष्टि उत्पन्न हुई है जब से अभी तक प्रकाश पृथ्वी पर नहीं पहुंचा है और प्रकाश की गति का वेग एक लाख असी हजार मील प्रति सेकन्ड की चाल विधुत कणों की गति दुवारा निकाली गई है। कितने के प्रकाश पृथ्वी पर आने में १७०० वर्ष लग जाते हैं ऐसे २ भी ग्रह पिण्ड हैं जिन के वर्ष का मान हमारी अपेक्षा इतना बड़ा है कि हमारा एक २ कल्प उस ग्रह पिण्ड के एक २ क्षण के बराबर समझा जावे। ऐसी दशा में वह पिण्ड हमारे सत्य लोक या ब्रह्म लोक के बराबर होगा जिस को हम नित्य अनन्त

अविनाशी और निर्विकार समझते हैं हमारे लिये जैसे परमाणु ब्रह्माण्ड वैसे ही उनके लिये हमारा और ब्रह्माण्ड ठहरा। परमेश्वर का अन्नत कारोबार और अन्नत शक्तियां हैं मनुष्य में इतनी बुद्धि कहां कि सब को जान सके और और समझ सके।

—:अध्याय सातवां:—

प्रकरण पहला।

चैतन्य शक्ति के स्थूल रूपों का वर्णन कर दिया गया है जो वाह्म्य जगत् के कार्य सिद्ध करती हैं जो पञ्च प्राणों और उनसे तत्वों को उत्पन्न है और तत्वों से ग्रह पिण्ड और नक्षत्रों को उत्पन्न कर बाहरी जगत को धारण करती है। अब हम उसके दूसरे रूप संजीवन शक्ति जिस से अन्तर जगत के प्राणियों के पिण्डों को उत्पन्न कर उनको अपनी क्रिया द्वारा संजीवन रखती है। जो पदार्थों और द्रव्यों का वर्गीकर्ण करती हैं। जो शरीरों में नख से सिख परियन्त नित्य जाग्रत मान है जो चेतना कही जा सकती है जो चारों अवस्थाओं में समान अपरिवर्तन शील कायम रहती है जिस के संयोग से मन बुद्धि आदिकों को उत्तेजना और प्रकाश मिलता है और जड़ चेतन पदार्थों में जिस का अंश रूप से एक तार संचार हो जाता है जिस के प्रकाश से सर्व पिण्ड चेतना का प्रकाश रखते हैं। जो देवों में

मनजनीत और मनुष्यों में बुद्धि जनीत पशुओं में प्रेणाजनीत और वृक्षों में स्वप्न जनीत प्रकाशता है।

इस चेतना का ज्ञान बहुत ऊच कोटिका है जिस की पूर्ण प्राप्ति कोटिजन्मांतरों में भी पुरी नहीं हो सकती है तो मै आप को इस ज्ञान की पूर्णता कभी नहीं कर सकता हूं। अलबत्ता जो कुछ तुच्छ मात्रा में जाना वह कुछ तो शास्त्रों के द्वारा और कुछ गुरु परमपरा से और कुछ स्वयम खुद को अनुभव प्राप्त किया हुवा है इस प्रकार जो कुछ मैंने जाना है जिस का लाखवां अंश मैं आपको बताता हू जो संक्षिप्त है जिस का वर्णन आगे प्रकरणों में किया जायगा।

दूसरा-प्रकरण

अब चैतन्य महा विज्ञान का वर्णन करते हैं।
प्रथम चैतन्य के मार्गों को कहते हैं।

इस ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि चैतन्य तो अपार अखण्ड, अटूठा अक्षत है। उसी चैतन्य का चेतन प्रवाह जगत में चल रहा है। जो पिण्ड और ब्रह्माण्ड में क्रिया और कार्य कर रहा है। इसका कुछ ज्ञान मैं आपको देना चाहता हूं। जोकि मुझको कुछ तो गुरु परम्परा और कुछ स्वयम मेरे अनुभव किया हुवा है। यह सर्व ज्ञान ऊंचे से ऊंचे पद चैतन्य के गुप्त से अदृश्य शक्ति के ज्ञान भंडार को प्राप्त करने और उसको जानने से मनुष्य उस अखिल सुख को प्राप्त कर लेता है।

चैतन्य का प्रवाह प्राणों के मार्गों में चल रहा है। यह दो प्रकार का है। एक नि:स्पनन्दन रूप निश्चल है दूसरा प्रस्पनन्दन रूप चचल धारा प्रवाह से चल रहा है। जो प्राणों का नि:स्पन्दन है वह समान रूप से अखण्ड पिण्ड और ब्रह्माण्ड में भरा हुवा है। जो सब का आधार होकर रहता है। वह हमारे पिण्ड और ब्रह्माण्ड में नि:स्पन्दन रूप चैतन्य हिरण्य गर्भ में से निकल कर प्रस्पन्दन रूप दो धाराओं में विभक्त होकर दो रूपों को धारण करता है। जो प्राण और अपान हैं। इन दो रूपों की दो मूर्तिमान रूप हैं जिन को हम सूर्य और चन्द्रमा कहते हैं। प्राणश्च सूर्य (अग्नि) और रय्याश्च चन्द्रमा (सोम) यह दोनों आपस मे युक्त व्यक्त होकर अपने मैथुन की क्रिया से मूर्ति जगत को उत्पन्न करता है। और अपने २ मार्गों से अपनी २ नाड़ियों के द्वारा चलते हैं। जिसको पिण्ड में सूर्य नाड़ी (पिण्डला) कहते हैं। और चन्द्रमा की नाडी को इड़ा नाडी कहते हैं। और इन दोनों के मध्य में समान रूप से भरी हुई एक नाडी को सुखमणा कहते हैं। जो ब्रह्माण्ड ब्रह्म रध्र से लगी हुई मेरुदण्ड में होती हुई मूल तक स्थित है। इड़ा और पिङ्गला नाभि से (सूर्य चक्र) निकल कर सम्पूर्ण शरीर में वह बाहिर के ब्रह्मांड में फैल जाती है। प्राणों के तीन मार्ग हुये, एक नि:स्पन्दन मार्ग, दूसरे दो प्रस्पन्दन मार्ग जो प्राण और अपान सूर्य चन्द्रमा इड़ा पिङ्गला हैं। इन्हीं मार्गो को अर्ची आदि कहते हैं। इन्ही मार्गों के द्वारा चैतन्य का महा प्रवाह चल रहा है। उदाहरणार्थ, जिस प्रकार मेगनैट से निकली हुई बिजली के द्वारा पोजीटिव से चलकर अपना चक्र पूरा करके नैगेटियु

बनकर वापिस मेगनेट में आकर फिर वो योजीटि वबन जाती है। इसी प्रकार हमारे शरीर में प्राण का अपान और अपान का प्राण होता रहता है। यह जीवन शक्ति सूर्य चक्र से निकलकर हृदय प्रदेश में युक्त व्यक्त का मैथुन (प्राणापान) की क्रियाओं को करके वापिस निःस्पन्दन मार्ग सुखमणा में जा मिलती है।

यह जीवन शक्ति सूर्य चन्द्र में से उत्पन्न होकर प्राणों में जो पहिला कम्पन का खटका है, वह जीवन शक्ति है बस प्रथम खटका होते ही वह जीवन तत्व समाप्त हो चुकता है। परन्तु उस खटके में जो जीवन शक्ति थी वह समाप्त नहीं हुई। जहां जीवन तत्व समाप्त होते ही नाश का एक तत्व उस शक्ति में पैदा हो जाता है। फिर वह नाश कारक तत्व उस शक्ति में जोकि सूर्य चक्र से निकली थी वह अपने आकर्षण के नियमानुसार फिर उसी में जाकर वह नाश कारक की जीवन कारक वन जाती है। यह जीवन शक्ति पिङ्गला जीमनी बाजू से निकलकर जाती है, दांई बाजू से वापिस आकर पुनः जीवनी हो जाती है। इस प्रकार श्वांस प्रश्वांस का एक चक्र पूरा करती है। जो पहले खटके में जीवन उत्पादक नाश होते हैं और दूसरे खटके में नाश हुए कम्पन उस जगह चलकर उसकी जगह नये उत्पादक कम्पन आ जाते हैं और तीसरे खटके में जो नाश कारक कम्पन फिर उत्पादक मान होकर जीवन सत्ता को लाकर शरीर को सजीवत रखते हैं। इसका मैं एक छोटा सा सष्ट उदाहरण देकर समझाता हूं एक कूआं पानी से भरा है

और उसके पानी को वाहिर लाकर वृक्षों को देने के लिये उसके ऊपर एक अरट का यन्त्र लगाते हैं. और उस अरट के ऊपर एक रस्सी की माल लगाते हैं, और उस माल पर पानी निकालने के लिये छोटे घट (घडलियां) वांध देते हैं। जो विल्कुल पास २ सैकडों की तादादमें होती है और ये घट माला के साथ में ठेठ पानी के अन्दर तक लगी रहती है। फिर जब अरट को ऊपर से घुमाया जाता है जब वह घट माला पानी से भर २ कर पानी को ऊपर लाती है। और और इनके बेगसे पानी की धारा वरावर चलती है जहां तक कि घट माला चलती है। ये पानी के घट अरट के यंत्र की जीवणा वाजू से भरी हुई आती है और ऊपर खाली होकर फिर वांई वाजू से जाती है। इनके आने और जाने का मार्ग पृथक २ है और इसी मार्ग को चन्द्र सूर्य अथवा पिङ्गला और इडा कहते हैं और इसको बिजली शास्त्री पोजीट्यु और नैगैटिव कहते हैं। अब देखो घट और घट माला वही रहती है और अरट और अरट का चक्र भी वही एक वाजू में घूमता है। परन्तु सिर्फ खाली भरी घडलियों की दिशओं का उलट फेर का अन्तर है। जब पानी से भरी हुई आई थी। जब वह दांई वाजू से और खाली होने पर बांई वाजू जावेगी और फिर भर जाने से वह की वह जीवणी वाजू हो जायगी जो ऊपर बांई वाजू थी। वह नीचे पानी भर जाने पर दाहिनी होगई। इसी प्रकार समझो कि हमारे शरीर में जो ब्रह्मरन्ध से मूलाधार तक जो वंक नाल है वह निश्चल चैतन्य रूप पीयूप से भरा कुआ है। और सूर्य चक्र उस पर अरट का यंत्र है और इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी उस अरट पर घट माल लगी है। और फेफडे के श्वास और प्रश्वास की

(प्राणा पान) क्रिया के जरिये से अरट चल रहा है। और वह निश्चल चैतन्य को अरट चक्र की क्रिया से चचल चेतना मानकर के हमारे हृदय चक्र में लेजाकर उस सजीवनी शक्ति के कम्पनों को जोकि ७२७२१०२१० सूक्ष्म स्नायुओं में विस्तारित करके उनको सूक्ष्म शरीर में व्यापक कर रहा है।

॥ इति प्राण मार्ग प्रकरणम् ॥

तीसरा प्रकरण

चेतना का मुख्य केन्द्र।

यह चेतना चैतन्य के कोष में से निकलकर अपने मुख्य अधिष्ठान ब्रह्माण्ड में और पिण्ड शरीर में एक ही प्रकार की है सूर्य हमको प्रत्यक्ष दीखता है। और अध्यात्मसूर्य पिण्ड शरीर में अपरोक्ष में है। परन्तु दोनों प्रकार के सूर्य के गुणों और शक्ति में कुछ भी अन्तर नहीं है। दोनों तुल्य हैं अन्तर केवल आकाश की तरह पर घट भट का ही है। जैसे विम्ब और प्रति विम्ब में कोई अन्तर नहीं होता है अर्थात् विम्ब के सदृश्य ही प्रतिविम्ब है। और जिस प्रकार उनके घट में अनेक प्रति विम्ब हैं। उसी प्रकार उसके ब्रह्माण्ड का सूर्य अनके पिण्डों (घटों) में अनेक प्रतिविम्वति सूर्य हैं। परन्तु दोनों गुण और कर्म शक्ति में वरावर हैं। यदि दिव्य दृष्टि से देखा जाय तो इस सूर्य और सृष्टि चक्र का वहुत दिव्य

ज्ञान है उसका पूरा वर्णन करने से बड़ी भारी पुस्तक बन जावे। इस लिये इसके जो मूल सिद्धांत हैं उन को हम बतलादेवेंगे।

केन्द्रों की उत्पत्ति।

चैतन्य के प्रवाह से जब प्राण अधि भौवतिक सूर्य प्रमाणुओं में भर जाता है। जब उस प्राण के आकर्षण शक्ति के द्वारा अपने चारों तरफ उन प्रमाणुओं को खींच लेता है। उनका एक प्रकार का आकाशादि तत्व के रूप में चक्र बन जाते हैं। जैसे घटमठादिकाश फिर हर एक प्रमाणु में जो हर एक लोक का भार अलग २ है। उनके अनुसार वह चक्र बनकर अलग २ लोकों के अनुसार वह स्थान भेद से अलग २ बन जाते हैं। और अपनी अलग आकषर्ण शक्ति द्वारा चेतना के रूपों को प्रगट करते हैं।

फिर यह हमारे स्थूल शरीर के बन्धन में अलग २ भागों के स्थानों में जाकर अपने २ केन्द्रों को बांधकर चक्र बना लेते हैं।

वह इस प्रकार से है।

(१) मूलाधार रीढ़ की हडी मूलद्वार पर (२) स्वाधिष्ठान यह गुदा और लिंग के मध्यम प्रदेश में(३) नाभि में मणीपुर अर्थात् सूर्य चक्र (४) हृदय पर अनाहत (५) कंठ पर विसुधी (६)भ्रकुटी में आज्ञा (७)मस्तक के सहस्त्र दल हैं, इस प्रकार और इसके अलावा उप चक्र और भी वहुत हैं। वह सब सुषोप्त अवस्था में रहते हैं और उनका जगाना भी

बहुत अनुचित है। और यह जो सात चक्र ऊपर बताये गये हैं इनको जागृत करने पर यह जागृत अवस्था में आजाते हैं। जब इस मनुष्य को आलौकिक जीवन शक्ति का प्रवाह आकर अलौकिक ज्ञान का प्रकाश उदय होता है। इन भिन्न २ चक्रों में भिन्न २ शक्तियां भिन्न २ लोकों की भरी हुई हैं। प्रत्येक चक्र गुणों के अनुसार लोक लोकांत्तरों में इन चक्रों का ज्ञान चलाया जा सकता है और इन लोका-न्तरों में वह पहुंच जाता है। इन को जागृत करने में इन के बीज मंत्र और वर्ण देवताओं में ध्यान करने से इनका साधक इन चक्रों को खोलकर इन के गुणों के अनुसार सिद्ध होकर आवागमन से छूट जाता है। इन चक्रों में मुख्य अधिष्ठाता सूर्य चक्र ही है। इसीलिये हम आप को इस एक चक्र का ही संक्षिप्त में इसके मुख्य २ ज्ञान का दिग दर्शन मात्रा में निरूपण करेंगे।

(सूर्य और सूर्य चक्र के गुणों की तुलना)

बाहिरी सूर्य जगत में जैसे सूर्य प्राकृतिक लीलाओं का प्रकाश मे सर्व तेजस्वी उत्पत्ति तथा जीवन उत्पन्न करने वाला केवल एक सूर्य ही है। जो प्राणी मंडल में सुख देने वाला प्राण प्रकाशक एक मात्र ही सूर्य है। इस प्रकार अन्तर अध्यात्मा जगत(प्राणियों के शरीर)रूपीजगत में वह सूर्य चक्र ही प्रकाश देता है। जैसे सूर्य स्थूल जगत में नियमित रूप से जगत की रचना रचता है। खुशी आनन्द से भरा हुआ है, जिसके प्रकाश और गर्मी से बीजों के अँकुरों के मुख उत्पन्न होते हैं और पुष्प की कलियाँ खिल जाती हैं। उसी प्रकार सूर्य चक्र से हमारे शरीर में खुशी तथा आनन्द से हृदय

खुल जाता है। और प्रवति इच्छा, भावना,बासना,आशा को जागृत अन्तः करण में उत्पन्न हो जाती है। और जिस प्रकार सूर्य के ही प्रकाश को चन्द्रमा आदि लेते हैं। और अपने को प्रकाशते हैं। उसी प्रकार से हमारे अध्यात्मा अन्तर सूर्य चक्र से अन्तःकरण हमारा मन रूपी चन्द्रमा और बुद्धि आदि प्रकाशते हैं। जैसे मनुष्य एक दूसरे को वस्तु को उधारी लेकर अपने व्योपार के कार्य में लगाते हैं। उसी प्रकार सूर्य चक्र में से जीवन शक्ति अन्तः करण लेकर अपनी क्रिया और कार्य चलाते हैं। जिस प्रकार सूर्य को बादल आ घेरते हैं। उसी प्रकार से हमारे अन्तर सूर्य को, क्रोध, शोक, मोह, लोभ, आ घेरते हैं। जिसके फल स्वरूप हमको दीनता, दुःख अविवेक इत्यादि निष्फलता मिलती है। सूर्य जिस प्रकार दुर्गन्धि अदिकों को अपने प्रकाश से नाश करता है। उसी प्रकार से सूर्य चक्र भी हमारे अन्तः करणों के चिंता शोक इत्यादि को दूर कर देता है। और सूर्य को कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता है। वह अपने प्रभाव से साक्षात् अग्नि है। इसी प्रकार जो से प्राणी अपने सूर्य चक्र को प्रकाशित कर देता है और उस में संयम करता है तो फिर काल की क्या मजाल जो उस की तरफ आंख उठाकर देखे जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी विषय रस ग्रहण कर उसको अपनी जीवन शक्ति से अमृत बनाकर उस को सहस्त्र गुणा करके अपनी सहस्त्र नाड़ियों के द्वारा वापिस

---

१ टिपणी—सूर्य के चारसौ नाड़ियां जल बरसाने वाली है और तीनसौ नाड़िया हिम बरसाने वाली हैं और तीनसौ गर्म उत्पन्न करने वाली हैं तीनसौ आनन्द देने वाली है।

पृथ्वी को वर्षा देता है। उसी प्रकार सूर्य चक्र हमारे आहार में से रस को चूस कर अपनी संजीवनी शक्ति से पीयूष बना कर सहस्त्र गुणाकर अपने प्राण वाही नाड़ियों के द्वारा हमारे शरीर मे देदेता है। सूर्य जगत में अपना प्रकाश चाहे गरीब की झोपड़ी पर और धनवान के महलों पर, राजा के राज्य पर, वीरान जंगल पर वह एक समान प्रकाश करता है। न किसी की रिश्वत और न खुशामद की आवश्यकता है। जो मनुष्य घड़ी भर में सूर्य के प्रकाश की गर्मी मिलने पर आशीष देता है और घड़ी भर में गर्मी से घबड़ा कर गालियां देता है। परन्तु सूर्य तो अपना प्रकाश कम या ज्यादा नहीं करता है। एकसा अपने नियमानुसार प्रकाश देता रहता है बादल आ २ कर सूर्य को घेरलेते हैं तो भी सूर्य पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार सूर्य चक्र भी बाहर वाले सूर्य के समान अपना प्रकाश रखना है और चाहे जैसे रंजीदा व फिक्र उसे आ घेरे परन्तु वह तो अस्त नहीं होता है क्योंकि सूर्य में यह शक्ति है कि वह अंधेरे को अपनी शक्ति के प्रभाव द्वारा बिखेर डालता है। हम जरा में नास्तिक, लोभी, क्रोधी, कामी, दुखी, दरिद्री इत्यादि बनकर अपने स्वच्छ प्रकाश मय सुर्य को दुगुर्णी विचारों के बादलों से आच्छादित करके ढक देते हैं। तब अन्तकरण के प्रकाश के लुप्त होने से अंधकार आकार अच्छादित हो जाने से हम दूसरे प्रकाश के द्वारा अपना व्योपार करते हैं। इसी प्रकार दीपक या बिजली आदि के प्रकाश से अन्धकार को भेदते हैं। उसी प्रकार से दुष्ट और औगुणों और शारिरीक तथा मानसिक दोषों के द्वारा और मनुष्यों की संगति से हम अपनो प्रज्ञा प्रकाश

(ज्ञान भानू) को आच्छादित करते हैं और सद्गुणी सत शास्त्रों का अध्यन और ब्रह्म प्राप्त ज्ञानियोंके द्वारा अपने आच्छादित तम को भेदलेते हैं। इस लिये मनुष्य मात्र को अपने विचार स्वच्छ निर्मल रखने चाहिए अथवा कोई गाली देवें या बुराई करे या चुगली करे परन्तु उनकी बिल्कुल परवाह न करनी चाहिये। चुप चाप शांति संतोष तथा शुद्ध विचारों को रखना चाहिये कभी भी अन्तःकरण में बुरे विचारों का ध्यान न करना चाहिये। जब हम क्रोध में होते हैं। उस वक्त हमारा सूर्य चक्र अपने स्वच्छ प्रकाश को मन्द कर संकुचा जाता है अथवा अधिक घूमने से अधिक गर्मी बढकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। और दुष्ट अवगुणों के बादलों से बढकर अपने को उस समय तक दुखी अथवा खेदित चित रहना पड़ता है जब तक वह सूर्य चक्र अपने तेज के प्रकाश से उन बादलों को पिघला कर पानी नहीं बना दे तब तक हमारे अन्तःकरण इन शोक के बादलों से आच्छादित रहते हैं। फिर पानी बनाने के बाद वह बादलों की छाया लुप्त ह्रास हो जाती है और प्रकाश स्वच्छ भासता है। और हम सुखी हो जाते हैं।

॥ इति तीसरा प्रकरणम् ॥

चौथा—प्रकरण

सूर्य और सूर्य चक्र की शक्तियां।

यह जो त्रिगुणों का सम्पूर्ण अन्त.करणों में गुणों के विभाग बताये गये हैं। यह गुण भी इसी सूर्य चक्र से व्यक्त होकर त्रोहित होते हैं। जब गुणों के अनुसार इनकी तीन

शक्तियां प्रकट होती हैं वह इस प्रकार से हैं। जिस प्रकार सूर्य आकाश में प्रकाश करके अपनी किरणों की कम्पनों के द्वारा उन गुणों की शक्तियों को व्यक्त करता है। रजो गुण से उत्पादक शक्ति और तमोगुण से नाश कारक शक्ति और सत्वगुण से स्थिति कारक शक्ति इस प्रकार ये तीनों शक्तियां एक ही सूर्य से व्यक्त होकर सूर्य जगत में अपनी क्रिया करती हैं। इन का वर्गी करण दो धाराओं में होता है एक तो भौवतिक जड़ वर्ग में मिलकर उससे अपने गुणों के अनुसार कार्य करती हैं। यह शक्ति पृथ्वी में खानिज में मिलकर उन में गुणों का प्रादुर्भाव करती है और वनस्पति को उत्पन्न कर उनकी रक्षा कर उनका संहार करती है और फिर प्राणी जंगम वर्ग में उनका परिवर्तन कर देती है।

इसी प्रकार प्राणी वग में यह शक्तियां सूर्य चक्र द्वारा ओोहित होती हैं। वह सूर्य चक्र सूर्य से निकली हुई शक्तियों को अपने अन्दर प्राणों के द्वारा आकर्षण कर प्राणियों के शरीर में रग नस कण २ में उन शक्तियों का परिवर्तन करता है जिससे हमारे अव्यवों को गति मिलती हैं। और अपने २ गुणों के अनुसार, प्रादुंभवि होता रहता है। जब यह सूर्य चक्र नाश कारक शक्ति को डालता है जब हमारे अव्यव नाश हो जाते हैं (जैसे लकवा आदि) और उत्पत्ति शक्ति को डालने से हमारे अव्यव मजबूत और दृढ बन जाते हैं, यह तीनों गुणों की शक्तियों का धारा प्रवाह इस सूर्य और सूर्य चक्र से ओोहित होती रहती हैं

१—टिप्पणी येही तीनं संध्या आदि दवा रूप हैं।

और जड़ वर्ग में व प्राणी वर्ग में इसकी व्यक्त क्रिया चलती है। जिस के द्वारा हम प्रत्यक्ष उन गुणों के व्योपारों का अनुभव लेते रहते हैं। सूर्य चक्र सूर्य जगत के द्वारा हम प्रत्यक्ष उन गुणों के व्यापारों का अनुभव लेते रहते हैं। जो हमारे व्यवहार में आते हैं।

सुर्य चक्र सूर्य जगत के भौवितक पदार्थों के अन्दर से उनकी संजीवनी शक्ति को अपनी आकर्षण शक्ति के द्वारा चैतन्य के अंश को जड़ में से खींचकर उसको अपनी जीवन परा शक्ति में परिवर्तन कर अपनी आंतर सृष्टि शरीरों में व्यापक कर देता है। बाहर के सूर्य और अन्दर के सूर्य चक्र एक ही गति से एक ही कार्य कर रहे हैं। जैसे आंतर सूर्य चक्र वह इस शरीर के अन्दर आहार में से और बाहर से सूर्य में से जो प्रकाश के प्रमाणु पड़ रहे हैं, उन को अपने आकर्षण द्वारा अपने अन्दर खींच लेता है और उनका शुद्ध जीवन सत्व बनाकर अध्यातमा आंतर सृष्टि में परिवर्तित कर देता है। जिस से हमारे स्थूल शरीर वृद्धि पाते हैं। और जब यह चक्र इस क्रिया को बन्द कर देता है। तब यह शरीर नष्ट प्राय हो जाता है।

॥ इति प्रकरण चौथा ॥

प्रकरण पांचवा

सूर्य चक्र की शक्ति।

अध्यातमा में ये ही आंन्तर सूर्य चक्र जो चिद्घमय सच्चिदानन्द पारब्रह्म का मध्य केन्द्र है। यह ही सत्य और

आनन्द का मध्य प्रदेश है और येही सम्पूर्ण जगत भरका निश्चय अभ्यास एवम् ज्ञान का कारण है, येही परा वाणीका स्फूर्ण है। ध्वनि रूप नाद इसी सूर्य चक्र से निकल कर अनाहत हृदय कमल में भ्रमाय मान होकर ॐ का रूप वनकर (सोऽहं । हंस वनकर श्वांस प्रश्वांस द्वारा व्यक्त होता है। और उसी में प्रकाश फैल कर महा चित्की शक्ति का उदय होता है। यह चित्की शक्ति क्या है। यह चित्की जीव को जीवात्मा का अर्थात् जीवन कला है। और अजन्मा का जन्म है अर्थात् जीव का जीवन जन्म यहीं से होता है और वह जीवात्मा कहलाता है।

इसी सूर्य चक्र से अग्निकण (Electron) निकल कर शरीर को अग्नि मय बनाते हैं। उदाहरणार्थ, एक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अग्नि कण असंख्यात तृण समूहों को क्षण मात्र में जलाकर भस्म करदेता है। इसी प्रकार हमारे श्वांस प्रश्वांस के संघर्षण से निकली हुई जगमगाती ज्वाला सारे विश्व को संहार करने में समर्थ है। देखो ? अग्नि हमारे शरीर में है या नहीं इसके परिचय के लिये अथवा प्रमाण के लिये या अनुभव के लिये किसी सांइस की जरूरत नहीं या किसी फिलोस्फी की जरूरत नहीं। जरासा क्रोध हमको कम्पित करके प्रत्यक्ष देखने वाली आंख को अग्नि रूप बना देता है। इसी लिये आप सोचिये कि अग्नि हमारे शरीर में काष्ठ में, पाषाण में, और धातु में है। और सर्वत्र विश्व व्यापी विद्यमान है। उसका निरोध करना व प्रकट करना हमारे हाथ में है। हम उस अग्नि को छोटीसी तुली में लगाकर पेटी में बन्द कर अपनी

जेब में रख लेते हैं। और चाहे जब हम उस में से खाली प्रकाश नहीं बल्के चाहे जिस को भस्म भी कर सकते हैं। अथवा उस अग्नि को भाप पूरित कर उसको विजली अथवा स्टीम के रूप में करके यथेष्ठ अनेकानेक आलौकिक मशीनों व कलों के कार्य सम्पादन कर सकते हैं, और करते हैं। इसी से हम जीवन निर्वाह करके विश्व विजय कर सकते हैं। जब कि हम भौवतिक अग्नि से जो जड़ रूप है उससे ऐसे काम निकल रहे हैं तो फिर उस चित्ती शक्ति को प्राप्त करलेवें और उस पर अपना अधिकार जमा लेवें तो हम को विश्व विजय बनाने में क्या संदेह है।

उस चैतन्य महा कोष में से असंख्यात विद्युत्कण निकल कर चमक रहे हैं, प्रकाश फैला रहे हैं, एवं सर्वत्र प्रसार पा रहे हैं और अन्तराकाश में प्रोहित होकर निरोध होकर सुसङ्गठित हो होकर तेज पुञ्ज बन रहे हैं। नित्य नये सूर्य माला सङ्गठित हो रही हैं यही जीवाणु कोष या विजली है।

इसी प्रकार हमारे शरीर में सूर्य चक्र से जीवन कण निकल कर इस जड़ शरीर को संजीवन कर रहे हैं। और हमारे कण २ में इसी शक्ति का संचार हो रहा है। क्या कोई डाक्टर या नव पंडित साइन्टिस्ट इसका खण्डन करसकता है हम अपने अनुभव और साहस के साथ कहते हैं कि जब यह सूर्य चक्र अपनी जीवन शक्ति को हमारे शरीर में देना बन्द कर देता है जब यह शरीर मृतक हो जाता है। फिर चाहे लाखों साइन्स के आविष्कार करने पर भी वह जीवित नहीं रहता है यही हमारी भौवतिक आयु है।

जिस प्रकार एक बैटरी के अन्दर विद्युत्कण (Electron) मेगनेट से भरकर निरुध (Charging) करते हैं वह जहां तक उस बैटरी में वह विद्युत्कण निरुध होकर संचायमान रहते हैं। वहीं तक वह प्रकाश के कार्य को करती है। फिर जहां उस बैटरी का असंचायमान (Discharge) हो जाने पर वह निष्क्रय होजाती है। इसी प्रकार से हमारे सूर्य चक्र में सूर्यांश जितनी गणना में भरे हुए होते हैं। जब इन सूर्यांशों की संख्या समाप्त हो जाने पर हम भी समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार जो हमारे प्रत्यक्ष भौवतिक सूर्य वह भी अपने अंशों से एक समय खाली हो जायगा। जब वह निसःतेज होकर प्रायः मृतक हो जायेगा। इसी से सूर्य का नाम मार्तिण्ड रखा गया है कि एक काल में यह भी अपनी सूर्य माला सहित मृतक होकर उसपार परब्रह्म अव्यक्त में लीन होजायेगा।

हमारे ऋषियों तथा मुनियों व पूर्व जनों ने अपनी दिव्य दृष्टि, आंतर दृष्टि से जानकर इस शास्त्र की रचना की है। और उसका सह प्रमाण वर्णन किया है। नकि किसी (एक्सरेज) अथवा स्थूल कर्णी, माइसकोप के जरिये नहीं किया है। जो इस में कोई त्रुटि रह जावे।

इसी सूर्य चक्र की शक्ति द्वारा हमारा सब व्योपार चलता है। क्या अन्तःकरण क्या, ज्ञानेन्द्रियां, क्या कर्मेन्द्रिआं क्या प्राण इत्यादि। शरीर के जीवन व्यापार में एवं अन्तःकरण के मानसिक व्योपार में यही जीवन परा शक्ति चित्ती कला से चलता है। क्या इच्छा शक्ति क्या ज्ञान

शक्ति क्या क्रिया शक्ति और द्रव्य शक्ति यह सव उस परा शक्ति का ही परिणाम है।

परा शक्ति की क्रिया ज्ञान शक्ति में प्रचलित है और ज्ञान शक्ति की क्रिया इच्छा के व्योपार में प्रचलित हैं। और ज्ञानेन्द्रियों तक परिणाम को प्राप्त होती है। और इच्छा शक्ति की क्रिया द्रव्य शक्ति में प्रचलित है और कर्मेन्द्रियों के व्योपार के परिणाम को प्राप्त होती हैं। यह शक्तिये उस परा में से प्रचलित होकर अपने २ व्योपारों को सूक्ष्म और स्थूल शरीर तक प्राणियों के प्राणों में परिमाणों को प्राप्त होकर दृश्य मान रहती है यही सूर्य चक्र की शक्ति है।

॥ इति प्रकरण छटा ॥

छठा प्रकरण

॥ सजीवन शक्ति की शरीर में व्यापकता ॥

यह जीवन शक्ति (Vitol Energy) सूर्य चक्र से निकल कर मस्तिष्क के कोष में जाती है। फिर वहां से पृथक २ ठिकाने भेजने का काम मास्तिक करता है और वहां से सम्पूंण शरीर में व्यापक हो जाती हैं। उदाहरणर्थ, जैसे (Telephone Exchange) टेलीफोन एक्सचेज अपनी राह में पृथक २ ठिकाने की बात करने को कनेकशन (Connection) लगाने में आते हैं। उसी प्रकार से प्राणी का मास्तिक है। ठीक उसी प्रकार एक (Exchange) एक्सचेज

खाता मस्तिक में होता है, उसे कोष कहते हैं। उस कोष को जीवन शक्ति से भरने के लिये जैसे बैटरी मे विद्युत्कण भरने के लिये जरनेटर (Gernater) होता है जो बैटरियों का चार्जींग (Charging) करता रहता है। इसी प्रकार से हमारे शरीर में जीवन शक्ति भरने के लिये सूर्य चक्र ही जरनेटर है। जो मस्तिक के कोष को जीवन शक्ति से पूरित रखता है। वहां से फिर सब ज्ञान चक्रों में भेजी जाती है। जो चक्रों के साथ में सम्बन्ध रखने वाली नाड़ियों के साथ प्रवृति होती रहती है। मस्तिक के पृष्ट रज्जुमेरू डंड में असंख्यात: चक्र और असख्यात नाड़ियों के मूल हैं। शरीर में ये ज्ञान तत्व हरपेक स्नायु तथा अव्यवों में भी होते हैं। वही जीवन शक्ति को चलायमान करते हैं। फिर वह सर्व अंगों उपांगों में व्यापक होकर प्राणियों में जीवन अवस्था को कायम रखती हैं। माता के गर्भ में से जब बच्चा बाहिर आता है। उसके डुंठी के साथ में लगा हुआ एक डोरा रूपी स्नायु जिसको (नाला) कहते हैं बंधा हुआ होता है। उसी के द्वारा गर्भ को पोषण मिलता है। जमाता की गर्भ नाड़ी खुलती है। जब वह सूर्य चक्र अपना प्रकाश उस नाड़ी में डाल कर अपनी जीवन शक्ति से गर्भ को संजीवन देता रहता है और गर्भ को पुष्टकर पोषण करता है और इसी के द्वारा हमने अपने जीवन अंश प्राप्त किये हैं। जिस प्राणी में ये सूर्य चक्र कम प्रकाश कर देता है उसी प्राणी की मृत्यु हो जाती है चाहे हजारों दवाइयों और साइन्स के आविष्कार उपस्थित होते हुये और वड़े २ अनुभवी डाक्टर वैद्य होते हुये निष्फल हो जाते हैं। जब इसके प्रकाश के सकोचने पर प्राणी के यह लक्षण पैदा हो जाते है कि, चमड़ी के रोम कुपों के छिद्र वन्द

हो जाते हैं। और स्वांस मुंह के मार्ग थोड़ा २ लेते हैं। और क्रोध विचार बहुत जल्द और अधूरे हो जाते हैं, जिससे वह प्राणी शीघ्र ही मृत्यु प्राप्त हो जाता है। ये हमारा अनुभव है।

॥ इति ॥ सजीवनी शक्ति की शरीर में व्यापकता ॥

सातवां प्रकरण

॥ सूर्य चक्र और कार्य ॥

विचार स्वांस और कार्य ये तीनों, एक ही कार्य के विभाग हैं। जो विचार है वही कार्य और कार्य वह विचार करने के बराबर है। और विचार ये श्वांस लेने के बराबर है और श्वांस ये विचार करने के बराबर है। कोई भी मनुष्य विचार करनेके विदुन श्वांस नहीं ले सकता है। और जो श्वांस लेवे वह श्वांस लेने के पूर्व उस श्वांस का विचार करना ही पड़ेगा। इस लिये विचार करना भी श्वांस लेने के बराबर है कोई भी प्रकार का कार्य श्वांस लेने के विदुन बन नहीं सक्ता और श्वांस और कार्य के पूर्व विचार का होना भी आवश्यक है क्यों कि बिना विचार के क्रिया नहीं बनती और क्रिया के बिना कार्य नहीं हो सकता और विचार के बिना श्वांस नहीं ले सकता। इस लिये विचार श्वांस क्रिया में एक ही मूल कारण के कार्य हैं जो हमको भिन्न २ भासते हैं और भिन्न २ कर्मों को सम्पादन करते हैं, परन्तु इन कार्यो का मूल कारण तो एक सूर्य चक्र ही है।

इस विचार श्वांस और क्रिया के बल से संसार में जो इनके योग को जानता है वह अनेक अद्भुत चमत्कार दिखला

रहे हैं। ये तीनों प्रक्रिया रोज हर समय हर घड़ी प्रतिक्षण हमारे अन्दर चालू है। परन्तु हम इस कार्य से अजान अज्ञान हैं, ताकि इसके जो सिद्धियों के चमत्कार हैं उन चिन्ता-मणीयों को हम प्रति श्वांस प्रश्वांस में फैंक रहे हैं और यदि हम इन ऊपर वाली क्रिया की विधी पूर्वक थोड़ा भी उपयोग करना सीख जावे तो हम विचारे अथवा जो चित्त में चिन्तवना करे वह कर सकते हैं।

विचार से श्वांस और श्वांस से क्रिया और क्रिया से कार्य और कार्य से सिद्धि और सिद्धि से सिद्धियों और सिद्धियों से, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष बन जाता है।

॥ श्वांस क्रिया ॥

अब श्वांस क्रिया को कहते हैं। श्वांस भरपूर ठेठ नामी प्रदेश से ऊंडा खींचना चाहिये। जिससे शरीर के अन्दर का सूर्य चक्र खुलकर प्रफुल्लित हो जावे। याने बाहिर के सूर्य के जीवन प्रमाणु विद्युत्कण श्वांस के द्वारा आंक्सीजन (Oxy-gen) अन्दर जाकर सूर्य चक्र की जीवन शक्ति से मिल जावे और अन्दर की जीवन शक्ति के कार्य सम्पादित होते रहें।

जब तुम श्वांस को खींचते हो जब इच्छा के विचार करते हो। जब श्वांस अन्दर जाकर रुकता है (अर्थात् कुंभक) होता है। जब वह विचार समतुलात्मक हो जाते हैं। और जब श्वांस छोडते हैं। तब उस वक्त सूर्य चक्र की प्रकाश की किरणें उस विचार से रंजित होकर वाहिर निकलती हैं। वही किरण उपाधी रूप से प्रभा तेजोवल्य प्रगट हो जाती हैं

और विचारों के रूप रंग आकारों के भावों को धारण करती है। जिससे मनुष्य के मन के अन्दर के विचार जानने में आजाते हैं जिसका वर्णन अगले प्रकरण में करेंगे।

सूर्य चक्र के मथन रूप मैथुन से जहां पर श्वांस और विचार परस्पर अपने रूपाकार वदल कर कार्य और कर्म वन जाते हैं। इस लिये मनुष्य को अपने विचार धर्मानुकूल भलाई व नीति उपकार और उपासना की तरफ लगावे और उससे मोक्ष रूप कार्य सिद्ध करे।

मन रूपी तीर के ऊपर विचार रूपी फल लगाकर चित्त रूपी कमान पर श्वांस रूपी प्रत्यञ्चा लगाकर प्रणायाम रूपी कुवक खेंच रोक कर इच्छा रूपी अनु लक्ष्य कर क्रिया रूपी संयम द्वारा सततशर सन्धान कर ॐ रूपी लक्ष्य वेध करने से मोक्ष रूपी कार्य सिद्ध होता है। इसी वल से आज पृथ्वी तल पर बड़े २ साम्राज्य विद्यमान हैं। इसी लक्ष्य वेद द्वारा आज भी प्रत्येक देश अपनी २ शक्ति बढ़ा रहे हैं। और सर्वोपरि सत्ता जमा रहे हैं। विश्व विजय सम्पादन कर रहे हैं। इसी प्रकार से सूर्य चक्र का लक्ष्य वेधकर चिती शक्ति को प्रत्यक्ष कर उसके द्वारा जन्म मरण से मुक्त होना चाहिये जैसे कहा है:—

धनुर्गृही त्वोपनिषदः महा शस्त्रशरं ह्युपसा निशितं सन्धीयतः। आयभ्य तभ्द्वग तेनलक्ष्य तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥ उपनिषद्रूपः

अर्थः—धनुष हाथ में लेकर उसको एकाग्रमन-बाण लगाके ब्रह्म वस्तु का लक्ष्यकर उस ॐ का अनुसन्धान करना चाहिये

हमारे शरीर में दो प्रकार के लक्ष्यवेध होते रहते हैं। एक सूक्ष्म और दूसरा स्थूल। जो ज्ञान मान बुद्धि पूर्वक होता है वह स्थूल है और जो अज्ञान मान रहित वह सूक्ष्म है। जैसे एक गोली डालकर चलाया हुआ निशाना और एक विदुन गोली डालकर चलाया हुआ निशाना इसी प्रकार जो विचार पूर्वक लक्षवेध का कार्य विज्ञान वृतिमें होकर वाहिरी भूताकाश में होता है और जो ज्ञानरहित अज्ञान दशा का काल क्षयवेध केवल खाली निशाने के अनुसार जैसे पानी के बुदबुदे के मानिन्द होता है और विलीन होकर वहीं समा-जाता है और संचयमान व क्रियामान नहीं होता है। और जो विचार ज्ञानदशा में होता है। वह भरी हुई वन्दूक की गोली के समान कार्य क्रिया मान होता है और मूर्ति स्वरूप को धारण करता है।

देखो लक्षवेध एक विचार—एकाग्रता संकल्प करना है। और संकल्प कल्पना ही मन हैं और मन विचार रूप है। वैसे ही श्वांस विचार है और विचार मन है। श्वास विचार पलक और मन का परस्पर एक ही कारण की क्रिया है। इन का ज्ञान के द्वारा विधी पूर्वक सयोग करने से परिणाम को प्राप्त होकर उनका मूर्ता मूर्त स्वरूप बनता है।

ये आपको लक्षवेध की सूक्ष्म क्रिया वता दी है। जो सूर्य चक्र का कार्य है अधिक वताने से ग्रन्थ विस्तार होता है। जो जिज्ञासु तीव्र वुद्धिमान है।

उनके लिये तो यह मार्ग पर्याप्त है। क्योंकि वह इतने से आगे का रास्ता अभ्यास द्वारा ढूंढ निकालेगा। और जो मन्द बुद्धि जिज्ञासु है उनके लिये ये काफी बताया गया है।

मुझको इसके कितने अभ्यास याद है उनका यहां पर वर्णन नहीं कर सकता हू। ये ऊपर केवल इस विद्या का चिन्हमात्र लक्ष्य बता दिया गया है जो जिज्ञासुओं को अभ्यास करने के लिये पयाप्ति है।

अब हम सूर्य चक्र की प्रभाका वर्णन करेंगे।

॥ इति ॥ सूय चक्र और कार्य ॥

आठवां प्रकरण

सूर्य चक्र की प्रभा।

अन्त श्चरति रोचनास्य प्रणाद् पायन्ती ।

व्यख्यन् महिषो दिवम्। ऋग्वेद १० ॥ ११९ ॥

अर्थः—शरीर के मध्य में मुख्य प्राणरूप होके रहती है। वही रोचना दीप्ति प्रभा हमारे भावों को व्यक्ताव्यक्त करती हैं। अब उसको वर्णन करते हैं।

सूर्य चक्रसे जो शक्ति संजीवनी उत्पन्न होकर ज्ञानतन्तुओं (Neryes) द्वारा जैसे मेगनेट से बिजली उत्पन्न होकर तारों के द्वारा से सर्वांउपाँगों में व्यापक होकर त्वचा और सुक्षम श्वास द्वारा शरीर के बाहिर निकल आती है। जैसे सूर्य की रशमियों की परिवेष (Hole) जो सर्य के आस

पास कंडला कार होती है। वैसे ही हमारे शरीर के आस पास चारों तरफ इस प्रभा की उपाधी विचार और इच्छा शक्ति के भावों से रंजन होकर प्रगट होती है। जो मनुष्य तन्दुरुस्त होता है उसके मुख मण्डल पर तन्दुरुस्ती की उपाधी तेजो पुंज (Hole of beauty) का प्रकाश निकलता है। इसी प्रकाश को प्रभा कहते हैं। इसी को ओरो (Auro) यह हर एक प्राणी के होती है। परन्तु सूक्षम होने से सूक्ष्म दृष्टि से दीखती है। और प्रत्येक मनुष्य से विचार स्वभाव इच्छाओं के रंग रूपों को वता देती है। और शरीर के अन्दर की भी वीमारी को जतला देती है। और मनुष्य के मृत्यु काल ज्ञान की यह कसौटी है। और शरीर के वात पित, कफ, के दोषों को यह दिग दर्शन कर देती है। और जुल्मी चोर और लुच्चे दगा वाज व्यभिचारी आदि दुर्गुणों को भी ये बता देती है। और चोरों के पकड़ने की तो यह सहल युक्ति है। इस प्रभा का ज्ञान तो वहुत ज्यादा है कि जिस की स्वतन्त्र एक वड़ी पुस्तक वन जावे परन्तु हम आप को प्रसंग वश थोड़ा सा वताते हैं।

यह प्रभा शरीर के चारों ओर कुछ ही अन्तर पर दो प्रकार के तेजोवल्य दिखाई देते हैं। इन की चौड़ाई अनुमान ६ इञ्च की है और इससे हमारा शरीर विल्कुल ढका हुवा रहता है, और इसकी आकृति में विशेषता यह है कि यह पुरुषों में स्त्रियों में रोगियों में भिन्न २ प्रकार की दिखाईदेती है। अनुभव करने पर इसमें इन्द्र धनुष के अनुसार रंग रूपाकार दिखाईपड़ते हैं। पहिला सुभ्रम दूसरा आसमानी तीसरा लाल मिला हुवा चौथा चित्र विचित्र कुछ २ अन्तर

पर दिखाई पड़ते हैं। और इन में अन्य रंगों के मिश्रण भी हैं वह विचारों के साथ २ प्रकट हुआ करते हैं। अब इस को प्रत्यक्ष देखने का साधारण उपाय बताते हैं।

एक श्वेत कांच की तख्ती बनाओ और उस कांच को रसायनिक नमक पोटासों द्वारा खूब साफ करलो फिर एक तरफ में साफ की हुई फिटकरी की पपड़ी लगा दी जावे दूसरी तरफ प्रकाश के माप से मनुष्य को रखकर उस में से लक्ष्य वेध किया जावे तो मनुष्यों के चारों तरफ ऊपर बतलाई हुई प्रभा दिखलाई देगी। इसकी एक दूसरी विधी यह है कि दो स्वच्छ कांच के पात्रों को डायसी एनियन (Dicyanine) नाम के पदार्थ से मिले हुये पानी को भरकर एक पात्र के पानी में से कुछ समय तक बाहर प्रकाश की ओर देखते रहने पर तत्काल ही दूसरे पात्र के पानी में से अंधेरे में बैठे हुये मनुष्य की ओर देखा जायेगा तो उससे प्रभा दिखलाई देगी।

यह प्रभा हृदय के गुप्त भावों के आकारों रंग रूपों को प्रकट करती है। ये भाव यह हैं लालच (तृष्णा) द्वेष (ईर्ष्या) चुगली (पिसुनता) शर्म लज्जा, भय (डर) दया (अनुकम्पा) स्नेह, करुणा, कृपा, कटुवचन, क्रोध, इत्यादि भावों को प्रबोध कराती और अपने २ विचारों के गुणों के अनुसार रंग, रूपों, को लिये रहती है। और हृदय प्रदेश में लगी हुई १०१ स्नायुओं के द्वारा अन्दर बाहर प्रकट होती है अर्थात् १०१ नाड़ियों की प्रत्येक की एक २ सौ उप उप शाखायें हैं। और उन शाखाओं की बहत्तर २ हजार प्रति शाखायें नाड़ियां हैं। इस हिसाब से कुल नाड़ियां

७२७२१०२०१हैं। इन सब नाड़ियों को सूक्ष्म चक्र हमारे शरीर में मकड़ी के जाल के मानि द पसार पाये हुये हैं। और इन्हीं के द्वारा चेतना का प्रकाश प्रवाहित होता है। और इन प्रत्येक का खाता हमारे मस्तिक के कोष में है। वहां से हमारी इन्द्रियों को व्यक्तियाघात होता है और जिस के जरियेसे हमारी इन्द्रियों उन्हीं आन्तर भावों को बाहिर बाहक चेतना धर्मों को प्रत्याघात करके प्रकट करते हैं। और हम को फिर इन्द्रियों के द्वारा विषयों का प्रवोध होता है।

अब हम आपको इस प्रभा का सूक्ष्म रंग रूप ऊपर लिखे भावों के बताते हैं।

१ क्रोध, नीचता, दुष्टता, विषाद, इत्यादि भावों के रंग बिल्कुल स्याह काले होते हैं। अथवा कोई वक्त गहरे रक्त वर्ण काले के साथ में मिले होते हैं।

२ लोभी, लालची, तृष्णा कंजूस, कृपण इनके रंग भूरे लाल जाम्बुने होते हैं।

। छल, कपट, दम्भ, लुचाई फरेब, दगाबाज, इनके भावों के रंग भूरे और लीले होते हैं।

। प्रेम स्नेह मोहब्बत के भावों के रंग किरमची होते हैं परन्तु स्वार्थी मतलबी कपटी प्रेम के रंग लाल मिले किरमची होते हैं।

५ पाक मोहब्बत शुद्ध प्रेम निसः स्वार्थी प्रेम इनके रंग गुलाबी होते हैं।

६ फिर चिन्ता डर भय के रंग धूसरे होते हैं और स्वार्थी चिन्ता, मतलबी चिन्ता, धन की चिन्ता, चोरी की चिन्ता, इनके रंग लाल में भूरे मिले हुए होते हैं।

७ काम वासना, चोरी की वासना, के रंग चक चकते लाल और जल्दी २ फिरते चमकते हैं।

८ चोरी चुगली वाले के गहरे लीले होते है।

९ अभिमानी मान मर्यादा शौकीनों के रंग नारंगिया होते हैं।

१० भाव भक्ति भोलापन के रंग आसमानी अम्बुवा होते हैं। और ब्रह्म ज्ञानी आत्मज्ञानिओं के रग सुनहरी परिवेष के होते हैं।

अब इनकी आकृतियों को बतलाते हैं।

स्वार्थी लोभी की आकृति लम्बी अगली सिंह की मूंछ के बालों के समान होती है और काले नीले धब्बे होते हैं।

क्रोध नीचता आदि की काले बादलों के समान होती है और उस में क्रोध के परमाणु बिजली के कणों के समान चमकते हुये दृष्टि आते हैं।

वैर रखने वाले की आकृति काले सर्प के समान मुंह फाड़े दिखाई देती है।

विषय वासना वाले की आकृति सड़े हुये मास के टुकड़ों की भांति क्षण २ में रंग बदलती है। भय देने वाले की आकर्षण करने वाले की हिंसा करने वाले की सिंहाकार

प्रतीत होती है। चोरी करने वाले की सिंह के नखों के समान होती है।

अब अच्छे भावों की आकृति बताते हैं।

प्रेम की आकृति प्रफुल्लित कमल के पुष्प के समान होती है। शांति अभय परोपकार आदि शुभ विचारों की आकृति मनोहर गुलाबी फूलों की पखड़ियों के समान पीले छींटे वाली होती है।

प्रेम से मोहब्बत करने वाले की वात्सल्यता की चाहने वाले की आकृति कुंडला कार चाहनेवाले के चारों तरफ घूमती रहती है। और चुम्बक लोहे के समान प्रेम पात्र व्यक्ति की दौड़ती हुई जाती है। उस समय उसका आकार तीर के समान होता है। धर्मज्ञ और ईश्वर की प्रार्थना करने वालों की और मन्दिर में इकट्ठे होकर भक्ति से विचार करने वालों की सम भाव एकी करण होकर मन्दिर के शिखर पर सुन्दर सुदर्शन चक्र के समान तेजस्वी आकृति खूब जोर से घूमती हुई दीख पड़ती है।

और तत्व ज्ञानी ब्रह्म ज्ञानी आत्मज्ञानी की आकृति सूर्य के समान सुनहरी किरणों वाली वर्तुलाकार बहुत ही मनोहर मोहने वाली होती है। जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले की शीशी के डाट खोलने वाले (Skiu) स्क्रू के समान पेचदार होती है।

इस प्रकार से और भी एक दूसरे में भावों के विचारों के अनुसार रंग रूप बदलते रहते हैं। जैसे २ विचारों के

प्रति वेग होते जाते हैं। वैसे २ इन रंगों के भी कम ज्यादा मिश्रण होते रहते हैं। यह विद्या बहुत गुप्त है। मनुष्य मात्र के वहुत उपयोगी है इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। अब इस सूर्य चक्र की बहुत सी विद्या के भेद हैं। एक सूर्य चक्र के द्वारा विचार भेजना और विचार लेना और सूर्य चक्र के द्वारा अपना चित्र (फोटो) भेजना और फोटो लेना यह भी इस सूर्य चक्र की विद्या है। इस को मैं यहां नहीं लिखकर,इस ग्रंथ के आगे सिद्ध स्थान पर लिखूंगा बस इतनी ही सूर्य चक्र की विद्या लिखकर इस ज्ञान को समाप्त करता हू।

॥ इति सूर्य चक्रम् ॥

—:अध्याय अष्टमीः—

प्रकरण पहिला

द्रव्य शक्ति।

द्रव्य कोई पदार्थ अथवा वस्तु नहीं है। यह सब चैतन्य शक्ति हीके भेद हैं इसी की कृति विकृति के रूप हैं जिनको हम पदार्थो के नामसे जानते हैं वरना सब शक्ति रूप हैं। यह चैतन्य के महा कोष मेसे ही द्रव्य शक्ति भी निकली है और पिण्ड और ब्रह्माण में सामान रूप से व्यापक हुई है। जिसको हम द्रव्य कहते हैं। इसी शक्ति के द्वारा प्रत्येक तत्वों की क्रिया और आकर्षण आंकुचन आदि गुण और धर्म प्रकट होते हैं। यह ब्रह्माण्ड में परमात्मा रूप से पिण्ड में

आत्मा रूप से बुद्धि में ज्ञान रूप से मनमें क्रिया और विचार रूप से आकाश में शब्द रूप से वायु में स्पर्श रूप से अग्निमें उष्णव तेज रूप से जलमें रस रूप से पृथ्वी में गंध रूप से इस प्रकार यह द्रव्य ब्रह्माण्ड से लगाकर पिण्ड और तत्वों में व्यापकमान है। यह द्रव्य रूपसे पहचानी जाती है और समस्थ व्यापार जिसके परिणाम हैं इसका योग सदा समान रहता है उस में किसी प्रकार की घटती या बढती नहीं होती न कभी क्षय ही होती है न वृद्धिही होती है ऐसी यह द्रव्य शक्ति है। हमारे सृष्टि के बड़े २ काम रेल जहाज आदि कल कारखाने विजली वगैर सब इस द्रंव्य के ही बलपर चल रहे हैं।

प्रकरण द्वितीय

द्रव्य।

इस द्रव्य के ही आधार गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव आदि पदार्थ द्रव्य के ही आश्रय रहते हैं इनका द्रव्य से अन्योन्य सम्बन्ध है जो साधर्म और वैधर्म से कभी भी द्रव्य को छोड़ते नहीं हैं। हमेशा द्रव्य के ही आश्रय वने रहते हैं। इसके अलावा रस वीर्य, विपाक यह भी द्रव्य के ही पदार्थ है या इन सबको यों कहना चाहिये कि यह सब द्रव्य के ही प्रभाव हैं। और स्वभाव हैं। क्यों कि जहां तहां द्रव्य के स्वभाव अथवा प्रभाव ही देखने में आते हैं जैसे हीरों आदि रत्नों के और कैई दिव्य वनस्पति जैसे सहदेही के बांधने से ज्वर छूट जाता है और रत्न आदिकों के शरीर पर धारण करने मात्राही से फल देखे जाते हैं

यहप्रभाव ही के फल हैं क्योंकि फल प्रभाव में है और गुण कर्म आदि स्वभाव में है और स्वभाव द्रव्य के निज में है, जैसे बीज में सम्पूर्ण वृक्ष यह ही द्रव्य का साधर्म है और प्रभाव जैसे वृक्ष के फल फूल रस आदि में है यह वैधर्म है। क्योंकि बीजके नष्ट होने से वृक्ष उत्पन्न हुवा है इसलिये बीज में स्वभाव था और वह बीज पलट कर वृक्ष बना है इसलिये वृक्ष में उसी बीज का प्रभाव है अर्थात् बीज स्वभाव और वृक्ष प्रभाव इसी प्रकार बीज स्वधर्म और वृक्ष वैधर्म है। जैसे वृक्ष में पत्र पुष्प फल आदि जो हैं वह वृक्ष से भिन्न कोई पदार्थ नहीं सब वृक्ष ही के पदार्थ हैं और वृक्ष जो है वह बीज से भिन्न नहीं इसलिये यह जो कुछ द्रव्य के पदार्थ हैं वह द्रव्य से भिन्न २ नहीं हैं जो भिन्नता दृष्टि में आती है वह साधर्म स्वभाव और वह धर्म प्रभाव का ही भेद मात्रा है इसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य मात्रा स्वधर्म से उत्पन्न पदार्थ है। जिस प्रकार सम्पूर्ण वृक्ष अपने स्वधर्म से बीज में समाया हुवा है इसी प्रकार सम्पूर्ण पिण्ड और ब्रह्माण्ड के तत्वों में अपने स्वधर्म से यह द्रव्य समाया हुवा है और बीज जैसे अपने वैधर्म से वृक्ष के अङ्ग प्रंत्यगों में समाया हुवा है और वृक्ष के अव्यव वृक्ष में समाये हुये हैं इसी से वृक्ष अव्यवी है और फल पत्र पुष्प आदि अव्यव हैं। इसी प्रकार गुण धर्म कर्म आदि पदार्थ अव्यव है और द्रव्य अव्यवी है। इसी से द्रव्य गुणी कर्मी धर्मी अव्यवी साक्षी ज्ञाता आदि हैं।

॥ इति द्रव्य ॥

तृतीय-प्रकरण

द्रव्य के गुण कम आदि ।

पदार्थ विद्या वाले चौबीस गुण मानते हैं वह यह हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संख्या, परिणाम, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार यह चौबीस गुण हैं।

कर्म ।

उत्क्षेण (ऊपर को फैंकना अपेक्षण नीचे को फेंकना आंकुचन सकोड़ना प्रसारण फैलाना गमन चलना फिरना यह पांच कर्म हैं ।

धर्म ।

स्वधर्म और वै धर्म यह दो प्रकार के धर्म हैं ।

सामान्य ।

दो प्रकार का है व्यापक और व्याप्य ।

विशेष ।

नित्य द्रव्य में रहने वाले जो विशेषण भेद हैं वह असंख्यात है ।

समवाय ।

एक ही सामान्यता है ।

अभाव ।

अभाव चार प्रकार का मानते हैं—प्रागभाव, प्राध्वसा- भाव अतियन्ता भाव, अन्योऽन्याभाव, यह चार प्रकार के अभाव हैं ।

शक्ति ।

वल, वेग, गति, शक्ति, ताप, यह सब शक्ति ही है । यह ऊपर वाले गुण कर्म आदि जो पदार्थ हैं वह द्रव्य के ही हैं जैसे द्रव्य है तो गुण है क्योंकि न्याय यह है कि गुण गुण के आश्रय नहीं रहता वल्के गुण गुणी के आश्रय रहता है इसीलिये द्रव्य गुणी है न कि गुण, इसी प्रकार कर्म से कर्म नहीं होता कर्मी से कर्म वनता है । इस लिये द्रव्य कर्मी है इसी प्रकार समानता भी द्रव्य की अपेक्षा रखता है बिना द्रव्य की समानता किसकी हो क्योंकि द्रव्य में ही गुण कर्म समाये हुये हैं । जिस में गुण और कर्म समाये हुये हैं उन में स्वधर्म वैधर्म प्रकट ही है । विशेषता भी द्रव्य से ही होती है क्योंकि द्रव्य से द्रव्य उत्पन्न होता है इसी से एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य की विशेषता है और परिणाम नाप तोल आदि यह भी द्रव्य के ही अपेक्षी हैं अभाव भी परस्पर के द्रव्य का ही होता है ये समवाय का ही उल्टा भेद है जिसका समवाय है उसका अभाव भी है । इस प्रकार यह सब द्रव्य के ही अन्तर गत हैं द्रव्य इन सब पदार्थों का समवाय कारण है इस से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है । अब द्रव्य के भेदों का वर्णन करेंगे ।

चौथा प्रकरण

द्रव्योंके भेद।

द्रव्य के ज्ञान ज्ञाता पंडितो आचार्यों के मता अनुसार भिन्न २ भेद मानते हैं। द्रव्य के ज्ञाता महामुनि कणाद ऋषी ने अपने दर्शन वैशेषीक के मता अनुसार तो नव द्रव्य माने हैं वह यह हैं। पृथ्वी पानी तेज वायु आकाश काल दिशा आत्मा और मन। परन्तु अन्य आचार्यों के वर्गीकरण दो प्रकार के द्रव्य मानते हैं। वह इस प्रकार हैं। क्षर (नाशवान) अक्षर (अनाशवान) जड़ और चैतन्य,। सह इन्द्रिय और निरइन्द्रिय। जगम और स्थावर। अध्यात्मा और अधी भौवतिक। मूर्त्त और अमूर्त्त, इस प्रकार ये द्रव्यों के भेद भिन्न २ आचार्यों के हैं भगवान कणाद ने आत्मा और मनको तो द्रव्य माना है और बुद्धि को गुण माना है परन्तु अध्यात्मा और अधीभौवतिक के मानने वालोंने बुद्धि को द्रव्य ही माना है। अब प्रथम जो अध्यात्म और अधीभौवतिक मतवालों का वर्णन करेंगे।

पांचमा प्रकरण

आत्मा।

जड़ा अद्वेत वादके मता अनुसार आत्मा द्रव्य हैं और अन्य मतों वालों का इसपर कैई प्रकार के वाद और। विवाद हैं कि आत्मा द्रव्य हो नहीं सक्ता परन्तु हम उन वाद बिबादों को छोड़कर केवल जड़ा अद्वेत वाद की प्रणाली का

वर्णन करते हैं कोरे वाद विवाद के प्रपंच से विषयको लम्बा चौड़ा बनाना उचित नहीं समझते हैं। और वाद विवाद वालों ने इसपर कैई ग्रन्थ रचे हैं अगर जरूरी होतो उनको देखलो।

आत्मा किसी भी प्रमाण से प्रमाणित नहीं होता क्योंकि प्रमाण प्रमेय का होता है और आत्मा अप्रमेय है इस लिये वह प्रमाणों की पकड़ में नहीं आता है क्योंकि वह तो खुद प्रमाता है न के प्रमाण और प्रमेय देखो जो परीक्षा करता है वह परीक्षा और परीक्षा की वस्तु कब बनता है वह परीक्षा और परीक्षा की वस्तु से जुदा होने से ही परिक्षत कहलाता है इस लिये परीक्षा के प्रमाण और परीक्षा की वस्तुओं प्रमेय के गुण धर्मो से जुदा है। उदाहरणार्थ जैसे सोने का जानकार सराफ वह सोने और सोने को परखने की कसौटी आदि औजार दोनों से जुदा हैं। इस लिये सराफ की परीक्षा न तो सोना करसकता है न सोने से होती और न उसके औजार साधनों से होती है न साधन कर सकते हैं क्योंकि वह सराफ दोनों से जुदा है इस लिये आत्मा की परीक्षा करने में तो प्रमाण ही कारामद होते हैं न प्रमाणों के साधन औजार प्रमेय ही कारामद होते हैं इस लिये कोरे विवादों का बिनण्डा खड़ा करना है इस लिये इतना ही काफी है न्याय यह कि जो जिस को जानता है वह उससे जुदा है इस से साफ साबित होता है कि आत्मा बुद्धि से जुदा है जोकि बुद्धि को जानता है आत्मा मन से जुदा है क्योंकि वह मन को जानता है आत्मा गुणों से जुदा है क्योंकि वह गुणों को जानता है आत्मा भूतों से जुदा है

क्योंकि वह भूतों को जानता है आत्मा कर्म से जुदा है वह कर्मो को जानता है वहधर्म से जुदा है क्योंकि वह धर्माधर्म को जानता है आत्मा शरीर नहीं क्योंकि वह शरीर को जानता है आत्मा इन्द्रियां नहीं क्यों कि वह इन्द्रियों को जानता है आत्मा ज्ञान नहीं क्योंकि वह ज्ञान को जानता है। इस से साफ साबित होता है कि जो सब को जानता है वही आत्मा है।

जि:—जब आत्मा प्रमाण और प्रमेय में नहीं आता तो हमको इसकी प्रतीति कैसे हो सक्ती है कि आत्मा है इससे हमको प्रतीति कराइयेगा।

उत्तर-प्रतीति प्राप्ति से होती है और प्राप्ति अनुभव ज्ञान का विषय है इस लिये बिना अनुभव के प्राप्ति नहीं होती और प्राप्ति के बिन प्रतीति नहीं होती और प्रतीति के बिना संदेह दूर नहीं होता और संदेह के गढे में पड़ा रहना विद्यवानों का काम नहीं है उल्लू हमेशां अनुभव हीन होने से अंधेरे के गढे में ही पड़ा रहता है। आत्मा की प्रतीति का विषय बहुत गहन है इसकी प्राप्ति में पहुंचने के लिये मनुष्य नाना योग यज्ञतप करते हैं परन्तु अनुभव के विदुन प्रतीति होती नहीं है प्रतीति के सामने प्रमाण ऐसे हैं जैसे सोये हुये मनुष्य के सामने जाग्रत।

अब हम आपको इसकी प्रतीति की प्राप्ति का दृष्टान्त करते हैं सो आपको अनुभव हो जायगा।

एक निन्द्रागत सोये हुये मनुष्य के पास जावे और उस को जगाने के निमित्त कहो के ऐ शरीर जगजा तो वह नहीं

जागता है बुद्धि जगजा तो वह नहीं जगती है ऐ मन जग जा ऐ इन्द्रियां जगजा चाहे अमुक२ इन्द्री का नाम लो फिर चाहे गुणों का नाम लो कि गुण जागजा फिर कर्म का नाम लो कि कर्म जगजा फिर धर्म और भूतों का नाम लो कि आकाश जग जा वायु जगजा अग्नि आदिकों के नाम लो लेकिन वह सोया हुवा पुरुष नहीं जगता फिर आखिर उसके नामकी संज्ञा का नाम लो कि अमुक जाग वह जग जाता है इससे वह जगने वाला ही आत्मा है वह पुरुष ही है। यह आत्मा की प्रतीति है कि जो जाग्रत में से सोया और सोंये से जागा यही आत्मा है।

॥ आत्मा की व्यापकता ॥

अब यह आत्मा बुद्धि में व्यापक होता है जब यह कहता है कि मैं बुद्धिमान हूं और जब यह गुणों में व्यापक होता है तब कहता है कि मैं गुणी हूं ज्ञान में व्यापक होने से कहता है कि मै ज्ञानी हूं कर्मों में व्यापक होने से कहता है मैं कर्मी हूं धर्म में व्यापक होने से कहता है कि मैं धर्मी हू सुख में होने से सुखी दुख में होने से दुखी इत्यादि ये आत्मा सब में व्यापक हो जाती है शरीर में व्यापक होने से शरीरी जीव।

॥ आत्माका द्रव्यत्व ॥

यहनव द्रव्य दो वर्गों में बटे हुये हैं जो मूर्त्त अमूर्त्त अर्थात् अध्यात्मा और अधिभौवतिक है इन में परस्पर एक की वजाय दूसरा सूक्ष्म है और एक के परे याने दूर दूसरा सूक्ष्म मान है। जैसे पृथ्वी के अन्दर पानी घुस कर व्यापक हो

जाता है और पानी के अन्दर अग्नि व्यापक हो जाती है जैसे पानी को गर्म करने से अग्नि पानी में चली जाती है और पानी गर्म हो जाता है अग्नि से वायु सूक्ष्म है जो अग्नि में व्यापक होकर अग्नि को प्रज्वलित करता है इसी से अग्नि में ज्योति और झाले निकलती हैं वायु से सूक्ष्म आकाश है जो वायु के अन्दर व्यापक है और आकाश खुद व्यापक अमूर्त्त स्वरूप है ही अब अमूर्त्त के अन्दर अमूर्त्ती की व्यापती को कहते हैं आकाश के अन्दर मन व्यापक जो आकाश से भी सूक्ष्म है और मन के अन्दर बुद्धि व्यापक है वह आत्मा सब के अन्दर व्यापक है जो सबके परे है उसीको गीता अः३-४२ में यों कहा है।

इन्द्रियाणि पराण्या हुरिन्द्रियेभ्य परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः पर तस्तुसः
एवं बुद्धेः पर बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मा न मात्मना॥

अर्थात् स्थूल मूर्त्त पदार्थों से अमूर्त्त सूक्ष्म परे हो इन्द्रियों से जानने वाले पदार्थों से इन्द्रियों परे है और इन्द्रियों से परे मन है और मन के परे सूक्ष्म बुद्धि है और बुद्धि के परे वह आत्मा है इससे वह अमूर्त्त सूक्ष्म अक्षर द्रव्य आत्मा का अस्थित्व है। इस प्रकार पिण्ड और ब्रह्मांड गुण और कार्य कारण भेद से आत्मा की सात व्यक्तियां होती हैं आत्मा, परमात्मा, विश्वात्मा, सुत्रात्मा, जीवात्मा, भुतात्मा, और अध्यात्मा ये सात प्रकार की विभक्तियां हुई। इतिआत्मा:॥

प्रकरण–छटा

बुद्धि ।

बुद्धि के बारे में आचार्यों के भिन्न २ मत हैं । कई बुद्धि को गुण बतलाते हैं कई बुद्धि को ज्ञान का कर्ण (साधन) कई विषय बताते हैं और बुद्धियां भी कई प्रकार की मानते हैं परन्तु द्रव्य के तत्व व ज्ञानी इसको अध्यात्मा द्रव्य मानते हैं । यथार्थ में बुद्धि पिण्ड और ब्रह्मांड में व्यापक भरी हुई है । ब्रह्माण्ड में अधिभूत द्रव्यों के विषयों को (Develop) (विस्तृत)करती है पिण्ड में इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान आत्मा को कराती है,आत्मा के और मनके बीच में जाने हुये विषयों के विषय को अपने विज्ञानम्य कोष में जमा रखती है आत्मा और मन जब उस विषय को याद करते हैं जब यह बुद्धि अपने विज्ञान मय कोष में से उस स्मृति को निकाल कर आत्मा और मन के बीच में उस विषय के चित्र को खड़ा कर देती है । जिस से भूतकाल के जाने हुये विषय को वर्तमान काल में प्रकट करती है इसी ज्ञान को (याद्दास्त) कहते हैं और इस ज्ञान के भिन्न २ यथार्थ ज्ञान को अनुभव कहते हैं । यह नित्या और अनित्या भेद से दो प्रकार का है । यह बुद्धि का विज्ञान मय कोष इतना बड़ा है कि जिस सीमा अनन्तानन्त है आत्मा जिस ज्ञान को करता है उन सब को बुद्धि अपने कोष में जमा रखती है जिस प्रकार राजा का खजानजी राज्य के पदार्थ को अपने खजाने में रखता है और राजा के मांगने पर तुरन्त हाजिर करता है और जो पदार्थ स्वर्ण चांदी हीरे रत्न आदि खोटे खरे हों तो

उस की जांच भी राजा को खुद मालूम नहीं होती वह राजा के खजांची कोषाध्यक्ष का काम है वह सिक्कों और पदार्थों को असली नकली का ज्ञान राजा को करावे। इसी प्रकार बुद्धि अपने गुणों द्वारा आत्मा को सत्य असत्य पदार्थों का ज्ञान कराती है और द्रव्यों का भी ज्ञान कराती है इसी से बुद्धि को द्रव्य माना है क्योंकि द्रव्य ज्ञान का नियम यह कि द्रव्य से द्रव्य की परीक्षा होती है जैसे खोटे हीरे को पहचान ने के लिये असली सच्चा हीरा उसके मुकाबले में रखना पड़ता है जब कहीं सच्चे और झूठे नकली हीरों की असली परीक्षा होती है इस सिद्धांत से बुद्धि द्रव्य है न कि गुण।

इसके अलावा बुद्धि इन्द्रियों में और विषयों में व्यापक होकर इन्द्रियों और विषयों को आत्मा को जतलाती है तब इसको इन्द्रियों की बुद्धि कहते हैं। जैसे दर्शन बुद्धि, श्रवण बुद्धि, गंधबुद्धि, स्वादबुद्धि,स्पर्श बुद्धि आदि ये बुद्धि इन्द्रिय इन्द्रियार्थ मन और आत्मा के सयोग को उत्पन्न करती हैं। संस्कार मात्रा से बुद्धि में दो प्रकार की वृति उत्पन्न होती है एक क्षणीक Objective अथवा भ्रमीक और दूसरी Subjective निश्चयात्मक चिर स्थाई है। इसका विशेष भेद दूसरे सर्ग में देखो, ॥ इति बुद्धि ॥

(प्रकरण सातवां)

॥ मन ॥

बुद्धि के माफिक मन के भी आचार्यों के भिन्न २ भेद हे कोई मन को इन्द्री और कोई अति इन्द्री अर्थात इन्द्री से पृथक मानते हैं। कोई मन को सत्व भी कहते हैं आयुर्वेद में

बहुत जगह सत्व नाम से भी कहा है। परन्तु द्रव्य विज्ञानी मन को द्रव्य मे गणाना करते हैं। जैसे बुद्धि ज्ञान का कारण है ऐसे ही मन भी कर्म का कारण है और कर्म कारी भी हैं। मन भी इन्द्रियों में पिण्ड में ब्रह्मांड मे व्यापक है और सम्पूर्ण चेष्टाओं का कारण भूत है मन इन्द्रियों से अग्रगामी अर्थात् इन्द्रियों आगे दौड़ने वाला और इन्द्रियां मन की अनुगामी अर्थात् मन के पीछे दौड़ने वाली है बुद्धि की तरह मन के पास भी एक मनोमय कोष का खजाना है जिसमें मनके किये हुवे कर्मों का वृत्तांत भरा रहता है जिस जिस कर्मों को मन करता है उसी उस कर्मों की रूप रेखा मनो मयकोष में खींच जाती है आवश्यकता के अनुसार बुद्धि के सामने विस्तारित कर दिखादिये जाते हैं। मन को द्रव्यज्ञान वाले इस लिये द्रव्य मानते हैं कि जो क र्म है वह द्रव्य के आश्रय है उसे क्रिया कहते हैं इसी लिये बिना द्रव्य के क्रिया सम्पादन नहीं हो सक्ती इसी लिये मन द्रव्य है। इसको विस्तार पूर्वक तृतीय सर्ग में देखो।

॥ इति मन ॥

प्रकरण–आठवां

इन्द्रियां।

इन्द्रियों के बारेमें भी अनेक मत भेद प्रचलित हैं। परंतु द्रव्य विज्ञानियों ने इन को भी द्रव्य के अन्तरगत अध्यात्मा द्रव्य ही माना हैं। यह इन्द्रियों को पांच प्रकार के द्रव्यों में विभाजीत करते हैं। और कई एक स्पर्श इन्द्री ही को मानते हैं। उनका सिद्धांत है कि अन्य इन्द्रियां इस स्पर्श

इन्द्री से ही उत्पन्न हुई है जैसे त्वचा पर सूर्य का प्रति विम्ब पड़ने से नेत्र उत्पन्न हुये हैं इसी प्रकार अन्य इन्द्रियां स्पर्श इन्द्री के अधिष्ठान से ही प्रकट हुई है। परन्तु वास्तविक में प्रकट इन्द्रियां पांच हैं और पांच ही उनकी क्रियां अधिष्ठान और पांच ही इनके विषय भी हैं। इससे पांच इन्द्रियों का ही वर्णन करेंगे। दस का नहीं। दृष्टि, श्रवण घ्राण, रसन, और स्पर्श ये पांच इन्द्री हैं इन इन्द्रियों के द्रव्य भी पांच ही हैं। ज्योति, आकाश, पृथ्वी, जल, और वायु क्रम से हैं। इनके अधिष्ठान भी पांच ही हैं। दोनों आंखे, दोनों कान, दोनों नाक, और एक जिह्वा और त्वचा ये पांच ही इन्द्रियों के कर्म करने के अधिष्ठान हैं। और इनके विषय भी पांच ही हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस: और गंध यह प्रत्येक का एक २ विषय है। ये इन्द्री द्रव्य पिण्ड और ब्रह्माण्ड में व्यापक है। परन्तु अपने अधिष्ठान गोलक में, केन्द्रित में बैठकर अपनी क्रियाओं को सम्पादन करती हैं यह इन्द्रियां ब्रह्माण्ड के विषयों का अपने २ द्रव्य के अनुसार आकर्षण विकर्षण करती रहती हैं।

आत्मा, बुद्धि, मन, और इंद्रियां ये चारों अध्यात्म द्रव्य की गणना में है यह शुभाशुभ प्रवृति, और निवृति के हेतु हैं। अर्थात् यह चारों मिलकर शुभ कार्यों में प्रवृति और अशुभ में निवृति के प्रबोधक हैं।

॥ इति इंद्रियां ॥

प्रकरण-नवां

अधिभौवतिक द्रव्य।

अधिभौवतिक द्रव्य पांच हैं। यथा आकाशीय द्रव्य, वायवीय द्रव्य, आग्नेय द्रव्य, आप्य द्रव्य, पार्थिव द्रव्य, इस प्रकार ये पांच भौवतिक द्रव्य कहलाते हैं अब इन का वर्णन करते हैं।

आकाशीय द्रव्य।

जो मृदु, लघु, सूक्ष्म, शलक्षण, और शब्द इन गुणों वाले को आकाशीय द्रव्य कहते हैं। इन के मृदुता सुषिरता लघु (हलका) और व्यापक गुण वाले हैं।

(वायविय द्रव्य)

चचलता, लघुता, शीत, रुक्ष, खर, विषद सूक्ष्म, और स्पर्श गुण वालों को वायविय द्रव्य कहते हैं। रुक्षता, ग्लानी, विचरण, विशादता और लघुता, इन कर्मों को करते हैं।

(आग्नेय द्रव्य)

उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, लघु रुक्ष, विषद और रूपवान को। आग्नेय द्रव्य कहते हैं ये द्राहक, प्रकाशक पाक कान्ती वर्ण को करने का कर्म करते हैं।

(आप्य द्रव्य)

द्रव्य, स्निग्ध, शीत, मन्द, मृदु, पिच्छिल, सर और रस गुण युक्त है यह आप्य द्रव्य कहलाते हैं। यह उत्क्लेद, स्निग्धता अभिष्यन्दता और आल्हदत्ता को करते हैं।

(पार्थिव द्रव्य)

भारी, खर, कठिन, मन्द, स्थिर, विशद, सान्द्र, स्थूल, और गंध, इन गुणों वालों को पार्थिव द्रव्य कहते हैं। यह कठोरता पुष्टाई गुरुता और दृढ़ता इन कर्मों को करते हैं।

द्रव्य ज्ञान के पंडितों ने भौवतिक द्रव्य में वीस प्रकार के गुण माने हैं। वह इस प्रकार हैं।

गुरू, लघु, स्निग्ध, रुक्ष तीक्ष्ण, श्लक्ष्ण, स्थिर, सर, पिच्छल, विशद, शीत, उष्ण, मृदु कर्कश, स्थूल, सूक्ष्म द्रव शुष्क, आशुकारी, और मन्द यह वीस गुण इन भौवतिक द्रव्यों में हैं।

(द्रव्य के लक्षण)

द्रव्य के लक्षण यह कि क्रिया और गुण करके युक्त जो समवायीक कारण हो, वह द्रव्य कहलाता है।

(द्रव्य को प्रधानत्व)

प्रधानता के बारे में भी आचार्यों के कई मत भेद हैं। परन्तु निश्चय द्रव्य ही व्यविस्थत है और इसके रस वीर्य विपाक आदि गुण अस्थिर हैं। क्योंकि गुण आदिकों में विषमता (रद्दो वदल) होती रहती है दूसरा कारण द्रव्य के प्रधान होने का यह है कि द्रव्यों की नित्यता है क्यों कि द्रव्य नित्य होते हैं और गुण आदि अनित्य हैं और स्वजाति में स्थित रहने से भी द्रव्य प्रधान है। जैसे पार्थिव द्रव्य पार्थिव

गुण वाले द्रव्य में ही स्थित रहते हैं और उसमें अन्तर नहीं आता आग्नेयादि गुण वाला नहीं हो सकता है इसी प्रकार अग्नि जल वायु और आकाश द्रव्यों को भी जानो। पांच इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होने से भी द्रव्य प्रधान है। क्योंकि इन्द्रियों से द्रव्य ही ग्रहण किये जाते हैं। रस आदि गुण ग्रहण नहीं किये जाते। आश्रयत्व से भी द्रव्य प्रधान है क्योंकि गुण कर्म क्रिया और रस वीर्य विपाक आदि द्रव्य के ही आश्रय है। आरम्भ सामर्थ्य से भी द्रव्य प्रधान है क्योंकि आरम्भ द्रव्य के आश्रय है। अर्थात कार्य का आरम्भ द्रव्य से ही होता है अन्य गुण और रसादि से नहीं होता। शास्त्रों के प्रमाण से भी द्रव्य प्रधान है क्योंकि शास्त्रों में योगो के उपदेश में मन बृद्धि आदि का ही विधान किया गया है क्रम (सिलसिला) की अपेक्षा से भी द्रव्य प्रधान है क्योंकि क्रिया कर्मों से होती है और कर्म द्रव्य से होता है। एक देशसाध्यित्व होने से भी द्रव्य प्रधान है क्योंकि द्रव्य एक देश से भी गुण और कर्मों को आरम्भ करता है।

जो वीसों प्रकार के गुण और अध्यात्मा के २४ प्रकार के गुण ये सब द्रव्य के ही आधीन है। रसादिक भी गुण होते हैं परन्तु नियम यह कि गुणों में गुण नहीं होते इससे रसादि द्रव्य नहीं होते जैसे देह में रसादि पाक को प्राप्त होते हैं वैसे द्रव्य पाक को प्राप्त नहीं होते हैं इन कारणों से द्रव्य ही प्रधान है। शेष रस वीर्य विपाक भी द्रव्य आश्रय होते हैं।

(द्रव्य की श्रेष्ठता)

विना वीर्य के पाक नहीं होता और बिना रस के वीर्य नहीं होता और विना द्रव्य के रस नहीं होता इससे द्रव्य ही स्वों

श्रेष्ठ है जैसे अग्नि से धुवां प्रगट होता है वैसे ही द्रव्य से गुण रस आदि होते हैं।

(द्रव्य और रस का अन्योन्य सम्बन्ध)

द्रव्य और रस का अन्योन्याश्रित है केवल द्रव्य से रस की उत्पत्ति ही नहीं बल्के जैसे शरीर और आत्मा अन्योन्याश्रित संम्बन्ध में होता हैं।

सम्पूर्ण द्रव्य अपने प्रभाव से अथवा अपने स्वभाव से अथवा गुण और कर्मों से उचित समय पर जिस जिस योग को और अधिष्ठान को प्राप्त करके जो जो कार्य करते हैं उस की परिपाठी को कहते हैं। जिस समय द्रव्य अपना कार्य करता है उस समय को काल कहते हैं। जब वह अपने गुणों के अनुसार कार्य करता है उसको कर्म कहते हैं। जिसके द्वारा वह कर्म किया जाता है उसे वीर्य कहते हैं। जहां वह कर्म किया जाता है उसे अधिकरण अथवा अधिष्ठानदेश कहते हैं। जिस प्रकार कर्म किया जाता है उसे उपाय कहते हैं। और उन कर्मों के द्वारा जो प्रयोजन सिद्ध किया जाता है उसे फल कहते हैं। इतिद्रव्य।

द्रव्यों के स्वभावादि।

पृथ्वी और जल भारी होते हैं और जो गुरु भारी होने वालों का स्वभाव है कि वह नीचे को जाते हैं इस से यह दोनों अधोगुण भूयिष्ट होने के कारण शरीर में मल मूत्र के प्रवृतक होते हैं।

अग्नि और वायु हलके (लघु) होते हैं और हलकी वस्तुओं का स्वभाव ऊपर को जाने का होता है इस से यह द्रव्य उर्ध्वगुण भूयिष्ट अर्थात् जैसे अग्नि और धुवां यह शरीर में ऊपर के उल्टी छींक डकार आदि के प्रवृतक होते हैं।

जिस में आकाश गुण वाले द्रव्य समान स्थिति स्थापक और शांत कारक होते हैं, शरीर में शून्यता आदि करते हैं।

जिस में वायु द्रव्य सग्राहक होते है क्योंकि पवन शोषण करने वाली होती है यह शरीर में मलों को सूखा देते है।

खाली अग्नि गुण वाले द्रव्य दीपन होते है जो शरीर में जठर को बढाते है और क्षुधा को जाग्रत करते हैं। जो अग्नि और पवन दोनों के गुण अधिक होते हैं वे दीपन और पांच होते हैं शरीर में अनादिकों को पकाते हैं पृथ्वी अग्नि और जल गुण वालों से वायु शांत होती है पृथ्वी जल और वायु गुण वालों से पित्त, अग्नि शांत होती है आकाश अग्नि और वायु गुण वालों से (जल दोष कफ) शांत होता है।

आकाश और पवन गुण वालों से वायु अधिक बढ़ता है अग्नि और पवन गुण वालों से पित्त अग्नि विकार बढ़ता हैं पृथ्वी और जल से कफ बढ़ता है।

शीतल, उष्ण, स्निग्ध रुक्ष मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छल और विषाद इन में तीक्ष्ण और उष्ण अग्नेय है शीतल और पिच्छ

जल भूयिष्ठ है स्निग्ध पृथ्वी और जल वाला है मृदु जल और आकाश वाला है रुक्ष पवन और विशद पृथ्वी और वायु गुण वाला है।

(गुणों के विषय)

शीत उष्ण और मृदु ये तीन स्पर्श विषय त्वचा अर्थात् छूने से ग्रहण में आते है पिच्छल और विशद ये दो रूप नेत्र और स्पर्श द्वारा जाने जाते हैं। स्निग्ध औररूक्ष चक्षु रूप द्वारा जाने जाते हैं। जो गुण द्रव्यों में कहे गये है वह गुण शरीर में भी होते हैं। जैसे दोष धातुमल की साम्यता होना दोषों की वृद्धि और क्षय में सब शरीर में द्रव्य के हेतुओं से होते हैं।

द्रव्यों के गुणों का पूरा पता अभी तक किसी भी आचार्य को नहीं लगा क्योंकि कहा करते हैं कि द्रव्य में गुण अनन्त अर्थात् द्रव्य मे कितने गुण हैं जिन को जानना महा कठिन है क्योंकि द्रव्यों के गुणों का पार ही नहीं असंख्य हैं इस से जो कुछ द्रव्य के ज्ञाताओं को प्राप्त हुवे हैं वह वहुत कम है अगर इनको सूक्ष्म दृष्टि द्वारा खोजा जावे तो ही अनन्त अपार है अव यह जो ऊपर दो प्रकार के अध्यात्मा और अधिभौवतिक दो प्रकार के द्रव्यों का वर्णन करके आपको दिखाया है इन्हीं के क्षर अक्षर चैतन्य अचेत (जड़) कहते हैं अब स्थूल द्रव्यों की उत्पत्ति के कारणों का वर्णन करेंगे।

॥ इति द्रव्य ॥

—अध्याय नवां—

प्रकरण-पहला

अभी तक जिन द्रव्यों का वर्णन हो चुका है वह सूक्ष्म और निराकार हैं। और अब ऐसे साकार स्थूल द्रव्य का वर्णन करेंगे जो कारण स्थूल है जिस के द्वारा तमाम स्थूल पदार्थों की प्रकटी का कारण होगा जितने भी स्थूल भाव हैं वह एक मुख्य कारण स्थूल से प्रकट हुये हैं। इसलिए पहले उस कारण स्थूल का वर्णन करेंगे जो स्थूलों का सूक्ष्म स्थूल है।

इस अध्याय में कारण स्थूल को समझने में बहुत गहराई में उतरना पड़ेगा क्योंकि इस स्थूल द्रव्य के कारण में बहुत गहन रहस्य छुपा हुवा है और इस को समझने में भी गहन खोज की दृष्टि से देखना पड़ेगा इस लिये जिज्ञासुओं को चाहिये कि अगर पूरी बात समझ में नहीं आवें तो कोई चिन्ता नहीं परन्तु इसके ज्ञान का अभ्यास किसी को नहीं छोड़ना चाहिए धीरज के साथ बारम्बार पढने और समझने का अभ्यास करते रखना चाहिये क्योंकि अभ्यास के सामने कोई विद्या या क्रिया सिद्धि का समझना कठिन नहीं है यह हमारा अनुभव है।

यह वह स्थूल नहीं है जिस को हम प्रत्यक्ष देख सकें यह वह स्थूल है जिस को हम द्रव्य दृष्टि अथवा सूक्ष्म दृष्टि से जान सकते हैं। जिस को महा कारण स्थूल कहना चाहिए।

यह स्थूल उपरोक्त तमाम सूक्ष्म और निराकार कारण द्रव्यों का सम्पूर्ण अंश मात्रा का समुदाय केन्द्र है। अर्थात् आत्मा,वुद्धि मन,इन्द्रियां,और पंच भौवतिक विषय इन संपूर्ण द्रव्यों के अंशों का समावेश एक सूक्ष्म विन्दु मात्रा है इस विंदु को हम अपनी तरफ से जीवांणु कोष की ओपमा दे सकते हैं। और अन्य विज्ञानियों ने इस विंदु के अनेक नाम रख रक्खे हैं,और कई विज्ञानी इस को अमर विंदु भी कहते है, वह कहते हैं कि इस विंदु का नाश नही होता। न ये विन्दु परिवर्तन ही होता है और कई विज्ञानियों का यहमत है कि यह विन्दु परिवर्तन हो होकर स्थूल की रचना रच लेता है जिस प्रकार से बीज में से ही वृक्ष उत्पन्न होता है इस पर भी विद्वानों के दो मन हैं,पहला मत यह कि मनुष्य शरीर का बीज और वृक्ष जाति के बीज में तमाम शरीर के घटा अव्यव में सूक्ष्म रीति से समाया हुवा है वहीं व्यक्त होता है Evolutiun or Preformation के सिद्धांत में इस प्रकार है कि बीज में झाड़ पान अथवा मनुष्य जात के बीज में हरएक तत्व पहले से ही समाये हुये रहते हैं। दूसरा सिद्धांत यह कि बीज में सम्पूर्ण घटका अव्यव पहले से समाये हुये नहीं हैं इस सिद्धांत को Epigenesis, के हैं जिस में इस प्रकार वताया गया है कि शरीर के सम्पूर्ण घट का अव्यव पहले से समाये हुये नहीं रहते हैं परन्तु Differentiation,से रफते २ वदलते और पृथक २ उत्पन्न होते हैं। यह सिद्धांत ही जड़ा अद्वेत वाद का है इस पर पश्चिमी सिद्धांत कार वहुत आगे वढ़े हुये हैं और जिन के कई आविष्कार कर कर के सिद्धांत मुकर्र किये हैं उनको कुछ प्रमाण के तौर पर आप को वताते हैं। जिस में पहला

सिद्धांती मि. हरवर्ट स्पेनसर नाम का फिलोस्फर है वह अपने सिद्धांत में कहता है हरएक शरीर के घटका (ऐकम) (Unit) अथवा जीवांणु कोष (Cell) में अपने जातिआकार करने के लिये जाति गुण रखते हैं, In all Physiological units there dwells the intrinsi aptitude to aggregate into the form of that species, just as in the atoms of a salt there dwells the intrinsic aptitude to Crystallise." Hebert Spencer) अर्थात् जिस प्रकार खार अथवा नमक अपने जैसे पासों के आकार उत्पन्न करने की जाति स्वभाव रखते हैं इसी प्रकार हरेक शरीर के घटक (Vnit) जीवाणु कोष (cell) अपने २ आकार से जाति स्वभाविक गुण रखते हैं अर्थात् इस विज्ञानी केकहने के अनुसार सम्पूर्ण शरीर ऐसे घटक और जीवांणु कोषों का वना हुवा है यह कहता है कि यह घटक और कोष सब एक ही जाति के हैं और बीज में भी ऐसे ही घट कों के खटके घटक कोष में है। जब यह पृथक २ रीति से इकट्ठे होने की शक्ति रखते हैं जिस के फल स्वरूप शरीर के जुदे २ अवयव उत्पन्न होते हैं जो शरीर के भाग में से थोड़ा घटक अथवा भाग निकाल देने में आजावे, जैसे रोग के अङ्ग ओपरेशन काटने में आवे तबपिछले वोभाग अपनेआप ही उसका जख्म भर जाता है। इस प्रकार उसके सिद्धांत हैं। परन्तु इस विज्ञानी के सिद्धांत अपूर्ण इस प्रकार से हैं। कि बीज में यह घटका अवयव जिस शक्ति से अथवा किस गुण से और किस प्रकार से बीज में इकट्टे हुये इसका पूरा सिद्धांत यह जानता नहीं था क्योंकि इस ने अपने सिद्धांत का मूल कारण को पाया उसी घटका

अवयव (Physiological units) से ही शुरु करता है यह अवश्य प्रशंसा योग्य है क्योंकि इसके सिद्धांतों को इस के पीछे के विद्वानों ने इस के सूक्ष्म अभ्यास कर कर के इस के अपूर्ण सिद्धांत को पुरा करने की कोशिश करते रहे हैं।

इस के बाद थोड़े अरसे में एक नामांकित दारविन ये भी जिस प्रकार हरबर्ट स्पेनसर के सिधान्तों की खोज में उतरा और उसने मनुष्यों और पशुओं के वीर्य और गर्भास्थ का निरीक्षण करके "The Variation of Animals and plants under domestication की पुस्तक में Pangenesis नाम का सिद्धान्त प्रचलित किये है"।

दारविन अपने ऐसे अनुमान बताता है कि इस शरीर के सूक्ष्म भाग (जो १ इंच के २०० में भाग से भी सूक्ष्म है) जिसको यह अपने Gemmules के नाम से पहचानता है ये बिन्दु सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करता है और अगर इसको काफी पोषण मिले तो ये अपने में ऐसे ही अन्य बिन्दु उत्पन्न करे और इसी में से जीवांशु कोष (cell) की उत्पत्ति रफते २ होजाती है हरेक जाति के शरीर में येही बीज माता पिता के अन्दर से उतर कर शरीर प्रगट करते हैं। येही मनुष्य आदिकों के कारण बीज हैं इसी से शरीर की वृद्धि हरेक स्थिति में जीवाणु कोष (cells) को उत्पन्न करते हैं ये मनुष्य आदिकों के वीर्य में बहव प्रकार से रहते हैं इस प्रकार दारविन की कल्पना और अनुमान की दौड़ है परन्तु प्रमाणित नहीं कर सक्ता इस लिये ये भी अपूर्ण ही है।

अब जर्मनी का एक विज्ञानी प्रोः वीसमेन अपनेसिद्धान्त (germplasm) को इस प्रकार प्रगट करता है। the

germ plasm is compose of Vital units, each of equal Value, but differing in Character, Containing all the Primary constituents of an individual. This substance (germ plasm) can never be formed a new; it can only grow, multiply and be transmitted from one generation to another) अर्थात् बच्चा उत्पन्न करने वाला बीज जीवन रक्षक (unit) घटकों का बना हुवा है जो सब के समान प्रकार के होते हैं। परन्तु वह पृथक २ प्रकार के गुण को धारण करते हैं। और मनुष्य शरीर के बनावट के हरेक अव्यव वाले होते हैं। ये बीज हर वक्त नया बनता नहीं है परन्तु इसी की वृद्धि होती है और अपने में दूसरे पदार्थ उत्पन्न करते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी औलाद में उतरते रहते हैं।

ये विद्वान कितने ही प्रयोगों करके बीज में पृथक २ गुण रखने वाले २ पृथक भागों को बताता है कि जिस में शरीर के अव्यवों औलाद में उतरती खासियतों के मिलते तत्वे कैसे समाये हुवे रहते हैं। उनको बताता है। परन्तु है कोरी अनुमान और कल्पना की थोथी उड़ाना।

इसी प्रकार अब मि० हेकल के सिद्धान्तों को बताते हैं। Hackel was probably the first to describe reproduction as an over growth of the individual and he attempted to explain heredity as a simple Continuity of growth ॥ अर्थात बच्चा

उत्पन्न होने के कारण वताने के तरीके के सिद्धान्त यह है कि एक मनुष्य की वृद्धि जब आवशक्ता से ज्यादा होने पर उस वृद्धि वाले तत्व से उसी के माफिक अन्य वीज वाहिर आता है और यह वीज ऐसे जीवांणु का समुदाय कोष (cell) होता है जो साधारण दृष्टि से नहीं जाना जासकता ऐसे वहुत वारीक जीवांणु (Unicellnlar or organisms) जैसे एमीवा इ·फुयु सोरिया वगैरे जन्तुओं के माफिक) इन जीवांणुओ की वृद्धि होकर फिर इनके दो भाग होजाते हैं और दोनो भाग एक से एक मिलते आते हैं कि जिनकी पहचान नहीं हो सक्ती कि छोटा या वड़ा कौनसा है और ये दोनों भाग पृथक २ प्रकार से जीवांणु के माफिक अपनी जिन्दगी का गुजारा करते हैं। यही आपस में मिलकर फिर दो से चार आदि की संख्या बढ़ती रहती है। इस प्रकार इन जीवों को अमर मानते हैं इस प्रकार इन सूक्ष्म जीवाणुओं के कोप में रहने से साफ साबित होता है कि यह स्थूल शरीर हमारे माता पिता का एक अंग भाग रूप है।

ये जीवांणु आधे भाग में विभाजित होकर फिर दूसरे प्रकार के जीवांणुओं को अपने से स्थूल रूप में वनाते जाते हैं जिसके फल स्वरूप हम मनुष्यों में दो प्रकार के स्त्री और पुरुष होजाते हैं। इसी प्रकार फिर हम भी स्त्री और पुरुष मिले विना वच्चा उत्पन्न नहीं कर सक्के।

उपरोक्त दोनों प्रकार के जीवांणु एक ही प्रकार के जीव बिन्दु (कोष) के वने हुवे है यह सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर ऐसे जीवांणु कोषों (cells) के वने हुये है जिनकी सख्या करना अति कठिन है ।

अब यह साबित इन विज्ञानियों के सिद्धान्त से होता है कि स्थूल शरीर में ये दो प्रकार के जीवांणु होते है। जिस में एक प्रकार के जीवाणुओं से तो यह शरीर धारण रहता है और दूसरी प्रकार के जीवाणु नित्य मृत्यु होते है और वापिस हमारे आहार में से उत्पन्न होजाते है। और जो धारक दूसरी प्रकार के हैं वह हमेश के तरह पर मृत्यु प्राप्त नहीं होते हैं परन्तु पीढ़ी दर पीढी बीज रूप से सन्तान में उतरते रहते हैं येही हमारा (बीज) जीव कोष है।

दूसरा प्रकरण

(जीवाणुओं के गुण और कर्म सिद्धान्त)

ये दोनों प्रकार के जीवांणु दो भागों में विभक्त होने पर भी एक से एक को छोड़ कर पृथक्क नहीं रहते है वल्के एक से एक साथ में रहते हैं परन्तु यह आपस में अपने अपने कर्म भाग बैंछ लेते है एक तो अपना कर्म आहार में से पोषण तत्वों को सोधना (छाटना) अर्थात् मल रस वीर्य रक्त आदि काम करते हैं दूसरे जीवाणु अपने में से अपने माफिक (तदस्वरूप-आबे हुब) जीवाणु प्रगट करने का करता है। जैसे आंख की आंख नाक की नाक उंगली की उंगली कान के कान इत्यादि।

इन ही से दो प्रकार के जीवाणुओं को (Sometic cells) जो अपने सदृश्य उत्पन्न करने वाले को कहते है। रोज के

नये बनने वालों को (Germ cells) इस नाम से प्रोः वीस मेन के रखे हुये नामों से पहचानता है।

ये ऊपर वाले स्त्री और पुरुष जाति के जीवांणु एक ही कोष में साथ में मिल कर एक मेक (समवाय) में होकर पीछे एक ही कोष बन जाता है। स्थूल शरीर का बीज फक्त एक सूक्ष्म बारीक कोष का बना हुआ है जो एक इंच के २०० में भाग के जितना सूक्ष्म होता है ये बीज (कोष) का मुख्य दो भाग सुक्ष्म दृष्टि से देखने में आता है। बराबर बीच के सब से छोटे भाग को (न्युकल्स) के नाम से रखा है। और इसके आस पास के भाग को (प्रोटोपेलेझम) नाम रखे हैं।

सम्पूर्ण कोष के मध्यम बिन्दु है जिसमें से अन्य बिन्दु और रेखों उत्पन्न हों उसको (न्युकल्स) कहते हैं प्रो: वीस मेन ने कितने ही प्रयोग कर प्रमाणित किया के मनुष्य की उत्पत्ति के लिये हरेक स्वभाविक गुणा इस बिन्दु में जैसे (आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियां) आदि इस में समाई हुई रहती हैं।

बीज कोष के दूसरे भाग में वह बिन्दु अपना रक्षण और पोषण करता है उस तत्व के भाग को घटक (प्रोटोंपलेझम) कहते है यह घटक पहले से आहार में से पोषण पदार्थ अपने अन्दर खेंचकर भर लेता है और (जीवाणु) को खुराक की पोषण देता है और इस घटक में ही हर वक्त गति करता रहता है। जीव के और माता पिता के देश काल आदिकों का प्रभाव इस प्रोटोपलेझम पर ही असर पड़ता है और इस

प्रभाव को (Responsive Power) कहते है के जिस के द्वारा वीज पर ग्राहाम्य भावों का असर लेने की शक्ति प्राप्त होती है।

जर्मनी के तत्व दर्शी बोवेरी (Boveri) नाम का था उसने ऊपर वाले सिद्धान्तों का एक प्रयोग इस प्रकार का किया कि एक दरयाई जानवर(Sea vrchin नाम के इंडे को लेकर उसमें से सावधानी से (न्युकल्स बिन्दु को निकाल कर उसकी ऐवज में दूसरी जाति के जानवर का (न्युकल्स बिन्दु) उसमें डाला और उस इंडे को पकाया तो उस इंडे में दूसरी जाती का बच्चा पैदा हुवा।

प्रकरण तीसरा

पूर्व पक्ष के बिना सिद्धांत बनाये नहीं जाते और द्वैत के बिना दृष्टांत लग नहीं सकते ऐसे ही अनुमान के बिना भी अनुभव चल नहीं सकता और बिना पदार्थ के संकेत क्या कर सकता है। जिज्ञासु के बिना सिद्ध नहीं हो सकते और सिद्धियों बिना साधे हो नहीं सकती और मुमुक्षता बिना मोक्ष कब मिल सकता है। जिस प्रकार बिना खाये पेट कब भर सकता है इसी प्रकार बिना जाने जिज्ञासा पूर्ती कब हो सकेगी। इसलिये आपको हमारा यह कहना है कि आप हमारे बताये हुये सिद्धांतों को कोरे अनुमान अथवा कल्पना का उजड़ जङ्गल मत समझो वरके अनुभव और सत्य का राज पंथ है। जिस के द्वारा अमरपद प्राप्त कर सकते हैं।

अब आप को पूर्व स्थूल के विषय पर ले आते हैं और स्थूल के महा कारण को बताते हैं। जरा सावधानी से पढना। यह स्थूल महा कारण एक अशून्य बिंदु मात्रा में जीवाणु रूप है। जो सम्पूर्ण द्रव्य आत्मा, बुद्धि, मन और पंच भौवतिक द्रव्यों का मिश्रत अपरिच्छीन मात्रा में समाया हुवा यह जीवाणु रूप का स्थूल महा कारण विन्दु है। इसी बिन्दु को महा कारण बिन्दु कहना चाहिये और इसी में से समाये हुये अन्य बिन्दु व्यक्त होते हैं और स्थूलाकार बनते जाते हैं यह प्रथम बीज महा कारण समष्टि द्रव्यों का समष्टि स्थूल कारण है। इसी में से बुद्धि, मन, इन्द्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी के बीज बिन्दु व्यक्त होते हैं और अपने २ व्यष्टि रूपों के अनुसार स्थूल शरीर की अन्तर रचना रचलेते हैं। इसीका समुदाय मात्रा यह स्थूल शरीर है।

यह बुद्धि मन आदि व्यक्त विन्दु अपने २ आकारों की रूप रेखा बना लेते हैं और इन के ही रूप रेखा के अनुसार शरीर के घटक अव्यव बन जाते हैं और वह अव्यव जथे के जथे रूप में समवाय हो होकर अपने रूप के केन्द्र गोलक वन जाते हैं। अब इनका अत्यन्त गुढ भेद बतावेंगे जिस को सावधानी से समझ लेना चाहिये।

प्रकरण—चौथा

सब से पहले एक बिंदु जो यह तारे के समान है वह सर्व स्थूलों का हेतु है और सर्व का प्रकाश भी है यह अशून्य

है अर्थात् इसके अन्दर किंचित भी शून्य नहीं है यह सर्व तेज से परिपूर्ण है। यह जीवा-मा बिन्दु है। इसके नीचे एक रेखा निकलती है जैसे तेज से कोई प्रकाश करने वाली किरण निकलती वैसे ही इस बिन्दु के स्वभावानुार क्षोभ से एक रेखा बनती है और अन्त में दूसरा बिन्दु व्यक्त होता है जो अनुभव बिन्दु कहलाता है इस प्रकार एक(१) के अक की उत्पत्ति होती है और दूसरा बिन्दु सिद्ध होता है इन्हीं दो विंदुओं के होने से दो २ का अंक बन जाता है और लम्बाई की प्रतीति हो जाती है, वास्तव में रेखायें बिन्दुओं का समूह है परन्तु उस के आदि और अन्त में विंदुओं के व्यक्त होने के कारण रेखाओं से अंकों की संख्या दीखती है।

त्रिकोण की रचना इस प्रकार हुई दूसरे अनुभव विंदु में क्षोभ उठकर के और फैल कर एक अपने जैसी दूसरी रेखा बनाई और उसके अन्त में तीसरे बुद्धि के विंदु को प्रकट किया। इससे तीन (३) का अंक प्रकट होता है।

अब चतुष्ट कोण की रचना इस प्रकार हुई बुद्धि के विंदु में क्षोभ उठकर एक रेखा बनाई और चौथा विंदु व्यक्त हुवा यही मन का विंदु है और इस प्रकार चार (४) का अक प्रकट हुवा इसी को हम हमारा अन्तःकरण चतुष्ट भी कह सकते हैं।

अब पंच कोण की रचना इस प्रकार हुई मन के विंदु में क्षोभ उठकर एक रेखा वनाई और पांचवे इन्द्रियों के विंदु को व्यक्त किया यही पंच तन मात्रा और पंच विषय कहलाते हैं और इसी से पांच इन्द्रियां भी कहलाती हैं

इसी से पांच का अंक प्रकट हुवा। यह मूर्ती म.न अ.कार का विन्दु है जो हम को पंच इन्द्रियों से दीख सकता है:

अब षठ कोष की रचना इस प्रकार हुई कि पांचवे इन्द्रियों के विन्दु में क्षोम उठकर पांचवीं रेखा ने और छुटे विन्दु को व्यक्त किया यह पृथ्वी का विन्दु है जिस का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पृथ्वी की छै दिशाये हैं चारों तरफ चार और ऊपर नीचे दो यह छै हुई और दो त्रिकोण के रेखाओं के आमने सामने मिले से छ (६) का अंक प्रकट हो जाता है।

अब सप्त कोण की रचना इस प्रकार हुई कि छुटे विन्दु में क्षोम उठकर एक रेखा फैला कर बनाई और सातवें जल विंदु को व्यक्त किया अर्थात् छ दिशायें पृथ्वी में सातवांजल विन्दु प्रचलित हुवा इसी से सात (७) का अंक प्रकट हुवा।

अब अष्ट कोण की रचना इस प्रकार हुई कि जल विन्दु में क्षोम उठकर फैल कर एक रेखा बनाई और उसके अन्त में अग्नि का आठवां विन्दु व्यक्त हुवा जो प्रत्यक्ष पवन के संघर्षण से अग्नि प्रकट अथवा विजली प्रकट हो जाती है जिस को शक्ति विन्दु भी कहते हैं क्योंकि इसकी मुर्ती दो त्रिकोण और एक आड़ी रेखा से प्रतीति होती है और यह रूप रेखा शक्ति का प्रार्दुव भाव है। इसी से आठ (८)का अंक प्रकट हुवा है।

अब नौ के त्रिकोण की रचना इस प्रकार हुई अग्नि के विंदु में क्षोम उठकर प्रकाश फैलकर एक रेखा बनाई उस में से नवा

पवन बिन्दु व्यक्त हुवा जो यह पशु पक्षी और मनुष्यों के शरीरों में यही नव बड़े २ अवयव अंगों के टुकड़े होते हैं अर्थात् दो हाथों के चार भाग दो पावों के चार भाग और नवां धड़ और दसवां मस्तक है जो शून्य के समान हैं इसी प्रकार से बनस्पतियों में भी यही नव भाग हैं। १ वीज, २ जड़, ३ तना, ४ रस, ५ छाल, ६ शाखा, ७ पत्र ८ पुष्प, ९ फल और अन्त में फिर वीज की उत्पत्ति होती है जिस को दसवा वीज कहते हैं, इस प्रकार से यह नव(९)का अंक प्रकट होता है जो अपने रूप को त्रिगुणी संख्या से बतलाता रहता है।

अब दसवें कोण की रचना इस प्रकार से है कि नवें बिन्दु मे क्षोम उठ कर एक गोल चक्र बनाया और नव ही बिन्दुओं को घेर कर आकाश शून्य के नाद को व्यक्त किया. अर्थात् पहला जो जीवात्मा अशून्य बिन्दु है उसने अपने अधीष्ठान को छोड़ कर तमाम मुर्ती को घेर लिया और अपनी जगह पृथ्वी के बिन्दु को देदी और दसवें में जो नाद बना है वह स्वभाव के अनुसार अन्य बिन्दु नहीं होकर चक्राकार आकृति को धारण करतीं है, इसमें अंको के ९ बिन्दु ही गुप्त होकर इस महा नाद में चक्र काटते हैं इस प्रकार एक के अंक पर शून्य के बढाने से १० अंक बनजाता हैं यदि शून्य में नव शक्तियां गुप्त नहीं होती तो कदापि दसवां अंक बनना असमभ्व था। इसी प्रकार आकाश मण्डल में सब ही ९ ग्रह चक्र काटते हैं और आकाश इन ९ ही ग्रह बिन्दुओं को घेरे हुवे शून्या कार है जिसमें प्रत्येक ग्रह और पिण्ड समाये हुवे हैं और गती कर रहे हैं और आकाश के बाहिर कोई भी नहीं

जासक्ते हैं इस प्रकार इन सम्पूर्ण नव विन्दु और दसवां नाद याने शून्य ये ही जीवाणु कोष है। जिस का पता पश्चिमी विज्ञानियों ने लगाया और उसका नाम (Cells) रखा परन्तु वह यह नहीं बता सके कि इस जीवांणु कोष की उत्पति कैसे हुई और इसमें क्या मसाला भरा हुवा है। हां इतनी जरूर प्रसशा करने योग्य है कि उनकी खोज गहरी है और आखिर वह इस कहावत को पूरी करलेंगे कि जिन खोजातिंन पाइयां की मिसाल से खोजने खाजते पहुंच जावेंगे। अब इन विन्दु और रेखाओं के नकशे बताते हैं जिन से आप समझ जायंगे।

प्रकरण-पांचवा

यह जीवांणु कोष सम्पूर्ण स्थूलों का कारण है और इस जीवांणु कोष में से ही तमाम अवयव बनते हैं जिन की बनावट का पूरा हाल मनुष्य की उत्पति में लिखेगे यहां पर तो मूलसिद्धान्तों को बताते हैं।

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु दो प्रकार के वर्ग में द्रव्यज्ञाताओं ने वर्णन की है उनके नाम एक तो प्राणी वर्ग अर्थात् (जङ्गम) और दूसरे उद्भिज अर्थात् वनस्पति और (खनिज) इन दो प्रकार की वस्तुओं का वर्ग मानते हैं जो उपरोक्त जीवांणु कोष से बनती है जिनका नकशा नीचे मुजब हैः—

जीवांणु कोष

जङ्गम	स्थावर
हड्डी (अस्थी)	लकड़ा
मास	
मेदा	फल
वसा (चरवी)	फूल
नाड़ी	पत्ता
चरम (त्वचा)	रस
नख	गोंद
दांत	छाल
मल	जड़
मूत्र	शाखा
वीर्य (मनी)	दूध
रक्त (खून)	कन्द
थूक	धातु
लाल	उपधातु
स्वेद (पसीना)	रस
दूध	उपरस
सींग	इत्यादि
पथरी	
पर	
वाल	
पीप	

प्रकरण-छटा

जङ्गम और स्थावर जो जीवाणु कोष इन दो प्रकार की वस्तुओं को उत्पन्न करते हैं वह उत्पन्न वस्तुओं अपनी अपनी खान में से प्रकट कर बनाते हैं। जङ्गम की खान जरायुज, स्वेद्ज, अण्डज ये तीन खानों से जङ्गम वस्तुओं की उत्पति है और उद्‌भिज और खनिज ये दो स्थावर वस्तुओं की खनिज है खानियों में ये जीव कोष प्रविष्ट होकर उनके मूल स्वभाव के माफिक इनके शरीरों की रचना रचलेते हैं। जिस खान का अर्थात् योनी को बासनाओं का स्वभाव होता है उसी रंग रूप का घाट घटम का शरीर बनजाता है प्रत्येक खान योनि के मानसिक बिन्दुओं पर इनका असर होता है और वह मन बिन्दु उसी आकार के रूप का अनुकरण करके उसी योनि के माफिक शरीरावयव बनजाता है। परन्तु उसके कारण बिन्दु जीवांणु कोष का परिवर्तन नहीं होता वह जङ्गम और स्थावरों में एक समान ही रहता है। जो अमर विन्दु वीज कहलाता है, अमर कहने का कारण यह है कि सर वुइल किन्सन जो एक बड़े पुरातन तत्व विज्ञानी हैं उनको थोबेस शहर में एक कबर में मुरदे बन्द किये हुवे मिले उनमें कुछ गेहूं के दाने मिले जो वहां बहुधा ३००० हजार वर्षों से रखे हुवे थे जिन को मिस्टर टीगुयुन ने उन को जमीन में इस लिये वोया तो ऊग कर पौधे हो गये इसी प्रकार मिश्र देश के एक मुरदे मसी के हाथ में साग पात के बीज मिले जो २००० वर्ष के थे उन को वोये तो उग कर पौधे हो गये। इस से अमरता सिद्ध होती है।

जिज्ञासु—यह क्योंकर हो सकता है कि मनुष्य आदि जगम प्राणियों के माफिक ही स्थावरों और खनिजों धातु आदिकों में कैसे ये वीज कोप सामान क्रिया कर सकता है यह वात विल्कुल प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुध है।

उत्तर—प्रोफेसर जगदीश बसु महोदय ने अपने विज्ञान द्वारा आविष्कारक यंत्र के द्वारा सप्रमाण सिद्ध किया है कि प्राणियों के चैतन्य शरीर के समान ही जड़ वस्तुओं की परीक्षा कर उसपर यह सिद्ध किया कि मनुष्य शरीर के समान ही जड़ पदार्थों में भी क्रिया (ज्ञान) चैतन्य के तुल्य है अर्थात् यदि जड़ पदार्थों में सुई अथवा कोई शस्त्राघात किया जावे तो उन में भो स्पनन्दन क्रिया दृष्टि गोचर होती है। धातु आदि पदार्थों के काटने पीटने में उनकी क्रिया हीन हो जाती है और उनपर शक्ति वृधक औषधी का प्रयोग करने से उनकी शक्ति की क्रिया वढ़ी हुई दृष्टि गोचर होती है। इस वात को साबित करने के लिये वसु राजा ने धातुओं पर विष प्रयोग किया तो पाया गया कि विष युक्त धातु निरा स्पदन होगया जव फिर उनपर विष नाशक प्रयोग किया गया तो धीरे २ उन में स्पन्दन शक्ति आ गई इस प्रकार बनस्पति में विजली पहुंच गई तो उन्होने अपनी भावनाओं की रेखा खींचकर प्रकट की। इस पर पश्चिमी विज्ञान वाजोंने बसु वावू के इस आविष्कार को तो स्वीकार किया परन्तु यह उजर निकाला कि यह आविष्कार सत्य होने पर भी अध्यात्मा विषय में रखा और वह वाहरी दृष्टि से उसका मूल्य कुछ नहीं जगदीश चन्द्र वावू ने हाल में एक और नवीन आविष्कार करके इस उज्र का जो (अव

॥ इति जड़ा अद्वैत वाद सम्पूर्णम् ॥

गपने किया) है उसका भी खण्डन कर दिया इस दूसरे आविष्कार का मतलब यह कि जिस तरह पर मनुष्य शरीर में होने वाले भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं उसी तरह वनस्पतियों से प्रकट हो जाता है। इस बात को साबित करने के लिये बसु महोदय ने एक यंत्र तैयार किया है जिस को इसी देश के कारीगरों ने बनाया है जो प्राणियों के शरीर में जैसे प्रमाण क्रिया रूप से दिखाई देते हैं वैसे ही उस यंत्र के सहारे वनस्पति भी अपने हस्त लेख द्वारा प्रमाण क्रिया रूप से प्रकट कर देती है जिस प्रकार अधिक आहार से प्राणी अलसा जाता है और विष से उन्मत्त हो जाता है वैसे ही वनस्पति भी हो जाती है। इस पर अब यह निर विवाद सिद्ध है कि इन्द्रियां युक्त जीवों में और इन्द्रियों रहित में भी समान ही क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति विद्यमान है परन्तु उनके स्पन्दन (Vibrations) की क्रियाओं का ही अन्तर है।

अब हम इन ऊपर वाली खानियों का नकशा देते हैं। उन से जान लेना।—

* * * * * *

इस प्रकार यह जड़ा अद्वेत वाद सिद्धांत आप को संक्षिप्त में बताये गये थे जिस से आपकी जिज्ञासा पूरी हो जावे यह जड़ा अद्वेत वाद के मूल कारणों को बताया गया है। इसके आगे पिण्ड और ब्रह्माण्ड का सर्ग वर्णन करेंगे।

॥ इति जड़ा अद्वेत वाद सम्पूर्णम् ॥

सर्ग—पांचवां

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

अध्याय पहिला

प्रकरण पहिला

जि—यह बात समझ में नहीं बैठती है कि पिण्ड के तुल्य ही ब्रह्माण्ड कैसे हो सकता है। इसकी कैसे प्रतीति होवे।

उ—इसकी प्रतीति करने के लिये नाना मत, नाना पंथों के तत्वज्ञ लोग भटक रहे हैं। और हर समय पर इसकी खोज में लगे रहते हैं। उनका कथन है कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड तुल्य है अब इसकी प्रतीति के ज्ञान को कहते हैं।

प्रतीति और निश्चय के आगे अनुमान ऐसा जैसे स्वप्न के आगे जागृत, और नकली के आगे असली। असली को पहिचानने में परीक्षक की अपेक्षा है। परीक्षा के आगे सत्य की मालूम होती है। और परीक्षा न जानने से सन्देह के गढे में पड़ा रहना होता है। यहां प्रतीति ही प्रामेण हैं। अनुमान की आवश्यकता नहीं। प्रतीति के बिदुन (बिना) कोई भी अनुमान का कथन अच्छा नहीं लगता। वह कथन ऐसा होता है जैसे कुत्ता मुंह फाड़ कर भौंकता हो। जिसके मन को जैसा भास होता है वह वैसे ही काव्य की रचना करता है। लेकिन पढ़ने वालों को उसके भाव को अपनी बुद्धि से ही जान लेना चाहिये। जहां अनुभव के नेत्र चले जाते हैं

वहां सब काल अंधेरा ही भासता है। जैसे चतुर पुरुष नपुंसक की चाल पर ही भाप जाते हैं। और दूसरों के चित्त की बात बिना बताये ही जान जाते हैं अथवा अनुभवी वैद्य रोगी को देखते ही पक्का निदान कर लेते हैं। इसी प्रकार प्रतीति को विवेक ख्याति से जान लेना चाहिये। जितना भी अनुमान है वह कल्पना का उजाड़ जंगल है। साहूकार उजाड़ जंगल की राह से नहीं चलते। उजड़ रास्ते तो चोर ही चलते हैं। इसी प्रकार हम आपको प्रत्येक सिद्धान्तों के विषय में सीधे और सत्य पथ का ही अवलम्बन करके बतावेंगे। जो हमको स्वयं अनुभूति हुआ है। यद्यपि यह विषय बहुत ही गूढ़ है। तथापि बतलाने पर पूरा नहीं बताया जासकता है। और न बतलाने से सन्देह निवृति नहीं होता। और जहां तक सन्देह रहता है वहां तक प्राप्ति नहीं होती। और जिज्ञासा की पीपासा की निवृति नहीं होती। इस लिये इस विषय को जानने के लिये जिज्ञासुओं को अपनी बुद्धि को धारणा की शान पर तेज कर लेनी चाहिये। क्यों कि उस कहावत को पूरी करना है कि सागर को गागर में भर दिया है। परन्तु हमतो आपको सप्त सागरों को ही एक छोटे से लघु से लघु पिण्ड (घट) में भर कर हस्तामल करके प्रतीति करावेंगे, ये ही इस सर्ग की रचना है।

॥ इति पहिला प्रकरण ॥

दूसरा—प्रकरण

ब्रह्म में ब्रह्मांड ।

पर ब्रह्म निर्मल निश्चल शाश्वत सार सर्वाधार अमल, विमल, अगम, निराकार, निर्विकार, अगाध, अपार, अनन्त अखंड अकाल, तथा, आकाश की तरह सर्व व्यापक है। उस में करना धरना जन्मना मरना इत्यादि कुछ नहीं है। वह शून्य से भी अतीत है। वह न बनता है न बिगड़ता है न होता है न जाता है वह निरंजन उसका पार नहीं। ऐसा अपार पर ब्रह्म है। उस में अनन्त ब्रह्मांड नित्यानित्य होते" और समाते जाते हैं। जैसे पानी के दरियाव में से बुलबुले होते और मिट जाते हैं इसी प्रकार उस अव्यक्त ब्रह्म में से व्यक्त ब्रह्मांड प्रगट होते हैं। जिन का पारा वार नहीं।

ब्रह्माण्ड में क्या भरा है।

ब्रह्मांड और पिण्ड दोनों में वह छ ६ धातु भरे पडे हैं, और उन धातुओं में चराचर जगत भरा पडा है और चराचर जगत में लोक भरे पड़े हैं। लोकों में लोक पाल भरे पड़े हैं। लोक पालों में दिक पाल भरे पडे हैं। दिक पालों में वसु भरे पडे हैं। वसुओं में रुद्र भरे पडे हैं। रुद्रों, मे आदित्य भरे पडे हैं। आदित्यों में दिशा भरी हैं। दिशाओं में द्वीप भरे पडे हैं द्वीपों में खण्ड भरे पडे हैं। खण्डों में देश भरे पडे हैं और देशों मे प्रजा भरी पडी है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में उपरोक्त द्रव्य भरे पडे हैं। जिन की पूरी गणना करना

एक महा पुराण भरना है। इस लिये अधिक देखना हो तो पुराणों में देखो। यहां तो नाम मात्र दिखाया है।

अब यह दिखाते हैं कि पिण्ड और ब्रह्मांड में परस्पर कैसे तुलना की जा सकती है अब इन की तुलना का वर्णन करेंगे।

पिंड और ब्रह्मांड के परस्पर अव्यव असंख्य हैं। जिनका पूरा वर्णन हजारों जन्मांतरों में भी पूरा नहीं कर सकता हू। इस लिये उनमें से जो प्रधान होंगे उनका सामान्य उदाहरण देकर बतावेंगे।

॥ इति दूसरा प्रकरण ॥

प्रकरण-तीसरा

॥ पिण्ड और ब्रह्माण्ड की तुलना ॥

छैओं धातुओं के समुदाय का नाम ब्रह्माण्ड है। और इन्हीं द्रव्यों के सार रस के समुदाय का नाम पिण्ड है। जसे ब्रह्माण्ड में पृथ्वी है। वैसे ही पिण्ड में मूर्ति पृथ्वी है। ब्रह्माण्ड में जैसे पानी है, वैसे ही पिण्ड में क्लेद (पसीना) है। ब्रह्माण्ड में जैसे अग्नि है वैसे ही पिण्ड में ऊष्मा है। ब्रह्माण्ड में जैसे वायु है वैसे ही पिण्ड में प्राण है। ब्रह्माण्ड में जैसे आकाश है वैसे ही पिण्डमें छिद्र हैं,जैसे ब्रह्माण्ड अव्यक्त ब्रह्म है। वैसे ही पिण्ड में अध्यात्मा है। ब्रह्माण्ड में जैसे ब्रह्मा की विभूति प्रजा पति है। वैसे ही पिंण्ड में अन्तरात्मा की विभूति सत्व है। ब्रह्माण्ड में जैसे इन्द्र है वैसे ही पिण्ड में अहंकार

है। ब्रह्माण्ड में जैसे यें है। वैसे ही पिण्ड में आदान है। ब्रह्माण्ड में जैसे रुद्र है वैसे ही पिण्ड में रोप है। ब्रह्माण्ड में जैसे चन्द्रमा है वेसे ही पिण्ड मे प्रसाद है। ब्रह्माण्ड मे जैसे वसु हैं वैसे ही पिण्ड में सुख है। ब्रह्माण्ड में जैसे अश्वनी कुमार है वैसे ही पिण्ड में कान्ति है। ब्रह्माण्ड में जसे मारूत है। वैसे ही पिण्ड में उत्साह है। ब्रह्माण्ड मे जैसे विश्वदेव हैं। वैसे ही पिण्ड मे सम्पूर्ण इन्द्रियां और उनके विषय हैं। ब्रह्माण्ड में जैसे तम (अन्धकार) है। वैसे ही पिण्ड में मोह है। ब्रह्मण्ड में जैसे ज्योति हैं। पिण्ड मे वैसे ही ज्ञान है। जैसे ब्रह्माण्ड में स्वर्ग आदि हैं। वैसे ही पिण्ड मे गर्भाधान है। जैसे ब्रह्माण्ड में सतयुग है। वैसे ही पिण्ड में बाल्यवस्था है। ब्रह्माण्ड में जैसे त्रेता है। वैसे ही पिण्ड मे युवावस्था है। ब्रह्माण्ड म जैसे द्वापर है। वैसे ही पिण्डमें वृद्धावस्था है, ब्रह्माण्ड में जैसे कलियुग है। वैसे ही पिण्ड में तुरीयावस्था है। जैसे ब्रह्माण्ड में युगान्तक है। वैसे ही पिण्ड में मरण है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड व पिण्ड की तुलना समान ही समझी जावेगी।

इस प्रकार जो ब्रह्मांड को पिण्ड में और पिण्ड को ब्रह्माण्ड में समानता की तुलना दृष्टि से देखता है। उसी को दिव्य प्रज्ञा ज्योति होती है। और जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने में देखता है। स्वयं सुख दुःख से छूट जाता है। यह जो कर्म की अधीनता में जो हेत्वादि से युक्त होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को यों जान जाता है कि मैं हूं। बस येही ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का है।

इसी सिद्धान्तको अंग्रेजी में यों कहते हैं।

The Man is, after the inoge of God.

यहां पर ब्रह्माण्ड और पिण्ड के शब्द सयोग की अपेक्षा करने वाला है। सामान्यता सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड छै ही धातुओं के समुदाय रूप हैं। इसी समुदाय को पिण्ड का हेतु, उत्पत्ति, वृद्धि, उपल्पव, और वियोग होता है। इससे उत्पत्ति के कारण को हेतु कहते हैं। जन्म को उत्पत्ति कहते हैं। आरुघथान को वृद्धि कहते है। और दुःखागमन को उपल्पव कहते हैं। और इन छओं धातुओं के पृथक २ होजाने का नाम वियोग हैं। इसी वियोग आदि को मरण भंग आदि कहते है।

॥ इति प्रकरण तीसरा ॥

चौथा-प्रकरण

ब्रह्म कारण है। ब्रह्माण्ड करण है। और पिण्ड कार्य है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का हेतु पिण्ड है। ब्रह्माण्ड व्यापक है, पिण्ड व्याप्य है। इस सिद्धान्त से पिण्ड का घर ब्रह्माण्ड है। क्योंकि व्याप्य का व्यापक घर होता है। जैसे हमारे पिण्ड के रहने के लिये हम घर बनाते हैं। और उस मकान में हमारा पिण्ड वे रोक टोक सब जगह फिरता है। इसी प्रकार से वह घर ब्रह्माण्ड मे ब्रह्माण्ड के पदार्थों से बना है। और पिण्ड भी ब्रह्माण्ड के पदार्थों का बना है। अन्तर केवल व्यापक व्याप्य का है।

॥ सप्त प्रकार का ब्रह्माण्ड ॥

बहुत कुछ खोज करने पर और कई तरह के प्रमाणों का अवलम्बन करने पर और कई अनुभूत योगों के प्रयोग

द्वारा यह जाना गया है कि ब्रह्माण्ड सप्त प्रकार का सिद्ध हुआ है। और दिव्य दृष्टि देव अज्ञ द्वारा प्रतीत से जाना गया है। अब हम इसका वर्णन करेंगे।

(१) कारण (२ आत्मा (३' हिरण्यगर्भ (४) सूल प्रकृति (५) विराट (६) सूक्ष्म (७) स्थूल। इस प्रकार ब्रह्माण्ड सप्त प्रकार का होता है। इन्हीं प्रकारों को कई मतावलम्बी ब्रह्माण्ड के सप्त आवर्ण (कांचली) कहते हैं। कई इन आवर्णों को पटल कहते हैं। कई इन आवर्णों को ब्रह्माण्ड की सात प्रकार की काया (शरीर) कहते हैं। परन्तु यह भेद बहुत गूढ है। साधारण बुद्धि वाले के दिमाग से बाहिर है। यदि ये उपरोक्त सात प्रकार का ब्रह्माण्ड भेद बताया जाता है। यदि ये न हो तो जैसे सात धान के शामिल के माफिक घिलमिल हो जावे। परन्तु प्रत्यक्ष भिन्न २ भासते हैं। कई धातु स्थूल हैं। और कई सूक्ष्म हैं। जैसे वायु से सूक्ष्म आकाश है और आकाश से सूक्ष्म अव्यक्त ब्रह्म है। इसी प्रकार वायु से स्थूल अग्नि और अग्नि से स्थूल पानी है' और पानी से स्थूल पृथ्वी है। इस प्रकार जब इन में ही भेद पाया जाता है, तो फिर ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म स्थूल का भेद क्यों नहीं हो सकता है।

परन्तु यह बात पिण्ड के अनुभव से ही प्राप्त होकर प्रतीति में आजाती है, क्यों कि जो भेद ब्रह्माण्ड का है; वही पिण्ड का है। इस लिये पिण्ड के भेद से जानी जाती है। क्योंकि ब्रह्माण्ड का भेद जानने को तो हमारे पास दिव्य चक्षु चाहिये और पिण्ड को जानने के लिये तुरीयावस्था की जरूरत है। जिसके द्वारा हम पिण्ड का हाल जान जाते

हैं। तब ब्रह्माण्ड के हाल जानने की क्या अवश्यता है। (यत्व ब्रह्माण्डततपिण्ड) क्यों कि पिण्ड व ब्रह्माण्ड तुल्य हैं। जब हम अखिल ब्रह्माण्ड को अपने छोटे से पिण्ड में ही जान सकते हैं। तो फिर हमको १०० फीट की व बड़ी से बड़ी और सूक्ष्म से सूक्ष्म दुरवीनों के बनाने की क्या आवश्यकता है। यही सिद्धान्त हमारे ऋषियों मुनियों का है। इसी ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। परन्तु आज हम इस दिव्य परज्ञान को भूल कर जड़ वस्तुओं के ज्ञान का साधन करके स्थूल को ही जान रहे हैं। न कि सूक्ष्म को। क्योंकि दूरबीन छोटी वस्तु को बड़ी करके दिखाती है। न कि बड़ी को छोटी। इस लिये लघुस्थूल को वृद्धि करती है न कि सूक्ष्म। क्यों कि नियम यह है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म दीखता है न कि स्थूल से सूक्ष्म। इस सिद्धान्त से दूरबीन दृष्टा को स्थूल दृष्टा कहना चाहिये न कि सूक्ष्म दृष्टा कह सकते हैं।

॥ इति चौथा प्रकरण ॥

प्रकरण पांचवां

कारण ब्रह्माण्ड

यह कारण ब्रह्माण्ड दो प्रकार का है। एक समष्टि और दूसरा व्यष्टि। समष्टि ब्रह्माण्ड में तो अव्यक्त सामग्री समाई हुई है। और व्यष्टि ब्रह्माण्ड में व्यक्त सामग्री समाई हुई है।

आत्मा विश्व।

यह भी दो प्रकार का है। एक समष्टि दूसरा व्यष्टि। समष्टि ब्रह्माण्ड में समष्टि माया समाई हुई है। और व्यष्टि

आत्मा में अव्याकृत में व्यष्टि माया के गुण भूतों की सामग्री समाई हुई है। और इसके तीन भेद हैं। अध्यात्मा, अधो देवीक और अधि भौतिक हैं।

हिरण्य गर्भ अधिदेवीक ब्रह्माण्ड ।

यह भी दो प्रकार का है। एक समष्टि दूसरा व्यष्टि। समष्टि में तो वह हिरण्य गर्भ देव समष्टि पुरुष समाया हुआ है। और व्यष्टि हिरण्य गर्भ में ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म अव्यव समाये हुवे हैं।

विराट प्राण ब्रह्माण्ड ।

यह भी दो प्रकार का है। एक समष्टि विराट और दूसरा व्यष्टि विराट। समष्टि विराट में समस्थ वृहद् एक ही अव्यव में सर्व ब्रह्माण्ड समाया हुआ विराट है। और व्यष्टि विराट में भिन्न भिन्न प्राणों का स्वरूप है।

मूल प्रकृति अर्थात् वासना ब्रह्माण्ड ।

इसके भी दो भेद होते हैं। एक समष्टि और दूसरा व्यष्टि, समष्टि में तो सम्पूर्ण गुण और भूतों की मूल प्रकृति अर्थात् तीन गुण और पंच भूत मिल कर सम्पूर्ण अष्टधा रूप में सामग्री भरी हुई है और व्यष्टि रूप में भिन्न द्रव्यों के रस गुण वीर्य विपाक शक्ति आदि भरी हुई है।

सूक्ष्म छाया ब्रह्माण्ड ।

यह ब्रह्माण्ड ऐसा सूक्ष्म है कि आकाश की तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में है। इसके भी वही दो भेद हैं। एक

समष्टि और दूसरा व्यष्टि। समष्टि में ये समष्टि सूक्ष्म समाया हुआ है। और व्यष्टि में ये सूक्ष्म समाया हुआ है।

स्थूल ब्रह्माण्ड।

यह ब्रह्माण्ड स्थूल रूप में प्रत्यक्ष हैं। इसके भी दो भेद हैं। एक समष्टि और दूसरा व्यष्टि। समष्टि में तो अखिल ब्रह्माण्ड स्थूल है। और व्यष्टि में व्यष्टि ब्रह्माण्डों में भरा हुआ है।

इन ब्रह्माण्डों को आप ये न समझिये कि ये एक के बाद एक होगा। नहीं २ ये सम्पूर्ण संम व्याप्त रूप में हैं। और परस्पर एक का एक कारण कार्य रूप में है। जैसे बीज कारण का कार्य वृक्ष और वृक्ष कारण का कार्य फल और फल कारण कार्य कपास। कपास कारण का कार्य सूत। सूत कारण का कार्य कपड़ा। इस प्रकार से ये ब्रह्माण्ड परस्पर एक का एक कारण कार्य का आधार हैं। अब इसकी विशेष व्याख्या नहीं की है। क्यों कि ग्रन्थ का विषय लम्बा हो जाता है। और प्रसतूति विषय का ध्येय दूर होता जाता है। इस लिये और इसके आगे सप्त प्रकार के पिण्डों का वर्णन विस्तार से करेंगे जिसमें आपको ब्रह्माण्ड के भी भेद खुल जावेंगे। क्यों कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड तुल्य ही हैं। इस लिये पिण्डों की रचना में ब्रह्माण्ड का भी खुलासा विस्तार हो जावेगा। इस लिये अब इस विषय को यहीं तटस्थ करके आगे पिण्डों के विषय का प्रतिवादन करेंगे।

॥ इति पांचवां सर्ग ॥

सर्ग-छठा

अध्याय पहिला

प्रकरण-पहिला

जिन द्रव्यों की सामग्री के समुदाय का ब्रह्माण्ड बना है। उन्हीं के सार (तत्व) रस से यह पिण्ड बना है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के व्यापक व्याप्य का अन्तर है। अब हम पिण्डों के भेदों का ज्ञान भिन्न २ आचार्यों ने अपने २ मतानुसार भिन्न २ किया है। कई तो पिण्ड दो प्रकार का मानते हैं। और कई तीन प्रकार का और कई सात प्रकार का। इस प्रकार इनके भेद हैं। वह हम आपको सब बतला देते हैं। अब प्रथम दो प्रकार के पिण्डों का विज्ञान बताते हैं।

—(दो प्रकार के पिण्ड)—

अमूर्ति	और	मूर्ति
क्षर	—	अक्षर
अव्यक्त	—	व्यक्त
अन्तर वाहक	—	वाहिर वाहक
अयोनि	—	योनी
निरन्द्रिय	—	इन्द्रिय
अपरिच्छिन्न	—	परिच्छिन्न
सूक्ष्म	—	स्थूल
जंगम	—	स्थावर

इस प्रकार दो प्रकार के पिण्ड माने गये हैं । आकार रहित को अमूर्ति कहते हैं और आकृति वाले को मूर्ति कहते हैं। नष्ट होने वाले को मरने वाला क्षर कहते हैं। अनष्ट को अमर अक्षर कहते हैं। सीमा वाले को परिच्छिन्न कहते हैं। और सीमा रहित को अपरिच्छिन्न कहते हैं। जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक जासके उसे जंगमचर कहते हैं। और जो अपने स्थान से न हट सके उसे स्थावर कहते हैं। जो इन्द्रियों से न जाना जावे जो बुद्धि से जाना जावे उसको सूक्ष्म कहते हैं। जो अव्यवों से मिलकर गति देता है, उस को अन्तर वाहक कहते हैं। और जो उस गती का बाहिरी कार्य सम्पादन करता है। उसको बाहिर वाहक कहते हैं। जो भोगता है उसे इन्द्रियों वाला कहते हैं। जो अभोगता है उसको इन्द्रिय रहित निरेन्द्रिय कहते हैं। अब हम आपको व्यक्त अव्यक्त की विज्ञान की व्याख्या करेंगे।

जिसमें सम्पूर्ण व्यक्त तत्व के भाव समाये हुवे हैं। जैसे बीज में वृक्ष, दूध में घृत। इसी प्रकार इस ही में ये सब व्यक्त अव्यव अकुंठित रूप में समाये हुये हैं। इसके कोई भी इन्द्रियां अथवा विषय नहीं है। इसका हर एक हिस्सा मन-वान है। हर एक जगह से सर्व इन्द्रियां और विषय भरे हुये हैं। चाहे जिस हिस्से से चाहे जिस इन्द्रिय का काम ले सकते हैं। इस शरीर में अपरिमित बल और शक्ति भरी हुई है। यह अन्तर मुख शरीर है। यह इन्द्रियों और मन से अतीत है। इसके कोई भी अधिष्ठान नहीं है। यह सर्व देशी व्यापक है। इसी शरीर में ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देवता अपने भोग भोग रहे हैं। इसी शरीर में अणिमा आदि

अष्टादश सिद्धियां गौण अव्यक्त रूप में समाई हुई हैं। येही अव्यक्त कारण भी कहलाता है। ये ही अयोनी शरीर है। ये ही अजर है। जिस शरीर का किसी भी योनी से उत्पन्न हो तो वह जरूर योनि के जरायु आवर्ण से वैष्ठित होता है। और जो योनि से जन्म नहीं लेता है वही मरने वाला नष्ट प्राय होता है। और जो अयोनि है वह अजर अमर अपरिच्छिन्न नित्य होता है। अव्यक्त से यह अभिप्राय है कि- जिसमें देश काल दशा आदि अव्यव न हों। परिमाण, प्रमान, परिणाम आदि गुणों से रहित हो। और सम्पूर्ण परिणामा-, दिक का अधिकारण भी हो। सम्पूर्ण गुणों से रहित हो और सम्पूर्ण गुण कर्म कार्यों का आदि कारण भी हो। वह अव्यक्त है।

जि—यह बात हमारी बुद्धि में नहीं बैठती कि जो किसी प्रकार का परिमाणादिक गुण भी नहीं होवें और सम्पूर्ण परिमाणादिक का आदि कारण कैसे हो सकता है।

उत्तर—जैसे शून्य किसी परिमाणादिक नहीं है और शून्य की शून्य कोई बाकी जोड़ गुणन फल या भाजक भाज्य नहीं है। परन्तु सब जो परिणामादिक जोड़ बाकी गुणन फल आदि का कारण है। एक के ऊपर जितनी बिन्दी (शून्य) लगादी जावें वह एक उतने ही दश गुणन फल के परिमाण को पहुंच जाता है। आखिर शून्य (बिन्दी) की संख्या बढने से अपरिमित असंख्यः अनन्त हो जायगा। जैसे अरब, खरब, पदम, नील आदि संख्याओं की वृद्धि का कारण मात्र एक ही है। चाहे कितने ही असंख्य: अपरिमित गुणन फल क्यों न हो। परन्तु संख्या की वृद्धि का केवल शून्य ही कारण है। यदि एक पर से शून्य को हटा दिया जाय तो वह केवल एक

ही रह जायगा। इस प्रकार यह अव्यक्त शरीर सब ही व्यक्त शरीरों का आदि कारण शरीर है।

ये कारण शरीर अव्यक्त सम्पूर्ण शरीर मात्राओं का आश्रय है। क्या भूतात्मा और प्राणात्मा, जंगमात्मा, स्थावरात्मा आदि जड़ और चैतन्य सब में कारण भरा हुआ है। हमारे ये स्थूल जो कि प्रत्यक्ष दृष्टि का कारण है। यह स्थूल शरीर से सर्वथा उलटा गुण रखता है। जैसे ये शरीर पिता और माता की योनि से बना है और रस, रुधिर, मांस, मज्जा, चरम, हड्डी, नस, रग, नाड़ी इत्यादि पदार्थों से बना है। परन्तु कारण इस में से किसी योनि अथवा पदार्थों से बना हुआ नहीं है। वह तो सम्पूर्ण पदार्थों का आदि कर्त्ता है। जैसे ये स्थूल शरीर, बाल्य, युवा और वृद्धादि अवस्थादि परिणाम को प्राप्त होता है। वैसे ही वह नहीं होता। जैसे स्थूल को आहार, विहार औषिधादि की जरूरत होती है। वैसे कारण अव्यक्त को नहीं होती। जैसे इस शरीर में इन्द्रियां और इन्द्रियों में यदि विकार हो जावे दो उस इन्द्री से वह विषय प्राप्त नहीं होता। जैसे हमारी आंखों को मोतियाबिन्द, अथवा जाला आदि आजावे तो हमको रूप विषय का आबोध होता है। और एक इन्द्री दूसरी इन्द्रिय का बोध प्राप्त नहीं कर सकती है। परन्तु कारण अव्यक्त में ये बात नहीं है। क्यों कि उसके इन्द्रियां नहीं हैं। और विषयों को बिना इन्द्रियों के ही बोध करता है। जैसे इस शरीर में दिन और रात जागृत और निद्रा वैसे उसमें नहीं।

जैसे इस शरीर में इन्द्रियां हमारे हुक्म इच्छाओं के माफिक कार्य सम्पादन करती है। वैसे उसमे नहीं होना है।

कारण अव्यक्त तो वह बिना इच्छा के अपना कार्य नित्य करता है इच्छा से होने वाला कार्य अनित्य होता है। जैसे जब इच्छा हुई तब तो कार्य किया जाता है और बिना इच्छा के वह कार्य बन्द करता है। इस लिये इच्छा वाला कार्य नित्य नहीं हुआ इस लिये वह अपना कार्य नित्य बिना इच्छा के अखण्ड रूप से करता रहता है। चाहे हमारी इच्छा हो अथवा न हो। चाहे हम जागें या सो जावें। इस स्थूल के स्व भाव स्वभान (ज्ञान) से उसका स्वभाव स्वभान बिल्कुल उलटा है। जैसे इसको कपड़ा, खाना, पानी, घर, महलादि स्थूल पदार्थों की जरूरत रहती है। वैसे उसको नहीं रहती। में सम्पूर्ण पदार्थ इच्छा विदुन भी इच्छा वान रहते हैं। क्यों कि जरूरत एक से जुदा दूसरे होने में रहती है। जव वह स्वयं भूत एक ही है। तो दूसरे पदार्थों की कब इच्छा हुई। जैसे कि अमुक सुगन्धी सूंघने की इच्छा हुई जब कि सुगन्धी उससे दूर है। यदि सुगन्ध दूर नहीं होती तो इच्छा क्यों होती। जैसे भोजन की इच्छा हुई यदि भोजन स्वयं अन्दर होता तो इच्छा काहे को होती। इस प्रकार से जो वस्तु एक दूसरे से भिन्न दुरस्थ होती है तो उसके मिलने की इच्छा होती है। यदि कोई भी इच्छित पदार्थ हमसे भिन्न नहीं है। तो फिर इच्छा कैसे हो सकती है। इस प्रकार से वह अव्यक्त शरीर में सम्पूर्ण इच्छित पदार्थ इच्छा मात्रा में उपस्थित रहते हैं। देखो एक इच्छा होने में भी तीन बात होती है। पहिले वह जिसको इच्छा उत्पन्न हो (जीव इत्यादि) दूसरे में वह पदार्थ जिसकी इच्छा की गई अर्थात् जिस पदार्थ की जिसमें खामी हो, तीसरे में वह पदार्थ जिससे इच्छा पूर्ति हो। इस प्रकार इच्छा के तीन भेद होते हैं।

परन्तु वह तो खुद ही इच्छुत, खुद ही इच्छा, और खुद ही इच्छित पदार्थ है। इस प्रकार वह अव्यक्त स्वय ही पूर्णानन्द पूर्ण स्वरूप है। जिसको बाहिर से लाने की कुछ भी जरूरत नहीं है। वह तो सब कुछ अपने अन्दर से सम्पूर्ण पदार्थों को जो कि उसमें भरे हुवे हैं। उनको व्यक्त करता है। जिस प्रकार एक बीज मे से फल फूल पत्ते डाली, तने इत्यादि बाहिर से लाने की जरूरत नहीं। वह तो अपने अन्दर से ही अव्यक्त से व्यक्त करता है। जो हमको प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जैसे इस स्थूल शरीर को सुखों दुखों से व्याप्त होता है वैसे वह नही होता। क्यों कि सुख और दुख इच्छा से उत्पन्न होते हैं देखो जब हमने इच्छा की कि अमुक पदार्थ मुझको मिले और वह नहीं मिले। वही इच्छा लौट कर दुख रूप हो जायेगी जैसे किसी कठोर वस्तु के पत्थर मारने से वह पत्थर वापिस लौटकर मारने वाले के ही लग जाता है। इसी प्रकार जब इच्छा को इच्छित पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होने पर वह इच्छा लौटकर करने वाले के मन में दुख उत्पन्न करती है। वास्तविक मे तो सुख ही है। दुख है ही नहीं और जो सुखों की लालसा ही उन सुखों को दुख बना देती है। जो सुख इच्छा के अनुसार नहीं होता और अपूर्ण होता है। वह भी दुखरूप ही है, और तमाम सुख भी कालान्तर में दुख हो जाते हैं। जो इच्छा है सुख की वह दुख है। जो जीव जितना सुखों की प्राप्ति की इच्छा करता है। उतना ही सहस्र गुणा दुखों को प्राप्त होता है। देखो एक विधवा स्त्री का मैथुन विधवा को मैथुन के सुख की इच्छा हुई और उस इच्छा की पूर्ति में अवश्य उसको सुखानन्द प्राप्त हुआ। परन्तु जब उसको मैथुन रूप सुख से गर्भ स्थिति हो गया तो

वही मैथुन रूप सुख दुख रूपाकार का कारण बनगया और दुख भासने लगा। वास्तविक में देखा जाय तो दुखभी अपने से जुदा वस्तु से होता है। जब कि उस अव्यक्त में एक ही भाव है तो फिर जुदाई के वियुन दुख कैसे हो सकताहै, इस प्रकार अब आप समझ गये होंगे कि कारण अव्यक्त शरीर कैसे गुणवान है, मैं ज्यादा इसकी व्याख्या करता परन्तु ग्रन्थ के बढ जाने की वजह से इतना ही काफी होगा। इसके आगे व्यक्त शरीर की व्याख्या करेंगे।

॥ इति पहिला प्रकरण ॥

प्रकरण दूसरा

व्यक्त शरीर

यह शरीर अध्यात्मक कहलाता है और अव्याकृतादि इसी के नाम हैं। यह अव्याकृत का व्यक्त भाव और रूप है, यह सम्पूर्ण देव, मनुष्य, जंगम, स्थावर आदि को में व्याप्ति रूप से है, और अव्यक्त से उलटे गुणवाला है, जैसे अव्यक्त निरन्द्रिय है तो यह इन्द्रियांवान है। वह निरअग्यव है (याने बिना हाथ पैर अगों के है) तो यह सर्वांग पूर्ण अगों वाला है। वह निराकार है तो यह आकार वाला है। वह अदृश्य है तो यह दृश्यवान है। वह निरगुण है तो यह सगुण है। वह अयोनी है तो यह अयोनी और योनी दोनों है। वह शून्य रूप है तो यह एक रूप है। वह निरविषयवान है तो यह विषयवान है। वह कारण रूप है तो यह कार्य रूप है। वह आन्तर मुख है

तो यह बाहिर मुख है। उसका हरएक हिस्सा इन्द्रियवान है, तो इसके मुख्य अंगों में इन्द्रियां हैं। उसके सम्पूर्ण अंग कुठिन रूप में हैं तो इसका प्रादुर्भाव रूप में है। यह कारण अव्यक्त से सर्व गुणों धर्मों और कार्यों में उलटा गुणवान है। वह आनन्दावस्था सुषोप्ति में है। तो यह विज्ञानवस्था तुरिया में है। वह निरवाणी अवचनीय है तो यह परावाणी चैतन्य प्रज्ञा है। यह अध्यात्मा शरीर आत्मा मय है इस शरीर का वेष्ठन अध्यात्मक पदार्थों से बनता है। यह शरीर चराचर में व्याप्त मान है और सम्पूर्ण कार्य का यही उत्पादक है। और सम्पूर्ण जीवों का यही आत्मा है। इसी से मिलकर जीव जीवात्मा कहलाता है। यही सम्पूर्ण जीवों का जीव क्षेत्र है। जैसे बीज के उपजने में याने व्यक्त करने में क्षेत्र की जरूरत होती है वैसे ही अव्यक्त को व्यक्त होने में आत्मा की जरूरत है। इसी शरीर में शुभाशुभ जैसे २ कर्म सम्पादन किये जाते हैं वैसे ही फलों की प्राप्ति होकर भोग और विषय लेते हैं। सम्पूर्ण योनियों में यही शरीर व्याप्त रूप में समाया हुआ है। बिना इस शरीर के कोई भी योनी का शरीर बन नहीं सकता है। सम्पूर्ण व्यक्त शरीरों का यही आधार है।

व्यष्टि शरीर रचना क्रम।

आत्मा में पहले सम्पूर्ण व्यष्टि भावों का व्यक्त कर्त्ता महत्व प्रगट हुआ वह महत्व जब व्यक्ति भाव को प्राप्त हुआ तब सात्विक, राजस, और तामस ऐसे तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। सात्विक अहंकार से एकादश अधी देवता उत्पन्न हुये। और राजस अहंकार से एकादश इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। और तामस अहंकार से पांच तत्व,

और उनकी तन्मात्रायें उत्पन्न हुईं। अब उनके पृथक २ भावों को वर्णन करेंगे।

प्रथम सात्विक अहंकार से बारह देवता।

(१) ब्रह्मा (२) रुद्र (३) चन्द्रमा (४ मारुत (५) सूर्य (६) वरुण (७) भूमि (८) अग्नि (९) इन्द्र (१०) विष्णु (११) मित्रा (१२) प्रजापति।

अब राजस अहंकार से ग्यारह इन्द्रियां।

(१) कान (२, त्वाच (३) नेत्र (४) जिह्वा (५) नासिका (६) बाणी (७) हाथ (८) उपस्थ (लिंग) (९) गुदा (१०) पांव (११) मन।

अब तामस अहंकार से पंच तत्वों, और पंच तन्मात्रों का वर्णन।

आकाश और आकाश का विषय 'शब्द' वायु, और वायुका विषय 'स्पर्श' अग्नि, और अग्नि का विषय 'रूप' जल और जल का विषय रस, पृथ्वी और पृथ्वी का विषय, गंध। इस प्रकार इस अहंकार के तीन भेद होते हैं।

इसी प्रकार से आत्मा की भी तीन भेदों में विभक्ति होती है। वह आगे वर्णन की जायगी।

(अब इस आत्मा की विभक्ति के भेदों को कहेंगे)

आत्मा के व्यक्त तीन प्रकार के भेद होते हैं। वह इस प्रकार हैं। (१) अध्यात्मिक (२) आदिदेवक (३) आदिभोतिक इस प्रकार इस व्यक्त अव्याकृत तील भेद हुए। यह भेद एक ही आत्मा के हैं जैसे एक ही काष्ठ की बनी हुई तीन

मूर्तियां होती हैं। परन्तु इनके रूप रङ्ग भाव और गुण जुदा जुदा हैं। इसी प्रकार से आत्मा के ये तीन भेद जुदे २ हैं। आदि देवक को ही हिरण्यगर्भ कहते हैं। आदि भतिक को स्थूल विराट कहते हैं। और अध्यात्मा को ही व्यक्त अंगों वाला कहते हैं।

अब इसके तीनों रूपों का वर्णन करेंगे।

संख्या	अध्यात्मिक	आदि देव	आदिभूत
१	वुद्धि	ब्रह्मा	ज्ञान
२	अहंकार	रुद्र	अभिमान
३	मन	चन्द्रमा	मन्तव्य
४	कान	दशा	शब्द
५	त्वचा	वायु	स्पर्श
६	चक्षु	सूर्य	रूप
७	जिह्वा	वरुण	रस
८	नासिका	भूमि	गंध
९	वाणी	अग्नि	भाषण
१०	हस्त	इन्द्री	ग्रहण
११	पांव	विष्णु	गमन
१२	गुदा	मित्रा	मलत्याग
१३	उपस्थ	प्रजापति	आनन्दनीय

इस प्रकार यह ये आत्मा के तीनों रूपों को वता दिया अब हम जो तीन प्रकार के शरीर मानते हैं। उनके विज्ञान का वर्णन करेंगे।

॥ इति दूसरा प्रकरण ॥

प्रकरण तीसरा।

जि—आत्मा को व्यक्त कहने का क्या कारण है। क्या कारण है कि आत्मा को जितेन्द्रिय कहते हैं और आत्मा को क्यों कर्तव्य कहते हैं! और किस कारण अक्रियवान कहते हैं। और किस निमित्त योनी गामी कहते हैं। और विभव कहने का क्या कारण है और आत्मा को साक्षी कहने का क्या कारण है।

उत्तर—व्यक्त को इन्द्रियां कहते हैं। इन्द्रियों में आने से इसको व्यक्त कहने हैं। वशी को जितेन्द्रियां कहते हैं। क्योंकि यह मन को जीत लेती है। इसलिए मन सर्व इन्द्रियों का अधिष्ठान होने से इसको जितेन्द्रियां कहते हैं। मन चेतना रहित है। परन्तु क्रियावान है। इसकी क्रिया चैतन्य पर निर्भर है अर्थात् आत्मा पर आत्मा का मन के साथ में योग होने पर उसकी क्रिया निश्चिष्ट होती है, जिस हेतु से आत्मा चैतन्य वान हैं। इसलिए आत्मा को कर्त्तव्य मानी गई है। मन अचैतन्यवान होने से कर्ता नहीं कहलाता है। यद्यपि वह क्रियावान है, तथापि उसकी क्रिया आत्मा से है परन्तु खुद आत्मा क्रियावान नहीं है। इसलिए आत्मा को अक्रियवान कहते हैं। जीवों के स्वकृत कर्मों के फल देने को यह आत्मा सर्व योनी गामी होती है। यह मन के ओझल पदार्थों को भी देख सकती है, इसलिये ;इसको विभूः कहते हैं। इसको साक्षी कहने का यह अभिप्राय है कि मन जो कुछ कर्त्तव्य करता है। वह आत्मा के सामने करता है! जैसे एक दीपक के प्रकाश में कोई भी कर्म करता है। वह

दीपक के प्रकाश के साक्षीत्व में करता है। और जिस प्रकार हमारी कर्मों की चेष्टा हमारी छाया करती है। छाया हमारे साथ में लगी रहती है। और जैसी चेष्टायह मन करता है। वैसी २ छाप उस छाया में पड़ जाती है। इसी प्रकार हमारी आत्मा को साक्षीत्व मानी गई।

आत्मा के साथ मन का संयोग व सम्बन्ध।

आत्मा के साथ मन का ऐसा संयोग है जैसा द्रव्य के साथ रस का और जिस पिण्ड में मन आत्मा के व्यापक होते ही वह पिण्ड चैतन्य इन्द्रियांवान और क्रिया हो जाता है। और जिस पिण्ड में से यह दोनों जुदा होने से वह पिण्ड अचैतन्य और अक्रियवान हो जाता है। आत्मा और मन का ऐसा सम्बन्ध है कि दोनों साथ में रहते हुए भी ये एक दूसरे को नहीं पहचानते। क्योंकि यह एक दूसरे के पीछे उल्टे समान रूप से समवाय में चिपटे हुये हैं। और एक निमीषण मात्रा में भी जुदे नही होते जैसे हमारी छाया हमेशा हर वक्त हमारे साथमें लगी रहती है। उसी प्रकार से आत्मा मन के पीछे लगी रहती है। यह मन आत्मा को हर वक्त देखता अवश्य है। परन्तु उसको अपनी प्रत्यक्ष हस्ती के सामने झूठी जानता है। वह मन मूर्ख यह मुतलिक नहीं जानता कि मेरा करोबार और मेरी हस्ती का जो कुछ मैं कर रहा हूं। वह आत्मा के ही साक्षी तत्व के प्रकाश में कर रहा हूं। वह खुद मन झूठा अविश्वासी है। इस लिये वह सच्चे को झूठा जानता है। वह अपने आपको भी न जान कर खुद ही अपनी खुदी (आपे) में भूला है। यह अपने आपे के सामने किसी भी दूसरे पदार्थ की हस्ती को स्वीकार

नहीं करता है। वह अपनी हकूमत जो कि उसके ताबे में है उस पर अपना अधिकार का अभिमान जमाये रख कर उसको अपने ताबे से बाहिर नहीं होने देता है। जब कोई भी काम मन की हकूमत की इच्छा के सिवाय दूसरा नजर ही आता 'बल्कि वह अपने क्रोध के बल के मार अनेकानेक अकर्म कर्मों को कर गुजरता है और उससे अपने को ज्यादा ताकतवान समझता है। जब कोई उससे अधिक बलवान होता है और उसका वश नहीं चलता है जब वह गरीब दुखी दीन होकर अपने आपको नीच पापी दरिद्री कम नसीब समझ बैठता है। लेकिन वह अपने से जुदा दूसरी हस्ती को स्वीकार नहीं करता है।

वह आत्मा क्षण भर भी उस मन का पीछा नहीं छोड़ती, वह आत्मा इस मन को जैसे माता पिता पुत्र को स्त्री पति को दुखी देख कर दुखी होती है। बस योंही आत्मा होती है। परन्तु वह आत्मा क्या करे यह मन ऐसा अभिमानी बन जाता है जैसे माता पिता का कुमार्गगामी कपूत बालक हो जाता है। वैसे यह आत्मा से कुमार्गगामी होता है। तो भी जैसे माता पिता अपने पुत्र का स्नेह नहीं त्यागते हैं। इसी प्रकार आत्मा भी मन का स्नेह नहीं त्यागती है। और हर वक्त उसकी भलाई और उन्नति की अभिलाषा में रहती है। जिस प्रकार एक हारा थका बच्चा अपनी मां की गोद में बैठ कर सो जाता है उसी प्रकार से यह अभिमानी मन जब अपने अभिमान की दौड़ धूप में थक जाता है तो उस आत्मा की गोद में जाकर सो जाता है। और बेखबर हो जाता है और जगने पर उसको झूठी मान बैठता है। इसी प्रकार यह

मन आत्मा को इसी प्रकार झूठ मान बैठता है। और झूठ को सत्य मान बैठता है।

सम्पूर्ण अध्यात्मक व आदि देविक व आदि भौतिक आदि भाव और ये जो कुछ हैं वह सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ आत्मा में समाये हुये हैं। जैसे एक चित्रकार के मन में अनेकों चित्रों की आकृति और भाव समाये हुये हैं। वैसे ही आत्मा में ये सब भाव समाये हुये हैं। मन को आत्मा यह भी अधि· कार देती है कि त्वचा है। जिस भाव को ले वही भाव मन के सामने इच्छानुसार आत्मा हाज़िर करती है। परन्तु यह मन ऐसा अवोध अविवेक वान है कि उसको आत्मा और आत्मा के भावों की खबर मुतलिक नहीं है। परन्तु आत्मा मन से कुछ भी छुपी वस्तु नहीं रखती है। परन्तु मन उस के पास के करामात के अटूट खज़ाने से वाक़िफ नहीं है। जैसे माता पिता अपने पुत्र से कभी छुपा नही रखते कि जो कुछ भी उनके पास में है परन्तु वह पुत्र माता पिता से विमुख होकर कभी भी उनसे मिलना तो दूर रहा कभी उनकी तरफ आंख उठाकर देखता भी नहीं। तो भी माता पिता अपने पुत्रको भलाई और शिक्षा देते रहते हैं। परंतु मन जो कि अज्ञान और अपनी चञ्चलता से उस शिक्षा को ग्रहण नहीं करता। वे उसके पास की चिन्तामणि और अणिमादि सिद्धियों के खजाने को नहीं जानता। वह ढफोर शंख की भांति अभिमान ममहत्वमें ही भूला फिरता है। आत्मा के पास में जो कल्प वृक्ष और चिन्तामणि और देवी आदि जो कुछ सम्पदा है वह आत्मा मन को देने के लिये हर वक्त तैयार है। परन्तु मन लेवे नहीं तो आत्मा का क्या कसूर है। जहां

तक मन आत्मा से अधोमुख है वहाँ तक वह दु खी दरिद्री पापी आदि और पशु पक्षियों आदि त्रियक योनियों में जाता है। और ऐसी पवित्र सर्व गुणों और सिद्धियों की खान मोक्ष मूला को भी अपने साथ नीच योनियों में लिये रहता है। और वह सर्व सुख अपने पास लिये मन की हाजिरी में खड़ी रहती है। ऐसी दशा में भी मन आत्मा से अपरिचित, अनभिज्ञ बना रहता है। वहीं तक दुःखों के दल दल और अनिष्ट कर्मों में फंसा रहता है। जहां यह मन आत्मा के सन्मुख होते ही उसको पहिचान कर परम सुख, रूप परमानन्द में प्राप्त हो जाता है।

आत्मा मन से मन इन्द्रियों से इन्द्रियां पदार्थों से संयोग करती हैं। यह रुद्री के प्रथमाध्याय मन्त्र पांच में भी बताया गया है।

॥ इति तीसरा प्रकरण ॥

प्रकरण चौथा।

अब हम ३ प्रकार के शरीरों का विज्ञान को वर्णन करेंगे।

(१) कारण (२) सूक्ष्म (३) स्थूल, इनके दो रूपों सहित व्यष्टि व समष्टि का वर्णन करेंगे। समष्टि का अर्थ है समुदाय और व्यष्टि का अर्थ भिन्न २ है। जैसे जाति वाचक और व्यक्ति वाचक बहुवचन और एक वचन।

कारण शरी		
समष्टिरूप	यह अव्याकृत है	व्यष्टिरूप
चैतन्य ईश्वर		चैतन्य प्रज्ञा
कोष आनन्दमय		कोष विज्ञानमय
अवस्था सुपोप्ति		अवस्था तुरिया

सूक्ष्म शरीर		
समष्टि रूप	अपंचीकृत भूतों के सतरा तत्वों का सूक्ष्म देह है पांच प्रकार की प्रकृति इस के धर्म है।	व्यष्टि रूप
चैतन्य हिरण्य गर्भ सूत्रात्मा		चैतन्य तेजस्य
कोष आनन्दमय		कोष मनोमय
अवस्था सुषोप्ति		अवस्था स्वप्न

	स्थूल शरीर	
समष्टि रूप		व्यष्टि रूप
चैतन्य वैश्वानर		चैतन्य अहंकार मय पुरुष
कोष प्राणमय		कोष अन्नमय
अवस्था सुषोप्ति		अवस्था जागृत

इस प्रकार इन तीन शरीरों का भिन्न २ वर्णन किया गया है। और प्रत्येक शरीर का चैतन्य और कोष और अवस्थाओं का भी भिन्न २ वर्णन कर दिया गया है। और समष्टि व्यष्टि का भी वर्णन करके उनके भी चैतन्य कोष अवस्थादिकों का विस्तार पूर्वक चित्र (नकशा) बना करके दिखा दिया गया है। जिससे आप स्वयं विज्ञान पूर्वक समझ सकेंगे। अधिक विस्तार से बताने पर ग्रंथ प्राय: दीर्घ सूत्र हो जाता है। इस लिये संक्षिप्त में वर्णन कर दिया गया है। अब स्थूल सूक्ष्म प्रकार के शरीरों का वर्णन करेंगे। जिनमें कारण और आत्मा का वर्णन तो हो गया है और जो शेष हैं उनका वर्णन करेंगे।

॥ इति चौथा प्रकरण ॥

प्रकरण पांचवां

स्थुल ।

यह स्थूल पंच महा भूतों के पंचिकृत पचिस तत्वों का समुदाय रूप है वह इस प्रकार है:—

आकाश के पंचिकृत -		काम, क्रोध, शोक, मोह, भय ।
वायु के	,,	चलन, वलन, धावन, प्रसारण, आकुंचन
अग्नि के	,,	क्षुधा, तृष्णा, आलस्य, निद्रा, कांति ।
जल के	,,	शुक्र, वीर्य, शोणित, लाल, मूत्र, स्वेद
पृथ्वी के	,,	हाड, मास, नाड़ी, त्वचा, रोम ।

इस प्रकार एक भूत की पांच तत्वों की पचिस २ प्रकृतियां हुई इन्ही पचिस के समुदाय का नाम स्थूल शरीर है ।

अब इस के धर्मों को कहते हैं ।

नाम, जति, आश्रम, वर्ण, सम्बन्ध, परिणाम, प्रमाण इत्यादि इस के धर्म हैं ।

अब सूक्ष्म को कहते हैं ।

सुक्ष्म शरीर भूतों की प्रकृतियों से बना हुवा नहीं है वह इन भूतों के सत्वों के गुणों के द्वारा बना हुवा १७ सत्वों का समुदाय रूप है । गुण जब भूतों में व्याप्तमान होते हैं तब

उन भूतों में से सत्व भाग प्रकट हो जाता है और उन्हीं सत्वा असां का यह सूक्ष्म शरीर है वह इस प्रकार है:—

(१) आकाश में जव सतों गुण मिलता है तब उसका सत्व भाग श्रोत्र है। आकाश में जव, रजो गुण मिलता है तब उसका सत्व भाग वाक है। श्रोत्र इन्द्रियां शब्द सुनता है। और वाक इन्द्रियां शब्द वोलता है। श्रोत्र ज्ञान इंद्रियां कहलाता है। और वाक कर्म इन्द्रियां कहलाता है और इन दोनों की परस्पर मित्रता है।

(२) वायु में जब सतों गुण मिलता है तब उसका सत्व भाग त्वचा है। और वायु में जब रजो गुण मिलता है तब उसका सत्व भाग पाणि है। त्वचा इन्द्रियां स्पर्श को ग्रहण करता है। और हस्त इन्द्रियां स्पर्श का निर्वाह करे है। त्वचा ज्ञानेन्द्रियां हैं। और हस्त कर्मेन्द्रियां है। इन दोनों की आपस में मित्रता है।

(३) अग्नि में जब सतो गुण मिलता है तब उसका सत्व भाग चक्षु है। और अग्नि में जब रजो गुण मिलता है तब उसका सत्व भाग पाद है। चक्षु रूप को ग्रहण करते हैं और पांव वांह गमन करते हैं चक्षु ज्ञानेन्द्रिय है और पांव कर्मेन्द्रिय है। इन दोनों की आपस में मित्रता है।

(४) जल में जब सतो गुण मिलता है। तब उसका सत्व भाग जिव्हा है। जल में जब रजो गुण मिलता है। तब उसका सत्व भाग उपस्थ है जिव्हा रस को ग्रहण करती है। और उपस्थ रस का त्याग करती है। जिव्हा ज्ञानेन्द्रिय है। और उपस्थ कर्मेन्द्रिय है। इन दोनों में मित्रता है।

(५) पृथ्वी में जब सतो गुण मिलता है। तब उसका सत्व भाग घ्राण है। पृथ्वी में जब रजो गुण मिलता है। तब उसका सत्व भाग गुदा है। घ्राण गंध का ग्रहण करे है। और गुदा गंध का त्याग करती है। घ्राण ज्ञानेन्द्रिय है। और गुदा कर्मेन्द्रिय है। इन दोनों की मित्रता है।

इस प्रकार जब गुण इन भूतों के साथ मिलते हैं। तब इन भूतों के सत्व छूट कर पृथक सत्वाअश इन्द्रियां प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार केवल रजो गुण के भूतों से मिलने से पांच प्राण प्रकट हुवे हैं। जिनका वर्णन प्राणों में हो गया है। इसी प्रकार केवल सत्व गुण के सत्वा अंशो से मन और बुद्धि प्रकट हुई है। इस प्रकार यह १७ सत्व अपचिकृत कहलाते हैं। अर्थात् एक एक भूत और एक एक गुण पृथक २ मिलकर बने हैं। और स्थूल से यह तत्व पांच ही मिलकर मिश्रण रूप से २५ तत्व बने हैं। इस प्रकार यह दोनों स्थूल सुक्ष्म बताया गया है। और कारण का वर्णन पहले कर दिया गया है।

॥ इति पांचवां प्रकरण ॥

प्रकरण छठा।

हिरण्य गर्भ।

अव्यक्त-और व्यक्त दोनों के होते हुये भी विना हिरण्य गर्भ के ये शरीर कार्य और क्रियावान नहीं हो सकते हैं। उदा हरणार्थ जैसे एक घड़ी के अथवा और किसी यन्त्र के

पुर्जे तो हैं परन्तु वह पुर्जे यदि अपने २ निज स्थान पर न लगा कर जोड़े जांय। तब तक वह यन्त्र कोई क्रिया अथवा कार्य नहीं कर सकता है। इसी प्रकार अव्यक्त और व्यक्त के अध्यात्मक आधीदेव आधीभूत कल पुर्जे हैं। तो भी उन पुर्जों को जोड़ने वाले हिरण्य गर्भ की आवश्यकता रहती है। इसलिए क्या अध्यात्मा' क्या अधीदैविक क्या अधिभौतिक आदि सभी सामग्री के उपस्थित होते हुये भी हिरण्य गर्भ की जरूरत है। क्योंकि इस व्यक्त को सामग्री को यथा स्थान यथा प्रयोजन पर लगाने की जरूरत है। और यह हिरण्य गर्भ इन आत्मिक सामग्री को यथा स्थान यथा प्रयोजन पर लगा कर उन पुर्जों को जोड़ कर स्वरूपवान कर उसको कार्य और क्रियावान बना देता है। सम्पूर्ण गर्भ क्या देवक क्या अध्यात्मक क्या अधिभौतिक सबको यही हिरण्य गर्भ मय से प्रगट स्वरूप प्राप्त होता है। सम्पूर्ण जीवों का आदि गर्भ यही है। यह गर्भ बिना माता और बिना पिता के बना हुआ है। और सूक्ष्म स्थूल का सृष्टि कारण रूप है। प्रत्येक जीव अपने वासना के अनुसार इसी गर्भ में प्रविष्ट होकर अपने वासना स्वरूप को प्राप्त होता है। क्या अण्डज, क्या उद्भिज, क्या स्वेदज, क्या जरायुज इन चारों खानियों में जो मूल प्रकृति (वासना) है। उनमें यही हिरण्यगर्भ समाया हुआ है। और अपनी २ खानी के वासना के माफिक उनको यह गर्भ मिलता है। ऐसा यह हिरण्य मय गर्भ है। प्रत्येक जीव अपनी मूल प्रकृति इसी गर्भ में से प्राप्त करता है। और प्रत्येक जीव इसी गर्भ में से अपनी वासनुसार सृष्टि को उत्पन्न करता है। प्रत्येक जीव सृष्टि क्या देविक सृष्टि आदि का कोई भी जीव अपनी सृष्टि इसी गर्भ में से कल्पित करता है। और

उस कल्पित की हुई जीव की सृष्टि को स्वरूप की प्राप्ति इसी गर्भ में से उत्पन्न होती है। यदि यह गर्भ न हो तो कोई भी जीव अपनी सृष्टि रचना रच ही नहीं सकता है। इसलिये ऐसे गर्भ को बारम्बार प्रणाम है कि जो अज्ञ, अजन्मा इसी से जन्म लेता है; यही हिरण्यगर्भ है। यही उसका गर्भ है। अब हम इसके रचना क्रम के स्वरूप का वर्णन करेंगे।

॥ इति छठा प्रकरण ॥

प्रकरण सातवां।

हिरण्यगर्भ की रचना क्रम।

प्रथम इस गर्भ में मुख उत्पन्न हुआ। और उस मुख में वाणी अध्यात्मा और अग्नि आदि देवता और भाषण अधिभूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के तालु उत्पन्न हुआ और उस तालु में जिह्वा अध्यात्मा और वरुण आदि देवता और रस अधिभूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के नाक उत्पन्न हुआ और उस नाक में नासिका छिद्र अध्यात्म और अश्वनि कुमार आदि देवता और गन्ध अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के नेत्र उत्पन्न हुये और उस नेत्र में चक्षु अध्यात्मा और सूर्य अधि देवता और रूप अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के चर्म उत्पन्न हुये। उसमें त्वचा अध्यात्मा और मारुत (वायु) अधि देवता और स्पर्श अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के लिंग उत्पन्न हुआ। उसमें उपस्थ अध्यात्मा और प्रजा पति आदि देवता और आनन्दनीय अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ में गुदा उत्पन्न हुई।

उस में वायु अध्यात्मा और मित्र अधि देवता और मल त्याग अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के दो हाथ उत्पन्न हुये उसमें हस्त अध्यात्मा और इन्द्र आदि देवता और 'ग्रहण त्याग अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के दो पांव उत्पन्न हुये। उसमें पाद अध्यात्मा और बिष्णु आदि देवता और गमन अधि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ में मस्तिष्क मण्डल उत्पन्न हुआ और उसमें बुद्धि अध्यात्मा और ब्रह्मा अधि देवता और ज्ञान अधि भूत उत्पन्न हुये। फिर इस गर्भ में हृदय उत्पन्न हुआ उसमें मन अध्यात्मा और चन्द्रादि देवता और मन्तव्य अधि भूत (संकल्प, विकल्प) प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ में अन्त करण उत्पन्न हुआ। उसमें ममत्व रूप अहंकार अध्यात्मा और रुद्र आदि देवता और अभिमान आदि भूत प्रवेश हुये। फिर इस गर्भ के अन्तः करण में सन्वचित्त प्रगट हुआ। तब उसमें चैतन्य चित्त वृतियां प्रगट हुई उनको हम यहां संक्षिप्त में लिखते हैं।

संज्ञा नामा ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनिशां, जूति स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु, काम, वश इत्यादि वृतियां प्रगट होती हैं। संज्ञा नाम जान पहिचान का है। यह प्रत्येक जीव नाम में होती है। जिस पिण्ड में यह खुलती तब इसका नाम जीव होता है! क्यों कि जो कुछ जानकारी रखता है। वह जीव संज्ञा नाम कहलाता है। विज्ञान नाम उस जानकारी का है जो शिक्षा से बुद्धि रूप में प्राप्ति होती है। और इसी के कारण जीव बुद्धि मान कहलाता है।

प्रज्ञान नाम सद्विचारों का है। यह प्रत्येक जीव के कर्म फलों को बिना नियम परिणाम को जान जाता है। इसी को

देव वाणी भी कहते हैं। जैसे, क्यों कि यह प्रथम उन ऋषी मुनियों में प्रगट हुई थी। जो सृष्टि के आरम्भ में वेदों के ज्ञान को प्रचलित करने के लिये उत्पन्न होती है। इस प्रज्ञान के कारण ही यह जीव वेदोंके चलाने वाला और उनको जानने वाला कहलाता है।

जो सीखी हुई वस्तु को ग्रहण करती है। और उसकी रक्षा करती है! उसका नाम मेधा है।

जो इन्द्रियां से जानी हुई वस्तु को जान ने वाली को दृष्टि कहते हैं। धृति का वर्णन पहिले कर दिया गया है।

विचार करने वाली वृति का नाम मति है। स्वतंत्र वृति का नाम मनीषा है।

जो प्राप्त हुये विषय को न भूलने का नाम स्मृति है।

जो आकृति के स्वरूप में प्रवृति होता है वह संकल्प है।

ऋतु विश्वास का नाम है जो एक बात पर पक्का दृढता प्राप्त कर लेवे।

असु जिसके द्वारा जीवन व्यापार चलता है। वह प्राण वृति है। और प्राणों को ही असु कहते हैं।

काम नाम उसका है जो अनउपस्थित वस्तु की ओर ध्यान दिलाता है, इसी को तृष्णा भी कहते हैं।

जिस किसी वस्तु के प्राप्त करने की लगन लगती है उसी को वश कहते हैं। और जिसको प्राप्त कर उस पर अपना अधिपत्य जमाने को वशी कहते हैं।

रोगादि और दुखादि व्याधियों को अपने में जानने ही को जूति कहते । इस प्रकार और भी अनेक चित्त वृतियां अन्तः करण में उत्पन्न होती हैं। जिनका पूरा जानना महा-कठिन है। कई विद्वानों ने इस पर कई ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख डाले हैं। अब हम पूर्व के विषय पर आते हैं।

क्या अव्यक्त क्या व्यक्त और क्या अध्यात्मक क्या अधिदेविक क्या अधिभौतिक इन सब सामग्रियों को जोड़ने वाले हिरण्य गर्भ इन सब के होते हुये भी प्राण के बिना वह तमाम शरीर निष्क्रयमान है। जिस प्रकार घड़ी के पुर्जे घड़ी में जुड़ जाने पर भी बिना चाबी दिये वह पुर्जे कोई हरकत अथवा क्रिया नहीं करते हैं। इसी प्रकार यह बिना प्राण के यह तमाम शरीर वन्द अचेत अक्रियामान सुपोप्ति अवस्था में पड़े रहते हैं। इसी लिये इन में क्रिया करने वाला एक प्राण शरीर है। उसकी अब हम क्रिया और ज्ञान को बतावेंगे।

॥ इति प्रकरण सातवां ॥

प्रकरण आठवां

प्राण शरीर की रचना ।

प्राणों का बहुत कुछ वर्णन व्यष्टिपुरुष और प्रमाणुं के सर्ग में कर दिया गया है। अब हम प्रणों के शरीर सम्बन्धी प्राणों का विज्ञान बतावेंगे। प्राण शरीर के दो रूप हैं। एक समष्टि दूसरा व्यष्टि। प्रथम व्यष्टि का वर्णन करते हैं व्यष्टि के तीन भाग हैं। जिस प्रकार आत्मा को तीन भागो में विभक्ति हुई

है। उसी प्रकार प्राणों के भी तीन विभाग में विभक्ति होकर उन अध्यात्मा, अधिदेव, अधिभूत ये तीनों में प्राण भी इनके अन्दर तीन भाग बन कर इनमें प्रवेश हो गया है। इस लिये प्राण के भी तीन स्वरूप तीन क्रियाओं में विभाजित है। उनका वर्णन हम करते हैं।

प्रथम अध्यात्म प्राणों के विभक्ति के कर्म को कहते हैं।

अध्यात्मा प्राण दो प्रकार से शरीर में विभक्त हैं। एक इन्द्रियों में निस्पन्दन और दूसरा शरीर में स्पन्दन है।

प्रथम इंद्रिय जनित प्राणों को कहते हैं। मुख और नासिका में प्राण हैं। गुदा में अपान है। और धमनियों और स्नायुओं और त्वचा स्पर्श में व्यान है। वाणी और कंठ मुख में उदान है। आमाशय और पकाशय ये सामान हैं। यह निस्पन्दन प्राण हुआ।

अब स्पन्दन प्राणों का शरीर में पांच प्रकार का है उसको बतावेंगे।

प्रथम स्पन्दन फड़कना, हिलना, डुलना, गति, प्रगति करना ये प्रस्पन्दन हुआ। दूसरा उद्वहन ऊपर को उछलना ऊपर की क्रियाओं को करना पलकों को खोलना, मींचना इत्यादि। तीसरा पूर्ण यह अहारादि से आमाशयादिकों को भरना। विरेचक याने मल मूत्रादिकों को छांट २ कर निकालना। धारण, अहार आदिक और धातु मल आदिक

और इन्द्रियों के वेगों को रोकना इत्यादि धारण के कर्म हैं। इस प्रकार ये शारीरिक प्राण हुआ।

अब इसकी क्रिया को कहेंगे।

खींचना, निकालना, पचाना, बनाना और रोकना ये इनकी पांच प्रक्रिया हैं। उदान बनाता है, समान पचाता है, व्यान रोकता है, अपान निकालता है, प्राण खींचता है।

देखो जब हम मुख में ग्रास खाते हैं, तब प्राण इसको अन्दर खींच कर निगल जाता है। और उस निगले हुये आहार को व्यान आमाशय में रोकता है। और समान इस को पचाता है। अपान उसको पतला कर छांट कर याने सार असार बना कर बाहिर फेंकता है। उदान इस सार को निचोड़ कर स्थूल रूप में शुक्र शोणित आदि धातु बना देता है। और प्रत्येक अंगों के स्वरूपकार में करके शरीर और इन्द्रियों के तद् स्वरूप कर देता है।

प्राणों के शारीरिक कर्म।

देखो हम क्षण २ में श्वास लेते हैं। उन श्वासों को भीतर खींचने वाला प्राण और बाहिर निकालने वाला अपान। जब खींचा हुआ प्राण अन्दर रुकता है। वह रोकने वाला व्यान और उस रोके हुये को साफ कर पचाने वाला समान।

इस प्रकार जब हमारा हृदय खुलता है। जब अपान कार्य करता है। और जब वह मिलता है तब प्राण कर्म करता है। जबवह हृदय न खुलता न वन्द होता है। सिसति

स्थापक में व्यान कर्म करता है। यह कार्य वजन के उठाने जो हृदय के गति को सामान रूप से प्रचलित रखे उसको सामान कर्म कहते हैं। क्यों कि हृदय के गति रुधिर आदि को यही पाचक करके उसकी गति को अवकाश देता है। और हृदय के तदस्वरूप की क्षय वृद्धि करने वाला और तमाप शरीर को भी धारण पोषण करने वाला उदान के कर्म हैं। इस प्रकार यह अध्यात्म प्राण सम्पूर्ण अध्यात्मा में व्यापक होकर उनके गुणों को और इद्रियों को क्रियामान करता है। यह मैंने अध्यात्म प्राण का संक्षिप्त वर्णन किया है। अब हम अधिभौवतिक प्राणों का वर्णन करेंगे।

॥ इति प्रकरण आठवां ॥

प्रकरण नवमां

अधिभौतिक प्राण।

यह अदिभवतिक प्राण यह पंच भूतों में व्यापक है। आदिभवतिक प्राण के मुख्य स्थान सूर्य मण्डल है। क्यों कि इस सौर जगत का मुख्य केन्द्र ये ही सूर्य है। सब भवतिक पदार्थ इसकी ही आकर्षण शक्ति से अपनी २ धुरी पर चक्कर खाते हैं। पहिला प्राण प्राण-सूर्य है। जब यह आंख पर पड़ता है। तब नैत्रों को भवतिक पदार्थों के रूप देखने की सिद्धि प्राप्त होती है। यही पहला भौतिक महा प्राण हुआ। दूसरा महा अपान है वह पृथ्वी है। यही पार्थिव शरीर को सूर्य की ओर खिंच जाने से रोकती है। और अपनी तरफ आकर्षण करती है। इसी भौतिक अपान में अध्यात्मिक

अपान इसी प्रकार सहायता पाता है। जैसे एक तम्बू की चोब को चारों तरफ की डोरियों से खेंचकर खड़ा रखता है। और वायु के झोके से गिरने से बचाता है। इससे साफ प्रगट होता है कि पृथ्वी हम को चारों तरफ से बराबर खींचती है। इसी भौवतिक अपान (पृथ्वी) के सम्बन्ध से अध्यात्म अपान इस पर ठहरने का केन्द्र बना रखा है। और हम भी इसी केन्द्र में ठहर कर पृथ्वी पर चलते फिरते हैं। पृथ्वी और सूर्य के मध्यस्थ का पोला भाग खाली दिखाई देता है। वह भौवतिक समान प्राण है। क्यों कि हर एक वस्तु का पकाव इसी स्थान में होता है। इस पोले भाग में जो वायु चलता है जो हमको प्रत्यक्ष भासता है। वह व्यान भौवतिक प्राण है। येही हर एक पदार्थ की रोक स्तम्भता है। सूर्य से जो ताप है वही भौवतिक उदान है। क्यों कि प्रत्येक वस्तु का घटना बढना ताप से होता है। और यही ताप अधिभौवतिक उदान है। यह भौवतिक प्राण हुये।

यह सूर्य वास्तव में बाहिर का प्राण है। और नेत्रों पर प्रगट होता हुआ यही रूप को प्रगट करता है। पृथ्वी जो बाहिर का अपान है यही सब पार्थिव शरीरों का आधार है। यह जो मध्यस्थ आकाश है वही समान है। यह जो प्रगट में वायु चलता है। बाहिर का यही व्यान है। यह जो सूर्य से निकला हुआ तेज ताप है। वही बाहिर का उदान है। इस प्रकार यह पंच भौवतिक प्राण हुआ। इस भौवतिक प्राण का वर्णन सक्षिप्त में बता दिया है। अब हम अधिदेविक प्राण का वर्णन करेंगे।

॥ इति प्रकरण नवमां ॥

प्रकरण दसवां

अधिदैविक प्राण पिण्ड ।

प्राण पिण्डों के दो रूप हैं एक समष्टि और दूसरा व्यष्टि व्यष्टि प्राण पिण्डों के तीन रूप हैं। पहिला अध्यात्मक दूसरा अधिभौतिक तीसरा आधिदैविक, जिसमें से अध्यात्मक और आधिदैविक का वर्णन पअले करचुके हैं। अब अधिदैविक प्राण के संक्षिप्त स्वरूपों को कहेंगे।

यह सकल पदार्थ क्या सूक्ष्म क्या स्थूल असख्यात है। और उनके प्राण भी असंख्यात हैं। परन्तु मुख्य प्राणों के समष्टि और व्यष्टि ये दो ही रूप हैं इस लिये जो समष्टि रूप पदर्थों के जिन प्राणेश्वर की उच्च कोटि की मिलित शक्तियां हैं। उनको ही अधिदैविक गण कहते हैं। और व्यष्टि रूप के पृथक २ पदार्थों के जिनके प्राण एक २ व्यक्तिगत हैं। उन को ही एक २ देवता के नाम से बोलते हैं। यही व्यक्तिगत देवता है। प्रत्येक व्यक्ति के साथ उत्पन्न होने वाले असख्यों विश्वदेव कहलाते हैं।

यद्यपि समष्टि के भी देवगण असख्यात हैं, तथापि विश्वदेव विद्या में जो कुछ गिनती आती है। और उनमें भी जो अधिकारी हैं। उनकी संख्या ३३ मानी है। जिनमें आठ वसु हैं। और ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य एक इन्द्र एक प्रजापति ये ३३ अधिकारी देवता हैं।

वसु देवता ।

वसु देवताओं में पृथ्वी, अग्नि, पवन, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र ये तमाम वसु कहलाते हैं। वसुओं का अर्थ होता है आवादी याने वस्ती। क्यों कि इनमें प्रजायें वसता हैं। इस लिये इनका नाम वसु हुआ। ये जो पंच भूत हैं इनमें प्राणों के अंश से तत्व निकल निकल कर इकट्ठे हो हो कर प्रत्येक प्राणी का प्राण कोप (पिण्ड) वनाते हैं। और वह पिण्ड एक हुकूमत का हल्का माना जाता है। और हम इन हल्कों जिलों में तव तक आवाद् रहते हैं कि जब तक हमारे प्रारब्ध कर्म के फल के भोग समाप्त नहीं हो जाते। वहां तक हम उन्हीं पिण्डों में रहते हैं।

जिस प्रकार एक मिस्तरी कारीगर जैसे लकड़ी लोहा पत्थर, ईंटें, गारा, चूना, वगैरह मिलाकर एक हवेली अथवा वंगला तयार करता है। और हम उसमें निवास करते हैं। यह हवेली हमारी आवादी कहलाती है। उसी प्रकार ये देवता प्राणों के जरिये हमारे वसु कहलाते हैं। जो २ प्राणी जिस वसु की वस्ती में वसता है। वही वसु उसके लिये घर (पिण्ड) शरीर वना डालता है और उन प्रजाओं को अपने अन्दर वसाता है। जैसे पार्थिव शरीर वालों के लिये पृथ्वी और वाविय शरीर वालों के लिये वायु, इसी प्रकार से ये अपने २ लोकों के प्रजाओं के लिये उनके पिण्ड (शरीर) वनाते हैं। और उनको अपने ही लोकों में वसने का स्थान और आराम के लिये भी सव कुछ सामग्री देते हैं। इन्हीं वसु देवताओं के हम कृतज्ञ और आभारी हैं। ये ही हमारा

पालन पोषण करते हैं। जैसे एक प्रजा अभिलाषी राजा अपनी प्रजा को वसाने के लिये और उनकी रक्षा पालन पोषण करने के लिये कितना हित करता है. उतना ही ये वसु अपनी प्रजा के लिये करते हैं।

देखो बाल्यावस्था में हमारी माता के द्वारा हमारा पालन पोषण होता है। हम उसके स्थन चूसते है और उसकी गोद में मल मूत्र करते हैं। और उसकी ही बगल में सोते है। इसी प्रकार हम इस पृथ्वी के बालक पृथ्वी पर ही मल मूत्र करते हैं। और उसका ही अन्न फलादि खाते हैं। उस पर ही चलते फिरते हैं। उस पर ही आराम करते हैं। देखो माता तो हमारे से कभी रुष्ट हो जाती है। परन्तु ये पृथ्वी तो हम पर माता से भी अधिक हित करने वाली देवता है। और हमारे किसी भी भले याबुरे काम से रुष्ट नहीं होती: बल्कि माता से भी अधिक हमारे ऊपर मातृ-स्नेह की छाप डालते हुये हमारे अपराधों को क्षमा करती है। इस प्रकार ये हमारे वसु देवता हमारे ऊपर उपकार करते हैं। और प्रत्येक कर्मों की चेष्टा में हमारे साथ रहने हुये हमारे कर्म फलों को हमारी इच्छाओं के अनुसार भोग तैयार करते हैं।

रुद्र देवता।

इन वसुओं में वसने वाले ग्यारह रुद्र देवता हैं। उनमे पांच तो हमारी ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं। जो चेष्टा की आधार है। और एक मन जो सोचता समझता है। ये ग्यारह रुद्र देवता है। ये सब देवता प्रत्येक पिण्डों में कर्म भोग के लिये इकट्ठे होते है और ये इस पुरुष के सेवक हैं।

जिस प्रकार राजा के राज भोग के लिये सेवक इकट्ठे होते हैं। वैसे ही ये भोग के साधन भोग रूप हैं। और पुरुष जो कि इनसे जुदा है। वह भोगकता है। जब तक कि हमारे कर्म फल भोग समाप्त नहीं होते, तब तक ये हमारे पिण्ड में भोग देते है। और जब हमारे भोग समाप्त हो जाते हैं। तब ये रुद्र देवता चले जाते हैं। इसी के कारण हमारे सम्बन्धियों को रुलाते हैं। इसी से इनका नाम रुद्र देवता है।

आदित्य देवता।

चैत्र से लेकर फाल्गुन तक के जो बारह महीनों के बारह आदित्य देवता हैं। यह बारह आदित्य माला बारम्बार घूम रही है। और हमको यही परिणाम की प्राप्ति को कराते हैं। येही प्रत्येक पिण्डों के कर्मों के भोग देने और उनकी समाप्ति करने की चेष्टा करते रहते हैं। इन्हीं के परिवर्तन परिणाम के आवागमन के कारण नियमित समय पर हमारे किये हुये कर्म फलों के भोग देने के लिये परिवर्तन की बाट देखा करते हैं। और जो तीनों काल हैं वह आदित्यों की धर्म तुला है। जैसे वायु देवता तो परिवर्तन होते हुये हमारे भोग रूप का बंगला बनाते है। और रुद्र देवता भोग के साधन रूप के जरिये टहलुए हैं। उस बगले में इकठ्ठे होते हैं। जिस प्रकार एक राजा के नौकर राजा के भोग के लिये हाजिर रहते हैं। और ये आदित्य जो हैं वह बाल्यावस्था से युवावस्था और युवा से वृद्धावस्था को परिणाम तक पहुंचा देते हैं। भूत भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल का जो परिणाम है। वह भी इन आदित्यों का ही परक्रिया है। परन्तु ये तीनों काल यदि देखा जाय तो वर्तमान ही है। क्यों कि जो

वर्तमान ही है। विना वर्तमान के भूत और भविष्य दोनों ही की सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे भूत है वह वर्तमान के हुये विना भूत हो नहीं सकता। और जो भविष्य है वह वर्तमान अवश्य होगा। इस न्याय से वर्तमान के बिदुन न तो भूत ही हो सकता है न भविष्य ही हो सकता है। जो क्षण २ में वर्तने वाला है वही धर्म तुला (तराजू) है। जैसे भूत और भविष्य दोनों काटे के पलड़े हैं और वर्तमान बीच का कांटा है। इस प्रकार ये आदित्य हमारे कर्मों की रक्षा वर्ताव और समाप्ति के लिये एक न्याय की तराजू (मीजने-अद्ल) है। इस कारण ही इनको आदित्य कहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार एक तराजू वस्तु को तोल नाम कर देती है। इसी प्रकार से ये वारह आदित्य देवता नियमानुसार हमारे भोगों को नाप तोल करके हमको उचित परिणाम से देते हैं और लेते हैं। जो देता है और लेता है उसी का नाम वेद में आदित्य है। और यही ईश्वरीय न्यायालय की तराजू है।

आदित्य माला के घूमने से राशि माला घूमती है और राशि माला के घूमने से नक्षत्र माला घूमती। और नक्षत्र माला के घूमने से ऋतुओं की सिद्धि होती है। वारह आदित्यों की वारह राशि माला हैं जो कि मेष से मीन तक हैं। और सत्ताईस नक्षत्र माला के घूमने से तिथि, महीना, पक्ष, ऋतुओं की सिद्धि होती है। और सम्वत्सर वन जाता है।

सम्वत्सर।

वारह आदित्यों की राशि माला घूम कर अपने सुमेर पर जाने से एक सम्वत्सर होता है। और एक सम्वत्सर में दो अयन होते हैं। जो उत्तरायन और दक्षिणायन के नाम

से कहे जाते है। इनमें रात्रि और दिन का घटाव बढ़ाव होता है। मकर की राशि की संक्रान्ति में रात सब से बड़ी और दिन सब से छोटा होता है। और कर्क की संक्रान्ति में दिन सब से बड़ा और रात सब से छोटी होती है। मेष और तुला की संक्रान्ति में दिन और रात्रि का परिणाम बराबर होता है। नक्षत्रों की माला की गति चन्द्रमा की गति के अनुसार घूम कर तिथि पक्ष और ऋतु को बनाता है। चतुर्दशी अमावस्या और प्रतिपदा को चन्द्रमा सूर्य की एक राशि पर रहता है।

जिन तिथियों में चन्द्रमा पृथ्वी के नीचे की ओर से सूर्य का प्रकाश लेता है। और अपनी कलाओं को बढ़ाता है। उन तिथियों के पक्ष का नाम शुक्ल पक्ष कहलाता है। और जब चन्द्रमा पृथ्वी के ऊपर की ओर से सूर्य के प्रकाश को ग्रहण करता है। उन तिथियों के पक्ष का नाम कृष्ण पक्ष कहलाता है। इन दोनों पक्षों का क्रम से देवताओं का पितरों का दिन कहलाता है। इन्हीं दोनों पक्षों के मिलान को चन्द्र मास कहते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक सूर्य के साथ एक २ राशि चक्र घूम रहा है। इसी प्रकार एक २ राशि चक्र के साथ सवा दो २ नक्षत्र चक्र घूम रहे है। इन नक्षत्र चक्रों का नाम शिशुमार चक्र है। ज्योतिष शास्त्रों में इसका पूरा वर्णन है। यहां केवल संक्षिप्त परिचय के लिये लिख दिया है; विस्तार पूर्वक लिखने से ग्रन्थ बढ़ जाता है। इस शिशुमार चक्र में सब ग्रह और नक्षत्र लगे हुये है। जिनका वर्णन करने से ग्रन्थ बढ़ जावेगा इस लिये इतना ही काफी है। अब हम ऋतुओं का वर्णन करगे।

ऋतुएं ।

बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर और हेमन्त ये छै ऋतुयें हैं । इन ऋतुओं में सूर्य की किरणों का रग प्रत्येक ऋतु में विशेप २ प्रकार का पड़ता है । और उनके अनुसार ही ऋतुओं में दोष का संचय प्रकोप और समान आदि हुआ करता है । प्रथम बसन्त का रंग पीला है । और इस ऋतु में जो सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं । वह पीले रग की दीखती हैं । और उनके अनुसार सरसों आदि बनस्पतिओं के फूल पीले रंगके होते हैं । दूसरी ग्रीष्म ऋतु है जिसमें सूर्य की किरणों का रग लाली लिये हुये होता है । और सारी पृथ्वी तपी हुई दिखाई देती है ।

तीसरी वर्षा ऋतु है जिसमें सूर्य किरणें धुंधली हो जाती हैं । और वर्षा होकर सर्व वृक्ष और वूटियें उत्पन्न हो कर धुल जाती हैं । और विशेष हरे रंग की दिखाई देती हैं ।

चौथी शरद ऋतु है । इसमें सूर्य की किरणें मटियाले रंग की होती हैं । और सर्व अन्न जल को पकाकर सुखाती हैं ।

पांचवीं शिशर ऋतु है । इसमें सूर्य की किरण नीली होती है । और आकाश का रंग अत्यन्त साफ नीला दिखाई देता है ।

छठी हेमन्त ऋतु है इसमें सूर्य की किरणें भूरे रंग की हैं । इसमें ओस कुहरा पड़ता है । और आकाश भूरे रंग का भासता है ।

दोषों के संचय और प्रकोप का ऋतु अनुसार लेखा लिख कर दिखाये देता हूं इस प्रकार ऋतुओं के अनुसार आहार विहार और औषधी सेवन करने पर हम आरोग्य बने रहते हैं।—

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्म	वर्षा	हेमन्त
कोप	वर्षा	शरद	वसन्त
समन	शरद	वसन्त	वर्षा

इस प्रकार ऋये हैं। इस प्रकार सम्वत्सर में दो अयन, ३५५ तिथि और दो पक्ष और ६ ऋतु बारह महीने ये एक सम्वत्सर में होते हैं।

॥ इति आदित्य ॥

बत्तीसवां देवता इन्द्र।

बत्तीसवां देवता प्रत्यक्ष इन्द्र है जो हमको विद्युत (बिजली) के रूप में भासता है। जो शक्ति और बल रूप से हमारे पिण्ड में सुक्ष्म जान पड़ता है। यही इन्द्र है। इसी के कारण हम बल पुरुषार्थ उद्योग करते हैं। इसीके पराक्रम के प्रताप से हम शत्रुओं पर और दुष्टों पर विजय पाते हैं। यही प्रजापति का पुत्र देवों में और देवों का सेनापति है। और हमारे पिण्डों के सेना का प्रधान नायक है। हम हर

एक काम में इससे ही सहायता लेते हैं। येही हमारी की हुई प्रार्थनाओं का सुनने वाला और देवलोक मे देवराज इन्द्र कहलाता है।

प्रजापति ।

यह तेतीसवां देवता प्रत्यक्ष प्राण प्रजापति है। इसीको अदिति के नाम से बोलते हैं। यही इन सब देवों का पिता है। येही सब का समष्टि है। क्या देवता, क्या पितर क्या मनुष्य सब इसके ही अवयव है। सब इसीके व्यष्टि टुकड़े हैं। ये एक हो अनेक प्रकार का होकर सकल संसार में फैला है। और सब में सब कुछ करता है। ये ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड रूप हो रहा है। यही वसु होकर सबके व्यष्टि शरीर पिण्डों की रचना करता है। यही रुद्र होकर सब के भोग का साधन हो रहा है। और सब इसके भोग हैं। यही आदित्य होकर हर एक के भोगों को नाप तोल से लेता देता है। न्याय की तुलनात्मक हो रहा है। यही सबों में बल रूप होकर इन्द्र हो रहा है। और यही सबों में प्राण रूप होकर जीवन दे रहा है। और इसी की सन्तान इसी के रूप होकर पितामह हो रहा है। यही एक प्राण प्राणेश्वर होकर तेतीस विश्व देव रूप पांच पितर और वैश्वानर विराट के रूप में प्रगट हो रहा है। ये व्यष्टि रूप में प्राण का भेद बतला दिया है। अब समष्टि रूप से प्राण का प्रजापति विराट को कहेंगे।

॥ इति प्राण अधिदेव ॥

विराट्—पिण्ड

— अर्थात् —

समष्टि प्राण पिण्ड

पाताल पाद मूल है। एड़ी रसातल है। महातल एड़ी के ऊपर का टकना है। तलातल जंघायें हैं। सुतल दोनों जानु हैं। वितल अतल दोनों उरु हैं। महीतल दोनों नितम्ब है। नभतल नाभि है। स्वर्ग वक्ष स्थल है। महर्लोक ग्रीवा है। जन लोक मुख है। तप लोक ललाट है। सत्य लोक मस्तिष्क है। इन्द्र लोक भुजा है। दिशायें कान हैं। शब्द श्रवणेन्द्रियां हैं। अश्वनी कुमार नासिका है। गंध घ्राण इन्द्रियां हैं। अग्नि मुख है। आकाश नेत्र हैं। सूर्य चक्षु इन्द्रियां है। जल तालुवा है। जिह्वा रस है। यम डाढें हैं। प्रजा पति लिंगेन्द्रियां हैं। मित्र और वरुण अण्डकोष हैं। समुद्र मूत्राशय है। पर्वत अस्थियों का समुह है। नदियां नाडियां हैं। वृक्ष बलीयां रोम हैं। पवन श्वास प्राण है। काल गती है। तीनों गुणों का प्रबाह कर्म है। मेघों की घटायें केश हैं। संध्या वस्त्र है। मूल प्रकृति हृदय है। चन्द्रमा मन है। महा तत्व विज्ञान शक्ति बुद्धि है। सर्वात्मा अन्तः करण है। सात्विक, राजस और तमादि मूल प्रकृतियां की योनियां इसकी स्वभाव हैं। एक खुर वाले जन्तु इके नख हैं। और दो खुर वाले जन्तु इसके नितम्ब हैं। पक्षी गण और वाणी इसकी व्याकरण है। ऐसा ये सर्वांग पूर्ण ये विराट पिण्ड है। जिसके अनन्त शरीर अनन्त कान इस प्रकार ये, पिण्ड विराट है। ऐसा ही इसका घर ब्रह्माण्ड है। ये विराट पिण्ड हुआ।

प्राणों के-छाया की व्याख्या।

इस प्रकार प्राणों का अधिदैविक तक का.वर्णन कर दिया है। ये प्राण केवल एक ही है परन्तु ये जों तीन प्रकार के अध्यात्मक आदि जो भेद है कि ये है। इस सब प्रकार से प्राणों के पिण्डों का भेद है। जिसके समष्टि रूप में इसमें सब ही मिश्रणतत्व समाये हुये हैं। जैसे उष्णता प्रकाश आकर्षण बिजली स्पन्दन आदि इनके समष्टि रूप के अन्तर गत हैं। परन्तु प्राण भी छाया के बिदुन क्या कर सकता है। इस लिये जो प्राण पिण्ड है। तो इन प्रणों की छाया मौजूदा है वो छाया है। वही सुक्ष्म है। छाया में ऐसा गुण है। प्राण में से जो २ शक्तियां देविक आदि हैं। उनकी छाया अपने अन्दर आकर्षण कर और उनको अपने अनु रूप कर उनको स्थूल में बदल प्रत्येक पदार्थों की रचना को परिवर्तन करती रहती है। जिस प्रकार हमारा स्थूल शरीर खुराक में से सार निकाल कर रक्त मांस मज्जा आदि धातुओं में बदल देता है। उसी प्रकार छाया शरीर प्राण में से प्राण-तत्वों का आकर्षण कर स्थूल शरीर में बदल देता है। परन्तु केवल स्थूल शरीर से प्राण का परिवर्तन हो नहीं सकता है। इसी लिये सूक्ष्म (छाया) शरीर की जरूरत है। और वह प्राण से ही निकली है। जिस प्रकार सूर्य से ही सूय किरण और प्रकाश निकलता है। इसी प्रकार प्राणों से प्राणों की छाया सूक्ष्म निकलती है। जिस प्रकार एक मेगनेट से निकली हुई विधुत् धारा को बैटरी में सभी कण संचयमान होती रहती हैं जिसको बैटरी चार्जिंग कहते हैं। फिर वह बैटरी में से वह विधुत् (इलोट्रोन) प्रवाहित होते हैं। जिस

से प्रकाश आदि अन्य यन्त्रों की क्रिया सम्पादन होती है। इसी प्रकार से हमारी छाया हमारी बैटरी है। जब हमारी छाया प्राण का आकर्षण विकर्षण निरुधी करण करना छोड़ दे तो हमारा ये स्थूल शरीर क्रिया रहित याने मृत्यु हो जावे। छाया शरीर जो बाहिर का भौतिक सूर्य है उसमें की पड़ती हुई शक्तियों रंग रूपादि प्राण तत्वों को आकर्षण कर उनका परिवर्तन कर फिर हमारे स्थूल शरीर के तिल्ली के द्वारा शरीर में डाल देता है! जिससे हमारी क्रिया संचालित होती है। जब यह छाया शरीर स्थूल से अपना सम्बन्ध छोड़ने लग जाता है। जब ये लक्षण स्थूल शरीर में प्रगट हो जाते हैं। मूर्छा सुस्ती अथवा निन्द्रा तन्द्रा और सन्निपात अवस्था हो जाती है। छाया शरीर हमारे स्थूल शरीर की बैटरी है। जिस प्रकार मोटर बैटरी के करन्ट से चलती है और बैटरी मेगनेट से चार्जिंग होती है। इसी प्रकार स्थूल छाया से और छाया सूर्य के प्राणों से सम्बन्ध रखती है और हमको जीवन शक्ति देती रहती है वह छाया ही हमारी पीयूष है। इसी के विषय में ऋग्वेद का एक मन्त्र है जिस का ठीक अर्थ यही निकलता है।

य आत्मदा बलद यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युःकस्मैदेव।य हविषा विधेम॥

जो प्राण को और बल को देने वाला है जिस के शासन को सब देवता मानते हैं। जिस की छाया अमृत है और मृत्यु भी है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान करो कि प्राण की छाया ही अमृत है।

जितनी अधिक मिकदार में छाया प्राण को आकर्षण करता है वह स्थूल उतने अधिक दर्जे में बलवान बन जाता है। अगर छाया स्थिल शरीर का इकट्ठा किया हुआ जीवन तत्व के जरूरत से ज्यादा बच जाय तो वह दूसरे कमजोर शरीरों के काम में आजाता है। जिसको हम चिकित्सा प्रकरण में लिखेंगे। शरीर के वृद्ध हो जाने से छाया भी बहुत थोड़ी मात्रा में प्राण तैयार करती है। जिसकी वजह से वृद्ध मनुष्य हमेशा कम ताकत की शिकायत किया करते हैं। यह प्राण जीवन तत्व हरएक के शरीर में बदला जा-सकता है। इसीलिये तन्दुरुस्त मनुष्यों को चाहिये कि वह निर्बल और वृद्ध मनुष्यों के पास न सोवें न बैठें न खावें।

यह प्राण सम्पूर्ण प्राण धारियों का पोषण करने वाला प्राण धारक जीवन और बल बढ़ाने वाला तत्व है। वह बाह्य में सूर्य से प्रवाहित होकर सबको मिलता है जैसे मछली पानी के दरिया में रहती है। वैसे ही प्राण के समुद्र में सब प्राण धारी रहते हैं। यह हर एक जीवों की वासना के माफिक भिन्न २ प्रकार के गुणों और स्वभाव के माफिक भिन्न हो जाता है। प्राण में तो कोई रंग रूप नहीं है। परन्तु वह उसी प्रकार हमारे शरीर के काम में भी नहीं आता है जब तक कि छाया शरीर उस प्राण का विश्लेषण कर उसका रंजन न करले। जब इसको छाया शरीर इस का विश्लेषण करता है जब प्राण का रंग साफ गुलाबी हो जाता है। जब वह हमारे स्थुल शरीर में जीवन तत्व अमृत के तौर से काम में आता है। इस प्रकार प्राण का परिवर्तन किया हुवा ही स्थुल को परिवर्तन करता है। और

यह भी जानने योग्य बात कि किसी भी कारण वश स्थुल शरीर के किसी अवयव में ये प्राण प्रवेश न करे तो उस अग की उस वक्त मृत्यु होना याने (Local Death) अर्थात् लकवा या पक्षाघात होना समझा जाता है। अथवा बहरा-पन अन्धापन लूला लंगड़ा आदि बहुत करके इसी कारण से होते हैं और जब प्राण तत्व को छाया स्थुल से जुदा करदे और आप भी जुदा हो जाय उस वक्त स्थुल की मृत्यु (Genral deoth) मानी जाती है। अब हम प्राण के बारे में इतना ही बताना काफी है। अधिक लिखने से ग्रन्थ बढ़ जाता है। इसके आगे छाया शरीर को कहेंगे।

प्रकरण–ग्यारवां

छाया शरीर।

छाया शरीर आकाश तत्व का बना हुआ है। ये आकाश तत्व प्रत्येक मूर्ति और अमूर्ति में व्यापक है। जिस प्रकार मुह देखने का कांच है। उसी प्रकार आकाश तत्व है। जिस में प्रत्येक मूर्ति पदार्थों का प्रति बिम्ब पड़ता है और उन प्रति बिम्बों का आकार आकाश अमूर्ति होते हुये प्रत्येक मुर्ति पदार्थ के अन्दर बाहिर व्यापक है। यह सूर्य में वायु पृथ्वी आदि सब ही भूतों में घट मठा आदि भेद से; व्यापक है। स्थूल में जो जगह खाली है उसमें प्राण भरा हुआ है। जो हमारे स्थूल श खटका धका नाड़ी का प्रस्पन्दन अर्थात् शब्द का वेग होता है। वह नाड़ी का नहीं है बल्कि शब्द गुण आकाश है और आकाश ही का यह शब्द है। जो शब्द

हमारे स्थूल शरीर में है वह आकाश शरीर का है। जो जीवन अवस्थ परिस्थित छाया शरीर के सम्बन्ध तक रहता है। जहां छाया शरीर स्थूल से पृथक होते ही नाड़ी का और हृदय का खटका बन्द हो जायेगा। जब स्थूल की मृत्यु मानी जाती है। और असली मृत्यु यही है। हमारे शरीर में कारण से लगा कर स्थूल पर्यन्त जो शरीर है वह एक में एक सव्याप्त रूप में समाये हुये है। और एक से एक उलटे समवाय में समाये हुये हैं। ये सब शरीर दाई (जीवणीं) बाजू से समाये हुये हैं; यह अनुभव से सिद्धि हुआ है। यह एक में एक मिलते भी हैं और जुदा भी होते हैं। जब यह एक दूसरे से जुदा होते हैं तो बाईं (डावी)· बाजू वाले शरीर की मृत्यु हो जाती है। क्यों कि उसमें जीवन शक्ति का करट नहीं पहुंचता। इसका दृष्टान्त यह है कि एक विजली के मेगनेट करंट को एक व्यक्ति के दायें (जीवणें) हाथ में दिया जावे और दूसरे छः मनुष्य उसी करंट वाले हाथ से दूसरे हाथ से हाथ मिला लेवे। फिर करंट वाले हाथ के मिलते ही तमाम मनुष्यों के हाथों में वह करंट दौड़ जावेगा। इसी प्रकार से कारण से जीवन शक्ति प्रवाहित होकर अस्थूल क्रियावान होता है। यदि जिस करन्ट वाले से हाथों का सम्बन्ध छूट जावे उसमें यरन्ट आना बन्द हो जावेगा और वह ·····नि क्रियावान हो जावेगा। इसी प्रकार कारण से लगा कर स्थूल तक का जीवन है। कारण शरीर में से जीवन शक्ति का प्रवाह निकल कर सम्पूर्ण शरीरों के दाईं (जीवणीं) बाजू से होता हुआ बाईं (डावी) बाजू में अपना चक्र पूरा कर फिर दाईं (जीवणीं) बाजू बन जाता है और उसी कारण में जा मिलता है। इसी वजह से हमारे शरीर के दो

भाग हैं। येही नैगीटिव और पौजीटिव हैं। जिस प्रकार मेग-नेट में से विधुन धारा पौजीटिव से निकल कर नेगीटिव से वापिस आमिलती है। इसी प्रकार दाहिने अंग से जीवन शक्ति निकल कर फिर दाहिने में आमिलती है। और इसी प्रकार बारम्बार दाहिनी से बाईं होती रहती है जैसे नैगी-टिव से पौजीटिव होता रहता है

प्राणों का जो स्पन्दन (खटका) है, वह जीवन शक्ति चेतना का है। वह हमारी नाड़ी के खटके में ही समाप्त हो जाता है। परन्तु जहां जीवन तत्व समाप्त होते ही नास कारक तत्व उस शक्ति में पैदा हो जाता है। फिर वह नाश कारक तत्व उस शक्ति में जो कि कारण से निकली थी वह अपने आकर्षण के नियमानुसार उसी अखण्ड चैतन्य कोष कारण में जाकर पुनः नास कारक समाप्त होकर जीवन कारक बन जाते हैं। जैसे बिजली का नैगीटिव समाप्त होते ही पौजीटिव बन जाते हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर में उत्पा-दक से नाशकारक और नाशकारण से पुनः उत्पादक होते रहते है। जो पहले खटके में उत्पादक परिमाणु समाप्त होते हैं। और दूसरे खटके में समाप्त हुये। परमाणु उस जगह से हट कर उसकी जगह नये उत्पादक परमाणु आजाते हैं और वह तीसरे खटके में नाशकारक परमाणु फिर रजन होकर उत्पादक की चेतना को लाकर के स्थूल शरीर को जीवत रखते है।

उदाहरणार्थ—जैसे पानी के कुवे में से पानी निकालने का अरठ का यत्र लगाया और उस अरठ के ऊपर एक घट माला लगाई वह नीचे पानी तक लगी रहती है। जब अरठ

माला लगाई वह नीचे पानी तक लगी रहती है जब अरट को ऊपर से घुमाया जावे तब वह घट माला पानी से भर २ कर पानी को ऊपर लाती है और इसके घूमने के वेग से पानी की धारा बराबर चलती है। पानी से भरी हुई घट-माला कुआ के दाईं (जीवणीं) बाजू से आती है। और खाली होकर बाईं (डावी) बाजू से जाती है। घट माला वहीं रहती है और अरट का चक्र भी एक ही समान गोल फिरता है। परन्तु खाली और भरी घटमाला की दिशा का उलट फेर होता है। जो ऊपर दाईं (जीवणीं) बाजू थी वह नीचे पानी में बाईं (डावी) बाजू हो गई और पानी में जो दाईं (जीवणीं) बाजू थी वह ऊपर खाली होने पर बाईं (डावी) बाजू होगई। ठीक यह सिधान्त विजली का है कि जो ऊपर पौजीटिव है वहीं नीचे नैगीटिव है। अब इसका दृष्टान्त हम अन्य स्थूल शरीर में देकर समझावेंगे।

हमारे स्थूल शरीर में अखण्ड चेतन्य का पियूष से भरा हुआ नाभि में एक कुआ है। और हमारा हृदय ठीक अरट चक्र है और लाल और धौली नसों से बंधी हुई प्राण के परमाणुओं की घटमाला है फेफड़ों के द्वारा वह अरट चलता है और रक्त का आना जाना और उसका रजन होना हमारा जीवन जल है। जो हमको प्रत्येक खटके में जीवन शक्ति चेतना मिलती रहती है। इसीसे हमारा स्थूल शरीर रूपी वृक्ष सर सब्ज और जीवन वान रहता है। हमारा छाया शरीर ७२७२१०२०१ अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ियों का बना हुआ है। वह हमारे स्थूल शरीर में हूबहू पसरा हुआ है।

इन्हीं नाड़ियों से हमको चेतना मिलती है। इन नाड़ियों में व्यान नाम के वायु का सचार होता है। यही व्यान वायु

अपनी आकर्षण शक्ति से बाहिर के प्राण को अन्दर लेता है और उस प्राण का जो अपान बनता है उसको ये व्यान अपनी विकर्षण शक्ति से बाहिर निकाल कर फिर नवीन प्राण उसके जगह भर लेता है। इस प्रकार नाड़ी के प्रत्येक खटके में आकर्षण विकर्षण का मैथुन के परिवर्तन का हर एक खटके के साथ मे होता रहता है। इसी क्रिया के द्वारा हमारा स्थूल शरीर चेतन्य मान होता रहता है। और यह क्रिया हमारे हृदय प्रदेश में प्रतिक्षण होती रहती है। और इसी कारण से चेतना का अधिष्ठान हृदय को माना है जो ७२७२१०२०१ नाड़ियों का बना हुआ सूक्ष्म शरीर है। इसी हृदय प्रदेश में से तीन किरोड़ पचास लाख ३५०००००० स्थूल नाड़ियां निकल कर स्थूल शरीर का बधारण करती हैं। इन नाड़ियों में प्राण और अपान युक्त व्यक्त होते रहते हैं। इसी क्रिया से रक्त के कण बंध बंध कर मांस मज्जा अस्थि वसा शुक्र आदि धातु बन २ कर स्थूल की पुष्टि और वृद्धि इसी छाया शरीर से होती रहती है। यह छाया शरीर रबड़ के खिलौने के मानिन्द है। जैसे रबड़ के खिलौने में वायु भरने से वह खूब बड़ा हो जाता है। और वायु निकालने पर वह फिर पीछे सिमट जाता है। इसी प्रकार गर्भ से लेकर जवानी और वृद्ध पने तक पसार पाता रहता है।

इन सम्पूर्ण नाड़ियों का केन्द्रिय भवन मस्तिष्क में है। यहीं पर सम्पूर्ण नाड़ियों के जोड़ मिलते हैं और यहां से ही प्रकाश उत्पन्न होता है। जैसे बिजली के नैगीटिव और पौजीटिव दोनों तारों के सिरों को एक जगह मिलाकर बीचमें कारबोन का टुकड़ा लगा देने से उसमें प्रकाश की किरण

पैदा होती है। इसी प्रकार हमारे मस्तिष्क में ज्ञान ततुओं के केन्द्रिय भवन में प्रकाश उत्पन्न होता है। यहीं से सम्पूर्ण नाड़ी चक्रों का विस्तार असंख्यात होता है। यहीं पर प्राण और अपान का सम्मेलन होके जीवन शक्ति का विश्लेषण होता है जैसे अ.क्सीज़न गैस का कारबोन बन कर रक्त का विसुधी करण होता है। इसी प्रकार किसी भी प्रकाश से हमारी स्थूल छाया हमारे से पृथक हमारे पावों से सम्बन्ध रखती भासती है। उसी प्रकार से हमारे मस्तिष्क की ज्योति से हमारी सूक्ष्म छाया प्रत्यक्ष भासती है जो सूक्ष्म दृष्टि से देखी जा सकती है।

जब व्यान वायु प्राणापान के अभाव में अर्थात् मध्यम काल में श्वास लेकर प्रश्वास नहीं होने पाता इतने ही काल में बड़ा जोरदार अद्भुतकार्य सम्पादन करता है। अगर वह स्थिर हो जाय अर्थात् 'कुम्भक' हो जाने से वह क्या नहीं कर सकता है। इसी लिये भगवान योगवेता ने गीता में कहा है कि:—

अपने जुव्हतिं प्राण प्राणेऽपानं तथाऽपरे
प्राणऽपान गति रुद्धा प्राणायाम परायणा।

इस प्रकार प्राणापान की परस्पर हमारे शरीर में आहुति होम होता है। यदि प्राण तथा अपान दोनों को रोक कर प्राणायाम (कुम्भक) करने से अद्भुत कार्य की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यदि प्राणापान के एक २ प्रमाणु का कुम्भक किया जाय तो वह करीब दो लाख मन वजन उठा सकते हैं।

यह छाया शरीर पांच प्रकार का होता है और एक से एक स्थूल तर होता है और स्थूल इसी की छाया में वृद्धि पाता रहता है। और स्थूल के साथ में ये भी वृद्धि पाता रहता है। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म का परस्पर एक ही करण का सम्बन्ध है और जैसी २ चेष्टा स्थूल शरीर करता है, वैसी २ चेष्टा यह सूक्ष्म भी साथ का साथ करता रहता है। जिस माफिक कपड़े की पोशाक के रंग रूप हमारा स्थूल शरीर पहनता है, उसी के माफिक छाया शरीर भी पहनता है। अगर हम सवारी करते हैं और उस पर बैठ कर भागते हैं तो वह भी उसी प्रकार की सवारी करके हमारे स्थूल के आगे पीछे संग का संग रहता है। जितने २ हम ज्ञान वान बुद्धि शाली होते हैं और पढ़ते हैं उतना यह भी ज्ञान वान होकर बुद्धिमान होता है। गरज यह है कि यह छाया शरीर हमारे से किंचित्मात्र में भी दूर नहीं होता यहां तक कि हम रात्रि को सोते हैं तो यह हमारे संग सोता है और जागने से हमारे संग जागता है और हरएक चेष्टा में हमारी नकल पूरी २ करता रहता है। इस पांच प्रकार के छाया शरीर में से चार को तो हम देख सकते हैं। परन्तु पांचवा आकाश शरीर को हम प्रत्यक्ष बिना साधन के नहीं देख सकते। इसी छाया शरीर को योग विद्या वाले छाया पुरुष कहते हैं। इसको देखने का ज्ञान हम सिद्धि स्थान के सातवें सर्ग में बतावेंगे।

छाया शरीर स्थूल शरीर का साक्षी शरीर है। हमारे भले बुरे कर्मों को देखता रहता है और स्थूल के कर्मों का ज्ञान भी अपने अन्दर रखता है। जिस प्रकार स्थूल शरीर

में स्थूल पुरुष को ज्ञानवान रखता है। उसी प्रकार से छाया पुरुष छाया शरीर में स्थूल पुरुष का भी ज्ञान रखता है और स्थूल भी छाया का ज्ञान जरूर रखता है परन्तु वह अपनी प्रत्यक्ष हस्ती के सामने हरएक ज्ञान को झूठा जानता है छाया शरीर बोलता खाता पीता चलता फिरता देखता सूघता विषय वासना आदि सम्पूर्ण क्रिया कर्म करता है। जिस की खबर स्थूल को मुतलक नहीं पड़ती है जिसका कारण यह है कि छाया शरीर की इन्द्रियों को हम न तो जानते हैं न उनको कभी खोली है वह बन्द हैं। हां वज स्थूल की इन्द्रियां वन्द हो जाती हैं तव सूक्ष्म की खुल जाती है। परन्तु ताहम भी स्थूल उसको नहीं जानता है दूसरा कारण यह भी है कि सूक्ष्म के स्पनन्दन इतना सूक्ष्म होता है कि जिसका ज्ञान हमारी स्थूल इन्द्रियों को भासता नहीं है। इसी से स्थूल सूक्ष्म से अबोध रहता है दूसरा कारण यह भी है कि वह स्थूल से उल्टा है। स्थूल बहाम्य वृति वाला है और सूक्ष्म आन्तर वाला है आन्तर मुख है। उसके और स्थूल के निन्द्रा वृति का परदा है।

जब हम स्थूल से कर्म करते हैं तो उसकी छाप का आकार छाया शरीर में पड़ती है। जिस प्रकार एक ग्राम फोन के रेकार्ड चूड़ी के अन्दर गाने की शब्दों की छाप पड़ जाती है फिर उसको ग्राफोन पर चढाकर बजाने से वही गाना सुनाई देता है। इसी प्रकार हमारे छाया शरीर में स्थूल के वासना अर्थात् मूल प्रकृति स्वभाव इच्छा भावना, विचार के आकारों की छाप जो मानसिक अथवा जो कायक किये जाते हैं उनको पड़जाती है। वही हमारे जन्म बन्धन,

के हेतु हमारे जन्मान्तरों में प्रगट हो जाती है। इसी को चित्र गुप्त कहते हैं और इसी से हमारा न्याय धर्म राज के सामने होता है धर्म राज के सामने छाया शरीर के चित्र प्रकट किये जाते हैं। और उसी के अनुकूल हमारा वासना शरीर ऊंच नीच योनियों को धारण कर उन वासना के अनुसार स्वभाव और गुणों को धारण करता है। और वासना के अनुकूल ही भोग भोगने पड़ते हैं। इसी वासना शरीर से हमारायातना शरीर बाजता है जो हमारे भोगों का साधन रूप है।

जब मनुष्य मरने लगता है तब यह छाया शरीर स्थूल में से सिमिटने लग जाता है जिस प्रकार सूक्ष्म वस्त्र की घड़ी को समेटते हैं उसी प्रकार यह स्थूल के व्यापक में से सिमट कर मस्तिष्क की तरफ में इकट्ठा होता रहता है। फिर इस मस्तिष्क के केन्द्र में से बाहिर निकलना शुरु हो जाता है और शनैःशनैः मस्तिष्क में से तमाम शरीर हूबहू स्थूल के मानिन्द साफ दिखाई देता है। ज्यों २ यह स्थूल के बाहिर ऊपर को उठता जाता है त्यों २ स्थूल का ज्ञान भान की बेहोशी और मूर्च्छा अचेतनता आती जाती है। आखिर बिल्कुल निकलने पर स्थूल की मृत्यु हो जाती है। फिर वह छाया शरीर इधर उधर घूमता साफ दिखाई देता है। जिसका रंग साफ बादल की धुन्ध, कुहरा, की तरह पर श्वेत सा होता है आखिर यह भी शरीर ३६ घन्टों से नष्ट होकर प्राण शरीर में मिल जाता है।

इस छाया शरीर को न तो शस्त्र काट सकता है न पानी गला डूबो सकता है, न आग जला सकती है न वायु उड़ा

सकता है यह तो एक आकाश तत्व है जो घटमठादि भेद से सब में व्यापक है। कोई भी तत्वों का स्थूल बन्धन इस छाया शरीर को रोक नहीं सकते। यह अन्तःकरण की वासना में इच्छा में विचारों में क्रियाओं में संस्कारों में मौजूद है और इन्ही के भावों को हम इसी छाया शरीर में स्वप्न में देखते हैं। इसीलिये हम किसी भी मकान में सोते हों तो भी स्वप्न में हम बाहिर निकल कर वे रोक टोक के हमारे संकल्पों के अनुसार देखने में आते हैं। वह चाहे इस जन्मांतरों के हों चाहे दूसरे जन्मांतरों के हों।

जिस छाया शरीर का प्रभाव स्थूल शरीर पर पड़ता है इसी प्रकार स्थूल शरीर का खाया पिया हुवा आहार विहार को भी छाया शरीर विभाजित करता है। जब हमको क्लिोरा फार्म सुघाया जाता है। तब छाया शरीर हृदय स्थान में सिमिट जाता है। जब हम अचेतन्य बेहोश वे भान ज्ञान के हो जाते हैं जब हमारे स्थूल शरीर का ओपरेशन कांट छांट करते हैं। फिर जब वह वापिस स्थूल में पसर कर समवाय में बराबर हो जाता है। जब हम अपनी चेतना का ज्ञान भान में आजाते हैं। मृत्यु होने के पहिले की छाप छाया में पड़ जाती है। जिस की पहिचान मृत्यु विज्ञान के प्रकरण में लिखेंगे।

अब हम छाया का वर्णन वैदिक के चरक के मतानुसार करते हैं।

सगुणोंपादान कालेन्तरिक्ष पूर्वतर मन्येभ्यो गुणेभ्यो उपादत्ते: यथा प्रलयान्य मेसि सृक्षुभूर्न्नत्त्न्यक्षरभूतः सत्वोपादन पूर्वतर माकाश सृति। ततः क्रमेण व्यक्त तर गुणन् धातन वा ध्वादि

कांश्चतुरः सर्वमपितु खल्वे तद्गुणे पादान मणुना कलेन भवति ॥ चरक शाः अ ॥ ४ ॥

अर्थ-वह चेतना जब धातुओं के गुणों को प्राप्त करने के समय सम्पूर्ण अन्य गुणों के पहिले आकाश गुण को ग्रहण करती है। जैसे प्रलयान्त में सृष्टि रचने की इच्छा करने वाला अक्षर पुरुष (सब) समष्टि स्थूलों के पहिले सत्वोपादान से व्यक्ततर वाय्वादी चारों धातुओं को सृजता है। यह समस्त गुण ग्रहण थोडे काल में प्रगट हो जाते हैं। इस से यह साफ प्रगट हुआ कि यह पंच भौतिक जो स्थूल दृष्टि में आते हैं वह सब आकाश के ही भेद हैं और आकाश की छाया के अन्दर व्याप्त मान हो कर मूर्ति स्वरूप में भास रहा है। इस प्रकार चरक के इन्द्रिय स्थान में पांच भूतों की छाया का वर्णन किया गया है।

आकाशादि पंच भूतों के अनुसार छाया पांच प्रकार की होती है यह स्थूल पिण्ड इन पंच भूतों से निर्मित हैं अतः पंच महाभूत के अनुसार ही उस छाया के नाम हैं। आकाश की छाया रंग में निर्मिल नील वर्ण सचिण और प्रभावति है। और प्रतिविम्ब को प्रकट करती है।

वायु की छाया-रुक्ष, काली, लाल, और प्रभाहीन है।

अग्नि की छाया-विशुद्ध लाल कान्ति युक्त, और दर्शन प्रिय है।

जल की छाया-शुद्ध स्फुटिक के समान निर्मल स्कन्ध है

पृथ्वी की छाया-स्थिर स्कन्ध घन सलक्षण काली और श्वेत भी है।

इन में से वायु की छाया निन्दित नाश करता मृत्यु सूचक क्लेश कारक रोग उत्पत्ति करता हैं । अन्य चारों प्रकार की छाया सुख दायक हैं ।

छाया शरीर के रंग को उत्पन्न करती है और परा भाव करती है और प्रभा रंगों को प्रकाशित करती है । छाया पास से दिखाई देती है और प्रभा दूर से. कोई भी पदार्थ एक साथ छाया हीन व प्रभाहीन नहीं हो सकता है । क्योंकि प्रभा आश्रित छाया ही मनुष्य के भावों को व्यक्त कर प्रकाशती है । प्रभा का वर्णन क्रांति के प्रकरण में कर दिया गया है ।

छाया में ही परिवर्तन धर्म है । यदि छाया न होती तो सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ परिवर्तन मान नहीं हो सकता । परिणाम को जो कुछ कार्य है वह छाया के ही द्वारा होता रहता है । हमारे स्थूल शरीर में जो आहार में से रस रुधिर, मांस, मज्जा आदि धातुओं का जो विश्लेषण भागों में परिणाम परिवर्तन होता है । वह छाया शरीर सूर्य के रश्मियों द्वारा करता है जिस के फल स्वरूप हमारे शरीर की तीनों अवस्था युवादिका परिवर्तन होता है । और हमारा स्थूल शरीर के अंगों के अव्यवों को बराबर रस रुधिर मासादि मिलते रहते हैं । यह परिवर्तन के कार्य उसी छाया में से सिद्ध होते हैं ।

(छाया शरीर की रचना भेद)

हमारा छाया शरीर सूक्ष्म स्नायुओं से बना हुआ है । जैसे सूक्ष्म तंतुओं से बना हुआ सूत्र पट कपड़ा होता है इसी

प्रकार यह छाया शरीर है। प्रोफेसर टिन्डाल ने यह कहा था कि हमको आकाश वायु में केवल छिद्र ही छिद्र दिखाई देते हैं। यह बात ठीक भी है कि आकाश मण्डल में जब सूर्य की रश्मियों की नाड़ियां जब आकाश वायु में होकर पृथ्वी तक पसार पाती हैं वह सूर्य की नाड़ियां कहलाती हैं यह सूर्य में से निकली हैं और आन्तर शरीर छाया इन नाड़ियों का ही शरीर है यह सूर्य से निकलकर सम्पूर्ण शरीर को धारण करती हैं। इसी से इनका नाम धारी कहलाता है। यह ही बात सुश्रुत के शारीरिक स्थान अध्याय ९ में कही है।

आकाशीया च काशाना देहे नामानि देहि नाम्।
शिरा स्रोतां सिमार्गाः खगधमन्यो नाड्य ईरिताः॥

सुश्रुत साफ कहता है कि प्राणियों के शरीर में जो आकाश की छाया अवकाश है उसी के शिरा स्रोत व धमनी नाडी इत्यादि नाम है इसी के द्वारा स्थूल शरीर में रक्त मांस मेदा बसा शुक्र इत्यादि बनते भी हैं और स्थिर भी रहते हैं। और इनकी पोषण पुष्टि और नवीता इत्यादि का परिवर्तन होता रहता है।

इस शरीर में यह छाया शरीर दो प्रकार के भागों में रहता है। एक प्राण संचारी और एक ओज संचारी है। यह ही शरीर के चारों ओर ओजो धातु का सचार से पूर्ण होकर सम्पूर्ण शरीर धारी चलते फिरते हैं। और जीवित रहकर सर्व क्रिया करते है।

बिना इन ओजो धातु के प्राणियों का जीवन नष्ट प्राय हो जाता है। आदि में यह ही ओज स्थूल शरीर के गर्भ का

सार है यही रस गर्भ के उत्पन्न करने वाले रस का भी रस है। इसी से स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है। यह गर्भ उत्पत्ति रस के सार का भी रस है। गर्भ उत्पति करने के पहले यह हृदय में रहता है। और हृदय के चेतना के भावों से सुवासित होकर रञ्जन होकर मूल प्रकृति वासना के स्वभावानुसार व्यक्त होता रहता है।
यही स्थूल शरीर प्रत्येक शरीर धारी प्राणी का है वह अपनी अपनी वासनानुसार योनियों से प्रगट होता रहता है।

अब प्राण संचारी को कहते हैं।

प्राण संचारी में प्राणों का स्पन्दन व प्रस्पन्दन का वेग होता रहता है। जिसके द्वारा हमारे स्थूल शरीर का आहार में से रस रुधिर मांस मेदा शुक्र अस्थी ओजादि धातु को भिन्न २ करने का काम करती है। जैसे रूई पींजने के यंत्र से रूई के सूक्ष्म स्थूल और मैल भागो को भिन्न २ कर देती है। इसी प्रकार से ये प्राण संचारी भाग प्राणों के स्पन्दन के द्वारा स्थूल की क्रियाओं का सम्पादान करता रहता है।

इसी प्राण संचारी के द्वारा वाह्यमय सृष्टि के शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध का बोध आन्तर सृष्टि में ज्ञान पहुँचता रहता है। ये प्राण संचारी वाह्यमय प्राणो का प्रस्पन्दन के वेग की संख्याओं के भेद से भेद जाना जाता है। वाह्यमय सृष्टि के प्राण में से चलते हुये स्पन्दन को ये प्राण संचारी भाग अपने अन्दर खींच कर भिन्न २ ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियों के शब्द स्पर्श आदि के ज्ञान के उपयोग लायक संख्याओं का विभाग उनको ग्रहण कर लेता है। हमारे कान के उपयोग

१६ से ५६००० प्रति सेकन्ड के वेग से हमको शब्द बोध होता है। इससे कम और ज्यादा से हमको शब्द सुनाई नहीं देता है। इसके अन्दर २ के प्रति वेग से हमारे आन्तर शब्द क्रिया उत्पन्न होकर हमको शब्द सुनाई देता है। इस प्रकार से एक सेकन्ड में १६ से ५६००० अन्दर बाह्यमय वायु में होती स्पन्दन जब हमारे कान ऊपर भिन्न २ प्रकार के शब्दों के भेद ज्ञान होता है। जैसे पशु पक्षी मनुष्यादि आवाज से वायु में प्रस्पन्दन होने से वह हमारे कान से स्पर्श होते ही शब्द बोध का ज्ञान हमको हो जाता है। यदि १६ से कम और ५६००० से ज्यादा के स्पन्दन से हमको शब्दे इन्द्रियों का बोध नहीं होता है। इससे साफ जाना जाता है कि हमारी शब्दे इन्द्रियों की शक्ति बहुत अपूर्णहै।

इसी प्रकार हमारी आंखों को रूप ज्ञान करने के लिये भिन्न २ रंगों के देखने के लिये भिन्न स्पन्दनों के अनुसार होना है। स्वच्छ प्रकाश देखने के लिये ४०० से ७५६ तक और लालरंग देखने के लिये ४०० से ४६० तक नारंगी रंग देखने के लिये ४६० से ५५८ तक पीला रंग देखने के लिये ५५८ से ५९० तक नीला रंग देखने के लिये ५९६ से ५९९ तक आसमानी रंग देखने के लिये ५९६ से ६७५ तक गहरा आसमानी रंग देखने के लिये ६७५ से ७५० तक किरमिची देखने के लिये ७५० ७५६ तक इस प्रकार के सिद्धांत से साफ प्रगट होता है कि हमारी श्रवणेन्द्रियां रूपग्रहणे इन्द्रियां। जब कि इन समेत स्पनन्दनों के संख्या के सीमा के अन्दर ही ज्ञान भान हो रखती हैं और इन की सीमा की संख्या के हद बाहिर यह असमर्थ वान हैं इससे जब कि सृष्टि के बहुत से शब्दों की आजाव का मनुष्य जाति के कान

की सुनने की असमर्थता से वह शब्दों को समझ सकता नहीं है। जब सूक्ष्म आवाज की हस्ती को हम कभी मानने के लिये बाध्य नहीं है।

इससे अगर हम अपनी अल्प श्रवण शक्ति के अभिमान से यों कहें कि हम अमुक प्रकार की आवाज को सुनी नहीं तो ऐसे मूर्खों को क्या कहना चाहिये। जो अपनी अल्प शक्ति की इन्द्रियों पर घमण्ड करते हैं। और सर्वज्ञ होने का दावा करते हैं। जो प्रतिवेग स्पनन्दन ४०० से कम और ७५६ से अधिक प्रतिवेग से उल्टे फेंकने से हमको कुछ भी नहीं दीखता है कारण कि, इस प्रकार के प्रतिस्पनन्दन को हमारी चक्षु इन्द्रियां ग्रहण करने से असमर्थ हैं। इसलिये सृष्टि की बहुत से पदार्थ मनुष्य जाति की दृष्टि से अदृश्य हैं अदृश्य होने से हम यह नहीं कह सकते कि अदृश्य वस्तु है ही नहीं। जिस प्रकार एक अन्धा पुरुष प्रकाश की हस्ती को न स्वीकार करे और .कितना ही पुरुष रात्री अन्ध अथवा दिवान्ध अथवा रगान्ध होय और वह पृथक २ रंगों को नहीं पहिचान सकता तो क्या दिन रात्री अथवा पृथक पृथक रंग नहीं है। इस से प्रत्यक्ष प्रगट हुआ कि सृष्टि की प्रत्येक सूक्ष्म पदार्थ को जानने के लिये मनुष्य जाति की इन्द्रियां बहुत अल्पज्ञ हैं। सृष्टि में सहस्त्रों पदार्थ ऐसे हैं जो हमारी ज्ञाने इन्द्रियों के स्पनन्दन से अदृश्य हैं। जिनको हमारी इन्द्रियां ग्रहण नहीं कर सकतीं। और हम उसके लिये निपट अज्ञान हैं। इसलिये हमको यह मानना चाहिये कि इस सृष्टि के आन्तर सृष्टि की हस्ती विद्यमान है। जिस को हम जानने का साधन करें वह साधन हमारा प्राण संचारी शरीर है।

यह प्राण संचारी पांचों इन्द्रियों में और पांचों भूतों में व्याप्त है और यह मृत्यु के समय स्थूल को छोड़कर पच महा भूतों में मिल जाती है ।

॥ इति छाया शरीर प्रकरण ॥

प्रकरण- ग्यारहवां

वासना शरीर ।

अर्थात् मूल प्रकृति ।

मूल प्रकृति और वासना यह एक ही हैं मूल प्रकृति का वर्णन हमने प्रकृति के दूसरे सर्ग में किया है अब हम इस प्रकृति के वासना शरीर का वर्णन करते हैं ।

इस शरीर की रचना हमारे अन्तःकरण के चित, मन, बुद्धि और अंहकार के संयोग से वृतियों द्वारा बना लिया जाता है ।

और यह अन्त चतुष्टय सात्विक राजसी और तामस के भेद से तीन भागों में विभक्त हो जाता है । और अपने अपने गुणानुसार पिण्डों में अपने स्वभाव को प्रगट करते हैं । जिस से अन्तः चतुष्टय की वृतियां अपने २ गुणानुसार विचारों की आकृतियों को धारण कर वासना का रूप गिर जाता है । इस प्रकार वासना पिण्ड का संगठन होता है ।

अन्तः चतुष्टय के साथ में पुरुष की और मन की जैसी २ वासना फुरती है वैसा २ ही रंग रूप आकार में एक वासना

शरीर बन जाती है। जिस प्रकार एक मनुष्य अपनी इच्छा के माफिक वस्त्र बनवा कर पहन कर बड़े अकड़ कर चलता है। और वह चलते २ यह भी अभिमान करता है कि मेरे कपड़े कितने अच्छे और सुन्दर हैं फिर ज्यों २ वह कपड़े मैले और पुराने होते जाते हैं त्यों २ वह मनुष्य अपने दिल में खेद करता है। आखिर कार इन कपड़ों की कितनी उम्र है यह सुन्दर पोशाक पुरानी होने पर वह मैली और कुचैली दीखती है और पहनने वाले को भी इस से घृणा हो जाती है। फिर वह दूसरी पोशाक बनाने के लिये अन्य वस्त्र को प्राप्त करता है। इसी प्रकार हमारा यह वासना शरीर है। जब यह जूना (पुराना) और मैला हो जाता तो यही हम को दुःख रूप व घृणा कारक हो जाता है। आखिर कार यह जीव जिस प्रकार की सृष्टि में रहता है उसी नियम के अनुसार पुनः नए कपडे अपनी इच्छा भावना वासना के अनुसार मूल प्रकृति से बना लेता है। इस प्रकार यह बार बार अपने वस्त्र बदलता रहता है। वस्त्र जितने साफ और शुद्ध रखे जाते हैं। उतने ही वह अच्छे और पवित्र और आरोग्य वान बना रहता है और वस्त्र पवित्र साफ और अच्छे स्वच्छ होने से हमको सुख दायक रहते हैं।

और जितने यह वस्त्र मैले कुचैले अशुद्ध अपवित्र होते जाते हैं उतने इनका जो असली रंग रूप है उस में खराबी बढती जायेगी। आखिर इतने मैले हो जायेंगे कि इन कपड़ों की पोशाक से हरएक व्यक्ति घृणा करने लग जायेंगे। और और इन कपड़ों में जूवें वगैरा मैले जीवांणु क्रिमियां पड़कर वह पोशाक गल सड़ जायेगी और उसके जरिये से हमारा

शरीर भी रोगी हो जायेगा। इसी प्रकार इसको वासना शरीर कहते हैं। यह शरीर हमारे विचारों के अनुसार हम खुद वखुद बना लेते हैं। जो हमारे स्थूल शरीर के अन्दर वाहिर व्याप्त रहता है। वह अन्तर दृष्टि से देखा जाता है और अन्तःचतुष्टय के संयोग से बन जाया करता है और वे चित मन बुद्धि अहंकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म वासना शरीर अपनी इच्छा के अनुसार अपना २ लालच से बना लेते है।

इसी वासना में तीनों प्रकार के गुणों का आरोग्य होता है और उन गुणों के स्वभावानुसार उत्तम मध्यम और अधम याने सात्विक, राजसिक और तामसिक ये तीन प्रकार के गुण भेदों से इस प्रकृति का भी भेद हो जाता है। और उसी के अनुसार यह वासना पिण्डों में प्रगट होती है जिसको शास्त्रों में कायक प्रकृति कहते हैं। सात्विक प्रकृति सात प्रकार के स्वभाव को व्यक्त करती है। उन के यह नाम है।

१—ब्रह्म काय प्रकृति २—आर्ष्य काय प्रकृति
३—एन्द्र काय प्रकृति ४—यामय काय प्रकृति
५—वरुण काय प्रकृति ६—कुबेर काय प्रकृति
७—गान्धर्व काय प्रकृति

यह सातों के उत्तम योग की हैं। अब राजसअंशों के मध्यमकाय के ६ प्रकृतियों को कहते हैं।

१-असुकाय प्रकृति २ राक्षस काय प्रकृति ३ पैशाचकाय प्रकृति ४ सर्व काय प्रकृति ५ प्रेत काय प्रकृति ६ शाकुनकाय प्रकृति। और यह तीन भेद तामसअंशों की अधम के हैं।

१-पशु काय प्रकृति २ मत्स्य काय प्रकृति ३ वनस्पति काय प्रकृति। इस प्रकार ये १६ कायक प्रकृतियों का संक्षिप्त

में वर्णन किया गया है। परन्तु यह भेद असंख्य प्रकार के जाति भेद से हैं जो प्रत्येक जीव की और योनि की भिन्न २ है परन्तु मुख्य यह ही बताई गई हैं, यह भेद गुणों के अंसों और अहंकार के द्वारा होते रहते हैं। जिनका पूरा वर्णन करना महा कठिन है। इस प्रकार इस कायक प्रकृतियों को जान लेने से चिकित्सक को उनके अनुकूल भावानुसार चिकित्सा करने में बड़ी भारी सफलता मिल जाती है। जिस को जान कर वैद्य चिकित्सा की भैषज की योजना करने में सिद्ध हस्त हो जाता है। जब तक वैद्य कायक वासना की मूल प्रकृति को नहीं पहचानता है तबतक रोग के पहिचानने पर भी रोगी के चिकित्सा की भैषज की योजना नही कर सकता क्योंकि भैषज मूल प्रकृति के स्वभावानुसार हो तो उपयोग हो सकती है वरना नहीं, इस प्रकार एक दृष्टांत है एक राजा की रानी को व्यधि हो गई। तब कैई राज वैद्यों ने उत्तम२ सुगन्धित केसर कस्तूरी अम्बरादि और स्वादिष्ट औषधियों से चिकित्सा की, परन्तु उस रानी की कायक प्रकृति स्वभावानुकूल कुछ भी फायदा नहीं हुआ आखिर वह राजा को अति प्रिय थी जिस से उस की चिकित्सा कराने में राजा को अति चिन्ता हुई। और किसी निपुण वैद्य की खोज कराई गई। इस पर एक निपुण वैद्य मिला उसने उस रानी की चिकित्सा को अपने हाथ मे ली और उसकी कायक प्रकृति का खोज किया गया तो उनको वह कायक प्रकृति के लक्षण मिले। उन पर उन्होंने बहुत अच्छी खट्टी तक्र की (राब) बनवा कर उन को खिलाई और पिलाई जिस से वह रानी स्वस्थ हो गई। जब राजा साहिब ने पूछा कि इसकी चिकित्सा कैसे की।

वैद्य राजा ने कहा कि हम इन की मूल प्रकृति के लक्षणों को जान गये। जब राजा ने पूछा, वह क्या है। उसने उत्तर दिया कि रानी का मूल जन्म.................. इसी लिये इसकी मूल प्रकृति के लक्षण....... ...... जाटों के स्वभाव अनुसार है। इसीलिये यह स्वस्थ हुई है। इसी प्रकार का एक और दृष्टान्त है कि एक गर्भवती की इच्छा अंगूर खाने की हुई और उसको अंगूर उसकी वासनानुसार नहीं मिले। आखिर वह बच्चा पैदा होगया। जब वह बड़ा हुआ तब उसको एक रोग होगया वह रोग अनेक चिकित्कों के अनेक उपाय करने पर भी आराम नहीं हुवा आखिर एक निपुण्य वैद्य बुलाया गया वह बच्चे को देखकर उसकी मां को बुलाया और उसने उसके गर्भ की अवस्था में उसकी मां की वासना इच्छाओं के भाव पूछे उसने अपनी अंगूर वाली घटना को वैद्य के सामने प्रगट की। तब वैद्य ने उसी माफिक अंगूर उस बच्चे को खिलाये जिससे वह बच्चा जल्द आराम होगया इस लिये मूल प्रकृति के कायक लक्षणों को जानने से चिकित्सक को चिकत्सा करने में भेषज की योग मिलाने में कितनी सफलता मिलती है और रोगी तुरन्त आरोग्य हो जाता है। इस लिये वैद्य को कायक प्रकृतियों के लक्षणों को जानना जरूरी बात है। जो वैद्य कायक प्रकृतियों को नहीं पहिचानना जानता है। और चिकित्सा करता है वह ऊसर में बीज बोने के माफिक अपनी भेषज खोता है। इस लिये अब हम उन कायक प्रकृतियों के लक्षणों का वर्णन करते हैं।

ब्रह्म काय के लक्षण

पवित्र सत्य प्रतिज्ञ जितेन्द्रिय सम्यक विचार शिलज्ञान विज्ञान वचन प्रति वचन सम्यक स्मृतिमान काम क्रोध

लोभ मान मोह इर्ष्या हर्ष अमर्ष वर्जित और सरणागत। प्राणियों को सामान देखने वाला इत्यादिक उत्तम लक्षणों वाला ब्रह्म कायक कहलाते हैं।

आर्ष्य काय के लक्षण।

यज्ञ, ध्यान व्रत, होम, ब्रह्म चर्य, अतिथि, पूजाआदि व्रत धारण करने वाला मद, मान, राग, द्वेष, मोह, लोभ और रोष, इन से रहित प्रतिवचन विज्ञान और धारण शक्ति से सम्पन्न को ऋषि काय कहते हैं।

ऐंद्र काय के लक्षण।
(अर्थात् देव काय)

ऐश्वर्यवान ओदय वाक्य (जिसकी बात प्रमाणिक हो) यज्ञ, कर्म निष्ठ शूरवीर, ओजश्वी, तेजश्वी, अक्लिष्ट कर्म कारी, दीर्घ दर्शी धर्म अर्थ काम की प्राप्ति में रत रहने वाले को देव काय कहते हैं।

(याम्य काय के लक्षण) -

कार्य कार्या समीक्षा कारी प्राप्त काल में कर्म करता अंश हार्य्य उन्नति कारी, स्मृति वान, अश्वर्यायलम्वी तथा राग द्वेष मोह से रहित को याम्यकाय कहते हैं ।

(वारुण काय के लक्षण)

शूरवीर पवित्र असुचि द्वेपी यज्ञशी ल जलक्रेरती पिंगल वर्ण नेत्र मुखकेश अनिद्रित कर्मकारी यथा स्थान कोप और प्रशन्नता करने वाला वारुण काय कहलाता है।

(गान्धर्वकाय के लक्षण)

जिसको राग रंग नाच गाना बजाना हसी दिल्लगी प्रशंसा प्रिय लगती हो। जो कथा कहानी इतिहास पुराणों में कुशल हो। जो गंध माला और चन्दन धारण करता हो जो वस्त्र आभूषण धारण करने में रुचि हो और स्त्री विहार में रत हो तथा अनुसूयक हो वह गंधर्व कहलाता है।

इस प्रकार यह उत्तम सत्वांस मन चित्त बुद्धि अहंकार-दिक के संयोग की है। अब मध्यम राजस काय प्रकृतियों को कहते हैं।

॥ असुरकाय के लक्षण ॥

शूरवीर प्रचण्ड स्वभाव वाला असूयक (अपवित्र) ऐश्वरीय वान उपाधी युक्त, ओधरिक (बड़े पेट वाला) क्रोधी स्वभाव वाला अनुकम्पा रहित। आत्म शालाधी भयानक तीव्रकोपी पराये गुणों की निनदा करने वाला अकेला खाने वाला, बहुभक्षी को असूर कहते हैं।

(राक्षस काय के लक्षण)

आमर्षयुक्त अनुबन्ध कोपी (बहुत समय तक क्रोध रखने वाला) अन्तर कपटी छिन्द्र परिहारी (किसी प्रकार का मौका लगने पर घात करनेवाला क्रूर कर्मी अति भोजी मांसा हारी निन्द्रा करने वाला अधर्मी परिश्रमवान अत्यन्त ईर्षा द्वेषकरने वाला को राक्षस कहते हैं।

(पिशाच काय के लक्षण)

सब अधम लोलुप परस्त्री गामी एकान्त वासी अत्यन्त भोजी अपवित्र डरपोक दूसरों को डराने वाला विकृत झूठा

खाने वाला अत्यन्त भोजी अपवित्र डरपोक, निर्लज्ज घातकी कुटिल व्यभिचारी निर्बुद्धि नीच कर्मी अकर्म कर्म करने वाला रात्रिगामी चोर हिंसक को पिशाच कहते हैं।

(सार्प काय के लक्षण)

जब अशुद्ध चित्त में अधम मन और अधम अहंकार अधम बुद्धि के संयोग से क्रोधी भीरु तीक्ष्ण स्वभाव वाला मायावी झूठा आडम्बर फैलाने वाला आचार और विहार में चपेल स्वाद् वाले को सार्प काय कहते हैं।

(प्रेतक काय के लक्षण)

जो मध्यम चित्त के साथ में मध्यम मन मय अहंकार और अधम बुद्धि के संयोग से जो उत्तम मध्यम को न जाने जो भक्ष्य भक्ष को न जाने आलसी दुःख सहने वाला मूढ़ निन्दा के योग लोलुप्त लोभी जो कच्चे अन्न मांस को खावे वह प्रेतकाय है।

(शाकुन काय के लक्षण)

जब मध्यममन मध्यमचित्त मध्यमाकाँर और अधय वुद्धि के मेलसे वनी है। सदेव कामना करने वाला कामी बहुभक्षी बहुत भ्रमण करने वाला चपलये पक्षी काय कहलाते हैं।

अब अधम तामस के भेद कहते हैं।

(पशु काय के लक्षण)

अधम चित्त अधम मन अधम अहंकार अधम वुद्धि के संयोग से जिसकी बुद्धि दुष्ट हो मन्द हो जो कहने को न माने जो स्वप्न में मैथुन करे जिसको कोई काम करने की इच्छा न हो उसको पशु कहते हैं।

(मत्स्य काय के लक्षण)

मूर्ख हो जल विहार अच्छा लगे बुद्धिचल विचल हो जो आपसे एक दूसरे का मर्दन न करते हों वह मत्स्य कहलाता है।

(वानस्पति काय के लक्षण)

केवल आलसी केवल खाने के निमित्त कारण रखने वाला सब प्रकार से जड़ बुद्धि को वनस्पति कहते हैं।

इस प्रकार इनका वर्णन किया गया है जो चिकत्सक के बड़े मतलब का है।

ये वासना शरीर केवल स्थूल में ही नहीं बल्कि सूक्ष्म में भी है। और प्रणों में भी है। इसका आकार रंग रंगीला इन्द्र धनुष के आकार का है उसमें आकार के रंग हमारा विचारानुसार बदलते रहते हैं। जिससे यह साफ विदित हो सकता है कि यह मनुष्य किस २ प्रकार की वासना का भाव रखता है। इसी के द्वार अस्थूल शरीर का जन्म और कार्य व्यहार होता हैं।

हमारे रूप रंग आकार विकार उत्तम मध्यम अधम के भेदों का यही वासना है। इसी को कहावत में कहा है कि जहां आसा वहीं वासा सो ठीक है। हमारे जन्मान्तरों की आवरण पोशाक ये ही वासना शरीर है।

॥ इति वासना शरीर ॥

स्थूल शरीर

अर्थात

मूर्ति पिण्ड

प्रकरण द्वादश

इस छाया शरीर के ही द्वारा स्थूल की योजना होजाती है। वह वासना की आकृति (मूर्ति) को धारण करती है। जैसे दूध से दही जमाते हैं। इसी प्रकार छाया शरीर ही वासना के ज्ञान द्वारा स्थूलता को प्राप्त हो जाता है। इसी को सयोनी शरीर कहते हैं। जो माता पिता के योनी के मैथुन द्वारा संगठित होता है। और माता पिता के ही अनु-रूप स्पर्धा किया करता है। यही हमारे अन्नमय भूलोक का भूगर्भ कोष है। यह अन्नमय जीवांणु के स्वभाव की रचना द्वारा बनाया गया है। ये जीवांणु सूक्ष्म से सूक्ष्म यंत्रों के जरिये से भी नहीं प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। ऐसे असंख्यात। जिवाणुओं की रचना सेवना हुआ यह स्थूल शरीर है। इन जीवाणुओं के प्रत्येक व्यक्तिगत जीव को अपना अपना स्व-ज्ञान भान है। उसी अपने ज्ञान से वह जीव हमारे अहार में से अपनी आवश्यक्ता के अनुसार अपना स्वभाविक अहार लेलेते हैं। और उस अहार का परिवर्तन कर अपने अणुमय शरीर का संगठन करते हैं। जिससे हमारा स्थूल शरीर संग ठित होता रहता है ये ही जीवाणु अपने २ आविष्कार के माफिक हमारे अहार में से अपना २ भाग लेकर हमारे स्थूल शरीर को धातुओं को एक जगह रक्त दूसरी जगह मांस तीसरी जगह मज्जा चौथी जगह वसादि धातुओं कोउत्पन्न

करतेरहते हैं। और प्रत्येक शरीर के अंगों व अवयवों को अपने २ स्थानों में क्रियाकर्म के कार्यों का काम येही किया करते हैं। यह काम ये जीवाणु अपनी मर्जी से स्वयं अपने स्वभावानुससार करते हैं। क्यों कि यह काम हमारी आज्ञा के बिना अपने आप करते हैं। जैसे हमारे स्थूल शरीर ने किसी जगह पर यदि जख्म पड़ जावे अथवा हड्डी टूट जावे तो उसको जोड़ने, घाव भरने व उस जगह पर नवीन मांसांकुर पैदा करने का काम यह अपने आप करते हैं। इन जीवों की कारीगरी और हुनर की हमको कुछ भी मालूम नहीं पड़ती है जिसका कारण यह है कि हमारे में हूं इस बाहामय प्रत्यक्ष ज्ञान से इनका ज्ञान जुदा प्रकार का है। और हमारे प्रत्यक्ष अज्ञानुकूल यह काम नहीं करते हैं। वह स्वयं अपने स्वभाव स्वभानानुसार करते हैं। यदि इनके ऊपर अपनी आज्ञा का सयंम किया जाय और ये हमारी आज्ञा की हुकूमत के ताबे में आजावें तो फिर क्या कहना है अष्टादश सिद्धियों हमारे सामने खड़ी हो जावें और हम मृत्युजीत हो जाने में क्या सन्देह है। हां इन पर हमारी, हकूमत जम सकती है परन्तु उसके योग का ज्ञान और अभ्यास के द्वारा हो सकता है।

यह माता और पिता के संयोग योनी से बना है। इस शरीर को जीयात्मा अपने आप नहीं बनता। परन्तु यदि वासना और छाया शरीर पर हमारी हुकूमत हो जावे और पंच भूतों को भी हम अपने अधिकार में करले तो हम हमारी इच्छा के माफिक भी स्थूल शरीर बना सकते हैं। और उस को काम में भी लासकते हैं। यह काम हम कर सकते हैं। परन्तु इसकी क्रिया के अभ्यास से यह कार्य बन सकता है।

हठ योग विद्या में से स्थूल शरीर का आकर्षण विकर्षण होता है। और उसकी क्रिया भी बताई है। जब हम स्थूल भूतोंके परमाणुओं पर अपना अधिकार जमा लेने से उनभूतों को जब चाहें जब उनको परिवृतन कर देवें। इसी प्रकार से जोइन स्थूल भूतों पर अपनी विजय पताका की हुकूमत जमा लेता है। वह इस स्थूल पिण्ड को प्रकट कर सकता है। चाहेजब मिटा सकता है। इस लिये अब इसे यहां ही खतम कर इसके आगे सिद्धी स्थान को बतावेंगे।

॥ इति स्थूल पिण्ड ॥

सातमा सर्ग

अध्याय पहला

(सिद्धी स्थान)

(प्रकरण पहला)

जिज्ञासू-हमने ब्रह्म अद्वेतावाद और माया प्रकृति पुरुष और जड़ा अद्वेतावाद परमाणुओं की रचना आदि का ज्ञान और पिण्ड ब्रह्मण्ड का ज्ञान और सप्त पिण्डों का ज्ञान और आपके, विज्ञान को जाना परन्तु इतना जानने पर भी इनका क्या फल है इसको जानने से क्या सिद्धियां और क्या सिद्ध हो सकता है क्यों के इतना जानने पर कुछ न कुछ सिधी

की प्राप्ती अवश्य होनी चाहिये । इस लिये हमारीजि-
ज्ञासा है, कि हमको इसकी फलकी प्राप्ती कराइयेगा।

उत्तर —ऊपर जो पदार्थों का ज्ञान आपको कराया गया है
उनकी 'सिद्धि' अवश्य होनी चाहिये । विना फल ये
सब ज्ञान निर्थक है, जैसे विना फल का वृक्ष अथवा
विना सन्तान का ग्रहस्थ इसी प्रकार से विना सिधी
यों के यह सब ज्ञान निस प्रयोजन केवल विर्था का
श्रम ही है । इस लिये इसका फल अवश्य प्राप्त
करना चाहिये अब इसके फल की प्राप्ती के सिद्धा-
न्तों का वर्णन करेंगे ।

परमाणुवाद जो जड़ा अद्वैतवाद के अन्तरगत है, उनमें
पदार्थों का पता अवश्य लगाया गया है और साँख्यावाद जो
द्वैतवाद है वह पदार्थ के अन्दर पहुंचकर पता लगाता है कि
पदार्थ के अन्दर प्रकृति भरी है परन्तु प्रकृति में क्या भरा है?
जिसका पता सांख्या नहीं लगा सका इस सिधान्त से क्या
सांख्या क्या पदार्थ वाद दोनों फल कि प्राप्ती से रहित है ।
पदार्थवादी वृक्ष का पता लगाते हैं, और सांख्यावदी उस वृक्ष
की मूल (जड़) का पता लगाते हैं । परन्तु फल जो है वह
मूल और वृक्ष दोनों से जुदा है, सारे वृक्ष को और जड़ को
चीर कर यदि देखा जाय तो फल कहीं नहीं मिलता है इसी
प्रकार यदि प्राणी वर्ण में भी नर अथवा नारी (मादी) दोनों
को चीर कर देखा आवे तो बच्चा कहीं भी नहीं है । फिर
नर और नारी से बच्चा कैसे पैदा होता है ! इससे साबित
होता है कि फल की सिधी दोनों वादियों से जुदी है परन्तु
फल न तो वृक्ष से जुदा है, न मूल से जुदा है । बच्चा न तो

नारी से जुदा है न नर से जुदा है, क्यों कि फल वृक्ष पर ही लगता है और वृक्ष मूल के ही आधार पर है, इसी प्रकार बच्चा नारी के ही गर्भ में रहता है और नारी नर से गर्भ धारण करती है इस लिये बच्चा न अकेली नारी ही पैदा कर सक्ती हैं न नर ही पैदा कर सक्ता है फिर भी बच्चा पैदा होते देखा जाता है। आपही बताइये कि बच्चा किस में हैं।

बच्चा योग में है अगर योग न होतो फल प्राप्त हो नहीं सक्ता क्योंकि जब तक नर नारी का 'योग' अर्थात् संयोग जब तक नहीं होता तब तक बच्चा नहीं होता है। इस लिये सम्पूर्ण फल योग से होते हैं। और योग वियोग सम्पूर्ण पदार्थों का होता है। इस लिये पदार्थों की योग से सिद्धि होती है। इस से यह सिद्ध होता है कि पदार्थ मात्र में सिद्धि समाई हुई हैं वह सिद्धि योग के द्वारा साधक को प्राप्त होती है।

सृष्टी का प्रत्येक पदार्थ दो वर्गों में रहता है एक सिद्ध और दूसरा असिद्ध। जो सिद्ध पदार्थ हैं वह तमाम योग के द्वारा सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं। विना योग के वह सिद्ध हो ही नहीं सक्ते। असिद्ध पदार्थ है वह प्रकृति के द्वारा बनते है। और योग के द्वारा सिद्ध अवस्था को परिणित होते रहते हैं। सिद्ध अथवा असिद्ध दोनों पदार्थ अवस्था के भेद है। अर्थात् क्या सिद्ध अवस्था क्या असिद्धावस्था ये पदार्थ मात्र की है। इसी को भगवान वषिष्ट ने राम चन्द्रजी को उपदेश देते वक्त कहा है कि पदार्थ में सिद्धि समाई हुई है : इस सिद्धान्त से पदार्थ में सिद्धि का होना साबित होता है। यह बात निर अपवाद से मानने योग्य भी

है के पदार्थ के योग में ही सिद्धी है विना योग के सिद्धी हो नहीं सक्ती।

अब पदार्थ के ही अन्दर खोज करने की जरूरत है। तो पदार्थ के मूल तत्व में क्या भरा है, यदि पदार्थ के मूल तत्वों को खोज करने को लग जाय तो हम को विभाजीत, और विशलेष्ण कि युक्ति से यह सिद्ध होता है, कि पदार्थ में प्रकृति भरी है, और यदि यह पुछा जाय कि प्रकृति वादियों से प्रकृति के अन्दर क्या भरा हैं ? तो प्रकृति और जड़ बादियों के विज्ञान का भान (सूर्य) अस्त हो जाता है ? क्यों कि प्रकृति के अन्दर भी कुछ न कुछ भरा होना चाहिये। यह प्रकृति वाद की अन्तिम चर्म सिमा है, वह प्रकृति के आगे नहीं पहुंचते। इस लिये पदार्थ आदि दोनों के सिधान्त इस प्रश्न के सामने लुप्त हास हो जाते हैं।

प्रकृति के अन्दर का पता लगाना महा मुशकिल है, क्यों के प्रकृति के अन्दर ऐसा तत्व भरा हुवा है, जिसका पता सिवाय योग वैताओं के औरों को लग ही नहीं सक्ता क्यों के योगी ही प्रकृति के अन्दर स्वतंत्ररूप से पहुंच जाते हैं तो फिर पदार्थ का तो कहना ही क्या है।

जिज्ञासू—आप हमको शिघ्राति शिघ्र !! यह बताइये की प्रकृति में क्या भरा है ? इसको तो आजतक हमने नहीं सुना इस ज्ञान को तो बड़े बढ़े पण्डित शास्त्री अथवा विज्ञान वैता भी शायद ही जानते होंगे इस को जानने की हमारी पूरी जिज्ञासा है।

उत्तर—लीजिये इतने क्यों आतुरमा होते हो हम आपको प्रकृति में जो भरा है, और जिसके जरिये से प्रकृति

स्वं लिलाओ को करती है और पदार्थों को भी उत्पन्न करती है। लिजीये वह पदार्थ है। विचार! विचार!! विचार!!! यही प्रकृति की रचना का निदान एवं उसकी गती का संचालक और उसकी विचित्र लीला, उसकी विचित्र कृति, प्रेणा भावों का सम्पादन करने वाला यह 'विचार' ही है। यह अत्यन्त कठिन अत्यन्त दुर वोध एवं अत्यन्त अगम्य पाठ है। इस लिये हम आपको पहले इस विचार की ही सिद्धियां विचार का ही संस्कार और विचार का ही परिशीलन कर विचार के ही योग का निदान बतलावेगे।

प्रकरण--दूसरा

विचार का निदान।

मनुष्य मात्रा अथवा प्राणी मात्रा के मस्तिष्क में विचार शक्ति का केन्द्र स्थल है। उसमें से -किये हुए विचारों की किरणें निकल कर भौतिक, जगत में चारों तरफ फैलती हैं। उनके सूक्ष्म वतुलाकार बन जाता है, और जैसे हमारा विचार का ध्याम होता है। वैसाही तद् स्वरूप का विचारा आभास होकर सूक्ष्म प्रतिम्बिभित वनकर चित्त की भीती यानि चित पर संस्कारित होकर अंकित हो जाते हैं। वही हमारे जन्मात्रों के कर्मरूप प्रारब्द् सच्यमान होते रहते हैं और क्रियामान हो जाते हैं। इस प्रकार विचार शक्ति का तीव्र वेग संस्कारआत्मक, गुणात्मक,द्रव्यात्मक, भावनात्मक,

संवेदनात्मक, क्रियात्मक, होते ही उसका चित भित्ती पर आघात होकर तदाकार विचार चित्र खींचकर उसका मूर्त स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है।

इस सिद्धांत को पाश्चात्य विद्वानों ने प्रत्यक्ष करके दिखाया है? डाक्टर वैरड्ने फोटो की प्लेट पर विचारों की आकृति का फोटो उतार कर देखा है, और पता लगाया तो फोटो लेते वक्त जैसा २ विचार पर दृढ लक्ष लगाया जाता है, वैसा २ ही प्लेट पर सूक्ष्म अभ्यास रूप आकृति बन जाती है डाक्टर ने फोटो लेते वक्त अपने एक पक्षी पर लक्ष जमाया और फोटो लेकर प्लेट को धोई तो उस में उस पक्षी की धुंन्धली आकृति देखी गई। बल्के और भी इस के अलावा मृतक आत्माओं को विचारों के द्वारा बुलाकर उन के भी फोटो लिये जाते हैं। इससे विचारों की आकृति का निदान स्पष्ट प्रगट होगया जिस के मानने में अब कोई सन्देह नहीं है।

प्रकरण--तीसरा

विचार संस्कार।

विचार यह सब बलों का महा बल है। विचार आंतर सृष्टि में पूर्ण वर्णित आंतरिक रचना में जीवांणु भूत है। स्थूल के हर एक पदार्थ के मूल में प्रकृति है परन्तु आंतर सृष्टि के मूल भूत प्रकृति के भी मूल में विचार संस्कार भरे हुवे हैं। विचार ही प्रकृति को सुलभ सुबोध एवं सुगम्य करते हैं। अनन्त काल से जीर्ण विशीर्ण विस्तीरन बने हुए वन पर्वत नदी समुद्र रूप पत्रों पर विश्व देवता ने जो कुछ

इतिहास लिखा है उस को सिवाय विचार संस्कार के कौन व्यक्त कर सकता है विचार ही से गुणों और तत्व के संघट्टन विघट्टन कर सकते हैं और परस्पर विरोधी शक्तियों को विचार के द्वारा ही अनुकूल कर सकते हैं, और अन्यान्य प्रकार के व्यापार द्वारा कार्य उत्पन्न करते हैं कार्य कारण की यह शृंखला से कार्य की परमपरा को सूत्र बद्द करता है। पदार्थों की गुढ़ शक्ति को प्रत्यक्ष करता है, और उसकी व्यवस्था लाई जाती है। रसायन शास्त्र का भी विचार से पदार्थों का पृथ्थकरण होता है, और उसके मूल तत्वों का निदर्शन होता है। विचारों के द्वारा ही विधु को ऊपरसे नीचे गिरा सकते हैं, अग्नि को और विधु को हाथ में लेकर नचा सकते हैं और 'विधु' को प्रगट कर रोक सकते हैं। विचारों के ही बल पर सूर्य की किरणे (रशमियों) को रज्जु की भांति हाथ में पकड़ कर उन की रूप रेखा बना सकते हैं। उनमें से भव्य तेजपुञ्ज कणीकाओं का पृथ्थकपसार करा सक्ते हैं विचार ही जड़ परमाणुओं को सचेत न कर सकता है। विचार ही प्रत्येक भाव की वरण माला बनाता है। उसमें भावों को संगठीत करता है, और उनको प्रगट करके प्रत्यक्ष अपना अस्थित्व दिखाता है। विचार प्रमाणुओं में व्याप्त होकर अजीवन में जीवन का प्रयोजक बन सकता है। विचार ही अन्दर बाहर सर्वत्र पसार पाता है। विचार के ही बल मनुष्य नित्य नवीन योजना और नवीन योजना का नवीन आविष्कार शास्त्र इतिहास नीति नियम धर्म कला कौशलता आदि सब का आंतर जीवन विचार ही है। इस भुमण्डल में मनुष्यों से बढ़कर कोई नहीं है, और मनुष्यों में विचार से बढकर कोई बल नहीं है। मनुष्यों में बल ही विचार है।

विचार से बढ़कर सृष्टि सत्ता में किसी की भी हस्ती नहीं है। विचार ही जीवन सत्ता का परेक है, जो कुछ भी जीवन में प्रयोग होता है, उसका पिता ही विचार है। विना विचार के किसी भी प्रयोग की सिद्धि हो नहीं सक्ती है।

प्रकरण चोथा

(विचारों की उत्तपति)

ब्रह्माण्ड के अन्दर स्र्व व्यापक तत्व रूप से अखण्ड ब्रह्म भरा हुवा है। उसी तत्व को मनुष्य अपने मस्तिस्क में आ कंष्ण करके मन बुद्धि चित अहंकार आदि अन्तःकरण में अपनी वासना भावना रूप से विचार उत्पन्न करते हैं, और उन उत्पन्न विचारों का प्रवाहा निकलता है उसके तरंग अव्याहत शक्ति से इथर Ether में प्रवाहीत होकर मनुष्य मात्र के विचारों को प्रगट करता है और विचारों की छाप जड़ चेतन और अन्तर बाहिर सृष्टी में नियमित काल तक लुप्त न ही होने पाती।

इसी प्रकार हम अपने शरीर में जो कुछ कर्म क्रिया कार्य करते हैं उसकी छाप वातार्वण में कि जो एक अतियन्त प्रच-ण्ड अनन्त पदार्थों पर अंकित होती है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमान फोनोग्राफ है। जिस प्रकार हम ऊंचे नीचे स्वर से बुरे भले शब्दका उचारण करते हैं, उनकी छाप रेकार्डों पर पडकर प्रत्यक्ष वेही शब्द उसी स्वर में सुनाई देते हैं। इतना ही नहीं किसी मनुष्य का शब्द पहीचानने वाला जब रेकार्ड सुनता है, तो फौरन पहचान जाता है कि यह शब्द अमुक मनुष्यका है।

ग्रहण कर सकता है। तो फिर आन्तर जगत में वह शब्द अनन्तकाल तक रहने में क्या संदेह है यही विचारों की उत्पत्ति संस्कार है।

प्रकरण पांचवा

(विचार की दो क्रिया)

विचार से मस्तिष्क में एक प्रकार का आन्दोलन उत्पन्न होता है उस आन्दोल की दो प्रकारकी क्रिया सिद्ध होती है। एक क्रिया रूप और एक सच्य रूप है। क्रिया रूप मन की प्रक्रिया की गति को कर्मेन्द्रियों में सिद्ध करती है जिससे शरीर की कर्मो की क्रिया सिद्ध होती है। और संच्य रूप बुद्धि की ज्ञान के विचारों को ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार को सिद्ध करती है जिससे हमारे कर्म ज्ञान की व्यवस्था में चलते रहते हैं। इस प्रकार हमारे ज्ञान और कर्मो की सिद्धि होती रहती है। और हमारे विचारों की भी दो हालत हमारे रात दिन के व्यवहार में आती हैं एक संशयमान और दूसरा निसंशयमान इस प्रकार से विचार की दो हालत होती हैं जैसे विजली के दो तार होते हैं नेगीटीव और पोजिटीयु(Negative and Positive) इन दोनों प्रकार के विचारों को मनुष्य अपने २ विचारों को आर्कपण जुदी २ प्रकार से कैसे कर सके हैं इनको अब बतलाते हैं(संशयमान)याने शंका समाधान वाला जो थोड़ी थोड़ी दूर में बदलने वाला और दूसरा शंकारहित याने न बदलने वाला(निसंशयमान)अटल है। अब यह विचा-

रिये कि ये दोनों शरीर में उत्पन्न होकर किस किस्म का आर्कषण विर्कषण करते हैं। जब मन अपने निसंशयमानकेन्द्र में जाकर विचार करता है, जब हमारे में हिम्मत खुशी आनन्द इत्यादि उत्पन्न होते हैं और धारणा स्मृति प्राप्त होकर कॉक्षाओं पर उतारू होने में शक्ति शाली बन जाते हैं।

जब संशयमान केन्द्र में मन जाकर विचार करता है, तब उन विचारों की हालत भोली भाली मूढ, अज्ञानी, अविवेकि, डरपोक, दहसत वाली और भयातुर, शंका, समाधान वाली, चंचल, भ्रम, डामाडोल, उतावली, अधूरे मत वाली, परिवर्तन शील बन जाती है। ऐसे विचारों की शक्ति निर्बल बनाने से निसशयमान विचारों वाला उसपर सत्ता जमा लेता है और निसंशयमान वालों के हुक्म के ताबे में फरमाबरदार बना रहता है। इस लिये मनुष्य को चाहिये के वो अपने विचारों को निसशयमान बना लेवे।

जो मनुष्य सुख प्राप्त करने का अभिलाषी है उसको हर एक दशा में निसंशयमान होना जरूरी बात है। ऊपर दर्शाये प्रमाण जो मनुष्य अपने विचारों को दो परस्पर एक एक पर अपना २ आर्कष्ण करते हैं जिस से निर्बल बिचारों के संशयमान मनुष्य सब के प्रति शरणा गत होते हैं परन्तु किसी वक्त निश्चयमान विचार वाले भी अपने आप संशयमान विचार वालों के साथ में खुद भी संशयमान बन जाते हैं और उसके दबाने वालों को भी दबाते हैं, इस प्रकार बहुत बार हो जाता है। इसका कारण यह कि वो निसंशयमान किसी स्वार्थ के वस अथवा संसर्ग या भय से या किसी संवेदना से होते हैं और कोई वक्त बहुत मनुष्य जो के

संशयमान विचार वालों के साथ होने से वे अपने आप जानकर होशियारी चालाकी के साथ अनिसंचय मान होकर अपना बचाव निकालते हैं ।

हर एक मनुष्य एक दूसरे के प्रति सहयोगी अथवा असहयोगी हो सकता है। जबकि दो मनुष्य आपस में मिलते हैं तब दोनों की अन जान दशा में एक दूसरे की तरफ आकर्षण एक दूसरे के प्रति करते हैं। इन में जो असहयोगी होते हैं (निसंशय मान) जिन के हरएक शब्द सहयोग मानते हैं। जो दोनों एक ही तरह के होंतो कदापि एक मत नहीं हो सकते हैं और वह बात २ में लड़ पड़ते हैं और अपनी जिद् पकड़ रखते हैं।

इस जमाने में अपनी जिद् के पक्षपात वाले बेशुमार मनुष्य हैं। जिन में विद्वानों की गणना करनी मुश्किल है। और विद्वानों ने ही इस की गणना की है। इस प्रकार मनुष्यों के चढती उतरती दशा संसार व व्यवहार में किसी भी किसी में जो जैसा याने राजासे गरीब तक जैसा जिसका दोर दमाम रहता है उसीके आधार पर मनुष्य बन जाते हैं। जैसे शिकारी शिकार सीखने के वक्त प्रारंभ में जैसा संशय मान दिल रहता है फिर वह अभ्यास के करते २ अनुभव प्राप्त कर लेने पर वो शिकारी कैसे भी भयानक जानवर के शिकार के मुकाबले से निसंशयमान हो जाता है।

यह प्रकृति का नियमानुसार हरेक चढ़ती पंगती के प्राणीयों से निर्बल प्राणी डरते रहते हैं। जैसे साधारण पंगती के मनुष्य राजा या अन्य कर्मचारियों से डरते हैं।

उसी प्रकार गरीब, धनवान से चोर सिपाई से बालक बाप से इत्यादि। यही विचार की दो क्रिया हैं।

प्रकरण—छठा
(विचार की कल्पना)

बुद्धि का अधिकार दर्शयादर्श पर सामान है तोभी दर्श व्यापार का मूल पदार्थ विज्ञान है। अदर्श व्यापार का मूल तत्व विवेक है। नियामक कार्य अपनी इच्छा के अनुसार विचारों को उत्पन्न कर उन पर अधिकार संस्कारों को प्रगट करता है। इस प्रकार बुद्धि 'स्वमेव स्मय' कि नियामक होती है। अपने स्वभाव पर जो पूर्ण अधिकार कर लेता है, तब उसके वह वसीभूत होकर बुद्धि अवश्य विचारों का विस्तार करती है,किन्तु जिस विषय पर उसकी प्रवृति होती है वह भिन्न है तोभी विचारों के अनुसार जो व्यापार होता है उनके दो स्पष्ट विभाग हो जाते हैं। जिस को हम पदार्थ विज्ञान और तत्व विवेक कहते हैं। पदार्थ विज्ञान अक्षर की सीमा तक पहुंच सकता है और तत्व विवेकउस पदार्थ के अन्दर व्यापकता से गुणों और प्रकृति तक पहुंच जाता है।

विचार, विचार की शक्ति,विचार का संयम, विचार का संस्कार अर्थात मिट्टी, मिट्टी का गारा, गारे का घट, घट का अग्नि संस्कार जो मिट्टी के परमाणुओं को पका कर घट को उपयोगी बनाता है। उसी प्रकार विचारों का भी परि-

पक अवस्था है जैसे परावाणी से विचार उत्पन्न होकर पश्-
पश्चयन्ति में प्राणागत होकर शक्ति सम्पन्न होते हैं.यदि उनका
संयम वहीं हो जाता है अर्थात् उसकी दो धारा होने नहीं
पाती है तब उसका मध्यमा में संस्कार हो सक्ता है वरना
पश्चयती देखती है और वैखरी बोलती है अन्य विचार
जिनका संस्कार न हो वह कच्चे घडे के तुल्य वहींलय
हो जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि संस्कार हो जाने से घटके
अणु पक्के बलवान हो जाते हैं वैसे ही विचारों की कल्पनाओं
का संयम होने से विचार पक्के दृढ़ हो जाते हैं और कल्प-
ना में लीन नहीं होने पाते हैं। और कल्पना की वासना द्वारा
अपनी रचना रचलेते हैं। जिससे विचार पदार्थ के मुर्त
परिमाण को प्राप्त होते हैं।

प्रकरण सातवां

(विचार परिशीलन)

विचार के विदुन बड़े बड़े ग्रन्थ लेख कविता आदि कोरे
कागज है। प्रतिक्षण हम जो कुछ विचार करते हैं या बोलते
हैं उनकी छाप प्रत्येक जड चेतनके पृष्ठ भागपर ही नहीं
पडती है वलके पदार्थों के अन्दर प्रवेश करजाती है और वह
नियमित काल तक लुप्त नहीं होती है। जब जड निरजीव
पदार्थ वाणी संस्कार को ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रति ध्वनी
होती है भला सूक्ष्म और सजीवन पदार्थों का अत्यन्त सूक्ष्म
विचार के स्फूर्ण के तरङ्ग परासे आकाशय द्रव्य द्वारा धारा
प्रवाहित होकर उनके संस्कारोंकी छाप अनन्त काल तक

रहने में क्या आश्चर्य है हम जो जो विचार करते हैं अथवा शब्द बोलते हैं उनके संस्कारों को तत्काल वातावर्ण ग्रहण करलेता है और प्रकृति के अन्दर अव्यक्त रुपसे प्रवेशकर जाते हैं विचारों की छाप मकान दीवारों दरवाजों खिड़कियां छत जमीन पत्थर ईंट रास्तों की जमीन कंकर वृक्ष पशु पक्षी कीट आदि जड़ चेतन्य पदार्थों पर भी अंकित होकर अनन्त काल तक रहती है।

इन अनन्त असंख्यात पदार्थों पर पडनेवाली छापके चित्र प्रत्यक्ष दिखाने के लिये अभी तक कोई भी आविष्कार कर्त्ताओंने कोई यन्त्र निर्णय नहीं किया तो भी यह बात योग अभ्यास की सिद्धि से होसकती है। इसके सिद्ध करने के कुछ प्रयोग बताये देते हैं।

लगातार कई वर्षों तक विचार की क्रिया शक्ति का निरुध करके संयम करके खूब अनुभव लेने और अभ्यास करने पर सिद्ध किया जासकता है कि इस प्रकार से विचारों की जानने की शक्ति प्रत्येक मनुष्य में है किन्तु जब तक उस शक्ति का अभ्यास नहीं किया जावे जबतक वह प्रत्यक्ष नहीं हो शक्ति है।

प्रयोग—किसी मनुष्य को स्थिर बैठाकर या सुलाकर कोई वस्तु वस्त्र या मीठी का टुकड़ा कि जिसका इतिहास या जिसको कोई बात या चीत व प्रयोग करना नहीं जानता हो—प्रयोगी की आंखे मूंदकर चित्त स्थिर करके उसकी भृकुटीपर वह वस्तु लगा देनी चाहिये और उसको अच्छी तरह कह देना चाहिये कि और किसी भी बात का

संकल्प विकल्प न करे ठीक उसी वस्तु पर लक्ष जमा कर स्वतंत्र रीति से जो विचार तरङ्ग उत्पन्न हो उनको कहता रहे और सुनने वाला उनका मिलान लिखकर मिलाता रहे ऐसे कुछ समय तक अभ्यास करने से उस साधक को विधेय की शक्ति निरुध होके उस वस्तु का भूत कालिक वृतान्त वह कह सकेगा किसी घरमें पुर्वकाल में जिन जिन मनुष्यों का निवास उस मकान में हुवा हो उन उनके आचार विचार घटना आदि की छाप दिवारों पर या अन्य स्थलपर पढकर जो चित्र खिचें हुवे हैं उनको यह विचार सिद्धिवाला मनुष्य बता सकता है।

प्रकरण–आठवां

(संयम का वर्णन)

विचार सिद्धि का मुख्य ज्ञान संयम है जब तक साधक संयम के ज्ञान को नहीं जानेगा तब तक किसी भी प्रकार की तत्व विवेक सिद्धियों को नहीं कर सकता है प्रत्येक विचार सिद्धि का मुख्य हेतु संयम ज्ञान ही है इसी सयम के वल से ही प्रत्येक सिद्धि पर मनुष्य अपना अधिकार जमा सकता है। और उस सिद्धि की साधना करके स्वयं सिद्ध बन सकता है। इसलिये सिद्धियों को साधने वाला प्रथम संयम को साधे वरना विना संयम के न तो विचार सिद्धि न मंत्र सिद्धि न तत्र सिद्धि न यत्र सिद्धि कोई भी सिद्धि संयम के सिद्ध किये विदुन सिद्ध नहीं हो सक्ती है। इसी लिये प्रथम संयम को ही सिद्ध करना परम आवश्यक है। यह समझ कर हम प्रथम संयम का ही प्रतिदान कर देते हैं।

(संयम शब्द की परिभाषा)

संयम क्या वस्तु है। इस शब्द के अन्तरगत क्या शक्ति समाही हुई है? सयम किसको कहते हैं? इसकी क्या महिमा है? इत्यादि आप को मैं बहुत संक्षिप्त में समझाये देता हूं।

संयम शब्द में (यम) धातु है जिसका (सम) उप सर्ग लगाने से (संयम) शब्द बनता है। (यम) धातुका अर्थ होता है निग्रह करना माने किसी पर अधिकार जमा- लेना और सम, उपसर्ग का अर्थ समुच्चयता सूचक है। यह अर्थ संयम शब्द से यह ही अर्थ निकलता है यह संमय शब्द की प्रिभाषा हुई। इस संयम शब्द की महिमा भगवान पातञ्जली ने अपने पातञ्जली योग दर्शन में इसका पूरा वर्णन किया है अधिक देखना होतो पातञ्जली सूत्र देखो अब हम इसका स्वष्ट उदारहणों से वर्णन करके समझावेंगे।

जब हम किसी पदार्थ पर अथवा किसी भी विषय पर लगातार (सतत) रूपसे उत्पन्न विचारों को निग्रह (इकट्ठे) करके उस लक्ष पदार्थ पर मनके योगकी वृति द्वारा फेंकना और फेके हुवे विचारों को वहां ही तदाकार तन्मय मुर्थ स्व- रूप करना, विचारों को उत्पन्न कर करके तत्कालिन उनको चित्त के पड़दे पर निशाना लगाने की तरह पर लक्ष बंध करना और मन की वृति का विचारों के साथ (सम) याने बराबर रखना ही सयम कहलाता है। जिस प्रकार शिकारी या धनुष धारी अपने धनुष को अपनी कबान पर चढ़ाकर निशाने का बेध करता है ठीक उसी प्रकार चित्त रूपी चाप पर विचार रूपी बान लगाकर वृति रूपी धनुंञ डोरी से

विचार रुपी बानों को संयम से लक्ष निशाना लगाया जाता है। इसी प्रकार विद्युत (बिजली) की भी प्रक्रिया है। अब उसको बतलाते हैं बिज‧ली के उत्पादक यंत्र को डायनेमा कहते है वह बाह्म्य सृष्टिमें वायु में से चलते हुवे विद्युत परमाणुओं को पकड़ कर (निग्रह) करके उस यंत्र को लगातार वेग से घुमाने से विद्युत कण (सयम) इक्ट्ठे बराबर होकर वह विद्युत कण (इलेक्ट्रोन) तदाकार मुर्थ स्वरूप बन कर क्रियामान हो जाते है फिर अगर उन विद्युत कणों को एक बेटरी में (संयम) चार्ज, निग्रह, करके उनको इच्छित अनुसार कार्य सम्पादन कर लेते हैं। जिसके द्वारा मोटर वायुयान प्रकाश आदि अनेक कार्य लिये जाते हैं। इसी प्रकार हमारा मस्तिष्क के अन्दर मन रूपी डायनेमा है वह घूमने से विचार रूपी विद्युत कण प्रगट होते है फिर उन उत्पन्न हुवे विचारों को संयम करके लक्ष रूपी ध्यान धारणा और समाधी रूप बैटरी में भर कर (निग्रह) कर के इच्छित पदार्थों की सिद्धियों का कार्य कर सक्ते है। विद्युत के प्रकाश का बेग एक सेकंड में १८०००० मील का बताया जाता है और विद्युत की दौड़ का वेग एक सेकड में २८८७०० मील का बताया जाता है। परन्तु मनके विचारों का वेग का हिसाब अभी तक किसी भी ,विज्ञानी ने पूर्ण रूप से पता नहीं लगाया केवल अनुमान की दौड़ से अटकल पच्चु से विचारों के वेग को २२६५१२० मील प्रति सेकंड से किया है वह बाह्म्य जगत के विस्तार में अनुमान है तो भला आन्तर जगत अर्थात शरीर में जिसका विस्तार ६६ अंगुल का है जिसका विज्ञान बड़े बड़े विज्ञान वेत्ताओं को अभी तक नहीं लगा है तो विचारे अज्ञानी विचारशून्य उसकी गति का

पता क्या लगा सकते हैं इसी लिये उनका जीवन दुःख मय जीवन है। अब आप संयम को तो समझ गये होंगे अब आपको विचारों के सूक्ष्म ज्ञान को कई तरह के उदाहरणों से समझावेंगे।

इस प्रकार उत्पन्न हुवे विचारों को किसी एक सूक्ष्म रास्ते से निकाले जावे तो वो विचार कितने प्रबल गतिवान बलवान हो सकते हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण यह है के देखो इंजन में अग्नि और पानी के जरिये से भाप उत्पन्न करके फिर उसका निरुध करके एक सुक्ष्म रास्ते से लेजाकर इंजन के यत्र सिलन्डर से टकराई जावे तब वो भाप संयम होकर कितने बलवान यन्त्रों को घुमाती है जिसके जरिये से वह इजन हजारों मण लोहा लकड़ों को लेकर हजारों कोस चला जाता है इस प्रकार हमारे विचार भी यदि किसी सूक्ष्म चिन्ह मात्रा पर जाकर टकराये जावे और उनका संयम एक ही विषय पर लगातार निरुद्ध करे तो वह विचार कितने बलवान शीघ्र गामी हो जाते हैं जिनका अनुमान करना भी कठिन हो जाता है इस प्रकार आपको संयम का विवेचन विस्तार पूर्वक करके बतला दिया गया है तो भी यह शब्द सिद्धियों के वर्णन में जहां तहां आवेगा। क्योंकि सिद्धियों की प्राप्ति संयम पर ही निर्भर है।

भगवान पांतञ्जली ने धारणा ध्यान और समाधी ये तीन अंग आन्तर साधना के साधन हैं। यम नियम आदि अंग बाह्म्य सिद्धि के साधन हैं। योग के आठ अंग हैं उनमें से यम नियम आसन प्राणायाम और प्रत्याहार ये बाह्म्य

साधना के अंग हैं। यम नियम आदि अंगों के साधने से विलम्ब से सिद्धि प्राप्त होती है। जिस अपेक्षित विषय को प्राप्त करना है। उसकी प्रथम पूर्ण भावना करके इच्छा प्रगट करके संत भावसे उस पर लक्ष जमाना चाहिए। जब उस पर पूरा ध्यान जमजाने पर उसका चित्र हृदय पर अङ्कीत करके उसके साथ में पूरा मिलान कर उसका संयम करते २ चेष्टा रहित होकर तदाकार स्वरूप हो जाना चाहिए। चित्त को समाहित करना ही समाधि है। इस प्रकार ध्यान धारण और समाधी इन तीनों अंगों को सम्पादित करना ही संयम है।

॥ इति संयम ज्ञान समाप्तः ॥

प्रकरण--नवां

विचार की सिद्धि।

अद्भुत विचार शक्ति यह शक्ति ईश्वर की मुख्य चैतन्य शक्ति सम्पूर्ण अखण्ड जगत में फैली हुई है जिस के द्वारा जीव अपनी सर्व लीलाओं को करता है। मनुष्य के जगत के अन्दर यह जीवन की अथवा आत्मिक तौर पर पहचानी जाती है। जिस को मनुष्य अपनी इच्छा के नाम से जानता है परन्तु विचार के द्वारा यह इच्छा काम में नहीं आसकती है। न उसका उपयोग ही किया जासकता है। इसलिये अपने विचार के जरिये से उस चैन्य शक्ति को काम में लाकर स्व इच्छा रूपी विचार प्रमाणु संग्रहओं को कर उन की सिद्धि कर परमाणुओं को इच्छानुसार अपने उपयोग में लाना चाहिये।

जीव इस शरीर को व मस्तिष्क को अपने हथियार (ओजार) तरीके से बरत ता है और शरीर के अवयवों को अपने मरजी के माफिक काम में लाता है और विचार के आर्कषण से अपने कर्म पर थोड़े अथवा ज्यादा भाग में विचार कर दृढता (Concemtrotion) के प्रमाण में फेर फार कर अपनी स्वइच्छा पूर्ण करता है। इतना तो प्रत्यक्ष देखा गया है कि जो मनुष्य अपने विचार दृढता से करता है उस में वो हमेशा विजयी प्राप्त होता है। जो मनुष्य नाशवान होकर अपने दिल में यह विचार करके के मैं अब क्या कर सकता हूं मेरी हिम्मत ताकत नहीं है ? ये विचार दिल में रखने वाला कदापि अपने काम में विजय प्राप्त नहीं कर सकता है। जो मनुष्य हिम्मत के विचार जैसे के मैं कर सकता हूं मैं कर के रहूंगा करके दिखा दूंगा वह चाहे जैसा कठिन से कठिन काम को भी करके पार डाल सकता है।

चिन्ता को अपने पास रखने से दिल में जो दुःख उत्पन्न होता है वोही डर उसको कायर बना कर उसके सामने आ-कर खडा रहता है। फिकर चिंता के विचार मनुष्य को दुख दर्द पाप कलह कंगालियत और असूकनों का मूल कारण तुमारे विचार ही हैं इस लिये विचारों को सिद्ध और बल-वान दृढ चिन्ता रहित हिम्मत वाले रखने चाहिये और फिकर चिन्ता के विचारों को विचार मण्डल में कभी नहीं आने देना चाहिये।

प्रकरण--दसवां

विचार के विचारक नियम।

जिस प्रकार प्रकृति अनेकानेक पदार्थों की उत्पत्ति के लिये जगत के अन्दर की वस्तुओं को जरूरत माफिक आकर्षण से अपने स्वरूप बना लेती है। इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी विचार शक्ति के आकर्षण से प्रकृति के पदार्थों को अपने जरूरत के माफिक अपनी तरफ खींच लेता है जिस प्रकार मिट्टी के प्रमाणु अपनी तरफ पानी के प्रमाणु को खींच लेता है और कोई रूप बनकर फिर सूर्य या अग्नि के तप से सूखकर तथा पृथ्वी के अन्य क्षारों से मिलकर वह स्थूल पदार्थ का रूप लेकर स्थूल बन जाता है। इसी प्रकार मनुष्य अपने विचार अपनी कम्पनों (स्पनन्दन) के द्वारा अपनी इच्छा अनुसार प्रमाणुओं Atoms को खिंचकर अन्य संयोग से मिलाकर फली भूत रूप को धारण करते हैं। जिस प्रकार बिजली की कम्पानो तारके एक छेडे से दूसरे छेडे तक तार का सन्देशा पहुचता है। या बत्ती जल जाती है उसी प्रकार मनुष्य का विचार जिस दिशा भेजे अथवा जिस पदार्थ की तरफ इच्छा शक्ति द्वारा भेजे उसीकी तरफ पहुंच जाते हैं। और अपना काम उस स्वयं इच्छा के मुताविग पूरा करते हैं।

प्रकरण–ग्यारवां

विचार का बल वेग ।

विजली अथवा हवाई प्रवाही आदि पदार्थों के बल वेग के सामने इनका वेग बहुत कम है, विचार का बल वेग की गति का प्रवाह ४०००० चालीस हजार से ४०००००००००००००० दस नील तक एक सेकण्ड में इतने मील की अनुमान द्वारा मानी गई है कि एक सेकण्ड के वक्त में जासक्ती है इसके तीव्र वेग को कोई रोक नहीं सकता सूर्य की रोशनी इसके स्पनन्दन को बिखेर डालती है यानि इसके प्रमाणुओं को पानी बना डालती है जिससे इसकी कम्पन कम पड़ जाती है अथवा वेग का प्रवाह घट जाता है। अन्धकार में विचारों का वेग बहुत तेज प्रवल गति से जाता है।

जिस का दृढ विचार का आकर्षण कर अन्य के विचारों पर अपने अधिकार जमा सकते हैं वैसे ही संसार व्यवहार के अन्य वायदों पर और अपने कर्मों पर और मृत्यु पर भी अपने विचारों के बल से अधिकार जमा सकते हैं।

प्रकरण बारहवां

(विचार की दृढता)

जो विचार पहले विचार मण्डल में दृढ कर लिये जाते हैं उसी के अनुसार पूर्व रूप पहले बन जाते हैं जिस को संस्कार कहते हैं। जैसे दोस्ती मित्रता के विचार अथवादुश-

मनी शत्रुता के विचार येही विचार अपने आकर्षण की दृढता से मनुष्यों में शत्रुता मित्रता पैदा करते हैं। इसी प्रकार भलाई बुराई के भी संयोग विचार खींचकर क्रोध घृणाकपट छल काम वेग आदि अनेकों को भी अपने आपके विचार खींच लेते हैं जिस प्रकार किसी दुष्ट मित्रों को न्योता निमंत्रण देकर बुलाते हैं उसी प्रकार इन अवगुणों को भी निमंत्रण देकर बुलाते हैं और अपने विचार मंण्डल में बिठला देते हैं ? इसी प्रकार दुख सुख को भी लेलेते हैं और दूसरों को भी देदेते हैं इसी को कहावत में भी कहा है कि जैसा विचारा वैसा पाया जैसा बोया वैसा फल खाया जितना विचार एकाग्रह से दृढ कर मस्तिष्क में से बहार जितनी प्रबलता से निकलता है उतने ही प्रबल गति और उतना बल से उस काम को पूरा करता है। जिस प्रकार बन्दूक में छर्रा भरकर मारने से वो बिखर कर ज्यादा असर नहीं करता है परन्तु उन छर्रों को पिघला कर उन सब की एक बड़ी गोली बना कर मारने से वो कितनी असर कर सक्ती है। इस सिधान्त को विचारो इस प्रमाण में भिन्न २ विचारों को एक करके फिर एक जगह लक्ष बधें करो तो तुम को मालूम होगा की मेरे में और मैं कितना बल शाली हूं।

प्रकरण तेरहवां

(दृढ विचार के प्रयोग की विधी)

अब यह बतलाते हैं मनुष्य अपने विचार किस प्रकार दृढ कर सकता है हम अपने फैंफडे से श्वस प्रश्वस लेते हैं

जिसका असर मस्तिष्क सर्वाङ्ग शरीर पर असर होता है हमारे हरएक श्वांसकी मस्तिष्क में प्रगती होते वक्त तीन २ विचार नवीन उत्पन्न होते हैं याने एक मिन्ट में ४८ से ५४ तक नये विचार मनुष्य के विचार मण्डल के केन्द्र में से बाहिर होते हैं इस बात को सूक्ष्म ज्ञाता जानते हैं। मनुष्य का मस्तिक चाहा जैसे काम में रुका हुवा होने से भी एक वक्त में हजारों पदार्थों का ख्याल एकही काल में अपने अन्दर लेलेते हैं और बाहिर निकालते हैं इस रीति के अनुसार फेंफडा विचारों के साथ घनिष्ट सम्बंध रखते हैं इस कारण से फेंफडों को अपने अधिकार में रखने की आवश्यकता है। फेंफडे अधिकार के काबू में करने के लिये श्वांस के वेग को रोकने की क्रिया बहुत जरूरी है जिससे फेंफडे की स्पन्दन कम हो जाता है। श्वांस पर अधिकार जमाने का काम जितना कठिन है उतना ही सहज भी है। यह सहलता सिर्फ मनुष्य के विचार पर ही अवलम्बत है। उस विचार का नाम शांन्त है शान्त रहने से श्वांस का वेग कम चलता है जब श्वांस का वेग कम चले तब विचारों की उत्पति कम हो जायगी इससे ख्यालों का ताणां दोरा दोर भी कम हो जायगा। जब ख्याल का दोरा दोर कम होजावे तब मस्तिष्क को आराम मिलने के उपरान्त जो एक ही ख्याल तथा विचार लक्ष किया होय तो वो स्थूल रूप घन तत्व को प्राप्त होकर एकाग्रह होती है। मनुष्य अपने एक ग्राहचित के प्रयोग में धारण की हुई इच्छा पूर्ण कर सकता है।

प्रकरण–चौहदवां

विचार के दो मण्डल।

विचार के मुख्य दो मण्डल हैं। एक सद् गुणों का मण्डल जिस को स्वर्ग कहते हैं। दूसरा दुर्गुणों का मण्डल जिस को नर्क कहते हैं। अब जो मनुष्य जिस प्रकार के विचारों को धारण करता है वह उसी मण्डल में प्रकाश (जन्म) धारण करता है और उसी विचारों के अनुसार सुखों दुखों को अपनाता जाता है जैसे सद्गुण विचार वाले स्वर्ग में जाकर उन सुख के विचारों के फलों को भोगते हैं। अवगुण विचार वाले नर्क में जाकर दुर्गुणों के विचारों के फल दुखों को भोगते हैं। इस प्रकार हमारे विचार ही हमारे लिये स्वर्ग या नर्क की रचना रच देते हैं और हम उन विचार के संग मिलकर दुखी या सुखी बन जाते हैं। इस प्रकार विचार के द्वारा जो चाहो सो मिल सकता है। इस लिये विचारों का आकर्षण एक बहुत अद्भुत तत्कालिक असर करने वाला एक प्रकार का लोह चुम्बक है। जिससे मनुष्य अपने आप बंधन व मोक्ष बना लेता है और बेचारे कर्मों को दोष देता है। मनुष्य की तमाम जिन्दगी विचारों के ताणों में तणी हुई है जैसे मकड़ी अपने अन्दर से ही अपनी लाल निकाल कर ताणा बना लेती है और उसके ही आधार पर वह अपना कार्य व्यवहार करती है इसी प्रकार मनुष्य भी अपने अन्दर से विचारों को निकाल कर उनका ताणा तण लेता है और उस के आधार पर ही अपने कर्मों को चलाता रहता है। इस प्रकार हमारे सुख दुखों का आधार एक मात्र

विचार ही है। इस लिये विचारों को शुद्ध सत्य सत्व गुणों वाले रखने चाहिये। कभी भूल कर भी असत्य अवगुण तामसी क्रोधी लालची विचारों को नहीं बनाने चाहिये हमेशा पवित्र विचार रखने चाहियें।

प्रकरण-पन्द्रहवां

उम्मीद के विचार

(विचार द्वारा प्राप्त वस्तु कहां से मिलती है)

उस अव्यक्त अखड पार पर ब्रह्म में से जो मांगो सो पावो जो विचारो सो करो जिसका पारा वार नहीं जो अनन्त और अभेद है जो सर्व व्यापक और सर्व अर्थ है। ऐसा ब्रह्म में से जो विचारो वोही प्राप्त हो जाता है। बलके कहीं लेने जाने की जरूरत नहीं है वह विचारते मांगते ही तुम्हारे सामने हाजिर हो जाता है ऐसा उस परम दयालु कृपालु सर्व करुणा धार का नियम है। यदि भूल है तो यही के हम उस से मांगते ही नही हैं यदि मांगे तो जो मांगे वही हमारे सामने खुद मूर्तिमान खड़े हो जाते हैं। अब हम मांगने की विधि बताते हैं।

आशा एक प्रकार का बहुत प्रबल बल है जिसको अपनाने से हम प्रत्येक काम में विजय प्राप्त करते हैं। जिस को कहा है कि आशा अमर धन है और आशा जहां वासा। इस लिये आशा के जरिये से कामना पूर्ण होती है। हमारी प्रत्येक कांक्षा में आशा आगे रहती है। सच पूछो तो जीव के पास एक आशा ही मूल धन है जिसके द्वारा वह सृष्टि के

व्यापार को चलाता है और जीवन मरण दोनों के अगाड़ी आशा ही रहती है। जो मनुष्य जिन जिन पदार्थों की आशा करता है वह आशा उस अदृश्य ब्रह्म में से अपनी आशक्ति के मुजब उन पदार्थों को तुम्हारे सामने हाजिर कर देती है। किसी एक वस्तु ऊपर आशा रख उस पार पर ब्रह्म में से उस वस्तु को मांगने की मांगनी बराबर रखने से वह उसको प्राप्त हो जाती है यह अनुभव सिद्ध बात है। सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का एक ही प्रकार का नियम है इस लिये हरेक पदार्थों को प्राप्त करने में भी एक ही नियम लागु होता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ की प्राप्ति में आशा को आगे बढाकर सच्चाई और शुद्धता से मांगना चाहिये। पार ब्रह्म अपने अभेदज्ञान द्वारा जीव मात्रा में एक ही भाव से जो मांगता है उसको वही बखशिश करता है। हमारे कर्म रूप बीज को विचार रूप भूमि मे बोकर आशा रूप पानी से कल्प वृक्ष उत्पन्न कर उन में स्वइच्छा रूप मधुर फल लगा कर खासकते हैं।

इस प्रकार सिकन्दर ने कहा है कि मैंने मेरे लिये आशा को ही अपनी फकत रक्खी है। जिससे हरेक फतेह हिम्मत से ही रक्खी है आशा से ही हिम्मत होती है और हिम्मत के बल से वो अपनी आशा की पूर्ति कर सकता है। जब आशा टूट जाती है तब हिम्मत भी चली जाती है। जैसे बीमार को अपने जीवन की आशा टूट जाने से उस के उपचारकों की चिकित्सों की हिम्मत टूट जाती है जिसके फल स्वरूप मृत्यु हो जाती है। आशा हमारे शरीर में एक प्रकार की लगन उत्पन्न होती है और लगन के जरिये से जोश आजाता है जिस को शक्ति कहते हैं अथवा हिम्मत

कहते हैं। वह जोश ही मनुष्य के कार्य सिद्धि की उद्गम भूमि बन जाती है। इस प्रकार जब जोश के बढने से एक प्रकाश उत्पन्न होता है जो प्रतिभा का रूप है जिससे तत्कालीक सिद्धि प्राप्त होती है। प्रतिभा सिद्धियों को दूसरे अध्याय में कहेंगे यहां तो प्रसंग वस कहा है।

इस लिये मनुष्य को कभी भी निराशा वाद नहीं बनना चाहिये निराशा होने से हिम्मत टूट जाती है और हिम्मत के टूटने से जोश चला जाता हैं जोश का प्रकाश कम हो जाने से विवेक की बुद्धि के कर्त्तव्यताका नाश हो जाता है और कार्य सिद्धि कभी नहीं हो सकती और हमारे किये हुवे कर्मों के फल निस्फल हो जाते हैं। और नास्तिकता आजाती है और अपने कर्त्तव्य से गिर जाता है इस लिये कभी भी निराशावाद मत बनो और नास्तिक मत बनो आशा रखो उम्मीद रखो— इस सिघान्त से तुम पराक्रमी कर्त्तव्य शाली और किस्मत वाले गिने जावोगे। और इसी प्रकार यदि तुम यह कहोगे कि मैं लाचार हूं क्या कर सकता हूं कैसे करूंगा यह काम होगा या नहीं ऐसी अनेका अनेक शंकाओं से नाहिम्मत होकर दिल कमजोर होकर दिल में ऐसी ही आदत पड़ जायगी जिससे तुम दुखी दारिद्री बन जावोगे। इस प्रकार से अगर तुम हिम्मत न रखोगे तो अपने हाथ से ही अपने पांव में कुल्हाड़ी मारना है ये कावत प्रसिद्ध है।

मनुष्य हरेक पदार्थ को दृष्टि से देखता है देखकर जानता है परन्तु वो उनके मूल कारण को नहीं जानता और जानने की खरी खूबी और गली कुची ढूंढने के लिये प्रयत्न भी

करते नहीं। कितने ही मनुष्य विना पढ़े लिखे होते हुवे भी अपनी चालाकी हिम्मत और आशा के विचारों को मन में घोक घोक कर दुनियां में ऐसे अनेक अदभुत काम कर गये हैं जिन के अगाड़ी शिक्षक और विद्वान भी हार मान गये हैं। ये जन्मान्तर सिद्धियां हैं। देखो एक किसान का लड़का चीन का प्रधान मंत्री होना और एक अनाथालय का लड़का लंदन का लार्ड मेयर होना, एक मजदूर नेपोलियन वोनापोर्ट फ्रांस का वादशाह होना, एक खेती कर किसान रुझवेल्ट अमेरीका का प्रेसीडेन्ट होना। हमारे दुर्बल डाकू भील वाल्मीक महर्षि होना, एक मानी उभ्दट क्षत्रिय के वालक का विश्वामित्र ब्रह्म ऋषि होना, एक दासी के लड़के का कवष ऐलेष मंत्र द्रष्टा ऋषि होना, स्टीम के यंत्र इंजन का उत्पादक जैम्सवाट एक खाती का अनपढ़ लड़का था, यान्त्रिकों की उन्नति करने वाला हेनरी कार्ट अनपढ़ लड़का था। फौलाद को ढालने वाला हन्टसमन घड़ीसाज का लड़का था। रेल मार्ग लाइन के निकालने बनाने वाला इस्टीवनसन गवालिये का लड़का था, पुतलीघर के बनाने वाला नाई का लड़का अर्लराइट था, क्राम्प का चलाने वाला जुलाहे का लड़का वेजवुड कुमार था। इस प्रकार यह अपनी हिम्मत और आशा के जरिये से ऐसे अलौकिक कामों को अपने विचारो द्वारा ही कर गये हैं। और कई नास्तिक शिक्षक और विद्वान होते हुवे भी कर्मों के जाल में फसे हुवे कर्मों को रो रो कर कर्मों के समुद्र में गोते खाते हैं। हम कहते हैं कि कर्म विचारे क्या करे कर्म तो आपको आशा देते हैं परन्तु आप अपनी आशा को निराशा कर विदुन हिम्मत और पुरुषार्थ के विना निराशा बनाकर अपनी लगन को मिटा

देते हैं। इस लिये आपको ऊपर लिखे हुवे व्यक्तियों का दृष्टान्त दिया गया है।

जिस काम को पूरा करना हो उस काम के विचार हर-वक्त दिल में उनको ही घोका करो और उसमें दृढ विश्वास रखो फिर देखो कि १५ दिन में तुम्हारे अन्दर कितना फेर बदल हो जाता है।

प्रकरण-सोलहवां

विचार स्पन्दन

कुदरती आदर्श पदार्थों में हमेशा स्पन्दन (कम्पन) ही समाये हुवे रहते हैं शब्द अथवा आवाज प्रकाश सर्दी गर्मी ये सब इन कम्पनों का ही कम ज्यादा में भेद है। यावत मात्रा जो शब्द है अथवा शब्द उच्चारण स्वरों में स्पन्दन (Vibrations) ही होते हैं जो स्पन्दन अन्य पदार्थों की तरफ उस स्वर अथवा आवाज को अथवा आवाज के असर को लेजा कर आवाज शब्द करने वाले की इच्छा शक्ति (will power) के अनुसार कार्य सिद्ध करती है। इस प्रकार से जो शब्द उच्चारण किये जाते हैं वो पुष्पों की माला के मानिन्द हार होकर चारों तरफ से मकड़ी के जाल के मानिन्द फैल जाते हैं। अन्त॰ करण की आस्था और विश्वास के साथ ध्यान पूर्वक शब्दों का उच्चारण करने से वो शब्द जितनी इच्छा शक्ति के संयम से फैंकोगे उतने ही शीघ्र बन्दूक की गोली की तरह पर चले जायेंगे। जितने एकाग्रह चित्त से संयम किये जावेंगे उतनी ही दूर तक शब्द कम्पन

(साउड विट) का आकर्षण जल्दी पहुंचेगा शब्दों मंत्रों के साथ साथ इच्छा शक्ति भी उन शब्दों में व्यापक व्याप्य होती हुई जायगी । अन्तः में जिसके पास तुम अपने शब्द मंत्र भेजोगे वह शब्द उसके पास जाकर उसके मस्तिष्क के आस पास हारमान होकर घूमने शुरू हो जायेंगे। यदि वह शख्स किसी अन्य काम में अथवा विचारों में उसका मस्तिष्क रुका हुवा होगा तो वह मौका पाते ही उसके (Brain) मस्तिष्क में उतर जाएंगे उसके विचारों को दवाकर भेजे हुवे विचारों के असर होकर उसकी इच्छा शक्ति के ध्यान को अपनी ओर खींचेगा और उसमें लगन की जाग्रति करेगा। फिर उसको उन भेजे हुवे विचारों के माफिक कार्य प्रारम्भ करना होगा।

आकर्षण शक्ति के स्पन्दन वायु मण्डल में हरेक जगह पर सामान रूप से व्यापक है। जिस प्रकार पानी के भरे हुवे वरतन में एक कंकर डालने से उसमें एक प्रकार का गोल (कुंडाली) पहले छोटी वनकर फिर एक से एक वड़ी लहर पड़ती जायगी आखिर में इस किनारे से उस किनारे तक वह लहरें व्याप्त हो जाएगी। इसी प्रकार हमारे शब्दोचारण के विचारों की वायु मण्डल में गोल कुंडाली की लहरे वन कर जिस जगह पर तुम्हारे विचारों का लक्ष वैध करना होगा उस जगह पर अपना ध्रुव मुंह करके उस ध्रुव के केन्द्रस्थ वह विचार लहरें जुड़ती ही जायंगी और अपने केन्द्रस्थ में स्थापित होकर जितने दृढ विचार के समाधी (एकाग्रह) के बल से मजवूत फेंकोगे उतने ही वह केन्द्र में मजवूत होते जाएंगे। यदि तुमारे संयम की समाधी

जितनी कमजोर होगी तो वह विचार भी कम असर करेंगे। मंत्र पढने से जो जुदे जुदे मंत्रों से जुदी जुदी प्रकार के कम्पनों की लहरें उठती हैं वह कोई वस्तु अथवा हस्ती नहीं रखते हैं परन्तु मनुष्य की मानसिक शक्ति के विचारों पर ही आरुढ होकर उसमें व्याप्त विचार अपनी इच्छा पूर्ण करते हैं।

प्रकरण—सत्तरहवां

आज्ञाकारी विचार

(SYMBOL)

हरेक विचार को किसी न किसी रूप में उसको परिवर्तन कर उसकी आकृति नाम आदि रख कर उसको किसी भी विषय का विवेचन कर फिर उसको आज्ञा करनी कि वो अमुक काम के लिये अमुक स्थान पर अमुक पुरुष अथवा स्त्री आदि पर जाकर हमारी आज्ञा के अनुसार कार्य करे। इस प्रकार से जिसके उपर वह भेजना हो तो जब कि वह प्राणी निद्रा अवस्था में हो उस वक्त उस विचार को वह भेज कर सामने वाले के मस्तिष्क में उस विचार की छाप चित्र को (जिसकी आकृति बनाई है) उसके मन के निसंशय मान मण्डल के केन्द्र में छोड कर आज्ञा देना के जब संशय-मान मन जागृत होवे तब तुम उसको अपनी आज्ञा के अनुसार हुक्म करो। जब वह सामने वाले का मन सजागृत अवस्था में अपने केन्द्र में आवेगा तब तुम्हारे आज्ञा की विचारों पर ही वह अपने विचारों का विषय विवेचन करना

शुरू करेगा। इस प्रकार तुमारे आज्ञाकारी विचार तुम्हारी आज्ञा को पूरा करेगा।

मन के विचारों के दो प्रकार के केन्द्र है एक सशयमान याने तर्क वितर्क करने वाला और एक निसंशयमान याने निद्रा अथवा दृढ विचारवान जब मन अपने संशयमान केन्द्र में जागृत होता है तब वह अनेक प्रकार के तर्क वितर्क करता है और जब निसंशयमान केन्द्र में जाकर सोजाता है, जब अपने आराम आदि में प्रवृत्त रहता है। तब तुम अपने आज्ञाकारी विचार को आज्ञा देकर भेजते हो तब वह आज्ञाकारी तुमारे हुक्म के माफिक सामने वाले के मन के केन्द्र में जायगा परन्तु यदि वह शख्स अपने जागृत संशयमान केन्द्र मे बैठा अपने व्यवहार कर रहा है तो तुम्हारा विचार उसके केन्द्र के बाहर ही भटकता रहेगा और जब वह सामने वाले का मन सो जायगा तब तुमारे विचार को उसके अन्दर जाने का आसानी से मोका मिल जायगा और वह जाकर अपने आकृति के माफी उसके केन्द्र में आकृति का प्रतिबिम्ब डाल कर अपने हुक्म के माफिक उस केन्द्र में अपनी वासना छोड़ कर फैला देगा। जैसे किसी के मकान में जाकर उसको कुछ आज्ञा अथवा सलाह मंत्रणा करनी है और वह बड़ा आदमी अपने खुद के व्यवहार में लगा हुवा है तो जब तक उसको उसके जरूरी काम से फुरसत न मिले जब तक वह आप को बाहर ठहरने की आज्ञा देगा जब उसको फुरसत मिलेगी जब आप को बुलाकर आपका विवेचन सुनेगा, और यही उसके सूने घर में सोता हो और उसके जगने के पहले से ही उसके घर में जाकर अपनी इच्छा

अनुसार उस घर के भीत दिवार आदि पर अपने लिखे हुवे इश्तिहार चिपका दे अथवा लिख कर आजावे। तो फिर उस घर का मालिक के जग जाने पर वह उसमें लिखे अथवा चिपकाये हुवे इश्तिहार आदि की इबारतों को पढकर वो आने वाले की प्रशंसा अथवा निन्दा जरूर करेंगे। इसी प्रकार से सोये हुवे मनुष्य के मन के घर में जाकर अपनी इच्छा मुताबिक अपनी मनो बासना के विचारों की आकृति की छाप करने से उसकी आकृति देखकर उसी के अनुसार अपनी बिचार शैली को तैयार करेगा।

इस विद्या को मनुष्य गुप्त से गुप्त रखनी जरूरी बात है अपनी मरजी के माफिक अपनी विचार शक्ति की ताकत को कोई अमुक नाम आकृति रखकर अथवा वो नाम से जिस प्रकार अपने नोकर को बुला कर काम को फरमावें कि अमुक काम का कार्य्य करना होगा, वह कार्य उसको सोंप देवे अथवा उस काम पर उसको लगा देवे परन्तु अपने आप में इतना तो विश्वास रखना चाहिये के जो नाम रखकर विचारों को भेजे उसके बारे में एक रोज हमेशा उसको अपनी आज्ञा के हुक्म को सुना देना चाहिये और उसके ऊपर इच्छा शक्ति दृढता बहुत मबूजत धारणा शक्ति को रखना चाहिये जिस से तुम्हारा काम बहुत जल्द निकल जायेगा है।

(आज्ञा कारी विचार को किस प्रकार अपने धारे हुवे काम पर भेजना इस सिद्धि के प्राप्त करने के लिये बहुत मजबूत मन शक्ति की जरूरत है। इसविधी में विचार एक आकृति में (मूर्तिमान) में खड़े कर फिर उसको हुक्म दिया जाता है कि तुम जाकर अमुक काम करो अथवा जाकर

अमुक जगह पर बैठ कर अमुक काल (टाइम) में अमुक काम करना। इस काम के सिद्धि करने में यदि मन की will power मन शक्ति दृढ होगी वही इस माफिक अपना ध्यान समाधी से खड़े किये हुवे विचारों को काम करा सकता है। इस विद्या के सिद्ध हो जाने पर जैसी इच्छा हो वैसे कार्य को सिद्ध करने के लिये भेज सकोगे। इस के सिद्ध करने की मामूली विधि संक्षिप्त में यहां पर लिख देता हूं। जिसका अभ्यास करने पर इस की सच्चाई तुम को खुद मालूम हो जायगी और इसी के लगते संतत ज्ञान हरेक बात में तुमको होते जाएंगे-

(१) अभ्यास। नाटकशाला अथवा और कोई मण्डली में तुम बैठे हो जब तुमारे से ४-५ हाथ दुरस्थ आगे की लाइन में कोई शख्स बैठा हो उसके पूठ में मस्तिष्क के नीचे गरदन उपर तुम्हारी दृष्टि को एकाग्रहता से टिका कर देखना शुरू करो और अपनी मजबूत मानसिक शक्ति से ऐसे विचार करे कि उसके उपर मन ही मन से फैंके और तुम्हारी दृष्टि उसी स्थान पर टेक रखो कि वह शख्स पीछा फिर कर तुम्हारी तरफ देखे ऐसा तुम विचार करते जावो तो वह ५ मिनट में ही तुम्हारी तरफ फिर कर देखेगा। पहले पहल इसमें विजय पाने मे विलंभ होगा परन्तु ज्यों ज्यों इसका अभ्यास बढता जायगा त्यों त्यों तुम्हारी मानसिक सत्ता दृढ होती जायगी और तुम्हारी दृष्टि स्तब्ध बननी जायगी वैसे २ लोग तुम्हारे जल्दी २ आधीन होते जाएगे।

(२) अभ्यास। इस प्रकार रास्ते में चलते सामने से आते तुम्हारी डावी या जीवणी तरफ होने से मानसिक हुक्म देना

अथवा कोई शख्स अपनी मर्जी के माफिक वात चीत में चोकस पोल या कोई नाम भूल गये हों उस वक्त अपनी मरजी को कोई शब्द वंदे उस वक्त उसकी आंख में अपनी इच्छा शक्ति विवेचन को छोड़ना चाहिये तो वो शख्स तुम्हारे धारे हुवे माफिक शब्दों का उच्चारण करेगा।

(३) अभ्यास। इसी प्रकार खाने की वस्तु में या पीने की वस्तु में तुम्हारे विचारों को उतार कर या कागद चिट्ठी लिखकर उस को हाथ में रख कर उसके जरिये से भेज सकते हैं।

अब सूर्य चक्र के द्वारा अपने विचारों को भेजने की विधी लिखते हैं:-सूर्य चक्र और प्राणी के मस्तिष्क का घनिष्ठ सम्बध है और सूर्य चक्र प्राणियों के मन का आज्ञाकारी है। मन में से जो कुछ भी नवीन तत्कालीक विचार बाहिर के ब्रह्माण्ड में निकलते हैं। उसका असर सूर्य चक्र पर पहले होता है। ऐसा कोई भी विचार नहीं है कि उत्पन्न होने के साथ ही सूर्य का प्रकाश ग्रहण नहीं करता हो। इस लिये सूर्य चक्र के ही द्वारा हमारे प्रत्येक श्वांस और प्रश्वास में युक्त व्यक्त होते रहते हैं। इस लिये सूर्य चक्र को संयम करने से विचार पर दृढता होती है। अब हम इसकी विधी बतावेंगे।

(१) अभ्यास। अपने शरीर के कपड़ों को छाती पेट गरदन वगैरा अगो पर से निकाल देना अथवा ढीले कर देना इसके बाद बिछोने में सीधे सोजाना और मस्तिष्क नीचे रखना कुछ भी नहीं मन में किसी प्रकार के विचार रखने

नहीं बाद में ५ मिनट तक शान्त और शरीर को ढीला करके रूई के पहल की माफिक हलका कर रखना फिर आहिस्ता २ दोनों नाक के स्वरों से श्वांस लम्बा २ लेना फिर उस श्वांस को दो चार सैकिन्ड रोक रखना फिर उस रुके हुवे श्वांस को एक झटका देकर फेंफड़े के उपर के भाग पर अरु छाती में लाकर दो सैकिन्ड श्वांस रोक कर छाती को बाहिर उपसा कर उसको श्वांस के साथ फुलानी और जितनी बन सके उतनी झडप छाती उपर के श्वांस को दौड़ा कर पीछा पेट में लेजा कर पेट को फुला लेना वहां से जितना बन सके उतना पेट के नीचे के भाग पेडु तक श्वांस को लेजाना जब श्वांस पेट के भाग सुठी तरफ आवे तब मन में विचारना के मेरे अन्त करण के सूर्य अपने पूर्ण बल से प्रकाशते हो मेरे सम्पूर्ण विचार दृढ मजबूत इच्छा शक्ति अनुसार जो चाहो सो कह कर उन विचारों के रमणुओं को श्वांस में रंजन करो फिर सुठी के बीचो बीच उन विचारों का ध्यान करो जहां पर जिस काम पर तुमको पहुंचाने हैं ऐसा करके फिर उस रोके हुवे श्वांस को पुन छाती की तरफ दौडालाना फिर पेट की तरफ लाकर फिर वही विचार करना। इस प्रकार उपर नीचे तीन वक्त उपर वाली क्रिया करनी फिर धीमे २ श्वांस को नासिका द्वारा छोडना। इस प्रकार विचारों का ध्यान करना चाहिये। श्वांस को खेंचते वक्त चाहे जितनी वक्त लेना परन्तु श्वांस छाती पर दो सैकिन्ड और पेट में १० सैकिन्ड एसे तीन मरतबा करने से श्वांस को दौड़ाने से सब मिलकर श्वास को ३६ सैकिन्ड रोकना अवश्य है। जिसमें एक को एक विचार ३ वक्त होगा। फिर श्वांस आहि-स[illegible] नासिका द्वारा [illegible]कना इस प्रयोग के करने में सुख

को वन्द रखना आहार एक टाइम करना चाहिये। एक दफा श्वांस रोकने के बाद या खैंचने के बाद नासिका की तरफ श्वास आने देना नहीं। ऐसी रीति से ३६ सैकिन्ड तक श्वास रोकना तो जरूरी है फिर बढ़ाते रहना चाहिये और श्वांस को शरीर के अन्दर ही उपर नीचे दौड़ाते रहना चाहिये। इस प्रयोग के अभ्यास करने के बाद ५ मिनट आसानियत से शान्त पड़ा रहना चाहिये फिर उसी प्रकार का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार तीन मरतबा करने चाहिये। उपर लिखे अभ्यास के करने से तुमको तुम्हारी मानसिक शक्ति प्रबल दृढ हो जायगी और जो विचार जहां पर भेजोगे वहां चले जाएंगे किसी प्रकार से रुकेंगे नहीं तुमारी आयु आरोग्य वल अविष्यानास हो जायगी तुमारे शरीर में नये ज्ञान का आविस्कार होगा ऐसा ये अभ्यास का फल है।

अन्य अभ्यास! उपर लिखे अभ्यास की भांति एक लम्बा ठेठ नाभी से श्वांस लेना (खेचना) मुंह को बंद कर नाक के रास्ते खेचना और विचार करना के में बाह्म्य कुदरती आकर्षण शक्ति को मेरे में भर रहा हूं पीछे श्वांस को १५ से २० सैकिन्ड तक सूंठी के आगे पेट में रोके रखना और उस वक्त जिन २ विचारों को आज्ञा देकर धीमे धीमे नाक के रास्ते विचारों को श्वांस में मिलाकर निकालते जाना और विचारते जाना कि मेरे आज्ञाकारी विचारो तुम इस श्वांस के निकलने के साथ जावो और मेरे काम को पूरा करके आवो। यह अभ्यास इस प्रकार बन्ता सुधी तीन श्वांस एक ही वक्त में खेचने चाहिये और जहां तक बन सके इस का प्रयोग रात्रि में एकान्त जगह में करने चाहियें। इस

प्रकार जहां तक कार्य्य सफल न होवे वहां तक नित्य संतन्त इस प्रकार अपने विचारों को भेजते रहना चाहिये यह विचार अगर तुम्हारी हस्ती के माफिक होंगे तो जल्दी पार सिद्ध होजाएगे और हस्ती के खिलाफ होंगे तो उनके पूर्ण करने के रास्ते मालूम हो जाएंगे। तुमको चाहिये कि तुम अपनी इच्छाओं को ज्यादा मत बढाओ, याद रखो के अगर तुम दूसरे के लाभ को नष्ट कर अपना फायदा चाहोगे या तुम्हारी हैसियन (हस्ती) के विरुध विचारों को इच्छाओं को बढाकर पूरा करनी चाहोगे तो तुमको खुद नुकसान होगा। जैसे एक पत्थर जोर से किसी चीज पर फेंकोगे और वह वस्तु यदि तुम्हारी फैंकी हुई चीज से कड़ी हुई तो लौट कर तुम्हारे ऊपर आवेगी। इसी प्रकार यदि तुम अपने विचार अधर्म व्यभिचार आदि किसी के नुकसान या मारने के भेजोगे तो वह तुम्हारे ऊपर ही लौट कर जबरदस्त असर करेंगे जिस से तुमको वोही नुकसान होगा जो तुम दूसरे का करना चाहते हो इस लिये हमारी नसीहत मानो और किसी भी प्राणी का नुकसान या बुराई मतकरो वरना यह विद्या सिद्ध नहीं होगी और इस विद्या को झूठी बताओगे।

प्रकरण—अठारहवां

श्वांस में विचार क्रिया

श्वांस को ठेट नाभी प्रदेश से खैंचना चाहिये जिससे नाभी प्रदेश में लगा हुवा हमारा सूर्य चक्र पूरी कलाओं के प्रकाश मान होकर खिल जावे यानि प्रफुल्लित हो जावे जिससे वाहम्य स्वच्छ वायु ओक्सीजन तुम्हारे शरीरमें इकट्ठी

हो जावे और श्वांस प्रश्वांस में तुमको जीवन शक्ति प्रदान करे जिससे तुम बलवान और आरोग्यमान बने रहोगे। जो श्वांसों श्वांस तुम खैचते हो वह ही तुम तुम्हारी इच्छा के विचार करते जाते हो जब श्वांस को रोक कर अन्दर तुम तुम्हारे शरीर में बंद करके (कुंभक) स्थभन करते हो जब तुम्हारे विचार सम तौल हो जाते हैं जब के श्वांस को छोड़ते हो उस वक्त तुम्हारे आन्तर सूर्य की प्रकाशमान किर्णे उस विचार से रंजीत होकर विचार रूप किर्णें अपने विकर्पण से बाहिर निकलती हैं वोही किर्णें उपाधी रूप से विचारों के रंग रूप का स्पन्दनमान होकर अपनी इच्छाओं के अनुसार कार्य प्राप्त करती हैं सूर्य चक्र के मथक रूप मैथुन से जहां पर श्वांस विचार बदल कर चैतन्यमान बन जाते हैं। हमारे अन्दर विचार और श्वांस का परस्पर हर वक्त मैथुन होता रहता है इसी से हमारे विचार स्थुल रूप में मूर्तिमान बन जाते हैं। जब विचार और श्वांस संयुक्त व्यक्त होते हैं जब दोनों समष्टि रूप में दोनों के श्वांस परस्पर द्रव होकर धनीभूत हो जाते हैं जिस से विचार और श्वांस (प्राण) मूर्त स्वरूप में होकर प्रत्यक्षमान हो जाता है।

इस प्रकार विचार श्वांस और कार्य यह भी तीनों एक ही पदार्थ हैं। विचार ये कार्य और कार्य ये विचार करने के बराबर है। विचार ये भी श्वांस लेने के बराबर है। कोई भी मनुष्य विचार के विदुन श्वांस लेसकता नहीं। और जो श्वांस लेवे वो श्वांस लेने के पूर्व उसका विचार करेगा। इस लिये विचार करना भी श्वांस लेने के बराबर है। और कोई प्रकार का कार्य करना ये भी विचार है बिना विचार कार्य

की व्यवस्था हो नहीं सकती और बिना श्वांस के क्रिया सम्पादन हो नहीं सकती और विना क्रिया के कार्य प्रारम्भ हो नही सकता इसलिये ये सब कार्य विचार और श्वांस पर ही निरभर है। अनेकों महात्मा तपस्वियों ने श्वांस के प्रणायाम के बल से अद्‌भुत चमत्कार दिखाये है और दिखा रहे हैं। हम रोज अनजान दशा में ये तीनों काम हरवक्त करते रहते हैं भूल सिर्फ इतनी ही है कि इन को हम अपने इच्छा के अनुसार काम में लाना नहीं जानते यदि हम इस का उपयोग करना सीख जायें तो फिर दुखी दरिद्र आदि क्यों रहें। सर्व सुखों को भोगने में क्या सन्देह है।

प्रकरण–उन्नीसवां

विचार से संदेश भेजना

इस अभ्यास में शरीर की कोई भी इन्द्री की मदद के विदुन केवल विचार के ही द्वारा आमने सामने संदेशा पहुचाया जाता है, भेजने वाला और बाचने वाला इसमें दो आम सामा होते है इस विद्या के बल से मनुष्य अपने विचार पर देशान्तरों में भी दूसरे शख्स के उपर आपने आर्कषण विकषण के बल से शब्दों को भेजते है और अपने फोटो चित्र भी भेज सक्ते हैं जिसकी विधी आगे लिखेंगे। इस विद्या की सफलता दोनों के मनो वृतियां की शान्ती और प्रेम के आधार पर निर्भर है।

किसी किस्म की चंचलता वृतियां को डिग मिगाने से विचार के कम्पनो के प्रवाह की धारा टूट जाती है

जिससे विचार लेने वाले बराबर मिला सकेगा नहीं इस लिये विचार भेजने और लेने वाले शक्सों को अपने तन मन को शान्त एका ग्रह रखना चाहिये और दूसरी किस्म के कोई भी तरह की शंका समाधान मन में लानी नहीं। जैसे ही शक्स विचार के संदेश भेज सकते हैं और जो शक्स अपने मन को शंका समाधान वाला रखते हैं जैसे(मैं कैसे करूंगा ये कैसे बनेगा) आदि ऐसे विचार कदापि करने नहीं। ब्लके हरेक विधी एक के वाद एक अजमाते जाना ऐसे करते २ एक नही तो दूसरे में सिद्धि कामयाबी होजायगी अगर एक ही वार में तुमको सिद्धि मिली तो फिर दिल का हरवक्त शक निकल जायगा फिर इस विश्वास और आशा से हरेक प्रयोग सिद्ध होते जायेगे। इसलिये प्रयोग करता को अपना मन बहुत शान्त धीर गंभीर एका ग्रह स्थान में रखना चाहिये।

इस विचार संदेश के प्रयोग की साधना कर्त्ताओं को दोनों तरफ से बहुत घनिष्ट सत्व प्रीति प्रेम होने चाहिये कारण के एक दूसरे पर सच्ची मोहब्बत होने से ही आप से आपसमें मन के विचारों का एक दूसरे पर बहुत द्रढ मजबूत प्रवाह में खींचते है। जिससे बहुत जल्द इस विद्या की सिद्धि प्राप्त होगी। अब साधारण रीति से जानिये कि अपना कोई अति प्रिये पर देश में यदि बीमार होतो अपने को कुदरती उसके लिये भय उत्पन्न होने लगता है। भय किसका है यह अपने जान पहिचान सकते नही परन्तु उस सकल की खबर आवे जब अपने भय का कारण का पता लग जाता है जो भय अपने को उत्पन्न होता है वह अपने

और अपने प्रेम पात्र दोनों के बीच के अत्यन्त प्रीति प्यार मोहब्बत के आकर्षण से खींच कर हालत को प्रेम के बल से खींचलाते हैं और उसकी बेचैनी होजाती है । अब यह बताते हैं कि इन के भेजने के विचार के प्रयोग किस प्रकार से करना चाहिये ।

प्रयोग-विचार ही भेजने वाले को पहले अपने चित को एकाग्रह करना चाहिये फिर एक गिलाश के माफिक जिस के पेदे में एक छिन्द्र मसूर की दाल जितना होना चाहिये और आगे के गोलाई का हिस्सा करीव एक इंच का होना चाहिये। यह यंत्र चाहे जिस धातुका अथवा कागज की दस्तरी का भी बना लेना चाहिये अथवा लकडी हाथी दांत आदि सींग वगैरे का भी हो सक्ता है।

प्रयोग–दो मित्र अथवा दो से अधिक मित्र जिन के एक मेक पर बहुत प्रीति रखते हों उनमें से एक भेजने वाला (Projector) और लेने वाला (Receiver) होने चाहिएं भेजने वाले को एक टेबुल आगे कुर्सी लेकर आसायश से बैठना और टेबुल पर एक पाना अथवा कार्ड पांच या छै लेना उसमें से एक एक पाना लेकर फिर उस पाने पर अपनी दृष्टि एकाग्रह करनी उस यंत्र के अन्दर से एकटिक २ देखते रहना चाहिये और जो विचार उन पानों पर लिखे हैं उनका ध्यान पूर्ण रीति से शान्ति से लक्ष वैध करते रहना चाहिये जैसे एक निशानेबाज अपने तीर या बन्दूक के निशाने की टीकी पर लगाते हैं उसी तरह से अपने उन भेजने वाले विचारों के संदेसों का ध्यान उस यंत्र के द्वारा कागज पर लगाया जावे और ध्यान में सिवाय उन विचारों के और

कुछ भी ध्यान इधर उधर न किये जावे सिर्फ कागज और कागज के ऊपर लिखे विचारों के ऊपर एका ग्रहता रक्खी जावे। जिस वक्त मन खूब एका ग्रहता हो जावे। जब विचार वहां से भेजने या विचार अपने आप ही मन की प्रेरणा से लेने वाले (रीसीवर) के उपर जाकर केन्द्रीत होकर घुमने लगेगे। अब विचार खेचने वाले (रीसीवर) को भी टेबुल की तरफ पीठ रख कर शान्त और आराम से बैठना और अर्ध आख बद रख बिचार ना के भेजने वाले ने कौनसा पाना Receiver किया है उस को अठ कल से परखने की चालु लगातार कोसीस करनी और कभी भी अपना ध्यान इधर उधर हटाना नही,इस प्रकार करने से तुम्हारे दिमाग मास्तिष्क में(Bran)वोही Projector(भेचने) की धारा प्रवाह का वेग आवेगा और तुम्हारी दृष्टि के सामने वोही विचार पत्र आखडा होगा और दीखेगा। रीसीवर लेने वाला आंख बंद करने के बजाय एक खूब सफेद कोरा कागज का कार्ड हाथ में रख उस के अन्दर ध्यान पूर्वक देखते रहने से पहले धुवां के माफिक दीखाई देगा फिर उस में प्रोजेकट किये विचारा अक्षर प्रत्यक्ष दीखेगें और रीसीवर उसको बांच सकेगा।

प्रकरण—बीसवा

(नियम विचार)

अब इसके नियम प्रयोग करते वक्त कदापि नींद लेनी नहीं और चाह जितनी नींद आवे।रन्तु सचेतन रहना चाहिये और अन्य प्रकार के फिक्र चिन्ता आदि काम वेग के ख्यालात करने नही शान्त जागृत रहना और अपने अंगों को ढीले

रखने चाहिये। कमर गरदन को सीधी रखी जावे श्वास के वेग को भी शान्त किया जावे धीमा २ मन्द गति से श्वास लिया जावे भेजने वाले के विचार पाने वाले के पास जा रहे है ऐसा विचार करते रहना चाहिये अधिक आहार विहार न करे तुरन्त भोजन करके प्रयोग न करे। कोई भी इन्द्रियों कर्मेन्द्रिया के वेग को रोकने वाले को रोका जावे। विचार को ज्यादा से ज्यादा १० मिनट तक ही भेजना चाहिये दस मिनट तक अभ्यास कर फिर वन्द कर एक मिन्ट तक आराम लेना चाहिये फिर दुसरी वार दुसरे पाना को लेकर फिर १० मिन्ट तक प्रयोग करना चाहिये इस प्रकार कुल एक घंटे से ज्यादा अभ्यास नही करना चाहिये। और अगर एक नजर देखने से आंखो में पानी आवे और दर्द मालूम हो तो दो चार वार आंखों की पलकों को मारना इस प्रकार एक घंटे में पांच विचार Project करना तथा रीसीवर करना प्रयोग के दरमीयान में कभी एक मेक पर जताना नहीं प्रयोग के अभ्यास को खतम करने के बाद जो जो विचार भेजे हैं वो रीसीवर के मिलने का जवाब विचारों के साथ ही रखना यदि झूठा होतो कदापि हार खानी नहीं और दूसरे दिन फिर से अजमाना चाहिये विचारों के वांचनेकी दुसरी रीति यह है रोज वे रोज नित्य अभ्यास चलु रखना चाहिये हर रोज रात को एकान्त में आराम से बैठना और मन को शान्त करना पीछे एक पुस्तक लेनी और देखे विदुन उस का कोई पाना उघाडना और वो कितने अंक की गणना का पाना है वो देख विदुन पांच मिन्ट तक अटल क्रिया करनी पीछे जो नम्बर पहले मन में आवें वो कागद पर लिखना फिर उस पाने के नम्बर को देखना। पहले पहल दो चार वार नम्बर में गलती होगी

परन्तु जब अभ्यास सिद्ध हो जायगा फिर बराबर बड़ी संख्या में पढ सकोगे और भी दूसरी रीति यह है कि दो शख्स एकांत में बैठकर एक जणा कोई भी अंक संख्या अथवा शब्द मनमें. विचारना और दूसरे को उस के मन की परखने की कोशिश करनी इस प्रकार अभ्यास करने से दूसरे की मन की बात जान जाता है। इस प्रकार यह अभ्यास पहले पास २ बैठकर सिद्ध करे फिर एक २ जुदे २ कमरे में बैठकर सिद्ध करे फिर कुछ दूर मोहल्ले में बैठ कर सिद्ध करे फिर किसी दूसरे गांव से फिर दूर देशांतरों से सिद्ध करे प्रयोग करताओं के एक ही टाइम में कर टाइम की पक्की पाबन्दी रखे यदि काल टाइम की पाबन्दी नहीं रखी जायगी तो यह विद्या कदापि सिद्ध नहीं होगी यदि प्रयोग करताओं को प्रयोग की वक्त जरा अकेला या घबराहट मालूम हो तो प्रयोग फौरन बन्द कर आराम करना चाहिये यह विद्या बहुत कठिन और सीखने में बहुत टाइम (वख्त) लगता है इस विद्या वाले को अङ्गरेजी में इसको टेलीपेथी कहते हैं। अब विचारों के द्वारा फोटो चित्र भजने की सिद्धि कहेगें।

प्रकरण—इकीसवां

मानसिक चित्र प्रदर्शन भेजना।

(Mental Photo Graphy)

इस कार्य के लिये शून्य एकांत स्थान कमरा वगैरा हो जहां पर किसी प्रकार की आवाज सुनाई न देती हो। उस

जगह पर एकांत में कुरसी लगाकर आराम से बैठना चाहिए फिर अपने बदन के हरएक अवयवों को शांत और ढीले करना चाहिये और सम्पूर्ण शरीर को रुई के पहलों की भांति फारक नीसयास करके विचार रहित होना चाहिए पीछे अपने फोटो (चित्र) को अपने हाथ में लेकर उस पर संयम कर लक्षवेध करते रहना चाहिये। और जिस शख्स के पास भेजना हो उसका ध्यान मन में खेंचना चाहिए कि अमुक पुरुप अथवा स्त्री के पास मेरा यह चित्र जारहा है और उसको दीख रहा है इस प्रकार का विचार करते रहना चाहिये और अन्य नियम ऊपर वाले संदेशं के ही पालने चाहिये क्योंकि विचार के संदेश और फोटो भेजने में कुछ भी अन्तर नहीं है दोनों एक ही कार्य की क्रिया है। इसी ही विधी से भी तुम्हारे संदेश यों भेज सकते हो। कि बहुत थोड़े शब्दों में इबारत लिखकर जैसे में इच्छुक हूं मैं चाहता हूं कि इस प्रकार के अन्य शब्दों को लिख कर उस कागद को भी हाथ में लेकर ऊपरे की रीति अनुसार प्रयोग करने से भी आता है इस प्रकार चाहे फोटो चाहे संदेशा कुछ भी क्यों न हो ऊपर वाली विधियों से भेज सकते हैं। इस विधि की सब बातें गुप्त रखनी चाहिये वरना तुमको कदापि सिद्धि प्राप्त होगी नहीं। यदि तुम तुम्हारे विचार किसी दूसरे प्राणी को प्रगट कर कह दोगे तो उस प्राणी मनुष्य के विचार की धारा तुम्हारे विचारों के बीच में बहने लग जायगी जिस से तुम्हारी विचार धारा अनोन कंट हो जायगी यानि धारा का प्रवाह (रंग) बदल जायगा और तुम्हारे कार्य की सिद्धि में बाधा पड़ जायगी इसी में

तुम तुम्हारे विचार गुप्तागुप्त रखो किसी को भी प्रकट मत करो वरना हमको झूठे बताओगे और तुम पछताओगे।

प्रकरण--बाइसवां

विचारों के द्वारा गुप्त वस्तु की खोज।

इसके सीखने की विधी इस प्रकार है कि दो चार मित्रों को इखटे कर सीखने वाले की आंखे बन्द पटी आदि बांध देना चाहिए। कोई वस्तु सूई अथवा पुस्तक वगैरे वस्तु को छुपानी और उस वस्तु को किसी वैसे ही ठौर में लेजा कर डाल देनी चाहिये फिर सीखने वाले से कहना कि अब सोध लावो अथवा गाढी हुई को निकाल लावो अब सीखने वाले की आंख बन्द होने से वह कुछ देख सकता नहीं। परन्तु वो जान सकता है कि किसी न किसी जगह पर वह छुपाई गई है जरूर। उसको ढूढ निकालना जरूरी है। अब ढुढने वाले को क्या करना चाहिये। ढूढने वाले को छुपाने वाले से कहना चाहिए कि तुम अपने ध्यान की दृष्टि (चित) उस छुपाई हुई वस्तु पर एकाग्रहता से रखो अब तुम छुपाने वाले का जीवणा हाथ अपने डावे हाथ में पकड़ कर कहना कि जिस जगह पर वह वस्तु छुपाई गई है उसी जगह पर अपना ध्यान रखो इस प्रकार कहने से छुपाने वाला अपनी दृष्टि उस पदार्थ की तरफ करेगा उस वक्त उसका हाथ हाथ में ही रख एक या दो पग चला कर भरना ऐसा करने से जिस जगह पर वो वस्तु छुपाई होगी। उसी जगह पर तुम्हारा पहला पग होगा। तो जिस शख्स का हाथ तुमने पकड़ा है वह कुदरती तुम्हारे साथ खसकने

लगेगा। परन्तु जो तुम छुपी हुई वस्तु की दिशा की तरफ पांवडे (कदम) भरोगे तब छुपाने वाले की नजर उस छुपी हुई वस्तु पर होने से उसका हाथ उसके जाने बिदुन ही जराक खेंचायेगा। उसपर समझना चाहिये मैंने जो पहला पग आगे रखा है वह गलत झूठा है। जिस से अब दूसरी दिशा की तरफ अपने को चलना चाहिये यदि वह खरी दिशा होगी कि जिस तरफ पहला पग का पांवडा भरा होगा तो उस छुपाने वाले का चित्त उसी जगह पर होने से वो तुम्हारे साथ में विना खिचकिचावट के आगे बढेगा। यदि तुमको अब यह मालूम पड जायगा कि मेरा कदम सच्चा है तब तुम अपने दूसरे कदम को आगे बढाओ यदि अपना पग झूठा या सच्चा होतो तुमको छुपाने वाला अपने आप अपने हाथ के इशारे पर बतावेगा। परन्तु उसकी खबर छुपाने वाले को रहती नहीं और सोधने वाले को अपना ध्यान अपने डावे हाथ पर ही रखना कि पकड़ा हुवा हाथ कुदरत से कौन दिशा की तरफ अपने आप जाने को कहता है। इस प्रकार से करते करते छुपाई हुई वस्तु ऊपर आपहुचेगी फिर छुपाने वाला कुदरती तौर पर अपने एक श्वांस को छोड़ेगा या खींचेगा इस की सेनाण मालूम करने के लिये ढूडने वाले को अपने कान बखूबी सचेतन सूक्ष्म रखने चाहिये याने अपना ध्यान छुपाने वाले के श्वांस पर रखे और श्वांस की गति को जाने।

इस प्रकार अब तुम अपने दिल में जान लोकि छुपाने की जगह पर किस प्रकार आपहुंचे। अब यह बाकी रहा कि कौन जगह पर वह वस्तु छुपाई है अथवा वो अमुक वस्तु ही है

उसको खोज निकालनी है। अगर तुम बराबर जगह पर आपहुचोगे वैसे ही कुदरती तौर पर छुपाने वाले के हाथ के मारफत तुमको मालूम पड़ जायगा के तुम उसके असली जगह पर हो या नहीं अगर होवेगा तो छुपाने वाले का ध्यान उसी जगह पर होने से उसका हाथ उसी तरफ खींचेगा। इस पर जानना चाहिये कि अभी अपने असली जगह पर पहुचे नहीं इस प्रकार छुपाने वाले के सूक्ष्म इशारों से ही तुमको जहां वस्तु होगी वहीं को इशारे की सूचना छुपा-ने वाले के हाथ के कम्पनों अथवा खेचने धूजने के इशारों के ज्ञान द्वारा होगी और छुपाने वाले को कुछ भी नहीं होगी। अब समझो कि हम असली जगह पर आपहुंचे है परन्तु वहां पर ऐसी अनेक चीजें एकही तरह की पड़ी है। अब यह मालूम करना है कि अपनी वो चीजें कौनसी हैं,इसकी परी-क्षा करने के लिये हरएक चीज पर या गढी हुई होतो जमीन पर हाथ फेरना जब वो असली वस्तु पर हाथ लगते ही ये छुपाने वाले के श्वास का इशारा ऊपर लिखे तरीके पर छोड़ेगा उसका सूक्ष्म निवास का बोध ढूंढने वाले को करना चाहिये कि ये वो होगा। बस अब जानलो कि मैं ने उसी चीज पर हाथ लगाया है वहीं से उठालो। इस प्रकार विचारों द्वारा यह गुप्त वस्तु की खोज है। इससे छुपाने और देखने वालों को बड़ा आश्चर्य होगा और हैरत में डूब जावेंगे। इस पर कार के अभ्यास करते २ यह विद्या बिलकुल आसान सिद्ध होजायगी सिद्ध होजाने पर और भी कई बातों की आसान सिद्धियां होजायंगी इसमें ताज्जुब करने की कोई बात नहीं। ये तो सूक्ष्म विचार क्रिया की क्रिया सिद्धि है और ज्ञान मार्ग है।

अध्याय दूसरा

प्रकरण-पहला

इस प्रकार आपको सिद्धियों के संयम आदि के ज्ञान को बतला दिया है अब आपको सिद्धियों की साधना के ज्ञान की विधियों को बतला देते हैं। जिन विधियों को जानने से सिद्धिया वसी हो जाती हैं इस लिये विधियों सहित सिद्धियों का तत्व विज्ञान निरूपण करते हैं। प्रथम तत्व सिद्धि हैः—

(तत्व सिद्धि)

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पांच तत्वों का अनुसधान करना चाहिये। इन में से तीन तत्व तो प्रत्यक्ष स्थुलाकार है और आकाश वायु ये दो सूक्ष्माकार हैं। इन तत्वों के प्रमाणों को जाने बिना तत्व सिद्धि नहीं हो सकती है। इनके प्रमाण इस प्रकार हैं। पैर से जंघा तक पृथ्वी तत्व है। जंगा से गुदा तक जल तत्व है। गुदा से हृदय तक अग्नि तत्व है। हृदय से भ्रकुटी तक वायु तत्व है भ्रकुटी से ब्रह्मरन्ध्र तक आकाश तत्व है।

अब इन तत्वो के केन्द्र सुषमणा में लगे हुवे इस प्रकार हैं पृथ्वी तत्व का केन्द्र मूलाधार चक्र है। जल तत्व का केन्द्र स्वाधिष्ठान चक्र है। अग्नि तत्व का केन्द्र मणीपुर चक्र है। वायु तत्व का केन्द्र अनाहत चक्र है। आकाश तत्व का केन्द्र विशुधि चक्र है।

जिस जिस तत्व की सिद्धि करनी हो उसका ध्यान उस की आकृति और जगह और विजा अक्षर के साथ संयम किया जाय तो तत्व का जय हो जाता है अर्थात् तत्वों पर अधिष्ठान काबू कर लिया जाता है। फिर वह तत्व जिस जिस विचार शक्ति में प्रेषित किया जावे तो उसके माफिक इच्छित फल करता है और इच्छा रूपी कार्य करने लग जाता है।

अब तत्वों की आकृति का बोध कराते हैं:--

पृथ्वी तत्व की आकृति चतुष्कोण है पित्तवर्ण है (लं) बीज पृथ्वी देवता है। जल की आकृति अर्धचन्द्राकार श्वेत वर्ण है (व) बीज है विष्णु देवता है। अग्नि की आकृति त्रिकोण रक्त वर्ण (रं) बीज रुद्र देवता है। वायु की आकृति वर्तुलाकार गोल नील वर्ण (यं) ईश्वर देवता है। आकाश की आकृति वर्तुलाकार चित्र वर्ण (हं) बीज सदा शिव देवता है। इस प्रकार तत्व सिद्धि करने वालों को तत्वों के प्रमाण स्थान केन्द्र आकृति वर्ण बीज देवताओं का अनुलक्ष कर जिन जिन तत्वों की सिद्धि करनी हो उनका चितवन करके विचार का तदाकार करना चाहिये तद्स्वरूप तत्वों में वृतिका निरुधकर सतत भाव से अभ्यास करना चाहिये और उन उन तत्वों की इन्द्रियों के विषयों को सम्यग्य ज्ञान तक चित्त की वृतियों को विचार शक्ति द्वारा तत्वों के विषयों में संयम करने से तत्व सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जिससे तत्वों को इच्छानुसार संचालित संगठन विघठन कर स्थभन कर सकते हैं। इति तत्व सिद्धि ॥

प्रकरण–दूसरा

अपार बल प्राप्त करने की सिद्धि।

अपार बल किस प्रकार से मनुष्य सम्पादित कर सकता है। अपार वही परब्रह्म अपरिमित तत्व है उसी का एक शरीर हमारे स्थूल शरीर में लिंग नाम का एक शरीर है वह अपरिमित तत्व का आकर्षण विकर्षण सञ्चय क्रियमान अपरिमित तत्व को सम्पादित करता है। प्रत्येक सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों में लिंग शरीर समाया हुआ रहता है। जब तक मनुष्य अपने लिंग शरीर से अपरिचित है। तब ही तक वह निर्बल बना रहता है और दूसरों को अपने से ज्यादा बलवान भ्रांति से जानता है। जब लिंग शरीर का बोध होकर स्थूल शरीर के साथ संयम करके तद्रूप करके लिंग शरीर की शक्ति पर अपना अधिकार कर लेने से मनुष्य अपार बल को प्राप्त कर सकता है। इस की सिद्धि को करने से मनुष्य हरेक बलवान जन्तुओं के साथ विजय प्राप्त कर सकता है। जिस जिस जानवर के बल के स्वरूप में संयम करने से उसी जानवर के बल पर अपना अधिकार शासन जमा सकता है। जैसे सिंह, हाथी, गैंडा, घड़ियाल, मगर, गरुड़ गृद्ध, वायु, अग्नि, जल, विधु शस्त्र अस्त्र इत्यादि पदार्थों के बल में संयम करने से उन के ऊपर अधिकार प्राप्त हो सकता है। लिंग शरीर का सूक्ष्म शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर के साथ घनिष्ट सम्बंध है। परन्तु इन तीनों शरीरों को एक ही कारण करके संयम करने से साधक में अपार बल प्राप्त हो जाता है।

प्रकरण–तीसरा

क्षुदा पिपासा निवृति की सिद्धि

जिह्वा के नीचे मूल भाग में एक नाड़ी है वह नाड़ी कंठ प्रदेश में कूपाकार है उसी को कंट कूप कहते हैं। आज कल के डाक्टरों ने भी इस नाड़ी का नाम फेरी नक्स रखा है। इसी जगह पर उदान वायु का केन्द्र है इसी केन्द्र में प्राण वायु का केन्द्र है उसी में प्राण का संघर्षण होता है जिससे प्राणियों को भूक प्यास का ज्ञान होता है। जितनी २ उदान वायु के केन्द्रस्थ प्राण का आन्दोलन अधिक वेग के साथ होता है उतना ही अधिकाधिक भूक प्यास इच्छा उत्पन्न होती है। जैसे इंजन के स्टीम के अधिक वेग में अधिकाधिक कोयला पानी जलाया जाता है और कम वेग में कम और अभाव में कुछ नहीं, इसी प्रकार प्राण और अपान का नासिका के अन्दर समरुप संयम करने से भूख प्यास की निवृति की सिद्धि प्राप्त होती है। और हठ योग की खेचरी मुद्रा के सिद्ध होने से और कुम्भक के परिपक होने से साधक को यह सिद्धि प्राप्त होती है।

प्रकरण–चौथा

अदृश्य सिद्धि

यह सिद्धि रूप के द्वारा नेत्रों से सिद्ध होती है। नेत्रों के तारे विन्दुओं में मन के सत्व का प्रकाश प्रवाहित होकर रूप ग्रहण शक्ति प्राप्त होती है। नेत्र के दोनों बाजू गोलाकार और मध्यम में तारा है (o*o) ये चित्र है। इन विन्दुओं

में एक ऐसा घट का अव्यव है कि जिस से कोई वस्तु नहीं दीखती उसको अन्ध विन्दु कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यदि तारे पर दृष्टि जमाई जावे और नाक पर नेत्रों के बीच सादी छोटे कागज की तखती रखी जावे तो दोनों गोलावृत तारे के बाजू बाजू अदृश्य हो जाएंगे। इसी प्रकार दूसरे प्राणियों की दृष्टि में अपने रूप को अदृश्य करना है। जब साधक अपने रूप का संयम करता है अथवा दूसरे के रूप के विन्दुओं के अन्दर अपने रूंप का संयम करता है और निमेषा निमेप रहित होकर अपने रूप का ध्यान किसी भी प्राणी के नेत्र विन्दुओं में संयम करने से अदृश्यता की सिद्धि प्राप्त होती है। याने देखने वालों का मन सत्व का प्रकाश अन्दर खिंच जाता है जब देखने वाले की दृष्टि का अतिक्रम हो जाता है जिस से साधक को कोई नहीं देख सकता है और वह सब को देख सकता है। और मन माना रूप भी दिखा सकता है।

यह एक रूप की सिद्धि हुई। इसी प्रकार शब्द सिद्ध स्पर्श सिद्धि, रस सिद्धि, गंध सिद्धि आदि सिद्धि प्राप्त होती है। इस सिद्धि को हठ योग वाले त्राटक सिद्धि कहते हैं। नेत्रों से रूप का अतिक्रम करने से सिद्धि मन माना रूप दिखा सकते हैं। और नासिका के गंध का अतिक्रम करने से सिद्ध मन माना गंध सुगंध सुंघा सकता है रस काअतिक्रम कर जिव्हा पर अधिकार जमाने से सिद्ध मन माना रस चखा सकते है। इस प्रकार जिस जिस इन्द्रिका और विपय का अति कर्म करने से उसी विषय और इन्द्रियों को अपनी इच्छा माफिक प्रत्येक प्राणी की इन्द्रियों और विषयों को अपनी इच्छा अनुकूल वर्ताव कर सकते हैं।

प्रकरण-पांचवां

वचन सिद्धि

वचन नाम की उत्पत्ति वाणी से है और वाणी की उत्पत्ति वाणी के प्रकरण में लिख आए हैं। अब वाणी के अन्तर्गत जो वचन हैं उस की सिद्धि का वर्णन करेंगे। प्रत्येक शब्द मात्रा की उत्पत्ति कुण्डलनी नाडी से है। यह कुण्डलनी सम्पूर्ण वचनों की सिद्धि दात्री है यह सुवर्ण वर्ण तेज सत्व, रज, तम गुणों को उत्पन्न करने वाली काम बीज (क्ली) अक्षर के आकार में विराजमान है। इस अक्षर के आकार की होने से ही तीन घेरे हैं। और यही साढे पैंतीस करोड़ नाड़ियों की ग्रंथी रूप केन्द्र है। इसी नाड़ीमें प्राण के स्पन्दन की ठोकर होने से ही परा नाम की वाणी उत्पन्न होती है। और यहीं से प्राण के चेतना के चैतनकण स्वरूप में प्रगट होते हैं। वह उत्पन्न हुवे चैतन्यकण मेरुदण्ड में सञ्चमान होकर शब्द और वचनों के साथ व्यक्त होते हैं। इन्हीं कुण्डलीने के अन्दर शब्दों पर संयम जमाने से प्रत्येक वचन की सिद्धि होती है, और कविता व्याकरण आदि जानी जाती है। और प्रत्येक प्राणी जन्तु, पशु, वृक्ष आदि की वाणी और शब्द का अर्थ और बोध हो जायगा। अब वाणियों की आन्तर क्रिया को कहते हैं।

कुण्डलनी से ही इच्छा उत्पन्न होती है और इसी से सम्पूर्ण शरीर की आन्तर क्रिया चलती है। और इसी कुण्डलनी से ही ज्ञान शक्ति वाहनी इच्छा शक्ति वाहनी और

क्रिया शक्ति वाहनी यह प्रधान तीन प्रकार की नाडियों का प्रस्तार बिना डण्ड के तारों के समान प्रचलित है।

इस कुण्डली में प्राण स्पनन्दन का आघात होता है परा में ध्वना आत्मक नाद का स्फूर्ण होता है फिर वह नाद हृदय प्रदेश में जाकर पश्यन्ति नामकी बाणी में व्यक्त हो कर ध्वना आतमक से स्वरात्मक हो जाता है वह स्वरात्मक कंठ प्रदेश में मध्यमा से मिलकर वर्णा आत्मक हो जाता है फिर तालु जिव्हा आदि में मिलकर बैखरी से सम्मलित होकर शब्दात्मक बचन बन कर अर्थों के रूप में गद्य पद्य के अनुसार विभक्त होजाते हैं।

परामें ध्वनात्मक शब्द। पश्यन्ति में स्वरात्मक शब्द मध्यमा में बर्णात्मक शब्द और बैखरी में शब्दात्मक शब्द बोले जाते हैं। परालक्ष करती है (ध्यान) पश्यन्ति देखती है यानि (धारणा) मध्यमा मन (विचार) बैखरी बोलती है यानि क्रिया पाषाण धातु आदि में परा बनस्पति-यों में पश्यन्ति पशुओं में मध्यमा पक्षियों और मनुष्य में बैखरी जिस जिस वाणी का ज्ञान करना हो उस २ बाणी में सयम करने से उस २ बाणी की सिद्धि होजाती है।

बिना इन बाणियों के विज्ञान तत्व के जाने मंत्र सिद्धि कदापि सिद्ध नहीं हो सकती है।

प्रकरण–छटा

मंत्र सिद्धि ।

जिस प्रकार के मन्त्रों को सिद्ध करना हो । उन मन्त्रों के जाति शक्ति बीज देवता नियम विधि वर्ण आदि को जानकर फिर उन पर संयम इन वाणियों के साथ करे तो सिद्धि हो जाती है परासे बैखरी तक मन्त्र के उच्चारण को लगातार संयम करे और मूलाधर से ब्रह्म रन्धर तक मन्त्रों के वर्ण देवताओं का ध्यान कर शक्ति और बीज मन्त्रों का आकर्षण और विकर्षण उच्चारण करे मंत्र मात्रा का उच्चारण अर्थ सिद्धि वाणी में है यह मन्त्र सिद्धि है ।

प्रकरण–सातवां

लघु सिद्धि यानि शरीर का हलका होना ।

कंट नासिका और ब्रह्मरंध तक उदान वायु रहता है । वही उदान मरन के बाद सूक्ष्म लिंग शरीरकी उच्चावस्था का कारण हो जाता है अगर उदान वायु का संयम द्वारा जय किया जाय तो अन्य वायुओं का व्योपार बन्द हो जाता है जब उदान वायु प्रबल गति मान होकर शरीर को रुई के समान हलका बना देती है ।

इस भूमण्डल के चारों ओर विस्तीर्ण वायु मण्डल है उसका प्रवाह जितना पृथ्वी के निकट उतना उसमें पार्थिक

अंश अधिकाधिक मिलकर वह भारी हो जाता है और पृथ्वी से वह जितनी दूर रहता है उतना ही उस में पार्थिक अंश कम होता जाता है। आज कल के विज्ञानियों ने वायु के भार वजनका पता लगाया है वह एक इञ्च सम चौरस जगह पर १५ पाउंड याने ७॥ सेर वजन रहता है तो हमारा शरीर ६४ इञ्च लंबा और ३२ इञ्च चौडा कुल ९६ इञ्च सम चौरस शरीर पर कितना भार होता है दोनों संख्याओं का गुणाकार करने पर२०४८इञ्च होता है और पन्द्रह पाव१५ पाउड हिसाव से ३०७२० पाउड भार होता है जिस का ३८४ मन वजन हमारे शारीर पर वायु का भार होता है। इस लम्बे चोड़े शरिर पर जिस का के मूल वजन ·डेढ दो मन है उस पर वायु के इतने भार का आर्वण है इस आर्वण को और वायु मेसे पार्थिव अंश याने (नाइट्रोजन और हाइड्रोजन)नाम इन दो पदार्थों को वायु में से निकाल दिये जाये तो फिर उस वायु में शुद्ध औक्षीजन रह जाता है उसी ओक्षीजन को (उदान) प्राण के द्वारा प्रत्येक वस्तु हलकी होकर आकाश में उड सकती है देखो पक्षी का शरीर मनुष्य शरीर जितना भारी अथवा उस से भी भारी होता है तो भी वह आसानी से उड सकता है इसका कारण यही है की वह वायु के औक्षीजन तत्व को अपने शरीर की हडीयो में भर कर नैसर्ग उड़ान द्वारा अपने परों से, वायु के हाई ड्रोजन नाइट्रोज के भार को कम कर देता है जितना आकाश में ऊपर जाता है उतना ही वह सुख पूर्वक उड़ सका है इसी सिद्धान्त से गुबारों में ओक्षीजन भर कर उडाये जाते है उनही की सोध द्वारा वायु की आकाश मण्डल में सोध कर आजकल वायु यान उडाये गये हैं।

प्रकरण–आठवां

आकाश गमन सिद्धि ।

जब साधक उडीयान बँधन लगाकर आसन मार कर बैठता है उसके आस पास आकाश का आवर्ण घिरा हुवा है शरीर और आकाश में व्यापक व्याप्य का सम्बन्ध है उसमें संयम करने से साधक सबन्ध का साक्षातकार करके साधक आकाश को अपने अधिकार में कर लेता है जब उस का शरीर पवन वेग के समान उड़ जाने की अद्भूत शक्ति प्राप्त होती है साधक पहले पानी पर चल सकता है फिर कांटो पर फिर मकडी के जाल पर फिर सूर्य के किरणों पर अन्तमें स्वेच्छाचारी हो जाता है।

प्रकरण–नवमां ।

(परकाया प्रवेश)

जिन नाडी चक्रों द्वारा चित्त पर शरीर में प्रवेश कर सकते है उन नाडी चक्रों का पूरा ज्ञान प्राप्त करने पर स्वतन्त्र चित्त बंधन रहित होकर पर शरीर में प्रवेश कर जाता है। चित्त कि इस प्रवेशा प्रवेशक्रिया को नाडी का प्रचार कहते हैं। प्रचार रूप चित्त की गति के आने के मारग का सूक्ष्म शरीर सहित चित्त पर काया प्रवेश होता है इसी को भगवान् पातं· जली ने चित्त को बंधन करने वाले कर्म रूप कारणों में संयम करने से उन कारणों की स्थिरता होती है और प्रचार

में संयम करने से उस का साक्षात कार कर लेने पर यथार्थ ज्ञान होता है यह ज्ञान होते ही। जैसे कोई अपने घर या पराये घर में किवाड़ खोलकर झट चला जाता है वैसे ही साधक का चित्त मृतक शरीर में या जीवित शरीर में प्रवेश कर जाता है।

सूक्ष्म शरीर के दो भेद हैं समष्टि रूप और व्यष्टि रूप इन रूपों का विकाश सूक्ष्म शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां और तेजस शरीर प्राण रहता है और स्वप्न अवस्था है इस सूक्ष्म शरीर की इन्द्रियों को खोलना और प्रत्यक्ष करना और उस पर संयम करना ही परकाया प्रवेश है। अर्थात् सूक्ष्म शरीर का संकोच कर उस पर अपना अधिकार जमा लेना। जिस प्रकार मधु मक्खियां का राजा जिस जगह पर जाकर बैठता है वही वही अन्य सब मक्खियां भी चली जाती हैं इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के पीछे ज्ञानेन्द्रियां और कर्म-इन्द्रियां भी चली जाती हैं सूक्ष्म शरीर को चित्त के द्वारा खोलकर उसके अन्दर ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां और प्राण का जय करके इच्छा रूप शरीर जड़ अथवा चैतना में प्रवेश कर सकता है।

प्रकरण--दसवां

भाव सिद्धि।

परा वाणी में चित्त की स्फूर्णता होती है वही भाव है। वह स्फूर्ण चित्त से मन प- आलम्बन होता है वही विभाव अर्थात् वह आलम्बन करता है मन उस चित्त के आलम्बन को बुद्धि पर प्रतिबिम्बत कर देता है वह अनुभाव है और

वुद्धि में जब यह अनुभाव को प्रगट कर इन्द्रियों में संचार करता है वही संचारित भाव है इन्द्रियां उस सचारित भाव को क्रिया में परणित कर प्रत्यक्ष स्थिर कर के उस को वोध कराती है यही स्थिर भाव है इन भावों को ध्यान धारणा मनमें निधिध्यासन संयम करने से तमाम भावों की सिद्धि प्राप्त होकर हरएक के चित्त की बातको जान सकता है इसका पूरा ज्ञान जान ने के लिए हम एक भाव प्रबोध नामका ग्रन्थ लिखेंगे याहम से सीखलें।

प्रकरण—ग्यारवां

शरीर के रचना, ज्ञान सिद्धि।

शरीर की रचना का ज्ञान दो प्रकार से आज कल करते है। प्रत्यक्ष चीर फाड़कर के सरजरी द्वारा और एकसरेज (XRays) द्वारा परन्तु हमारे ऋषि मुनि तो अपने ब्रह्म विद्या द्वारा दिव्य दृष्टि के द्वारा करलेते थे। हमारे शरीर में जो नाभि के अन्दर जो मूल कन्द सूर्य चक्र है उस मे संयम करने से शरीर की रचना का ज्ञान प्राप्त होता है शरीर में नाडियों के स्थूल सूक्ष्म कितने ही चक्र हैं उन में कितने ही नेत्रों द्वारा दीखते हैं कितने ही सूक्ष्म यंत्रों से दीख सकते हैं कितने ही विल्कुल नहीं दीखते उन सब का ज्ञान दिव्य चक्षु द्वारा हो जाता है इन चक्रों में संयम करने सेशरीर के रचना का ज्ञान अद्भुत होता है जो ज्ञान प्रत्यक्ष चीर फाड़ से हो नहीं सकता।

पाश्चात्य डाक्टरों ने मुरदों की चीर फाड से शरीर की वाह्य रचना का पता लगाया है और अनेक सचित्र पुस्तकों को प्रकाशित किया है और बहुत शरीर के आन्तर क्रियों के प्रत्यक्ष निरीक्षण करने के लिये एकसरेज नाम की बिजली की किरणों का अनुवेषण किया है और ताहम भी अभी तक चैतन्य ज्ञान से तो सून्याकार ही है और हमारे ऋषि मुनि महात्मा भिषगाचार्य अश्वनी कुमार सुषेणअत्री हरीत अग्निवेश सुश्रुत धनवन्तरी आदि ये संयम शक्ति द्वारा ही सजीवन सक्रिय अन्तर शरीर रचना का ज्ञान प्राप्त किया था उसके समान ज्ञान मुर्दों की चीर फाड़ से जड यन्त्र एक्षराइज इत्यादिक यन्त्रों से कब हो सकता है।

डाक्टर मुकरजी यूअर इनर फौरस नामकी पुस्तक में लिखते हैं कि विचार आन्दोलन शक्तिका ज्ञान आधुनिक यन्त्रों द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता है। देखो डाक्टरों ने मनुष्य शरीर में हड्डियों की संख्या २०० प्रमाणित की है परन्तु हमारे आचार्य सुश्रुत ने ३६० अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर प्रमाणित की हैं अब प्रत्यक्ष प्रमाण के आगे सुश्रुत की बात झूठ प्रमाण होने में शंका ही क्या रही। एकसफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध डाक्टर हारनले ने अपनी योग्यता के साथ प्रपाणित किया है कि सुश्रुताचार्य का कहना ठीक है सुप्रसिद्ध डाक्टर फिलाडेलीहिया के जारज कर्लक एम ए एमडी का कहना है कि चरक के पढने पर मेरा सिद्धांत हुआ है कि समग्र Ferma Kopiya का नया आविष्कृत औषधी का त्याग करके चरकके अनुसार चिकित्सा की जाय तो आज कल की मृत्यु संख्या बहुत घट जायगी।

प्रकरण--बारहवां

मृत्यु ज्ञान जानने की सिद्धि।

यह सिद्धि मनुष्यों के अन्य प्राणियों के तेज़ के प्रति भास में सयम करने से होती है जैसे २ मृत्यु समीप होती जाती है वैसे २ मृत्यु समय नजदीक आ जाती है जिस की तेज प्रभा ज्यों २ शरीर के अन्दर से खींचती जाती है। उतनी २ मृत्यु समय नजदीक आ जाती है मनुष्य अपने या अन्य के तेज में संयम करने पर मृत्यु का स्पष्ट ज्ञान होता जायेगा। और अन्य प्रकार से मृत्यु के जानने के ज्ञान को मृत्यु विज्ञान के भाग में लिखेंगे। यहां केवल क्रिया रूप की सिद्धियां के सयम में लिख दिया गया है अब संक्षिप्त में कुछ लक्षण ज्ञान और कर्मों का वर्णन करते हैं। जिन को जानने से मृत्यु समय का और स्थल का भी होजाता है। मृत्यु के लक्षण तीन प्रकार के होते हैं। अध्यात्मक, दोनों कानों के बन्द करने पर फड़फड़ात से आवाज सुनाई देना यानि नित्य जिस प्रकार की आवाज सुनते हैं। उसके विपरीत सुनाई देना। आधिदेवीक यम दूतों का दर्शन देना दुष्ट स्वप्नों का आना अशकुन लक्षण दृश्य आना अङ्गों का फडफडाना आदि भौतिक लक्षण एक ही शरीर का रंग रूप और कर्मेन्द्रियां का विप्रयास होजा ना सरदी को गरमी और गरमी को सरदी बताना अकाल में बादल धुंव मेघ विधु नजर आना मक्खि मच्छर का नजर आना इन भौतिक लक्षणों से मृत्यु समय का ज्ञान साधारण मालूम हो जाता है अब कर्मों के द्वारा मृत्यु के ज्ञान को कहेंगे।

शोक कर्म द्वारा निरुक्त कर्म द्वारा पूर्वजन्मो का किया हुवा अविलम्ब फलोन्मुख शोक कर्म है। थोड़े समय में फल देने वाला कर्म निरूप कर्म है। पूर्व जन्म में किया हुवा कालांतर कर्म फल देने वाला होता है। इन कर्मा में संयम करने से मृत्युज्ञान किस समय में और किस स्थल में होगा। इसका स्पष्ट ज्ञान हो सकता है। सोप कर्मा में संयम करने से समीपअस्त मृत्यु ज्ञान होता है और निरूप कर्मा में संयम करने से दूरस्थ स्थल का ज्ञान होजाता है।

प्रकरण–तेरहवां

तारों की रचना ज्ञान की सिद्धि।

सूर्य के तेज से तारों का तेज अति न्यून होने के कारण सूर्य के तेज से निःस तेज रहते हैं। इसलिये सूर्य के संयम से तारों का ज्ञान नहीं हो सकता है। चन्द्रमा का सम्पूर्ण प्रकाश होने पर भी तारे प्रकाश मान रहते हुये दिखलाई देते हैं। इस लिए चन्द्र मण्डल में संयम करने से तारों की रचना का ज्ञान और इनके व्यूह का ज्ञान हो जाता है। विशेष ज्ञान हरएक पदार्थ की कांति (Aura) के किरणों का प्रकाश है। इसी प्रकार हमारे विचार किरणों का भी प्रकाश हैं वह प्रकाश आकंपित होजाने से जगत के आधार प्रदेश में फैले हुये तारो की रचना का ज्ञान देख सकते हैं। जैसे ध्रुव के तारे में संयम करने से प्रत्येक तारे का उद्दिया-स्थ का ज्ञान होता है। आजकल के पश्चात विद्वान बड़ी २

दूरबीन के आविष्कार करके तारों का प्रत्यक्ष ज्ञान लगाते हैं कि बहुधा सब ग्रह उपग्रह गतिमान हैं और कितने ही स्थिर भी हैं। किन्तु वह भी किसी महान् सूर्य के आस पास एक सेकण्ड में ५००० मील के वेग से घूम रहे हैं। परन्तु चन्द्र मण्डल में संयम करने से इन तमाम तारों का ज्ञान होजाता है।

प्रकरण—चौदहवां

सौर जगत के भवनों के ज्ञान की सिद्धि बताते हैं।

सूर्य जगत के मण्डल में ही बहुत से स्थूल भवन हैं। यदि इन भवनों का पूरा हाल जानना चाहते हो तो सूर्य मण्डल में संयम करके देखो।

भगवान व्यास ने अपने व्यास भषा में लिखा है की सूर्य में संयम करने से कुल स्थूल सूक्ष्म १४ भवनों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अब हम आप को १४ भवनों का परिचय कराते हैं। वह इस प्रकार से हैं। भूव लोक, मनुष्य लोक, मृत्यु लोक, भूर्व लोक, ध्रुवलोक, स्वर्ग लोक, इन्द्र लोक प्रजापति लोक, ब्रह्म लोक, महेन्द्र लोक, महर भवन, जन लोक, तप लोक, पाताल लोक, इस प्रकार यह सौर जगत १४ हिस्सों में बटा हुवा है। पाताल के ऊपर और नीचे ये सात पाताल लोक हैं। जिन के यह नाम हैं। १ महातल २ रसातल. ३ अतल, ४ वितल, ५ तलातल, ६ सूतल ७ पा-

ताल, ये सात पाताल हैं। अब सात ऊपर बताते हैं। १ भू लोक, भूर्व लोक, ३ स्वर्ग लोक, ४ इन्द्र लोक, प्रजापति लोक, ये इन्द्र लोक से प्रजा पति तक स्वर्ग में हैं अब इनके ऊपर के लोक को कहेंगे। ६ महेन्द्र लोक, ७ महर लोक ८ जन लोक, ९ तप लोक १० सत्य लोक, यह चवदा लोक इनको ही चतुर्दर्श भवन कहते है।

इन चवदह ही भवनों का संचालक सूर्य है। इसलिये सूर्य चक्र आदि ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध से कुछ न परिणाम परिवर्तन होता रहता है जिस सूर्य चन्द्र की उष्ण: शीतलता से हमारे भूमण्डल में पर जो प्रणाम होता रहता है। जो हमारे जीवन के काम में आता है। इसलिये सूर्य मण्डल में संयम करने से चतुर्दस भवनों का ज्ञान और चद्र मण्डल में संयम करने से तारों का ज्ञान अभ्यास द्वारा हो जाता है। न कि बड़ी २ दूरबिनों से भी पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है।

हमारे ऋषियों मुनियों ने इस विशाल जगत का पता लगाकर अनुभव द्वारा ही खगोल की रचना की है। वह बिलकुल ठीक और आज दिन सत्य है आज कल के साइन्स वादि अपनी अज्ञानता से उस पर विश्वास न भी करें और नित्य नवीन आविष्कार कर करके मोहित हो रहे हैं और पतंग वत आत्मसमर्पण कर रहे है तो भी यह सिद्धि नहीं हो सकती है कि आविष्कारों का मूल पता हमारे यहां पर नहीं है आज भी जगत भर के लोगों को माननीय है कि इन सब का मुल कारण अध्यात्म विद्या ही है और यह विद्या भारतवर्ष की ही है। इस में कुछ भी सन्देह नहीं है।

प्रकरण-पन्दरहवां

सिद्ध पुरुषों के दर्शनों की सिद्धि।

मस्तिष्क में एक अत्यन्त प्रकाशमान छिद्र है जिस को ब्रह्म रन्ध्र कहते हैं। जैसे सूर्य की किरणों से चन्द्रादिग्रह प्रकाशित होते हैं। वैसे ही उस जोर्तिम्य ब्रह्मरन्ध्र से चक्षु आदि इन्द्रियों में प्रकाश पहुच कर सर्वत्र शरीर में उसके किरण फैलते हैं और उन किरणों के द्वारा ही चैतना शक्ति उत्पन्न होती है किन्तु फिर उस प्रकाश का आकर्षण उसी ब्रह्मरन्ध्र में होता है क्योंकि वह विचार का केन्द्र है इसीलिये ब्रह्म रन्ध्र में संयम करने से जो मनुष्यों के देखने में नहीं आने वाले ऐसे पृथ्वी और आकाश में विचरने वाले गुप्त महात्मा और सिद्धों के दर्शन हो जाते हैं और उनके साथ बात चीत भी हो सकती है। आजकल तो प्रेतावाहन विद्या अर्थात् मृतक आत्माओं को बुलाकर उनसे बात चीत करना और उन के फोटो लेना इत्यादि आविष्कार प्रत्यक्ष हो गये हैं तो फिर उन अदृश्य महात्मों के दर्शन करना और उन से बात चीत करना असम्भव कुछ नहीं है।

प्रकरण-सोलहवां

चित्त के ज्ञान की सिद्धि

मनुष्य के हृदय अधोमुख कमल सदृश्य है। उसकी कर णीका के गर्भ कोष में अन्तःकरण रहता है इसलिये हृदय कमल-मे सयम करने से समष्टि चित्त का ज्ञान होता है। चित्त के

शरीर के बाहिर दो प्रकार की स्थिति है। चित्त जब बाहिर के विषयों में आलंबित रहता है तब विषयाकार बन जाता है। फिर शरीर में अभिमान अहंकार को उत्पन्न करता है। ऐसी वाहाम्य वृति को कल्पना विदेहा कहते हैं। वह देह से भिन्न बाहर के पदार्थों को ग्रहण करने वाली है और अन्तर मुख वृति को ही महा विदेहा कल्पना रहित कहते हैं, यह देहाभिमान निराश रहित है। इस प्रकार देहा विदेहा के चित्त की अवस्था में संयम करने से चित्त को ज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है जब चित्त के ज्ञान की सिद्धि हो जाने से ये चित्त सृष्टि चित्त में जान जाता है और परकाया प्रवेश आदि सिद्धियों को प्राप्त हो जाता है।

प्रकरण—सतरवां

भूत और भविष्य का ज्ञान

प्रकृति से लगा कर स्थूल पदार्थ तक सब जगत परिणाम शील है। उत्क्रांति नियमानुसार जगत का उत्तरोत्तर रुपान्तर होता रहता है। परिणाम के तीन भेद हैं। धर्म परिणाम अर्थात् पदार्थ का रुपान्तर होना जैसे दूध का दही, लक्षण परिणाम द्रव का घन रूप होना अथवा घन का द्रव रूप होना—जैसे धर्म और धर्मी का संयोग वियोग होना। इन की तीन अवस्था होती हैं—भूत, भविष्य और वर्तमान जैसे दूध का दही बनने में लक्षण परिणाम प्रतिक्षण होता है। जब कोई द्रव एक मार्ग रहकर वही दो अवस्थाओं से सम्बंध रखता है उसको अवस्था परिणाम

कहते हैं। इन तीनों परिणामों में संयम करने से भूत भविष्य वर्तमान का की अवस्थाओं का ज्ञान हो जायगा।

प्रकरण–अट्ठारहवां

तेज सिद्धि

यह वही सिद्धि है कि जिसका चमत्कार भगवान् श्रीकृष्ण ने कौरवों की सभा में अपने अन्दर से प्रज्वलित तेज पुञ्ज को प्रगट कर सभा को स्थीभत करदी यह ही तेज सिद्धि है। हमारे शरीर में एक जठरा अनल नाम की तैज (अग्नि) है। वह जठरा अनल (जिस प्रकार का बिजली का यंत्र जरनेटर होता है उसी माफिक हमारे आ न्तर शरीर में जठर (अग्नि) का याने यंत्र विशेष है। जो हमारे नाभी प्रदेश में है) इस जठर में इतनी अग्नि है कि चाहे तो तमाम ब्रह्मण्ड को क्षण मात्रा में अग्निस्यकणो से आच्छादित कर सकता है। यही तेज हमारे शरीर में आहार के भुक्त अन्न को पचाने वाला है। इतना तेज होते हुवे भी हमारे शरीर में बंद रहता है और हमारे जीवन मे सार्थक है नकि हमको किसी प्रकार दग्ध नहीं कर सकता है जिसका कारण यह है।

जठरा अनल को सामान वायु अपने बल से स्थिर रखता है। जिस प्रकार बिजली की बिद्युत शक्ति को बैटरी में भरकर अपने स्थान बैटरी में निग्रह कर कायम रखते हैं। उसी प्रकार अनल को सामान वायु अपने आवर्ण की बैटरी जठर में अनल को निग्रह कर अपने स्थान में कायम रखता है। इसी से उस स्थान का नाम जठरा अनल के नाम से

प्रसिद्ध है। यह जठरा अनल सामान वायु मे अपने अव्यक्त रूप में समाई हुई सामान रहती है। यदि हम सामान वायु के भार को हटाने से वह जठर अनल वाहर निकलती है। और अपने सामान वायु के निद्युत (इलेक्ट्रोन) को अगर हम अपनी इच्छा अथवा विचारो शक्ति मे सयम कर आविर भाव के सचालन विचालन किसी भी एक दिशा विशेष में बल पूर्वक सचालन करने से उसमें तेजोवलय विद्युत किरणों का पुञ्ज प्रकाश प्रगट हो जाता है। यही तेज सिद्धि है।

प्रकरण—उन्नीसवां

सूक्ष्म छाया मय पुरुष की सिद्धि।

हमने पिण्ड के प्रकरण में जो सात प्रकार के पिण्ड बतालाए हैं वैसे ही पुरुष भी सात प्रकार के हुवे हैं। अब उन में से क्रिया रूप सिद्धियों से छाया पुरुष और विराट पुरुष की सिद्धि का वर्णन करेंगे। छाया पुरुष के सिद्ध करने वाले साधक को एकान्त में एक ऐसा मकान हो जिस मे साधक अच्छी प्रकार से चल फिर सकता हो और आसमानी Blue रंग से रगा हो हवा के लिये जो दरवाजे खिड़कियां हो वह भी आसमानी रंग के पड़दो से ढकी हो इस के बाद उसमे एकदीपक तिल्ली के तेल से जलावे जो अपनी पीठ के पीछे हो फिर वस्त्र हीन (नगन) होकर अपनी छाया को कंठ प्रदेश में एक समान संयम करे करीव एक अवाथ आध घंटे तक ऐसा करते करते उस छायामय पुरुष की सिद्धि प्रगट हो जायगी वह छायामय पुरुष स्वयम प्रगट हो कर तुम्हारे सन्मुख हो जायगा वव तुम उससे बात चीत कर सकते हो

और अधिकार जमाने पर वह तुम्हारे हुकम के माफिक काम करेंगे। यह साधन जबतक सिद्ध न हो तब तक करता रहे। रात दिन अपनी छाया ही के ध्यानावस्थित रहे। और मौन रखे। अभ्यास को धीमे २ वढाना चाहिये।

इसी प्रकार विराट पुरुष की सिद्धि है। यह सिद्धि दिन में ११ बजे से २ बजे तक सूर्य की धूप में अपनी छाया को एकान्त में नगन होकर ऊपर लिखे अनुसार ही सिद्ध करे जिस से विराट की सिद्धि होगी। इसके वाद वह प्रत्येक विराट को देख सकेगा क्यों कि प्रत्येक के भविष्य में होने वाला कर्म का चित्र पहले विराट पर पड़ता है फिर सूक्ष्म पर फिर स्थूल पर होता है। जव किसी भी मनुष्य के विराट पर मस्तक न दीखे तो उस मनुष्य की अवश्य मृत्यु हो जाती है। अथवा शुभ अशुभ का फल प्रगट हो जाता है।

अध्याय तीसरा

प्रकरण—पहला

समाधि।

विचार की प्रत्येक सिद्धि में समाधि ही से सिद्धि होती है यदि समाधि सिद्ध न हो तो कदापि विचार सिद्ध नहीं हो सकते हैं। जितने भी क्रिया रूप सिद्धियां अथवा विचार रूप सिद्धियां अथवा सत्वरूप सिद्धियां और ज्ञान रूप

सिद्धियां तमाम किस्म की सिद्धियां समाधि ही के आश्रित है जब तक समाधि की प्राप्ति न होजाय तब तक अन्य सिद्धियां मनुष्य को कदापि प्राप्त नहीं हो सकती है। इस लिए जो साधक जिज्ञासू सिद्धियों का कांक्षी है उस को प्रथम साधना में समाधि का ज्ञान अवश्य करना चाहिये। जिस से साधक सिद्धिओं को अपने वस कर सकते हैं इस लिये अब हम समाधि का ही वर्णन करते हैं।

समाधी के नाम को अनजान लोगों ने बदनाम कर रखा है। और कहते हैं के बहुत बड़े जोखम का कार्य है परन्तु वह वास्तविक में जरूर जोखम का काम है जो इस की वास्तविक परिपाठी और ज्ञान वो अभ्यास से पूर्ण वाकिफ कार नही हैं और इस काम को करना शुरु करते हैं तो उन को बहुत सा नुकसान पहुचता है और कभी कभी इस में मृत्यु अथवा पागल पना या कोई बड़ी व्याधी होजाती है और जो इसका ज्ञाता और पूर्ण गुरु होते हैं उन को कुछ भी नही होता है। जिस प्रकार नीम हकीम की फुकी दवाको खाकर रोगी या तो मृत्यु हो जाते है या और कई तरह की बीमारी दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार मूरखों की बताई हुई समाधियों के अभ्यास के प्रयोग से कैई मनुष्यों को इसका बुरा परिणाम मिला होगा यह मानने योग बात है। परन्तु हम तो इस ग्रन्थ में जो समाधि के प्रयोग के अभ्यास बतावेगे वह निर जोखम और निर विकार वान बालक से बड़े आदमी और विद्वान से भूखे तक इस पुस्तक के द्वारा कर सक्ता है जिस में किसी किसम की हानि नही होसकती है ऐसा सरल और निर विघ्न और शिघ्रह शीघ्र

फल देने वाला ही मार्ग है जो हमारे स्वानु भूत. और अनुभा सिद्ध है ।

इस विद्या के सीखने में आज कल एक बड़ी भारी त्रुटी यह है कि इस विद्या के जानकार गुरु नही मिलते हैं: और विना गुरु के इस विद्या में सिद्धि हासल नही हो सकती है इस लिये इस विद्या के जिज्ञासु और साधकों को गुरु प्राप्त करना जरूरी बात है। आज कल के गुरु धूर्त और लम्पट। आडम्बर धारी होते हैं जो अपने आपको सिद्ध और महात्मा मानते हैं और बहुत से चेलों को मूंढ कर सिद्ध साधक बना लेते हैं और ठगाई करते फिरते है। यदि कोई विद्वान उनको मिल जाय तो वो अत्यन्त क्रोध वस होकर झट यह कह देते हैं गृहस्थी बिचारे हमारी योग मार्ग की युक्ति में क्या जानते हैं। और अपने विशाल वाक्यों से विचारे बाल बच्चे वाले गृहस्थो को श्राप देने की धमकी या अन्य भय देकर डरा देते हैं और उनका माल ठग लेते हैं। अथवा शमशान वगैर जगाने का कठोर दुख दायक प्रयोग बता देते हैं जिसमें वो करने से असमर्थ मान हो जाता है अथवा भूत जिन हम-जाद राक्षस बैताल पिशाच आदि के नाम से पहले ही डरा कर उन के दिल के छके छुडा दिये जाते है अथवा कई मैली क्रियाओं को बता देते हैं अथवा अभक्ष जन्तुओं का मास था अन्य पदार्थो को बता देते हैं जिन से विचारा गृहस्थी भय भीत होकर उन महात्मा को ही सिद्ध मान लेते है मेरे में खुद में एक दफा एक धूर्तों सिद्धो से पाला पड गया था सम्वत् १९७९ की बात है कि उस वक्त में तंत्र मात्र शास्त्री का अभ्ययन कर रहा था दैव बश एक मेरे मित्र ने

मुझको एक सिद्ध के आने की खबर दी और उसने उसकी बड़ी तारीफ और प्रसंशा की कि वह बड़े सिद्ध है उन से आप आज ही मिलियेगा (मन्त्र शास्त्र की जानकारी मेरे पूर्व दादाजी थे उनके करीब कोई पाच सो मत्र तंत्र और यंत्र शास्त्र थे जिन का मै अध्ययन भी कर रहा था) मैने मेरे मित्र से कहा कि चलो मिले हम इक्के में बैठ कर उस वक्त ही उसके पास गये वहां जाकर मैने देखा तो बाबा-जी की उम्र करीब ६५ वर्ष की होगी बडी भारी डाढी और बडो भारी जटा भगवा पहने हुवे साथ में दो चार सड़ मुसनडे चेलों के बीच में विराजमान वैठे थे हम भी नमस्कार कर बैठ गये । बाद मेरे मित्रने उन से अर्ज की कि ये हमारे मित्र हैं और कुछ आपसे जानना चाहते है जब उन्होंने बड़े आडम्बर से उत्तर दिया कि हमारे घरके भेद को तो ईश्वर भी नही जान सक्ता फिर तुम गृहस्थी की तो हस्ती क्या है । मैने कहा यह कोई बात नही कि गृहस्थी कर से सब ही आश्रमो का आदि जन्म तो गृहस्थी ही है । इस पर उन्होंने झुंझलकर मेरे से कहा के कहीं डर कर मत मर-जाना । मैने उत्तर दिया महाराज डरने की क्या बात है आपभी तो पहले पहले मेरे जैसे ही अनजान होंगे जब आप नही डरेतो फिर मैं कैसे डर सक्ता हूं । इस पर उन सिद्धने मुझको मेरा नाम पता पूछा और मेरी व्यवस्था हस्ती आदि कार्य क्रम को पूछा मैने सब उत्तर दे दिये । फिर मेरे से कहा तुम क्या चाहते हो मैने कहा जो आप जानते हो अथवा आपने जो सिद्धि की हो वह मैं भी करना चाहता हू । उन्होंने कहा हमारे यक्षणी सिद्ध की हुई है । मैनें कहा

मुझको भी करादो जब सिद्ध ने कहा अच्छा हो जायगी परन्तु तुम को हम कहें जैसे मंजूर करना होगा। मैंने कहा कहो। जब उन्होने कहा कि अवल तो एकान्त मकान या महादेव का मन्दिर होना और वहां ज्यादे आदमियों का आना जाना नहीं चाहिये शून्य स्थान में हो रात्रि को आदमी नहीं फिरने अथवा आवाज नहीं आनी चाहिये और इस प्रकार दूसरी सामग्री हो जिसमें खाने पीने के और मिठाई वगैरे और जिस वक्त यक्षणी आवे उस वक्त उसको अर्घ देने के लिये एक मुद्रा स्वर्ण की एक मोहर १) होनी चाहिये मैंने सब मन्जूर किया फिर एक शहर से दूर पर महादेव का मन्दिर था उसमें उस यक्षणी सिद्धि का प्रयोग असाढ सुद ९ से चलू किया गया और मैं और वो सिद्ध दोनों ही उस में रात दिन रहने लगे और मंत्र उसकी बताई हुई क्रिया से जपने लगा एक ध्यान से इस प्रकार मैंनें एक लाख मंत्र चार दिन में जपे फिर मुझको हवन करने को कहा और उस सिद्ध ने कहा कि आज रात को वह यक्षणी तुम्हारे पास आवेगी तुम सब रात मंत्र जप और हवन करते रहना और वो मोहर नारियल जब वह आवे और हाथ माडे जब तुम उसके हाथमें ये अर्घ दे देना मैंने कहा बहुत अच्छा ऐसा ही करेंगे फिर रात को करीब १ था १॥ बजे पर मन्द्रि के दिवार पर से धमाका की आवाज सुनने में आई तो मैं सचेत और सावधान हो कर उस मन्दिर के एक कोनेमें एक डंडा हड़मानजी की मूर्ति के पास पड़ा हुवा था वह मैंने अपने हाथ में पड़क लिया फिर वह झम २ की आवाज मेरे तरफ आने लगी फिर मन्दिर के दरवाजे के पास एक औरत

को मैंने खड़ी देखा उसने झझ मेरे तरफ हाथ फैळाया मैने उसके दोनों हाथों पर जोर से एक डंडा फटकार कर मारा तो उसके हाथों पर जोर से लगा और वह झट वहां से भाग कर दीवार ऊपर के हथे से कूद कर निकल गई मैं अपने चुप चाप फिर मंत्र और हवन करने शूरू कर दिये जब प्रात हुवा तब उन सिद्धराज ने कहा कि बस अब प्रयोग पूर्ण हो गया है तुम मंत्र और हवन को बन्द करदो मैने कहा आपने तो यक्षणी आने का कहा था वह तो आई नही ये कैसे हुवा आपने तो मुझ से यह वादा किया था कि वो हमारे खुद के सिद्ध की हुई है तो फिर वह आपके हुकम को क्यों नही मानी इस प्रकार जब मैंने कहा तब उस सिद्ध ने मुझको कहा कि तुम झूठ बोलते हो वह जरूर रात को आई है। मैने कहा जब आती तो मैं ये मोहर और नारियल जो उस के लिये रखा है लेजातीं वह तो ज्यों का त्यों ही रखा है। जब सिद्ध राज का दिमाग चकराया और कहा कि अच्छा आज हम उसकी खबर लेवेंगे कि वो तुम्हारे से क्यों नाराज क्यों नही आई आज रात को वह अवश्य (जरूर)आवेगी यह हमारे सिद्ध वचन हैं तुम आजकी रात में और जप हवन करो फिर मैं उसी प्रकार से करता रहा वहां पर एक मठी का पात्र जिसको धुपेडा कहते हैं उस में मैने बहुत से अंगारे डाल कर उन पर धूप डालता रहता था फिर उसी प्रकार जब रातको करीब बाराह बजे होंगे फिर दरवाजा के तरफ से आवाज आई और उसी प्रकार मेरे पास तक वह चली आई जिस का स्वरूप बिलकुल औरत का सा सांग था झट उसने मेरी तरफ दोनों हाथ पसारे मैने

वो धूप का पात्र अंगारों से भरा हुवा उसके दोनों हाथों पर उलटाउधेल दिया कि वो हाथों को पटक कर वहां से भागी और वहां से दीवार का हथा फांद कर रफू चक्कर हो गई रात अधेरी होनेकी वजह से मैंने भी उसका पीछा नही किया मैं सिर्फ छते में जाकर उसके पावों के खोजों को मोम बत्ती से देख कर चला आया और मोहर जो सोने की उसको अपनी अँगूठी में दबाकर जो उसको देने के लिये अर्घ में मिठाई का नैवेद था वह और फलों को मै खाकर सो गया सुबे आठ बजे बरीव वह सिद्ध राज ने जगाया और कहा के लो आज तो वो आई न मैने सिद्धराज से कहा के हमारे मारवाड़ की कहावत आपने की के सब रात पीसा और ढढकनी में उसारा। याने इतने दिनों की रात दिन की मेहनत का कुछ भी परिणाम नही निकला आपको मैं सिद्ध पुरुष जान कर इतना खर्चा भी किया अब आप मेरबानी करके मेरा खर्चा वापिस दीजिये नही तो आप से हमारे बन जावेगी ज्यों करके इस प्रकार मेरे कहने से वह सिद्ध जो अपना नाम सिधानन्द रखे हुवे थे सो उनके होश उड़गये वह कहने लगा के आपने मंत्र साधने मे या और कोई हवन में त्रुटी की है इस लिये आप से देवी अप्रसन्न हो गई है मैं क्या करू मंने कहा सिद्ध महाराज इस प्रकार ठगाई और धूर्त विद्या से आज तक कितने मनुष्यों को ठगा है। परन्तु आप को अब मालूम पड़ जायगा के हम आपके और आप के चेलों में जो झूठे यक्षीणी बन कर आते हैं कैसी करेंगे मै आपकी कपट कला को जान गया हूं। इस प्रकार कहने और राज का भय दिखाने से वह सिद्ध भयभीत होकर कांप

उठा के अब मैं क्या करू मैने सब सत्य हाल उसे बताने का दबाव दिया इस पर वह कहने लगा बावा यदि आप मुझको धर्म देवे और मेरे इस कपट के पड़दे को फास नही करेतो मै आप को उसका सत्य हाल कहदू। मैने कहा कहो तब वह बोला मेरा एक चेला है वह औरत का शांग बनाकर साधने वाले के पास जाता है और अर्थ के रुपया था जेवर वगैरे ले आता है हम उसी रोज चल देते है। या मैं दो चार रोज बाद चला जाता हूं यह कहा तब मैंने उनसे कहा के तुम इस धोके की क़सम खाओ कि मैं अब किसी के साथ नही करूंगा इस प्रकार आज कल के सिद्ध बने हुवे विचारे भोले भाले मनुष्यों को ठग जाते हैं इस लिये आज कल के सिद्धों के गुरुओं के यह हाल है इस लिये मै आप को साव-धान करता हूँ कि आप कभी किसी प्रकार धूर्तों के बकाने में ने आवें ये धूर्त बड़ी जटा और साधु सन्यासियों का मेष में रहते हैं रात दिन ठगाई का ही काम करते और चेले मूंडते मुरदी बनाते फिरते है इस प्रकार समाधि के बताने वाले अनेक धूर्त हैं जिन से आप को बचना चाहिये मैने मेरी उम्र में कई साधुओं की संगती कर अनेक घटनाओं का ज्ञान प्राप्त किया जिसका पूरा वर्णन करना एक बड़ी पुस्तक लिखने के बराबर है अब मैं अपने पूर्व के विषय पर आता हूँ और समाधि का हाल बतादूंगा।

प्रकरण-दूसरा

समाधि के लक्षण ।

अब हम समाधि को बताते हैं समाधि का यह लक्षण है कि अपने स्वरूप रूपसे शून्य हो जाना इसको समाधि कहते हैं । यहां स्वरूप के शून्य को ही समाधि कहते हैं अब यह विचारना है स्वरूप कौनसा एक तो निज का स्वरूप और सामने वाले पदार्थ का स्वरूप इस प्रकार स्वरूप के दो भेद होते हैं । जब स्वरूप के दो भेद हुवे तब समाधि भी दो प्रकार की होनी चाहिये । समाधि के भी दो भेद हुवे एक सम प्रज्ञात और दूसरी असम्प्रिज्ञात । इसीके दूसरे नाम यह भी हैं एक सबीज और निर बीज इसी के दूसरे नाम सचित का और निर्वित का याने सविचारा और निर्विचारा इस प्रकार समाधि के दो भेद हुवे । जो अपने स्वरूप शून्य है वह असम प्रिज्ञात समाधि हुई और जिसमें सामने वाली वस्तु के स्वरूप को शून्य कर उस प्राप्त वस्तु के स्वरूप को अर्थ मात्रा लक्ष कर धारणा और ध्यान उस प्राप्त वस्तु के ही स्वरूप में लय होजाने को संप्रज्ञाता समाधि कहते हैं इस प्रकार स्वरूप के दो भेद होते हैं । जिन स्वरूप का अर्थ ममता ध्यान धारणा करके उसके स्वरूप के विचार विचारना को ही बीज कहते हैं यहां पर बीज अर्थ सिद्धि के स्वरूपका नाम है कि जिस पदार्थ की सिद्धि करनी हो उस के सूक्ष्म स्वरूप को ही बीज कहते हैं उसकी ध्यान धारणा करने को सबीज समाधि कहते हैं । निर बीज समाधि में कोई भी

वस्तु का विचार बिचारना अथवा तर्क वितर्क नहीं होता न किसी प्रकार का लक्ष होता हैं जो अपने स्वरूप में शून्य अवस्था में प्राप्त होकर निर्विकल्प हो जाता है। वही स्वरूप शून्य है इसका भगवान पातांजली ने भी समाधि के यह लक्षण विभूति पाद में तीसरे सूत्र में यूं बताये हैं। तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य मिव समाधि इस से जो स्वरूप शून्य अर्थ मात्र भी न भासता हो वह समाधि है जो स्वरूप मात्र से शून्य है वह समाधि है। तो ठीक स्वरूप भी दो होते हैं एक खुद का और एक दूसरे पदार्थ का है जब दूसरे पदार्थ का शून्य करते हैं जब तो हमारे स्वरूप का शून्य हो नहीं सकता और जब हमारे निज के स्वरूप को शून्य करते हैं तब अर्थ मात्र सामने वाले का स्वरूप शून्य हो नहीं सकता इसलिये स्वरूप शून्य को ही समाधि कहते हैं यह तो ठीक हैं परन्तु स्वरूप ज्ञान दो प्रकार का हुवा इसलिए समाधि स्वरूप के छिपाने को कहते हैं और स्वरूप के साथ में पीछे लगी रहती है। इसलिये जहां २ हमारा स्वरूप (याने चित) का रूप और मन का भास वृतियों के साथ जहां २ पहुचता है वहां २ ही समाधि भी साथ की साथ रहती है परन्तु धारणा और ध्यान के विदुन तुम्हारी समाधि निरबीज रहती है जैसे विना बोय बीज के उत्तम प्रकार से जोता हुवा भी खेत निसफल हो जाता है उसी प्रकार विन धारणा और ध्यान के समाधि भी निर बीज ही रहती है। इस लिये ही समाधि के सबीज और निरबीज दो भेद हो जाते हैं। समाधि एक प्रकार का क्षेत्र है विचार रूप इसमें बीज है और धारणा जैसे क्षेत्र की मिट्टी है जो बीज को अपने अन्दर गर्भ में लेलेती है और ध्यान इसको सींचने का पानी है

और संयम द्वारा सींचकर उस बीजका वृक्ष उत्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक अभ्यास में ध्यान धारणा और समाधि इन तीनों का संयम होता रहता है। जैसे के हम को भाख होता ही है।

प्रकरण-तीसरा

धारणा।

अब हम धारणा को कहेंगे।

धारणा को एकाग्रहता कहते हैं बिना धारणा के कभी भी कोई विचार की सिद्धि अथवा समाधि की सिद्धि प्राप्त हो ही नहीं सकती है इसलिये सिद्धि के जिज्ञासुओं को धारणा को जानना अति आवश्यक है। इसीलिये अब हम आपको सिद्धियों के निमित धारणा की विधि और उसके ज्ञान को बतावेंगे। जिस से तुम को सिद्धि की प्राप्ति होवे यह मेरा अभिप्राय है।

प्रकरण--चौथा

धारणा के लक्षण।

किसी भी देश में चित को बांधना (याने एकाग्रह) करना इस को धारणा कहते हैं चित्त की जो वृतियां उत्पन्न होकर जिस देश में चित्त को बांधा है वह भी उसी प्रदेश

में वन्धन होनी चाहिये। जैसे मधु मक्खियों की एक रानी होती है वह जिस जगह जाकर वैठ जाती है तो अन्य हजारों मक्खियां भी उसी प्रदेश में बैठकर अपना कर्म जाहिर करती रहती हैं। इसी प्रकार जिस देश में हमारे चित्त को हम बांधदे उसी देश में हमारी वृतियां वन्ध जायगी। इसी लिये चित्त के किसी भी अधिष्ठांत को देश कहते हैं। अवजो देश है वह अवश्य क्षेत्र फल वाला होता है याने चोड़ा लम्बा गोल आदि होगा जिसके अव्यव जरूर होंगे इस लिये चित्त और देश दो भिन्न २ हुवे और जिस देश में जाकर चित्त बन्धन में आवे उसी को धारणा कहते हैं। इसी को भगवान पातंजली विभूतिपाद में पहला ही सूत्र है कि देश बन्धन श्चितस्य धारणा जैसे हम किसी देश अथवा गृह में जाकर बन्धन हो जावे तो हम वही अपना कर्म व्यव-हार करने लग जावेगे इसी प्रकार से चित्त भी जिस जगह पर लगाया जाय वहीं पर सम्पूर्ण वृतियां और मन जाकर लग जायगा और अपना कर्म व्यापार शुरू कर देगा। इसी लिये चित्त के बन्धन को धारणा कहते हैं परन्तु चित्त जिस अधिष्ठान में वंधे उसी अधिष्ठान को देश कहते हैं बिना अधिष्ठान के चित्त वन्ध ही नहीं सकता जैसे एक पशू को बांधने के लिये एक खूटा गाढ कर बांधते हैं और वह खूंटा किसी भी देश में होगा बिना देश के खूंटा रुक नहीं सकता और विना खूंटे के पशू बन्ध नहीं सकता इस लिये जब एक पशू को बांधने के लिये देश की जरूरत है तो फिर चित्त के लिये भी किसी प्रदेश के अधिष्ठान की जरूरत है इसीसे देश बन्ध श्चितस्य का वर्णन किया है। चित्त को समझो कि किसी मूर्ति के स्वरूप में बांधा है यहां

पर मूर्ति देश हुवा। इस प्रकार समझो। अब हम आप के धारणा की बल वेग आदि की विशेष व्याख्या करेंगे।

एकाग्रहता के विचार का बल बहुत है एकाग्रहता होने बाद जो विचार मास्तिष्क मण्डल के प्रदेश बाहर निकलते हैं उनका बहुत ज्यादा असर पड़ता है और ज्यूं २ धारणा की शक्ति को बढाया जाता है त्यों २ शीघ्रातिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती जाती हैं। धारणा को धारण करने को ही समाधि लगाते हैं धारणा की शक्ति को प्राप्त करना बहुत कठिन है जिस प्रकार यह कठिन है उसी प्रकार यह प्रबल शक्ति शामिल भी है। जो मनुष्य अपने विचारों की धारणा (एकाग्रहता) करते हैं वह अपने विचारों के माफिक सम्पूर्ण रीतियों को जान सकता है। अब धारणा के भेदों को कहते हैं।

धारणा के तीन भेद होते हैं।

(१) शारीरिक, निज के शरीर और स्नायु आदि शरीर के यन्त्रों की गति अथवा स्पनन्दन को अपनी स्वइच्छा के माफिक वर्ताव करने का स्वाभाव डालना।

(२) मानसिक, मन और मन वासना के विचारों को अपने अधिकार में रखकर स्वइच्छा माफिक उनका बर्ताब करना।

(३) आंगतुक, हरएक पदार्थ या वस्तु अपने विचारों को डालकर उसपर अपना अधिकार जमाना।

जिस प्रकार एक राजा अपने देश को अपने अधिष्ठान काबु में लाकर उसके ऊपर अपनी हुक्म की हुकूमत जमाता है उसी प्रकार अपने चित्त को किसी भी देश में अधि· ष्टान जमाकर फिर उस देश पर अपना स्वच्छाओं की हकू- मत जमाना इस को धारणा कहते हैं अब इसके अभ्यास को कहते हैं।

उदाहरणार्थ—जैसे प्रत्यक्ष अथवा कल्पना से कल्पित एक मनोहर वाटिका की धारणा करो और उस वाटिका के प्रदेश में ही तुम्हारे चित्त को बांधो कि वह चित उस वा· टिका की सीमा से अन्य नहीं जासके फिर तुम उस बाटिका का ही ध्यान करो याने मैं उस वाटिका में ही बैठता हू अथवा उसी में लिख रहा हूं अथवा उस में भोज आदि कर रहा हू इस प्रकार तुम अपने चित्त को उस कल्पित वाटिका की सीमा के बाहर मत जाने दो फिर देखो क्या आनन्द तुम को मालूम पड़ेगा।

प्रकरण—पांचवां

ध्यान।

विना ध्यान के धारणा अकेली क्या कर सकती है। इस लिये धारणा को सिद्ध करने में ध्यान की जरूरत है। इस लिये अब हम ध्यान का वर्णन करेंगे। किसी भी पदार्थ के साथ एकता करने को ध्यान कहते हैं। तथा उसके स्वरूप को अदय मन के साथ एकाग्रत करने को ध्यान कहते हैं। याने किसी भी स्वरूप को पलक मारे विदुन अदय दृष्टि से

देखने को ध्यान कहते हैं और उस स्वरूप में शून्य (लय) हो जाने को समाधि कहते हैं। धारणा चित्त से चलती है। और ध्यान बुद्धि से और समाधि मन से इस प्रकार यह तीनों का एक संगम मिलजाने को संयम कहते हैं। जिसमें ध्यान धारणा और समाधि का परस्पर समागम सम्पुटित होता रहता है। ध्यान भी दो प्रकार का होता है एक निज के स्वरूप का और दूसरा पराये के स्वरूप का। जब चित्त किसी देश में अपनी धारणा करे और बुद्धि उस चित्त के साथ अपने ध्यान से एकता करे और मन उसके स्वरूप के भास में सेतदाकार शून्य हो जावे बस इस का ही नाम समाधि है। अब हम इनके प्रयोग को कहेंगे। जिसके करने से किसी किस्म की शारीरिक अथवा मानसिक कोई प्रकार की हानि अथवा रोगादिक हो नहीं सकते क्यों कि बहुत से हठ योग के प्रयोग ऐसे भी हैं जिन से बहुत हानि हो जाती है। हमारे एक मित्र को एक हटयोगी महात्मा ने अश्वी मुन्द्रा का प्रयोग बताया, जिसके करने से मित्र महाशय को अतिसार का रोग हो गया मित्रने मुझको बुला कर अपने रोग का कारण पूछा मैंने जो हेतु थे वे सब कहे परन्तु उन्होंने उन हेतु में से एक भी स्वीकार नहीं किया। आखिर कार मैंने उनसे यह कहा क्या कोई आपने आसन या मुद्रा का तो साधन नहीं किया है। तब उन्होंने उत्तर दिया कि मुझे अश्वी मुद्रा का प्रयोग एक महात्मा करा रहे हैं। तब मैने कहा यह अपानही सामान के साथ मिल गया है याने व्यान से आवृत अपान हो गया है। इस लिये यह रोग आप को हुवा। फिर दूसरे रोज उस महात्मा को मेरे रूपकार बुलाया मैंने पूछा महात्माजी अश्वी मुन्द्रा के प्रयोग के पहले

कौनसा बंधन लगाना चाहिये और पांच प्राणों को परस्पर आवृंण कितने प्रकार का होता है। इस पर महात्माजी की बोलती बंध हो गई और लगे मेरे से झगड़ने कि तुम योगियों की बात को गृहस्थी क्या जाने। मैंने कहा महात्माजी माफ करो गृहस्थी और योगी में कोई अन्तर नहीं केवल भाषा के अर्थ मात्रा का ही है। इस प्रकार आज कलके योगी थोड़ा बहुत हठ योग की क्रिया सीखकर विचारे भोले भाले गृहस्थियों को अपने चंगुल में फसाते फिरते हैं। इस लिये मैं आपको यह सावधानी दिलाता हूं कि इन अयोगी के योग नाम के जाल में न फसें वरना तन शरीर मन विचार धन द्रव्य आदि सब का नाश करं देते हैं। और भयंकर रोगों की व्याधियों से भी जा मिलते हैं। (योग) के मायने होते हैं मिलने के। अब यह समझो के मिले क्या यदि सिद्ध योग है जब तो मिले मोक्ष सुख शान्त और वही असिद्ध योग है तो मिले व्याधि दुख आदि इस लिये योग के दुवारा मिलना चाहिये जो विचारा हो करें। इस लिये अब हम हमारे बहुत से सिद्ध अनुभव प्रयोग तुम को बता देते हैं जिन के द्वारा आपको कोई भी हानी विदुन के जो विचारोगे वही सिद्ध हो जायगी।

(१) प्रयोग। पहले शान्त बैठना to sit still शान्त बैठना यह बहुत भारी कठिनाई का काम है परन्तु कोई रीति से शान्त बैठना अवश्य सीखना चाहिये। एकान्त में निरान्त तुम्हारे शरीर को ढीला (Relex) कर ५ मिनट तक शान्त रूई के पहल के मानिन्द हिले चले विदुन बैठे रहना चाहिये। यह प्रयोग देखने में तुमको सहल मालूम होता है। परन्तु करने में बहुत मुश्किल है परन्तु ऐसा कोई मुश्किल भी नही

शनैः २ अभ्यास करते २ तुम आसानी से सीख सकोगे। जब तुम को पांच मिन्ट शांन्त बैठना आजावे तब पीछे १० मिन्ट तक अभ्यास आगे बढाओ। इस प्रकार बढाते २ एक घंटे तक इस अभ्यास को ठहराओ इस प्रकार अपनी धारणा की सामर्थ करलो जिससे तुम्हारी धारणा सिद्ध हो जावेगी।

नोट—इस अभ्यास को चाहे बैठ कर चाहे बिस्तरे में सोकर कर सकते हैं। इसके सिद्ध होने से इसका यह फल है कि मनुष्य चाहे जितना अपना बल लगा (खर्च) कर काम करने से यदि थक गया हो तो इस अभ्यास को करके तुरन्त वह बल वापिस आजावेगा और तब फिर वापिस मेहनत करने को शक्ति शाली हो जायगा।

(२) अभ्यास—एक कुर्सी में सीधा (Erect) बैठो और तुम्हारे एक हाथ तुम्हारे कंधे की लाइन में लम्बा करो पीछे तुम्हारी कमर फिरा कर उस लम्बे किये हाथ की उंगलियों के नखों पर अपना ध्यान एक नजर से देखा करो और हाथ शान्त और जरा भी हिलना नहीं चाहिये। जो हिलता होगा तो तुमको तुरन्त मालुम पड़ जायगा। इस प्रकार एक मिन्ट तक एक जीवणे हाथ फिर दूसरे मिन्ट दूसरा हाथ इस प्रकार एक के पीछे एक दोनों हाथों को स्थिर रखने का अभ्यास करने से तुम्हारे हाथ पग मस्तक वगैरह हर एक अंग के अव्यवों पर अपनी इच्छा माफिक उनके हिलन चलन पर अपना अधिकार जमाना चाहिये। इस अभ्यास से हमारे शरीर पर अधिकार जम सकता है और चित्त की धारणा ठहर सकती है क्यों कि चित्त को चाहे जिस अव्यवों के प्रदेश में लेजाकर रोक रखने से वह अंग चित्त

की धारणा शक्ति को धारण करलेगा और तुम्हारी धारणा दृढ और एकाग्रहता बढ़ती जायगी और ध्यान भी उस धारणा के साथ होता जायगा।

अब श्वांस क्रिया की समाधि के अभ्यास का वर्णन करेंगे।

(३) अभ्यास—एकान्त में शान्त बैठकर जितना बन सके उतना संसारिक व्यवहारिक अपने काम काज और लोभ लालच आदि के विचारों को अपने में से निकाल दूर करना फिर दो तीन मिन्ट शान्त होना पीछे अपने नाक के डावे स्वर को हाथ की उगली से दाब कर फिर जीवणे स्वर से उंडा श्वांस खेंचना और उसको रोके विदुन डावे नाक के स्वर से निकाल बाहर काढना। इसी प्रकार डावा नाक के स्वर से खेच जीवणे नाक के स्वर से निकालना। इस प्रकार सुबह प्रातः ८ आठ श्वांस और शाम को आठ श्वांस मिलाकर २४ घंटे में सिर्फ १६ श्वासों का प्राणायाम करना। जीवणे के बाद डावा और डावे के बाद जीवणा। इस प्रकार एक के बाद एक फिरते श्वांस लेना और छोड़ना। इसका प्रमाण १५ दिन पूरा होने पर फिर दूसरे १५ दिन तक ऊपर लिखे प्रमाण सुबह और शाम १४×१४ मिलाकर २८ प्रणायाम करना अर्थात् ७ वक्त जीवणे नाक के स्वर से श्वांस खेचना और डावे स्वर से निकालना। इसी तरह डावे स्वर से खेंच जीवणे स्वर से निकालना। इस प्रकार प्रत्येक प्रणायाम करना। इस प्रणायाम में श्वांस का पूर्वक और रेचक करने में किसी किस्म का ख्याली विचार नहीं करना चाहिये। चित्त को शान्त रखने की कोशिश करनी चाहिये।

नोट--इस प्रकार एक महीने तक अभ्यास करने से तुम्हारे में ये सिद्धि होगी कि तुम्हारे स्वभाव में अद्‌भुत फेर फार मालूम पड़ेगा जिस की पहली निशानी यह है कि गले के रोगों का नाश होगा और स्वर मधुर और सुरीला होगा, तुम्हारा मन तुमको शान्त मालूम होगा। तुम्हारे दिल हृदय में कोई प्रकार की गुप्त आत्मिक खुशी आनन्द के उत्साह के हिलोरे की लहरें आने लग जाएंगी। यह बातें तुम्हारे में पैदा हो जावेंगी तब तुम जानलो कि मैं दूसरे अभ्यास के करने के लायक हो गया हूं। तुमको चाहिये कि तुम अपने श्वांस क्रिया को जबरदस्ती से दबाकर उसके वेग को बढ़ाना यानि बढ़ाकर श्रम थकेला चढ़ाना नहीं परन्तु शान्त और नियमित रहना चाहिये। इसके अद्‌भुत फायदे हैं जिसको स्वयंम अभ्यासी अपनी चालू प्रेक्टिस से जान सकेगा।

(४) अभ्यास—यह भी ऊपर वाले अभ्यास के प्रमाण ही करना परन्तु हरेक श्वांस अन्दर लेते वक्त चार सैकिन्ड (कुंवक) हृदय में रोक रखना चाहिये। और अपने विचारों को श्वांस खेंचते वक्त और रोकते वक्त और छोडते वक्त उनको भी श्वांस के साथ छोडने चाहियें। यह अभ्यास मैंने विचार संदेशो में लिख दिया है उसको जान लेवें। इस अभ्यास की बाकी क्रिया ऊपर वाले अभ्यास की है सिर्फ श्वांस को खेंचते, रोकते, निकालते अपने धारे हुवे विचारों का संगम इस श्वांसों में करना चाहिये। इस प्रकार अभ्यास की धारणा ध्यान को और श्वांस की समाधि को बढाना चाहिये इस प्रकार जहां तक आसानी से बढे वहां तक बढाना चाहिये। इस अभ्यास से तुमको अपने विचारों के गुणों की

वृद्धि हो जायगी। यह अभ्यास हर रोज प्रातः में सूर्योदय के वक्त और शाम को भी करना चाहिये। इस अभ्यास में तुम को पहले वाले अभ्यास से ३ तीन काम ज्यादा करने होंगे - (१) श्वांस को खैंचना (२) दम को रोकना (३) यह विचार करना कि मेरे में अमुक २ गुणों की जाग्रति होना और मस्तिक के तालवे के बराबर मध्यम (ब्रह्मरंध्र) भाग के आगे ध्यान पहुंचाना।

नोट—इस अभ्यास के सिद्ध होने से तुम्हारे आचार विचार में बहुत बड़ा अन्तर पड़ कर सुधार हो जायगा और दृष्टि में आत्मिक तेज पुंज उत्पन्न होकर चेहरे की क्रान्ती खुल कर उसमें खूबसूरती तन्दुरस्ती और मन की पवित्रताई दृढता बढ जायगी. और शरीर का वजन हलका हो जायगा, और बल ताकत और हरेक अंगो के अव्यवों की गति का ज्ञान तुमको हो जायगा इस प्रकार ऊपर वाले अभ्यास के सिद्ध होने में तुमको मिल जाएंगे। तब तुम दूसरे आगे से अभ्यासों की सिद्धि करने के काबिल बन जाओगे।

(५) अभ्यास—यह भी अभ्यास ऊपर लिखे अभ्यास के अनुसार ही है फरक केवल यह है कि श्वांस को रोकते वक्त (ॐ) यह शब्द उच्चारण विशेष है। इस शब्द में अनन्त भेद अनन्त गुण और अनन्त रचना ऐसी हैं कि जिस को उच्चारण की कम्पन हजारों प्रकार की जुदी २ रीति से हो सकती हैं। इसी प्रकार इस शब्द का अर्थ भी करने का भेद है। सम्पूर्ण जगत ब्रह्माण्ड और अनन्त ब्रह्म यह सम्पूर्ण स्वर एक ही में समाये हुवे हैं। इस का खुलासा बहुत विस्तार पूर्वक भिन्न २ भेदों से भरा हुवा है परन्तु इस स्थल

पर इस ज्ञान का विस्तार पूर्वक इस लिये नहीं लिख सकता कि यह ग्रन्थ बहुत विस्तार पूर्वक हो जावेगा। इस लिये हरेक बात को संक्षिप्त में दरसाने की कोशिश करता रहता हूं। इस अभ्यास में ॐ ही का जाप करना चाहिये। इस जाप के सिद्ध हो जाने से तुम को अपने आप इस अक्षर के अक्षर ब्रह्म का ज्ञान आ जावेगा। इस अभ्यास को सुबह और शाम करना चाहिये। इसके सिद्ध होने से तुम्हारी बुद्धि तीव्र हो जायगी और एकाग्रहता के धारणा की शक्ति बढ जायगी।

नोट—हरेक श्वांस क्रिया के वक्त आंख बंध रखनी परन्तु एकाग्रहता के वक्त तो आंखे खुली रखनी चाहियें।

श्वांस की टाइम को ४ सेकिन्ड से लगाकर ८-१२-२४-३६ तक और भी आगे आहिस्ता २ एक के बाद एक अभ्यास को वढाना चाहिये न कि एक दम से जिस प्रकार एक २ कदम से चलकर ऊंचे पर्वत के शिखर ऊपर पहुंच जाते हैं। उसी प्रकार सैकिन्डों को बढाते २ घंटों पर पहुंचना चाहिये। अब हम चक्रों के बेधने का सूक्ष्मज्ञान लिख देते हैं।

प्रकरण—छटवां

चक्रबेध।

सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वोपरि, सर्व उत्पादक, सर्व नाशक, सर्व प्रकाशक सर्व चैतन्य, सर्व आकर्षण, सर्व निराकरण, सर्व भूत स्वर्गतिमान ऐसा ब्रह्म विद्या के जानने

वालों ने ब्रह्म का वर्णन किया है। ब्रह्म से ही उजाला प्रकाश, गति, रंग, रूप, मनुष्य वर्ग, जन्तु वर्ग, वनस्पति वर्ग, जड़ वर्ग इत्यादि सर्व यह ब्रह्म ही की चैतन्य गति हैं। और मनुष्यों को विचार ही वोही गति में प्रगतिमान होते रहते हैं। इसी चैतन्य की गति में से सूर्य और सूर्य के कुटम्बी ग्रह तारों नक्षत्र आदिकों को प्रकाश मान है और गति मान है यही चैतन्य ग्रहों से लगा कर जड़ पदार्थों तक और उन के अन्दर आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इत्यादि वोही चैतन्य के ही द्वारा स्थित है केमिकल, ऐफीनीटी, ग्रेवीटेशन, इलेक्टरी सिटी, पोलराइजिंग ओफ पेटमस शारिरिक तथा आत्मिक शक्तिया एक दूसरे पर असर कर हरेक पदार्थ की उत्पति अथवा नाश करती है। यही चैतन्य मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर में जुदी २ अदृश्य आत्मिक शक्तियां कैसे उत्पन्न करती हैं उसको बताते हैं। वायु आदि भूतों में सर्व ठिकाने वह चैतन्य ब्रह्म भरा हुवा है। वही प्राणियों के प्राण श्वांस में शरीर के अन्दर खेंचते हैं। जो श्वांस शरीर में जाता है उसी के साथ ही चैतन्य समाया हुवा वह श्वांस नाभी में जाकर के अपना अदर्शय रूप व्यक्त प्रकाश मान करता है जिस से हृदय में एक ज्ञान की गति आन्दोलन उत्पन्न होती है। वह गति वहां से आगे बढकर दूसरी अव्यवों से मिलकर शरीर के हरेक अंग अव्यवों को जीवन देती है। यह शक्ति शरीर के हरेक अंग के अव्यवों में जुदी २ प्रकार की गतियों जैसे प्रकाशय मास गुर्दे्वृक्कल, कान, नाक, हाथ, पग इत्यादि चलती जुदी २ स्नायुओं रगों के कम्पनो खटकों को दे रही है। जिस से सम्पूर्ण शरीर की जीवन लीला प्रचलित हो रही है।

इसी चैतन्य से हमारे स्थुल शरीर में चैतना के केन्द्र है। उन केन्द्रों को ही चक्र नाम से कहे जाते हैं। यह केन्द्र भी असंख्यात है परन्तु मुख्य छे चक्रों को ही माना है। अब हम इन चक्रों के वेध याने खोलने को ही कहते हैं और अब हम इनके अभ्यास को कहेंगे।

(१) अभ्यास—नासिका से श्वांस खेंचते वक्त (अ) रोकती वक्त (ओं) निकालती वक्त (म) इस प्रकार अपने श्वांस के आने जाने में इन अक्षरों का ध्यान करना चाहिये जिस से चक्रों के वेध में शीघ्र कामयाब हो जावें। जिस चक्र को खोलना हो उसके वर्ण उसके देवता उसकी शक्ति उसके बीज मंत्र का ध्यान जाप करना चाहिये। हमारे श्वांस क्रिया की मारफत विचार और इच्छा शक्ति के दबाव के नीचे जुदे २ चक्रों में श्वांस बिचार इच्छा ध्यान लेजाकर रोक कर अमुक २ विचारों को एकाग्रह करने से जुदे २ चक्रों को वेध कर दिये जाते हैं जिससे जुदी २ प्रकार की शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। विचार और इच्छा शक्ति के नीचे दबाया गया चैतन्य ब्रह्म रंध्र आदि में से निकल कर उस सर्वज्ञ चैतन्य में जा मिलता है। इस प्रकार जिन २ ज्ञान चक्रों का वेध होगा उसी के माफिक जो एक २ चक्र की सिद्धियां उसको मिल जायेंगी। जिस माफिक बिजली का प्रवाह अदृश्य दौड़ता है उसी माफिक हमारे ज्ञान की अदृश्य प्रवाह की अदृश्य शक्ति जगत के बाहिर और जगत में प्रवेश कर जाती है। उसी प्रकार मनुष्यों के बिचार का दृढ हुआ अंश वायु में स्पन्दन के फेरफार बदल कर धारा हुवा विचार सिद्ध हो जाता है।

(२) अभ्यास—नासिका से श्वांस खैंच उस श्वांस को ललना चक्र ध्यान कमल, आज्ञा चक्र, ज्ञाना चक्र मन चक्र सोम चक्र हरेक चक्रों की तरफ ध्यान के एकाग्रह करने से तथा श्वांस को भी एकाग्रह करने से व विचारों को भी एकाग्रह करके छोड़ने से श्वांस का प्रवाह उन चक्रों को वेध कर बाहिर निकलता है। यह ज्ञान मार्ग का होता है।

(३) अभ्यास—नासिका से श्वांस खींच उस श्वांस को तालवा आगे रोके वहां से उस श्वांस को फेफड़े में लेजा कर रोके वहां उसकी गति बदल कर उस श्वांस का जीवन तत्व बन कर वहां से शरीर के अनेक भागों में विचारों के प्रवाह द्वारा दौड़ाकर उस से उन भागों की व्याधिओं को दूर करे। यही जीवन तत्व ज्ञान नाड़ियों में सूर्य चक्र की तरफ लेजाकर वहां श्वांस को रोक वापिस हृदय पद्म कंठ कमल आदि में होता हुवा नासिका से बाहर निकाले इस प्रकार इस अभ्यास से चक्रों को वेंधे। यह भीज्ञान मार्ग कहाते हैं।

(४) अभ्यास—इस में श्वांस को भरपूर नाभी में से खैंच फिर मुचाशय (वस्ती) की तरफ लेजाकर कुंडली में वेधे वहां से मुलाधार स्वादिष्ठान अनाहत विसुध इनमें लेजा कर वेध कर फिर ब्रह्म रन्ध्र में लेजाकर ब्रह्म रन्ध्र से बाहिर निकाले। यह सब समप्रज्ञात समाधियां हैं।

नोट-यदि इस का पूरा ज्ञान सीखना होतो पहले हरेक चक्र का रूप रंग देवता वर्णा अक्षर वाहान शक्ति स्थान बीज मंत्र जाप संख्या आदि को जानें।

अध्याय चौथा

प्रकरण–पहला

अपने स्वरूप के प्रतिबिम्ब की सिद्धि।

यह क्रिया रूप सिद्धि है इसी लिये हम इस को इसी प्रकरण में लिखते हैं। यह सिद्धि बड़ी चमत्कार दिखाने वाली सिद्धि है और बड़े २ काम इस सिद्धि से निकल जाते हैं। यह सिद्धि प्रत्येक प्राणियों पर अपना अधिकार जमाने में बड़ी सुलभ और ज्ञान की भी है। अब इसके प्रयोग को संक्षिप्त में ही बतावेंगे अधिक बताने से ग्रन्थ बढ जाता है। यह सिद्धि नेत्रों से ताल्लुक रखती है इस लिये नेत्रों के आन्तर शक्तियां का वर्णन करेंगे—

इस सिद्धि के नियम।

हम को यह जानना अति आवश्यक है कि हमारे नेत्रों की दृष्टि में ऐसी अद्भुत चमत्कालिक गुप्त आकर्षण शक्ति है जिसके द्वारा हम प्रत्येक पदार्थ पर विजय प्राप्त कर सकते हैं जंगली से जंगली और विकराल से विकराल जानवरों पर अपनी विजय पता का फरा सकते हैं। फिर मनुष्य जैसी सभ्य श्रेष्ट प्राणी पर अपनी विज्यता क्यों नहीं कर सकते हैं हमारी आंखों की दृष्टि में मेगनेटिजम की आकर्षण शक्ति है। जो सब से तेज और शीघ्रततिशीघ्र गति से व्याप्त है। विचार शक्ति के द्वारा हरेक पदार्थों पर इस शक्ति को फेंक

कर उन पदार्थों को अपने आकर्षण बल अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इस शक्ति के द्वारा हम को संसारी व्यवहारी तथा आत्मक सुखों को प्राप्त करना चाहिये अथवा मोक्ष में आकर्षण कर उसमें मिलना चाहिये। मोक्ष मिलने का सच्चा मार्ग यह है कि हमारे विचारों पर और इच्छाओं पर निग्रह रखना चाहिये। जो इच्छाओं को और विचारों पर अधिकार जमा लेता है वह पूर्ण संतोषी है और जो संतोषी है वह पाप करने से बच जाता है और पाप के न होने पर अवश्य मोक्ष मिल जाता है यह नियम है। इस प्रकार जो विचारों और इच्छाओं पर अधिकार जमाकर पाप रहित हो जाने सेसुखों का मार्ग बहुत निकट वृति हो जाता है। और हरेक काम में सतोष और शांन्ति से जा मिलता है। मनुष्य के जीवन यात्रा में केवल मुख्य सर्व सुखों की खान संतोष और शांन्ति ही है। जिस मनुष्य को संतोष और शांन्ति नहीं है वह दुख की खाड़ी (नर्क) में जाकर दुख और नाना प्रकार की आधी और व्याधिओं में फसकर अपने आप को नीच और पापी दुखी नर्क गामी मान लेता है। परन्तु इस कलयुग हाल के जमाने में मनुष्य इतने अधिक पाप लालच मोह में फसकर काम क्रोध मैं होते हुवे भी अपने को सत्य धर्मी महात्मा और ज्ञानी मान बैठता है।

इस प्रकार आज कल के सतों और महात्माओं का व्यवहार है। परन्तु जो इन सिद्धिओं को प्राप्त करना चाहे तो इन उपर वाले नियमों को याद रखना चाहिये। यदि सिद्धि के प्रयोग कर्त्ता उपर वाले संतोष और शान्ति को प्रयोग न करें तो कदापी सिद्धि प्राप्त हो नहीं सकती है और प्रयोग

कर्त्ता का प्रयोग निष्फल हो जायगा और सिद्धियों को झूठा मान लेगा। परन्तु इस जमाने में न तो खरे संतोषी हैं न खरी सिद्धियों को प्राप्त करने वाले खरे सिद्धि ही हैं। सत्य है परन्तु संतोष की खामी है सिद्ध है परन्तु सिद्धियों की खामी है। इस प्रकार संत और सिद्ध दोनों ही का खरा अभाव है। जो मैं इस विषय पर लिखना चाहूं तो बहुत प्रकार से लिख सकता हूं परन्तु खुद मुझको भी अत्यन्त कड़वा अनुभव मिल चुका है परन्तु इतना तो मैं जरूर सत्य कहूंगा के हमने जो जन्म लिया है वह आत्मविद्या के सुख के निमित्त प्राप्त करने के ही लिये लिया है यह विद्या अभी के जमाने में इतनी लुप्त प्राय होगई है कि न तो इस विद्या का कोई सर्वांग पूर्ण ग्रन्थ ही मिलता है न इसके बताने वाले कोई सिद्ध गुरु ही मिलते हैं। जो कुछ मसाला मिलता है वह केवल थीएरी Theorey याने स्मृति ही है इस पर भी इतना भारी अलुझाड़ और मत भेदों के मतान्तर के होने से असली बात का पता नहीं लगता है जैसे तुलसी दासजी ने कहा है कि जिमि पाखण्ड विवाद से लुप्त भये सद ग्रन्थ इसी प्रकार इस ब्रह्म विद्या के भी विवादों से असली शास्त्रों का पता लग.ना महा कठिन हो गया है। परन्तु जो कुछ मुझ का शास्त्रों द्वारा और गुरु सम्प्रदा द्वारा और निज के अनुभव द्वारा सच्चा और सीधा और सिद्ध मार्ग मिला है वही मैने इस ग्रन्थ में लिख दिया है। यदि मेरा लिखा किसी को झूठ मालुम होवे तो वो इस के झूठ विषय को अपनी बुद्धि से सूक्ष्म कर खोजे ताके निर्णय हो जावेगा।

प्रकरण—दूसरा

दृष्टि की आकर्षण शक्ति।

Magnetic Gaze

हमारी आंख के अन्दर जो धुरवतारा है उसके अन्दर की दृष्टि में मेगनोटीजम की अकर्षण शक्ति भरी हुई है। जिसको मनुष्य अपने काम में लाने की विद्या जान ले तो सामने वालों पर कम या ज्यादा प्रमाण में असर करके एक प्रकार की लगन इच्छा उसके मनवन्तरों में पैदा कर उसको जीत लेता है। यह सर्व अपने देखते देखते हो जाता है परन्तु हम उसकी इस शक्ति को नहीं जान सकते हैं। कितने ही वक्त अपने खुद सामने वाले से बात चीत करते वक्त उसकी आंखों के सामने उसके तेज के खीव (सहन) कर नहीं सकते हैं। जिस प्रकार छोटे दरजे के मनुष्य बड़े दरजे के मनुष्य के सामने देख सकते नहीं हैं, जिस प्रकार मेस्मेरीजम के ओप· रेटर अपनी आंखों के तेज द्वारा सबजेक्ट पर काबू रखते है। इसी तरह पर आंख के अकर्षण की क्रिया द्वारा सामने की आंख से उसके मन का आकर्षण कर अपने में मिला लेते हैं। परन्तु वह अपने ज्ञान के आधार से अपनी इच्छा शक्ति को प्रबल करली हो वो मनुष्य जो साधारण निर्बल मन शक्ति के विचारों को धुरवकर्णी के द्वारा मन संशयमान बन जाता है और अपने में मन मिल जाता है अपनी विपक्षता को छोड़ देता है। अपने विपक्षी के मन में अपने विचारों को धुवरकर्णी का के द्वारा उतार कर उनका उसके मन में रजन कर यहां

ही निग्रह कर देना चाहिये। इन सब बातों में आंख मुख्य है हरेक मनुष्य के मिलने के पहले दोनों की आंखें चोनजर होकर परस्पर दृष्टि एकमेक होकर अपने अपनी तरफ में खिंच जाती है जिस की दृष्टि स्थिर और इच्छा शक्ति के बल से प्रबल होती है वह सामने वाले पर अपना काबू जमाकर निडर देखा करती है। परन्तु जिसकी इच्छा शक्तियां निर्बल होती हैं वो कुदरत से ही नजर फेर लिया करते हैं। इसी प्रकार वो अपने विचारों को भी डावां डोल करते रहते हैं। और अपने विचारों को संशयमान करके आखिर प्रबल विचार वालों के पक्ष का समर्थन कर लेता है। और अपना मन उसके मन में मिला लेता है। और उससे द्वेष वैर के भाव बदल कर उससे प्रेम के और मित्रता के भाव बढा लेता है। इस प्रकार चाहे सिंह, घोड़ा, हाथी आदि कैसे ही खुंखार और जंगली जानवर क्यों न हों वह भी अपने से, सर्व वैर और द्वेष को परित्याग करते है। यह स्वरूप के सिद्ध होने की विद्या है।

प्रयोग।

प्रत्येक मनुष्यों के साथ मिलने पर विपक्ष वाले के याने मिलने वाले के मुख मण्डल के सामने देखना फकत उसके आंख के स्थिर कोमल तथा पक्के दृढता के साथ देखते रहना चाहिये। और आंख के पलक (Wink) को न मारनी चाहिये और कदापि घूरती दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। बहुत शान्त निर्मल दृष्टि से देखना परन्तु आंखों के अन्दर के तारे की टिकडी को इधर उधर हिलाना नही जिसकी वजह से सामने वाला तुम्हारी स्थिर दृष्टि को देख

कर स्वभाविक वो अपनी आंखों को इधर उधर करेगा और दूसरी तरफ देखना शुरू करेगा परन्तु हम खुद को अपनी दृष्टि को नहीं वदलना चाहिये। उसके मुंह के ऊपर उस के दोनों नेत्रों के तारे में ऐसे देखना चाहिये कि मानो कोई वस्तु को खोजकर ढूढता हो इस प्रकार एक ही दृष्टि से देखना चाहिये। फिर वह सामने वाला इधर उधर देखकर फिर तुम्हारे ही मुह की तरफ देखेगा। परन्तु तुम्हारे देखने के कार्य क्रम को कुछ भी फरक नही पडने देने पर सामने वाले का मन अपने समतूलआत्मकता के अन्दर फरक पड जायगा याने डामा डोल (Neryus) हो जायगा उसवक्त जो तुम्हारे किये हुवे विचार अथवा प्रश्न कुछ भी करना हो उसके पूछने पर तुमको तुरन्त जबाव मिलेगा।

कदापि ऐसा प्रयोग करते हुवे सामने वाला आपको वे अदब से देखे (insolent) समझे इस लिये आंखों के डोले बहुत नरम कोमल विमल स्थिर रखने चाहिये ये साधारण प्रयोग का प्रभाव हुवा—

अब प्रयोग की सिद्धि।

अब यह बताते हैं कि अगर तुम्हारे सामने वाले को अपनी इच्छा अनुसार अगर हां भरवानी हो अथवा अपने अनुकूल विचार करवाने हों तो जिस वक्त सामने वाला अपने मन के समतूलना के डावांडोल हो उस वक्त अपने चल्लुमन से मन की जो मनोवासना से उसके मनको सूचना करके (Mental Suggestion) अपनी इच्छा शक्ति से ऐसा विचार दिल में करते रहना कि मैं जो कुछ कहूं वो उसको

मंजूर करे। इस प्रकार का कार्य क्रम करने से सामने वाले पर द्वन्द (डबल) असर हो जायगा। अव्वल तो आंख के तेज से वो चित्त (डावांडोल) भंग हो उठेगा, दूसरे अपने विचारों से। इस लिये वो अपने विचारों के विरुध याने अपनी प्रति कूलमत नहीं रखेगा। जब वो अपने विचारों पर निसंशयमान सहयोगी हो जावे। जब वह अपने लिये पक्का भरोसा बंध विश्वास पात्र बन जायगा। और अपनी इच्छाओं के माफिक अपने हुक्म का फरमाबरदार रहेगा। और हमारी प्रत्येक बात को अपने ध्यान में उतार कर सत्य खरी निसंशयमान मान लेगा वो अपने अविश्वासना को;त्याग कर तुम्हारे प्रति विश्वास पात्र बन जायगा और अपने विचारो को संशयमान मान करके अपना समतुलता (बलेंस आफ माइन्ड) (Balance of mind) को त्याग कर देगा और तुम्हारा सच्चा भक्त बन कर तुम्हारी भक्ति को भाव से करने लग जायगा। और तुम्हारी अधिकार सत्ता को जमाने का कितना सरल और सहज यह प्रयोग है। अब हम बताते हैं कि अगर इस विद्या का जानकार ही सामने वाला मिलजाये तो उसके प्रयोग को किस प्रकार बेअसर कर देना चाहिये।

प्रयोग के प्रयोगी का द्रय नाशक प्रयोग।

अब आपको यह बताते हैं कि जिस प्रकार के आकर्षण के प्रयोग की विद्या तुम जानते ही हो। उसी माफिक सामने वाला जानता हो तो किस प्रकार उसके प्रयोग को काट कर उसे बेअसर करदेने की क्रिया क्रम लिखते हैं। अब अगर तुम्हारे ऊपर सामने वाला अपना आकर्षण का प्रयोग डाले

या तुम्हारे मन पर अपने विचारों की छाप पक्की करना जानना हो तो तुमको क्या करना चाहिये ये मैं बतलाये देता हूं। उसके प्रयोग क वक्त अपने विचारों को बहुत मज-बूत और दृढ करके दिल में ठसा लेने चाहिये जिससे सामने वाला कदापि तुम्हारे ऊपर अपने प्रयोग जमा नहीं सकेगा। इस प्रकार तुम तुम्हारे दिल, मन में ये विचार करो कि सामने वाले का प्रयोग मेरे ऊपर निष्फल हो जावे इस प्रकार मेरी पूर्ण इच्छा है। इस प्रकार की दृढता करके अपने विचारों को निसंशय बनालो। अगर सामने वाले की दृष्टि तुम्हारे से ज्यादा शक्तिशाली होतो तुमको चाहिये कि उस की दृष्टि से दृष्टि मिलानी नहीं और अपनी दृष्टि फेरकर दुरस्त पदार्थों की तरफ दृष्टि डालनी। अगर प्रयोग कर्ता ने तुम्हारी दृष्टि अपने प्रयोग से बांधली हो और तुम तुम्हारी मरजी के माफिक दृष्टि को फेर नहीं सक्ते हो तो उस वक्त तुमको यह प्रयोग करना चाहिये कि तुम्हारी जिव्हा की अगली अनी (नोक) को तुम्हारे तालवे में जोर से लगा कर दाब रखो और दृढ़ता से यह विचारकरो के सामने वाले का असर मेरे अन्दर से निकल जावे। तो उससे उसका असर दूरनास हो जायगा और सामने वाले का आर्कषण प्रयोग कट जावेगा।

अगर आर्कषण के प्रयोग कर्ता अपने से कोई प्रश्न का उत्तर मांगता होय और जवाब में तुमको ना इनकार करना हो तो कोई तरह का विचार किये बिन हिचकचा के बिलकु ही नहीं जवाब दे देना चाहिये इस विद्या की कल कुच नियम जहां तक बने अपने खानगी में ही प्रकटिस करना चाहिये और तुम्हारे व्यवारिक काम काज में इसको गुप्त रीति

से साधना कर काम में लानी चाहिये परन्तु इस में इतनी सावचेती रखनी जरुरी बात है कि तुम्हारे मनके मनसा का पता सामने वाले को मालूम नहीं होना चाहिये और सामने वाला वही तुम्हारे ऊँपर अपना काबु न कर जाय इसकी हमेशा चौकसी विचिक्षणता रखनी चाहिये ।

प्रकरण-तीसरा

दृष्टि की आकर्षण शक्ति बढ़ाने की विधी

(The culti Vati on of the Magnetic glance)

दृष्टि के आकर्षण शक्ति बढ़ाने की बहुत सी विधी हैं परन्तु जो विधी बहुत सहल और निरदोष जिसके करने से किसी किस्म की हानी नेत्रों को न पहुचे ऐसी विधियों को मै आपको बताता हूं ।

(१) एक ६ इञ्च चौड़ा कागज का टुकड़ा लेकर उसके बीचो बीच एक छोटी दोअन्नी जितना गोल काली टिकड़ी लगावो फिर उसको एक बन्द मकान में जिसमें न तो ज्यादा प्रकाश (उजाला) और न ज्यादा अंधेरा हो ऐसी जगह भीत पर चिपका दो फिर उसके दुरस्थ पांच फीट पर कुरसी लगा कर बैठ जावो और एक मिनिट तक एकाग्रह चित्त से आंख के पल मारे बिदुन उस काली टिकड़ी के अन्दर स्थम दृष्टि से लक्ष जमालें जहां तक जमासको फिर ठहर कर एक दो सैकिंड अथवा आधा मिन्ट तक आंखों को आराम दो फिर वैसा ऊपर लिखा अभ्यास चलु करो इस प्रकार दिन में दो वक्त अभ्यास कर करके दृष्टि की शक्ति को बढ़ाओ ।

(२) दूसरी विद्धि–ऊपर वाले प्रयोग दो हफते लगातार करने से तुम्हारी आखों के पलक मारने की (Winking) आदत दूर हो जायगी। जब तुम्हारी दृष्टि स्थिर और स्तब्द तेज बनती चली जायगी। जब तुम्हारी दृष्टि स्तब्द बन जावे तब उस कागज को बैठने की जगह से १ फुट पर जीवणी बाजू की तरफ लगावो फिर अपनी असली जगह पर बैठ कर पहले दृष्टि कागज के पहली जगह पर फेकने के बाद में मुंह और गरदन फेरे बिदुन जीवणी तरफ देखना और पहले वाला प्रयोग करना फिर उसी कागज को डावी बाजू रख कर उसी प्रकार प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार इस अभ्यास के सिद्ध होने से तुम्हारी दृष्टि डावी या जीवणी बाजू आंख के घुमाए बिदुन कर सकेगी। इस प्रकार का अभ्यास एक महीने तक लगातार करना और एक मिनट से लगाकर २० मिनट तक अभ्यास को बढाना या इससे भी ज्यादा जितना बढाओगे उतना ही अधिक और शीघ्र फलदायक होगा। इस प्रयोग के सिद्ध होने पर भयानक जानवरों के सामने जासकता है और उन पर अधिकार जमा सकता है। और वह जानवर तुम्हारे आज्ञाकारी बन सकते हैं।

(३) तीसरी विधि—एक मुंह देखने का कांच आईना (Looking Glass) बिलकुल साफ लेओ उसको तुम्हारे सामने दो से तीन फीट के फासले पर रखो और तुम्हारी नाक के मूल (Root of the nose) भाग के आगे दोनों आंखो के बीचो बीच एक सूक्ष्म टीकरी बना कर उस पर ऊपर लिखे अनुसार लक्षजमाओ इस प्रयोग के करने से भी

दृष्टि स्थंभन होजायगी इस अभ्यास से तुम्हारे धूर्व कणी नरम है या विकराल ये भी जान सकोगे इसकी सिद्धि होने पर प्रत्येक प्राणी के गुण अवगुण धर्म अधर्म चोर सहुकार आदि की परीक्षा तत्काल जान सकोगे।

(४) चोथी विधी-पहली और दूसरी विधी कागज टांक के करना परन्तु आखों को उसी जगह की तरफ स्थिरता से टिकी हुई रखनी और तुम्हारे मस्तक को हां जीवणी या डावी बाजु तरफ फेरना परन्तु दृष्टि का लक्ष स्थान पर ही रखना।

(५) पांचवी विधी- कोई भी चीज को न रख कर केवल सादी सूफेद भीत के सामने ३ से ६ फीट दुरस्त वैठ कर भीत के एक तरफ के नाके से दूसरे नाके की ओर फिर जीवणी और डावी बाजु उपर तथा नीचे इधर उधर आडी टेडी हर तरफ तुम्हारी दृष्टि मुह मस्तिक और गरदन हिलाये और फिर बिजुन देखने की आदत पडकर्ना नेत्रों को चलु खींचने से आंख बिगड जाती है यह वात सत्य है उपर वाले प्रयोगों के करने में जितनी टाइम लिखा गया है उतने ही टाइम लेना और धोरे धीरे जैसे २ दृष्टि स्थिर होती जावे दृष्टि की (Neryes) नाडियों को अपनी मरजी के माफिक फैलती जावे ज्यों २ टाइम को बढाते रहना चाहिये कदापि आंखों को अधिक नहीं खिचाव देना चाहिये और जराभी अडपडाई लगे या चक्र आना शुरु होजावे अथवा अंधेरा दीखना शुरु होजावे अथवा मस्तक दुखना शुरु होजावे तो फोरन इस प्रयोग को वन्द करदो अथवा दो चार दिन वन्द कर देना चाहिये दृष्टि के हरएक प्रयोग के बाद नेत्रों को ठंडे पानी से धोना चाहिये इसके बाद नेत्रों को पुर्वत

शक्ति देने के लिये प्रयोग बताते हैं। आंखों को जीवणे हाथ की दोनों अंगुलियों से नासिका के मूल भाग याने आगे से पकड कर आंख बन्द कर मन से दृढ इच्छा शक्ति के प्रवाह को आंखों में भेजती वक्त (Mental Current) ऐसा विचार करना के मेरी आंखे बहुत तेज और तन्दुरस्त बन जावे इस प्रकार का अभ्यास करने पर कदापि आंख खराब नहीं होगी यह मैं अपने अनुभव प्रमाण से कहता हूं यदि दृढता के भाव से हमेशा इच्छा शक्ति से यदि चिकित्सा करने में आवे इस प्रयोग से कैसी ही विगडी हुई आंखे ठीक होजावेंगी और जिनके चश्मों के नम्बर बढते हों वह भी कम होजावे।

जैसे २ अभ्यासी इस प्रकार का अभ्यास करता जाता है वैसे २ ही अद्भुत शक्तियां प्रयोग कर्त्ता को मालूम होती जाती हैं जो स्वयम् तुम जान सकोगे।

प्रकरण—चौथा

(स्वर सिद्धि)

अर्थात्

(वाक्य चातुरी)

मनुष्य की बोलने की आवाज की कम्पन यह भी एक प्रकार की आकर्षण शक्ति है। जिस के द्वारा सिंह और हाथी जसे प्राणियों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लेती है और हुक्म

के अनुसार ही वह प्राणी क्रिया करने लग जाता है। इस प्रकार मनुष्यों के स्वर आवाज में भी अद्भूत असर है। मंत्र सिद्धि अथवा दुसरी प्रार्थनाओं उपासनाओं अथवा गायना आचार्यों की गाने की स्वर पर भी ऐसा आकर्षण है कि वो स्वर जुदी २ प्रकार के रखे गये हैं और इन स्वरोकी सरगमों में जुदी २ आकर्षण शक्ति का असर है। गाने से भी तमाम आकर्षण होकर अपने वसीभूत होजाते हैं सर्प जैसे भयंकर विष घर प्राणी भी राग के बसी भूत होजाता है और हाथी मृग सिंह आदि प्राणी भी राग के जरीये आकर्षण कर बुलाये जाते हैं और नचाये जाते हैं यह प्रत्यक्ष देखा गया है। इसी प्रकार मनुष्यों मे भी काम क्रोध रज लोभ प्रेरणा आदि के वाक्य जुदे ही असर करते हैं। और भक्ति भाव करुणा लज्जा आदि के वाक्य जुदे ही असर करते हैं। इस प्रकार मनुष्यों में से वाक्य चातुरी की अदभुत शक्ति है और इसका असर ऐसा विचक्षण होता है कि जिससे मनुष्य अपनी इच्छा के माफिक हरेक पर अपना प्रभूत्व जमा कर अपने हुकम के माफिक कार्य करा सकता है। अब हम विषय विवेचन को कहते हैं।

प्रकरण पांचवां

विषय विवेचन

SUGGESTION.

किसी न किसी एक विषय पर विवेचना करके उसकी सूचना करने को ही विषय विवेचना कहते हैं। किये हुये

विवेचन का मनन करने को हुक्म कहते हैं। इस प्रकार यह विवेचन प्रत्येक मनुष्य के साथ में प्रत्येक विषय पर तीन प्रकार का मुख्य है प्रथम विवेचना को सूचना कहते हैं। यह हमारे दिन रात के दिनचया में हरेक बाबत की बात चीत करने में किसी विषय पर शिक्षा दिलासा आदि परस्पर के व्यवहार में काम आती हैं जिसको सादी सूचना कहते हैं ।

दूसरे प्रकार के विवेचन को मनो बासना कहते हैं। यह वहुत उपयोगी है यह विवेचन कठोर संगदिल मनुष्यों के उपयोगी है यदि ऐसे दुष्ट प्राणी से मुकाबिला हो जावे तो उस वक्त यह काम में आती है। तीसरे प्रकार के विवेचन को प्रतिज्ञा कहते हैं। इस के द्वारा खुद की बिगड़ी आदतों के छोड़ने में काम आती है जैसे किसी प्रकार का नशा इत्यादि को छोड़ने, कठिन प्रण करने में काम आती है। शरीर के हरेक अव्यवों पर अपनी आत्मिक शक्ति को लेजा कर अपने अव्यवों को शक्ति शाली बनाकर अपने आप अपने रोगों को दूर करने में भी काम आती है।

इनका प्रयोग ।

नीचे लिखे अनुसार प्रयोग करने से शरीर के दुख दर्द आदि दूर हो जाते है। एक शान्त जगह में बैठ कर अथवा विस्तरे पर सोकर आंखे बन्दकर जिस स्थान पर दर्द हो वहां पर तुम्हारे ज्ञान चक्षु से देखते २ ही वो फिर तुम्हारे मनो वासना को उस जगह पर पहुंचाओ और मन को आज्ञा करो कि इस जगह पर दर्द है वह तुरन्त दूर हो जावे। इस प्रकार के प्रयोग करने पर वह दर्द मिट जावेगा। जिसका विज्ञान

यह है कि उस दर्द वाले भाग पर एक प्रकार की बिजली की चमक पैदा होकर कोई पदार्थ प्रवेश होती मालूम पड़ेगी। जब वो मनोवासना का प्रवाह उस जगह पर होकर पार हो जायगा। तब दर्द बिलकुल जाता रहेगा और दर्द मालूम पड़ेगा नहीं। इस प्रकार के प्रयोग से चालु ५० से १०० तक इसी प्रयोग का प्रति क्रम करने से मनोवासना की विद्यु की रसमियां उस स्थान पर विवेचन करने से अपने आप के रोग को आराम करलेती हैं और दूसरों के भी इलाज कर सकते हैं।

विवेचना के नियम।

हरेक प्रकार के विवेचन मनुष्य अपनी खुद की इच्छा अनुसार कर सकता है। जैसा मोका वैसी ही रीति के अनुसार करना पड़ताहै। एक शख्स को तुम किसी विषय पर सलाह देवो और यदि वह सलाह उसको पसन्द नहीं आवे तो तुम्हारे से विमुख याने सामना करलेगा। ऐसे वक्त पर मनोवासना ही से काम लेना चाहिये और उस, सामने वाले शख्स की वृतियों में प्रवृत होकर उन वृतियों को अपनी मनोकामना के अनुसार विवेचन अपने प्रति कर लेना चाहिये ताकि सामने वाले को फिर ऐसा मालुम हो जायगा कि यह मेरी मरजी के अनुकूल ही सुधार हो रहा है। परन्तु सामने वालों के मन में अपने विचारों की मनो आज्ञा के प्रमाण ही उनके मनो विचार होते जाते है। मनोवासना की आज्ञा करते वक्त विचारों की आकृति उस वक्त ध्यान में रखनी चाहिये कि जिस मनुष्य को तुम अपनी इच्छा के

माफिक आज्ञा पालन करके उस पर अपना हुक्म करो उस वक्त तुम जिसे नजरो नजर तुम्हारी माफिक वह मनुष्य करे याने तुम्हारे मनोकामना के विचारों की छाप तुम्हारे ध्यान में लेकर उसके मन के ध्यान में वो छाप डाल देना चाहिये कि यह अमुक २ शख्स मेरी इच्छा के छाप के माफिक कार्य क्रिया करे । इसका अद्भुत असर होता है हरेक विषय के विवेचन को पूरा करने के लिये उन विचारों की आकृति की छाप अपने मन में निसश्चमान रखनी चाहिये यह सिद्धि दुराचारी चोर व्यभिचारी अथवा पापी नसेवाज आदि हठीले मनुष्यों पर करने से उन के आचरणों को सुधार ने में बडी काम देती है इस सिद्धि को करने वाले को चाहिये कि वह व्यभीचार और लोभ लालच आदि से इस विद्या का प्रयोग न करे और यदि करेगा तो कदापि यह सिद्धि उस को प्राप्त नहीं होगी और इसको झूठ बतावेगा इस सिद्धि के साधने में सिद्ध को हर समय नेक नीयत में रहना चाहिये कभी भी बद्दयानती नहीं करनी चाहिये किसी को भी अपने लालच अथवा लोभ के वस हो नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिये । सत्य शील दया उपकार आदि के धर्मों को पालना चाहिये तो यह सिद्धि अवश्य फल प्राप्त होगी वरना साधक को उलटा नुकसान होगा जिसके कारण वह महा दुख के सागर में गिरजायगा क्योंकि ईश्वर का यह नियम है कि जो अपने भोग को छोड़ दुसरे के भोग को भोगता है अथवा भोगना चाहता है उसके भोग को भी परमात्मा छीन लेता है । इसी को किसी कवि ने कहा है कि खांड़ खिड़ जो और को वाको कूप तैयार । जैसा वोवोगे वैसा फल खावोगे । इस लिये अगर तुम किसी भी प्राणी का नुकसान करोगे तो तुम

ही नुकसान में पड़ोगे इससे तुमको मैं यह शिक्षा देता हूं कि खबरदार कभी भी किसी का नुकसान मत करो धर्म पर रहो नेक नीयती से रहो ताके फल प्राप्त हो वरना पछतावोगे ।

अध्याय पांचवां

प्रकरण-पहला

सत्व स्वरूप सिद्धियों का वर्णन ।

पहली और दुसरी अध्याओं में क्रिया रुप सिद्धियों का वर्णन किया गया है। अब इस अध्याय में सत्त्व स्वरुप की सिद्धियों का वर्णन करते हैं। इस लिये प्रथम सत्व के स्वरूप को जानना चाहिये अब हम सत्व स्वरूप के ज्ञान को बतावेंगे।

(पुरुष और सत्त्व का ज्ञान)

सत्व और पुरुष यह दोनों अति भिन्न २ है सत्व अर्थात् वुद्धि में पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता है । यह जड़ प्रकृति का कार्य है। पुरुष अजड़ चेतन्य अपरिमानी है। इसी लिये यह दोनों भिन्न २ हैं। सत्व अत्यन्त स्वच्छ निर्मल स्फटिक समान द्रव्य है तो भी बडजड़ है ज्ञान शक्ति से रहित है द्रश्व पर-भोग्य है यह परिणाम सहित है। चेतन्य युक्त पुरुष भी अति

स्वच्छ स्वयम प्रकाश है इसी लिये सत्व और पुरुष की बहुधा सभ्यवस्था ही प्रतीत होती है। इसी लिये परस्पर भेद रहित भासमान होते हैं। परन्तु जब बुद्धि में विवेक ख्याति की प्राप्ति होती हैं। तब दोनों बिलकुल अभिन्न एक रुप भासते हैं सत्व परिणाम शील होने से पुरुष से अत्यन्त भिन्न है क्यों-कि बुद्धि सत्व भोग्य है द्रश्य हैं एवं जड़ पदार्थ है और पुरुष भोगना है द्रष्टा है अपरिणामी है एवं नित्य चेतन्य है पुरुष स्वयम् भूत है। जो उसका प्रतिबिंब बुद्धि में पडता है वह सत्व अति सूक्ष्म बुद्धि का कार्य है इसीसे जड अचेन बुद्धि चैतन्यवत् प्रतीत होती है। एसा होने से मानो पुरुष का प्रतिबिंब बुद्धि सत्व पुरुष ही है ऐसा भ्रम होता है। जिससे सुख दुख मोह आदि सब बुद्धि सत्व की वृतियों पुरुष ही की हैं ऐसा भाव होता है इस भाव से बुद्धि सत्व मे संस्थित वृति रूप भोग का पुरुष में वृथा आरोप होता है और उस आरोप में मैं सुखी हूं दुखी हू मूढ हूं ज्ञानी हूं ऐसा अनुभव होता है। इसी अनुभव का नाम भोग है। इस से साफ मालुम पडता है कि सत्व तथा पुरुप का अभेद है ऐसा जो अविवेक है वही भोग में सुखी अथवा दुखी है। भोग पदार्थ अन्य का अंगभूत है मैं सुखी या दुखी इत्यादि भोग की भी सत्व की जड वृतियां है। ये सत्व परतंत्र केवल अन्य के संगभूत है इसीसे सुख दुख आदि वृति रुप दृश्य होने से पदार्थ है भोक्तत्व की योग्यता वाले पुरुष के अंगभूत हैं किंतु पौरुषेय प्रत्येकरुप पुरुष का बुद्धि में पडा हुआ सत्व प्रतिबिंब तो पदार्थ भोग से भिन्न एवं विचित्र है और वह किसी का अंगभूत न होने से स्वार्थ है अर्थात् उक्त पदार्थ भोग से बुद्धि सत्व में पडे हुवे प्रतिबिंब रुप पौरुप प्रत्येक भिन्न २ हैं।

ऐसी विवेक पूर्वक बुद्धि गत चिति छाया में संयम से सत्व् सिद्धि की जा सकती है जिससे पुरुष और सत्वात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। अब इसकी सिद्धि का साक्षात्कार होने से विचार स्फुर्ण से लगाकर विचार सिद्धि तक विचारों का निश्चयात्मक ज्ञान जो बताया गया है वह बिना क्रिया के भी इस सत्व रूप सिद्धि से स्वयं सिद्ध हो जाता है और महा सिद्धियों का द्वार खुल जाता है और प्रतिभा सिद्धियां प्राप्त होकर अंन्तर जगत में प्रवेश होजाता है जिससे सर्व सिद्धियां प्राप्त होजाती है। ये सत्व रुप सिद्धियों को प्राप्त करने का सत्व ज्ञान प्रथम कहा गया है। इसलिए सत्वरुप की सिद्धि और इसका ज्ञान प्रथम करना चाहिये। फिर इस सत्व का ज्य करना चाहिये जिससे सम्पूर्ण भूत जय प्राप्त होता है।

प्रकरण–दूसरा

अब हम पांच महा भूतों की जय की सिद्धियों का वर्णन करते हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनको पंच महा भूत कहते हैं। ये सामान्य और विशेष रुप से कारण भूत होकर पदार्थ मात्र की स्थिति और निर्माण करते हैं अर्थात् इन्हीं के द्वारा सब जगत की सृष्टि बनती है। प्रत्येक भूत के पांच अंश हैं। (१) स्थूल (२) स्वरुप (३) सूक्ष्म (४) अन्वयं (५) अर्थत्व। ये पांच अंश हैं।

पांच महा भूतों का अर्थ।

पांच महानु याने अपरिमित को ही पांच महा भूत कहते हैं। सो सीमा आदि रहित को ही अपरिमानी कहते हैं। इनके प्रपंच से ही सृष्टि की स्थिति निर्माण प्रलय आदि होती है इनमें एक२ में पांच२ प्रपंच के तत्तरों की संकला लगी है। जैसे १ आकार २ स्वरूप ३ गुण ४ धर्म ५ अर्थ ये पांचों में पांच २ तंत्र हुवे जिनका नकशा नीचे दिया जाता है।

प्रकरण—तीसरा

पंच महा भूतों की यंत्रिका।

अंश तत्व	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
आकार	निराकार सून्य	तिरछा सूक्ष्म	गोल स्थूल	अर्ध चंद्राकार स्थुल	चोकोर स्थूल
स्वरूप	शाम अदर्शी	नीला अरूप	लाल	स्वेत	पित्त
गुण	शब्द	स्पर्श.	रूप दाहक उष्ण	रस शित	खर गंध
धर्म	व्यापक शून्यकार	चंचल	चंचल प्रकेदर्शक	निर्मल चचल	स्थिर
अर्थ प्रयोजन	अवकाश	परस्प-न्दन रूप	द्रावक गलाना	मृदु सलश्ण	घनता स्थूलता

भूत प्रकृति के अश से जो पांच अंश हैं वही पँच भूत हैं और जो चैतन्यताके अंशसे इन भूतोंमें से सुक्ष्म सत्त्वां सेजो तत्व निकलते हैं वह पंच तत्व है। अब प्रकृति के अंस विशेष से जो पदार्थ बनता है वह जड़ स्थावर परिणामी पदार्थ है और चैतन्यता के अंश से जो पदार्थ बनता है वह जंग में अपरिमाणी चैतना युक्त पदार्थ है। प्रकृति अंश व्याप्य है और चैतन्य अंश व्यापक है चैतन्य सूक्ष्म और प्रकृति स्थुल है। इन दोनों के सामान्य और विशेष अश संयुक्त से दोनों के धर्म और अर्थ में फरक होता है अर्थात् प्रकृति अंश तो भोग अंश है और पुरुष अश मोक्ष अंश है इन दोनों अशों में से प्रकृति अश त्रिविध अन्वय है अर्थात् सत्व रज तम, आदि गुणों से विभूषित है। इनके अर्थ की प्रयोजन की सिद्ध करने की शक्ति पुरुष तत्व में है वही अर्थ तत्व को सिद्ध कर अपना प्रयोजन भोग और मोक्ष को सिद्ध कर लेता है। इस प्रकार इस सृष्टि में यदि देखा जाय तो मुख्य दोही पदार्थ है वह भोग और मोक्ष इसके आगे कुछ भी नहीं है इस लिये हमारे जीवन के प्रयोजन में सिर्फ दो ही सिद्धि है एक भोग भी और मोक्ष की भोग से हारी पालन पोषण होती है और मोक्ष से हमको आनन्द मिलता है। देखो यदि हमको उत्तम भोग मिल जाय और आनन्द न मिले तो वह भोग हमको दुख रूप में लागता है और यदि मोक्ष मिल जाय तो सम्पूर्ण भोग आनन्द रूप हो जाते हैं इस लिये बिना आनन्द के भोग के अर्थ तत्व की की सिद्धि नहीं होती और बिनाभोग के आनन्द की सिद्धि नहीं होती क्यों कि आनन्द का प्रयोजन (अर्थ) आनन्द में इस लिये मनुष्य का अर्थ तत्व भोग और मोक्ष ही है। प्रसाद रूप भोग है आनन्द रूप मोक्ष है और

ये दोनों प्रकृति और पुरुष में व्यापक व्याप्य हैं। यह सिधान्त बहुत गुढ़ और सूक्ष्म है हरएक स्थूल दिमाग वाले मनुष्य को कभी प्राप्त नहीं हो सक्ता है। अब हम पंच भूतों के अर्थ तत्व का निरूपण करते हैं।

पंचभूतोंमें पृथ्वीआदि जातिआकारादि धर्म,कार्यरूप और कारण द्रव्य की अवस्था विशेष है। ये सपूर्ण सृष्टि तन्मात्रा रूप उपादान कारण की साक्षात अवस्था है। सम्पूर्ण जगत पंच भौतिक त्रिगुणात्मक प्रकृकि का कार्य रूप है। इस सिधान्त मे प्रकृति द्रव्य सब में भरा हुआ है। तो सब ही पदार्थों में सत्वांस मौजुदा है जब सब में सत्वां अंस है तो सब में चैतन्य अश भी समा सकता है। इस लिये इस सत्व की सिद्धि प्राप्त हो जाने से सम्पूर्ण भूतों का तन्मात्रा आदि इन्द्रियों का भी जय हो जाता है।

जि०—वैदान्ती बहुत से भूतों में तमास अंश अहंकार से उत्पन्न हुवा बताते हैं तो फिर इन भूतों में सत्वा अंश कहां से आया इसका क्या जवाब है।

ऊ०—तामसं अश अहंकार के अगुओं में केवल तामसं द्रव्य ही अकेला नहीं हैं। तामस अंस प्रधान मात्रा है और अन्य सत्व आदि के अंश प्रोग रूप की मात्रा में है। जोसत्व की स्थिति तामस अहंकार होने का सबूत यह कि पंच भूतों में उसका प्रयोजन कार्य रूप में होना अर्थ तत्व मोजूद है। और भी यह है कि यदि भूतों में सत्व अंश न होता तो इन भूतों को अन्तःकरण की पोसाक को कैसे बनाते हैं। इस सिधान्त से सिद्ध होता है के तामस अहंकार अंश वाला

पार्थिक अंश विशेष है इसी से अहंकार माना पुरुष कहते हैं इस अणुका परिणाम अर्थ विशेष अन्न इसी से अनम्य पुरुष कहते है । उस विशेष का फिर परिणाम अर्थ विशेष मन है और मन इसी से मनोम्य पुरुष कहते है के अर्थ परिणाम विशेष इन्द्रियां है । इन्द्रियां के अर्थ परिणाम विशेष तन्मात्रो हैं और वह तन्मात्रों के अर्थ परिणाम विशेप विषय है और विषयों के अर्थ परिणाम विशेष रस ४ इसी से रसम्य पुरुष कहते हैं । इसके परिणाम अर्थ विशेष प्रसाद है प्रसाद के अर्थ परिणाम विशेष भोग है । भोग के परिणाम अर्थ विशेष आनन्द है और आनन्द के परिणाम अर्थ मोक्ष है । इस प्रकार मोक्ष से अधिक कोई सिद्धी नही है मोक्ष सब सिद्धीयो का परिणाम अर्थ विशेष है देखो यदि तामस का केवल गुण तामस ही होता तो उसके अणुओं का कभी प्रकाश नही होता यह प्रमाणिक बात । देखो कोई भी सिद्ध यदि अपने शरीर के सत्व प्रकाश को जब अपने अन्दर खीच लेता है तब वह किसी को दृष्टि गोचर नही होता है इस सिधान्त से साफ यह प्रकठ हो जाता है कि किसी भी पदार्थ में यदि सत्वा अँश न होता तो वह हमको दिखाई नही देता इस लिये जिस पदार्थ में सत्वाअंस है वही हमको द्रष्टि गोचर है । और इस सिधान्त से भूत हमारे द्रष्टि गोचर होते हैं तो इन में अब सत्वांस का होना साफ प्रकट होता है । जब इस सिधान्त से पार्थवीं अणुओं में सत्वांअश सिद्ध होगया तो फिर अन्य भूतों के लिये प्रमाण देनेकी अब कोई आवश्कता नही रही । जिस प्रकार भूतों में त्रिगुणों की स्थिति है उसी प्रकार इनमें पांचवा अंश भोग मोक्ष की भी स्थिति है यह दोनों भोग और मोक्ष प्रयोजन बुद्धि सत्व में ही है अन्य में

नही इस लिये इस सत्त्व सिद्धि से हमारे भोग सब मोक्ष रूप परिणाम में मिल जाते है और हमको माहा विदेहा सिधीयों प्राप्त हो जाती है। क्यों के कारण कि अवस्था परिणाम विशेष कार्य है जिससे कार्य के सब गुण कारण में किसी न किसी रूप में स्थित है। इस सिधान्त से बुद्धि सत्त्व भी दोनों प्रयोजन की कार्य रूप होने से पंच भूतों का मूल ही प्रकृति मूल है। इन भूतों के पांचों अंशो में एक के पीछे एक दृढ संयम करने से इन भूतो का जय होजाता है यदि संयम में न्यूनता रह गई तो ये भूत पूर्ण जय नहीं होते और पूर्ण जैय के बिना इन भूतों पर पूरा अधिकार नही होता और पूरा अधिकार के विदुन आधीनता नहीं होती इस लिये जब पूरा अधिकार होजाने पर स्वयम प्रकृति सिद्धि के विचारों की कल्पना अनुसार मूर्त स्वरूप बनकर सकल्प की इच्छा अनु-सार कार्य का अर्थ में प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त होती है।

प्रकरण चौथा।

(अणिमादि अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति)

पूर्वोक्त रीति से यदि पंच महा भूतों पर विजैय प्राप्त करने पर साधक को अर्णामादि सिद्धियां प्राप्त होकर शरीर सम्पति अत्यन्त बलवान होती हैं। जिस का कभी भी ये महा भूत पराजय नही कर सक्के। ऐसी महा सिधीयां प्राप्त होजाती हैं अब इन सिद्धियां को कहेगे।

(१) प्रथम अणिमा अणु प्रमाणु सामान शरीर का

सूक्ष्म बनालेना जिसके जरिये से वह सिद्ध चाहै जहा सूक्ष्म रूप से जासक्ता है। (२) इस सिद्धि से अपने शरीर को पर्वत के तुल्य भारी और स्थूल बनाया जासक्ता है। (३) लघीमा रुइके समान शरीर का हलका बनाना जिससे वायु में उड़ सके। (४) प्राप्ति दुरस्त पदार्थों को समी-स्थ कर या खुद उनके समीप जाना जिस के जरिये से लोग लोकान्त रो में सम्पूर्ण भुवनों में और चन्द्र सूर्यादि ग्रहों में स्वयम जासक्ते हैं अथवा वह सामेपस्थ बुलाये जा सक्ते है ये चार सिधीयां भूतोंके स्थूल रूपमें संयम करनेके फलसे प्राप्त होती है अर्थात् भूतों के स्थूल रूप का जैय होने से उनके आकार गुरु तत्त्वकी जैय आपही होजाता है और अणुओं को लघुको माहानु आदि करता है। (५) प्रकाम्य भूतों के काठीनि-यादी धर्मों का अति कर्म करके उनमें प्रवेश करके भूतों का धर्म प्रति बंधक नहीं कर शकते हैं जसे हम पानी में गोता लगाते हैं वैसे ही हम पृथ्वी में घुस सक्ते है और निकल शक्त हैं पृथ्वी की कठीनता हमको नही रोक सक्ती है यह सिद्धि भूतों के सूक्ष्म रूप में जय प्राप्त करने से होती है। (६) वशित्व। ब्रह्माण्ड स्थित भूतों को और उनके कार्य रूप भौतिक पदार्थों को अपनी इच्छा के अनुसार परणति करना भूतोंके सूक्ष्मता अंश रूप वो तन्मात्राओं का संयम से जय करता है इच्छित पदार्थों को उत्पन्न कर बिन वस्तु निर-माण कर सक्ता है अथवा नवीन सृष्टि की रचना रच सक्ता है और उनका पालन पोषण कर सक्ता है। यह सिद्धि भूतों को वशित्व याने भूतों को अपने वश करने से होती है। (७) इशिता—यह सिद्धि समष्टि रूप तंन्मात्राओं को उत्पन्न करना और उनके द्वारा उनका लय करना अर्थात् भूत भौतिक

पदार्थों की उत्पत्ति स्थिति आदि निग्रह करना और प्रकृति का त्रिविध संयम करके, तीनो गुणों का गुणों में सयम करके इन का जय कर उनको इच्छित पदार्थों में परणीत करना। (८) महिमा साधक अपनी महिमा से विप का अमृत और अमृत का विप कर सक्ता है और अपनी महिमा की मोहनी माला को अपनी इच्छा अनुसार प्रवृत कर सक्ता है। ये सिद्धि भूतो के अर्थ तत्व में समय करने से होती है। इस प्रकार ये आठ सिद्धियां हुई। किसी किसी सिद्ध आचार्यों के मता अनुसार गिरीमा यह अधिक है और काम बास और प्रकाम्य मही अन्तर भाव समझते हैं। गिरीमा शरीर को मेरु तुल्य बनाना येभी अधिक माना है। इस प्रकार ये अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति होकर अर्थ तत्व अर्थात् मोक्ष प्राप्त होकर केवल्य पद प्राप्त होता है ये वाह्यम्य विषयो की सिद्धियां हुई। अब आगे ग्रहण विषय की सिद्धियों की प्राप्ति का ज्ञान बतावेंगे।

प्रकरण पांचवा।

* इन्द्रियों का जय *

इन्द्रियों के जय में पहले इन्द्रियों को कहते हैं। जिसके द्वारा अन्तः करण की वृतियां विषयों का ग्रहण कर विषय का भोग वो विषय का कार्य अर्थ स्वरूप उपादान कारण वो प्रयोजन सिद्ध करती है उनको ही इन्द्रियां कहते है। अन्त करण में पांच प्रकार की वृतियां उदित होती हैं उनको अपने गोलिको में से प्रकाश का प्रवृत होकर इन्द्रियां अपने २ अर्थ

कार्य का सम्पादन करती है इसी प्रथम अंशको यहां ग्रहण नाम से कहा गया है। इन्द्रियां सत्वांश से उत्पन्न हुई हैं। इसी लिये इनका स्वभाव प्रकाश रूप है। प्रकाश रूप तत्त्व यह इन्द्रियों का प्रभाव है। इसी द्वितीया रूप तत्त्व के अँशों को यहा स्वरूप संज्ञादी गई हैं। सात्त्विक अँहकार के कार्य का रूप होने से इन्द्रियों के तृतीय अंश को अस्मिता कहा है। सत्व, रज, तम ये प्रकृति के द्रव्य रूप को चतुर्थ अँश कहा है। भोग और मोक्ष रूप इनके प्रयोजन को पांचवा अँश कहा गया है इन पांच अँशो के समुदाय को इन्द्रियां कहते हैं।

इन्द्रियों के इन पांचों अँशों मे सयम करने से इन का जय होने पर सम्पूर्ण इन्द्रियों का जय होजाता है। यदि इन पान्चों अशों में से कोई अँश बाकी रहजाय तो फिर पूरण जय नही होता है। इसी लिये साधक को भूत जय के पीछे इन्द्रियां जय के लिये पांचों अंशों में पूरण साक्षात्कार होने तक संयम करना चाहिये। इन्द्रियों का जय होने पर मन के समान शरीर की शीघ्र गति होती है और इन्द्रियों की व्यापकता होती है और प्रकृति वशीभूत होती है। इन्द्रियां वृति के जय होने से कर्मेन्द्रियों का जय होके उनकी वृति पर जय होता है और स्वतंत्रता प्राप्त होती है जिस से शरीर को कर्मेन्द्रियां द्वारा अत्यन्त वेग दिया जासका है। इस सिद्धि से स्थूल देह से रहित इन्द्रियों को इच्छित देश तथा काल में प्रेषित कर सक्ते हैं। यही साधक की विदेह सिद्धि है जिस से प्रकृति और उसके सब विकारों पर स्वतंत्र अधिकार प्राप्त होती है। इन्द्रियों के संयम से प्रकृति का

भी संयम हो जाता है इस अवस्था को साधक प्रकृति लय कहते हैं।

इस प्रकार इन्द्रियां विजय होने पर साधक को कोई भी विषय विचलित नही कर सक्ता है इन सिद्धियों को मधु-प्रतिका कहते हैं अर्थात् जैसे शहद मीठा होता है वैसे यह सिद्धियां मीठी होती है इस प्रकार ग्राह्य ग्रहण संयम की सिद्धियों का प्रति पादन होने पर रूप प्राप्त अव ग्रहिवन्व विषय की सयम सिद्धियों का वर्णन करते है।

अध्याय छठा।
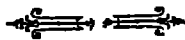
(ज्ञान सिद्धियां)

प्रकरण पहला।

प्रथम क्रिया रूप सिद्धियों का वर्णन किया गया है और द्वितीय में सत्त्व स्वरूप सिद्धियों का वर्णन किया अव हम प्रतिभा रूप (ज्ञान) सिद्धियों का वर्णन करते हैं यह सिद्धि केवल ज्ञान के द्वारा होती है और ज्ञान प्रतिभा के द्वारा होता है। इस लिये अव हम प्रथम प्रतिभा के ज्ञान का प्रति पादन करेंगे।

(प्रतिभा का ज्ञान)

प्रतिभा बुद्धि का एक अलौकिक कार्य है उस की शक्ति बुद्धि विज्ञान द्वारा ही प्रकट होती है। प्रति—भा—बुद्धि—की प्रति-अन्य सदृश-भा से प्रकाश विकाश (चमक) अर्थात् ची-ती शक्ति पुंज का प्रति बिम्ब-कहा है (यो बुद्धेपरतस्तुस) प्रतिभा अर्थात् बुद्धि के आगे है तो क्या वहां बुद्धि नहीं पहुँच सक्ति इससे यह नहीं जानना चाहिये के बुद्धि वहां कदापि नही पहुच सक्ति हां यह मान लिया जा सक्ता है कि बिना साधन के बुद्धि नही पहुँप सक्ती और बुद्धिके पहुचने का साधन मनुष्य मात्र में मौजूदा है और यदि कोई यह जान ले कि यह शक्ति किसी व्यक्ति विशेष में ही होती हो। तो यह कदापि नही हो सक्ता क्योकि भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में साफ कहा है ईश्वर सर्व भूतानां हृदेशऽजर्नतीष्टती और भी ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः अर्थात् हे अर्जुन प्राणी मात्र के हृदय में ईश्वर विराजमान है और जीव लोक में जीव भूत सनातन मेरा ही अंश है और भी कहा है बुद्धं पर बुद्धासंस्तभ्यात्मान मात्मन, अर्थात् वह बुद्धिके आगे है ऐसा जानकर आत्मा से आत्मा को स्थंभित करके उसमें लीन होने के सिवाय उस बुद्धि से पर शक्ति में पहुचने के लिये किसी को कहीं जाने की जरूरत नही। बुद्धि विचार की परम्परा है। यह प्रतिभा प्राणियो में बीज भूत है। चित्त, मन, आत्मा और बुद्धि इन का एकी करण से बुद्धि में प्रतिभा का प्रकाश उत्पन्न होताहै। इनका अनुभव प्रयोग इस प्रकार है कि विचार भावना का मूल स्थान मन है जब परामें स्फूर्ण

का आघात होते ही उसका आंदोलन मस्तक में जाकर (योवुधेपरतस्तसः) जो बुद्धि के आगे आत्मा है उसका ज्ञान होना ही बुद्धि का कार्य है जिस प्रकार चित्त का स्फूर्ण प्रवाह धारा विचार के साथ शरीर के जिस २ भाग में एका ग्रहता होती है (लक्ष वैद) उसी भाग में रक्त की गति तेजी के साथ होकर ज्ञान तंतुओ का व्यापार होता है यह बात विज्ञान द्वारा सप्रमाणित हो चुकीहै और इसका हरेक मनुष्य भी तजुरबा कर सक्ता है किसी शरीर के भाग पर हथेली फिराते हुवे दृढ एका ग्रहता से जहां लक्ष वैद कियाजाय तो उस भाग में रक्त गति की तेजी का ज्ञान प्राप्त होजायगा और रूप कुरूप के देखने से नेत्रों में संकोच विकाश होता है मधुरादि अमल रसो का सम्पर्क होते मुख में लालका छूटना होता है और सुगन्ध दुर्गन्ध आदि का नाक से स्पर्श होते ही नाक का स्वर वन्ध कर लेते हैं इत्यादिक व्यापार के सिवाय बुद्धि में सर्वज्ञ केवल प्रतिभा आदि अलौकिक ज्ञान है। अब हमने प्रतिभा के ज्ञान को कह दिया है अब प्रतिभा के अभ्यास को कहेंगे।

प्रकरण—दूसरा।

(प्रतिभा का अभ्यास)

प्रतिभा के अभ्यास के लिये कहीं जाने की अथवा खोज करने की जरूरत नहीं किसी पाठशाला अथवा कालेज या विश्व विद्यालय वोरडिङ्ग हाउस आदि में रहने की जरूरत नही। यह अभ्यास वडा ही सरल और सुसाध्य है। यह

एक कल्पानात्मक मनो राज्य की अद्भुत सृष्टि है इसी लिये भागवान पातजलि ने कहा है कि (प्रतिभा द्वासर्वम्) अर्थात् प्रतिभा द्वारा ही सर्व सिद्धियां स्वमेव ही प्राप्त होती हैं अर्थात् बिना किसी प्रकार के क्रिया कर्म और उपदेश के और बिना किसी प्रकार के अपेक्षन के स्वमेव क्षण २ विद्युत के चमने के समान मन ही मन नई २ कल्पनात्मक ज्ञान शक्ति उत्पन्न होती हैं उस को ही प्रतिभा कहते है। यह एक विचार की वृष्टि श्रेणी है। प्रतिभा के तीन त्रिभाग बन जाते हैं ।

(१) माधुर्य अर्थात् चित को द्रविभूत करने वाला आनन्द (२) ओज्य। अर्थात्-चित को विशाल करने वाली चमत्कारिक शक्ति (३) प्रसाद्—सुनते ही चित से शब्दों का भाव प्रविष्ट होजाना ये प्रतिभा के तीन विभाग है देखा भौतिक साइन्स से भी मिल जाती है जैसे माधुर्य से चित्त में अग्नि कण उत्पन्न होते है और ओज से अग्नि कण प्रदिप्त होते है और प्रसाद से उनका चिकाश प्रकाश फैलता है अन्य भी मधुरता से बल प्रसन्नता ये प्रतिभा के विशेष रूप हैं यह एक क्षण २ में नये २ भाव व्यक्त करने वाली आकलन शक्ति बुद्धि सत्त्व का तत्व सार (अर्क) है। इस में संयम करने सेइस का साक्षात कार होताहै तब प्रतिभा शक्ति प्राप्त होती है। इसी को भगवान वशिष्ठ ने कहा है के वायु के स्पन्दन मात्रा ही से जैसे जल उछल कर तरग बनते हैं वैसे ही इसके अभ्यास के बलसे मन उछल कर प्रतिभा का रूप बन जाता है। इस प्रकार प्रतिभा शक्ति प्राप्त होने पर सब सिद्धियां बिना किसी प्रक्रिया के केवल प्रतिभा द्वाराही प्राप्त होती है जिस प्रकार

अरुणोदय के उदय होते ही सूर्य को सूचित करता है इसी प्रकार प्रतिभा का प्रादुर्भाव होते ही विवेक ख्याती महा सिध्दियां होती है वह जन्मान्तरों के चक्कर मिट कर सर्व-ज्ञता और केवल्य पद प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त होती हैं। अब आगे इसकी दो महा सिध्दियां हैं उनको कहेंगे।

प्रकरण तीसरा।

प्रतिभा सिद्धियां)

अब सिध्दियों को कहते हैं। सर्वज्ञ तत्त्व सिध्दि। अर्थात् सबको नियमत करने का सामर्थ और सब कुछ जानने की की सिध्दि मनुष्य की बुध्दि से है। इसी लिये बुध्दि सत्त्व और पुरुष के भेद साक्षात्कार रूप विवेक ख्याति में पूर्णात्मक लीन होने पर साधक को सर्वोप्रिय सर्वज्ञ तत्त्व प्राप्ति होता है। रज एवम तम से पुरुष का भेद तत्काल मालूम होता है बुध्दि सत्त्व के साथ पुरुष का अत्यन्त सादृश्य होने के कारण सत्त्व और पुरुष का भेद जानन महा कठिन है इस भेद को जान कर बुध्दि सत्त्व में संयम करके पुरुष का साक्षात्कार होजाने पर रज और तम रूपी मल क्षीण होने पर जिनको अपर वैराग्य दृढता से होजाता है तब शुद्ध सात्वविक पुरुष का शाक्षात्कार होता है तब सर्वज्ञता प्राप्त होकर सब भूत भविष्य वर्तमान आदि परिणाम के धर्मों को जान लेताहै और भूत भौवतिक पदार्थों को मूल कारण रूप प्रकृति पुरुष को जान सक्ता है इस उपरोक्ष ज्ञान को ही विवेक ख्याति कहते हैं। प्रकृति अंशों पर और बुध्दि के सत्व पर अधिकार

जमाने से पुरुष भिन्न होकर सब सर्वज्ञ नियन्ता बन जाता है सबका द्रष्टा दृष्य मनो वासना से पूर्ण दृश्यमान हो जाता है इस प्रकार इस तत्त्व को जान कर उस पर और उसके विषयों आदि अंशों पर अधिकार जमाने से अन्त करण में ऋत भरा नाम की परिज्ञा उदय होती है जिसके द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार (दर्शन) होजाता है। यही विषयों के विशोका नाम की महा सिद्धि है जिससे सम्पूर्ण शो का अवस्था रहित पुरुष की अवस्था रहित पुरुष की अवस्था हो जाती है।

प्रकरण चौथा।

कैवल्य प्राप्ति।

पुरुष की विभूतियों की चर्म सीमा में विवेकख्याति परम वैराग्य प्राप्त होने से अविद्या नाश होजाती है। अविद्या और विद्या यह दोनों माया के भेद है विध्या से कैवल्यप्राप्ति होती है और अविद्या से क्लेश कर्मो के संस्कार की प्राप्ति होती है इसी लिये अविद्या नाश होने से समग्रह कर्म रूप दोप बीज नष्ट होकर चित्त का लय होकर कैवल्य प्राप्त होता है इसी को महा सिद्धि कहते हैं। यह सिद्धि बुद्धि वृति इस लिये जड़त्व परिणामानीय अनात्म धर्मणीजो चीतिशक्ति रूप पुरुष से भिन्न है ऐसा पूण विचार संयम जान कर चित्त

रूगता प्राप्त करती है तब उसकी वृत्ति का समन होते ही महा चीति शक्ति का निरोध होकर असमपरिज्ञान समाधि की प्राप्ति होती है असमपरिज्ञात के अभ्यास से जब अविध्या रूपी संस्कार दोष बीज दग्ध होकर असीमता रूप कारण में उसका लय होजाता है जब चित्त फिर उदय नहीं होता इस प्रकार चित्त का पुरुष के साथ सदा के लिये सम्बंध टूटने से अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिर रहता है और केवल्य पद प्राप्त हो जाता है। फिर वह केवल्य में केवल्य पूर्ण में पूर्ण मोक्ष में मोक्ष देखता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त होने पर दृश्य रूप बुद्धि सत्व और मोक्ष दोनो प्रयोजन साध्य होके महा कारण में लीन होजाता है फिर सिद्ध दशा प्राप्त होकर अनादित जन्मोका सार्थक जीवात्मा परमात्मा का ऐकीयभाव आनंदित सच्चिदानन्द स्वरूप मे प्राप्त होकर ब्रह्मम्य ईश्वर ऐक्य परम मुक्त केवल्य भाव बन जाता है बस यही सर्व सिद्धियों का सार मनुष्य मात्रा में अन्तिम परम कर्त्तव्य का महा फल की चर्म सीमा है।

अध्याय सातवाँ ।

प्रकरण पहला ।

उपासना रूप सिद्धियां ।

प्रथम हमने क्रिया रूप सिद्धियां बतलाई फिर सत्व रूप सिद्धियां बताई फिर प्रतिभा ज्ञान रूप सिद्धि बतलाई अब हम आप को उपासना रूप सिद्धियों का वर्णन करेंगे। जिस

प्रकार वृक्ष के जड़ में पानी सींचने से वह पानी पत्र पुष्प आदि फलो में पहुंच जाता है वैसे ही उपासना करने से सर्व सिद्धियां साधक के समीप पहुंच जाती हैं जिस प्रकार वृक्ष के उपर डाला हुआ भी जल वृक्ष के मूल में पहुंच जाता है इसी प्रकार उपासना के ध्यान से वह उपासक उपास्य देव के निकट पहुच जाता है। इस प्रकार उपासना (भक्ति) के बल से भी सर्व सिद्धियों को प्राप्त कर सक्ता है। इस लिये अब हम उपासना की सिद्धियों का वर्णन करते हैं।

प्रकरण दूसरा।

(अष्टादस सिद्धियां)

कुल अठारह सिद्धियां हैं उन में आठ तो मुख्य हैं और दस गोण है। (१) अणिमा (२) महिमा (३) लघीमा ये तीन सिद्धियां देह से सम्बन्ध रखने वाली हैं। (४) प्राप्ति यह एक इन्द्रियों से सम्बंध रखने वाली सिद्धि है (५) प्रकाश यह इन्द्रियों के भोग और विषयों से. सम्बध रखने वाली सिध्दि है। (६) इशिता यह ईश्वरीद के ऐश्वरी तुल्य अधिकार रखने वाली सिध्दि है। (७) कामा वसयित्त्व और वशिता यह जिस २ बात की इच्छा हो उसको पूर्ण करने वाली इच्छेश्वर्रा सिद्धि है। इस प्रकार यह आठ सिध्दियां मुख्य हे। और अब दस मे से पांच गोण है और पांच क्षुद्र हैं। ऋतुमित्त्वे, क्षुधापिपासा निर्वृती, दुरक्ष श्रवण, दर्शन. परकाया प्रवेश, स्वछन्द, मृत्यु, सकल्प सिध्दियां गोण हैं और त्रिकालिक ज्ञान अर्थात् भूत भविष्य का

ज्ञान द्वन्द्वरहित अर्थात् शीत उष्ण आदि का समन, परिचित का ज्ञान पराये दूसरे के चित्त की बात जानना, स्थम्भन अग्नि जल विष गति, बुद्धि, सेना, शस्त्र, विधु वज्र आदि का अस्तम्भना अपराज्य स्वतंत्र विजय ये सिध्दियां क्षुद्र है। अब इन उपर वाली सिध्दियों का विशेष वर्णन करते हैं।

(१) पंच भूतों के सूक्ष्म शरीर में धारण करके तन्मात्राओं के सूक्ष्मत्त्व में उपासना करता है वह अणुरूप होके चाहे जहां संचार कर सक्ता है। महत्त्व में महानात्मा की ज्ञान शक्ति महत्त्व कार धारणा करके महत्त्व में उपासना करने पर साधक पृथ्वी आकाशादिकों को व्याप्त कर सक्ता है वायु अ दि भूतों के परमाणुओं में धारणा करके प्रमाण के रूप तथा काल के सूक्ष्मतत्व धारणा कर के साधक लघु से लघु और गुरु से गुरु हो सकता है। सात्विक अहँकार के मनो विकार में धारणा करके सर्व इन्द्रियों को उपाधि भूतात्मा में उपासना करने पर साधक सर्व प्राणियों की अधिष्ठाता रूप शक्ति को प्राप्ति नाम की सिध्दि को प्राप्त कर सक्ता है। क्रिया शक्ति प्रधान महतत्त्व में धारणा करने पर परमेष्ठी अव्यक्त में उपासना करके साधक परकाया प्रवेश कर सकता है। त्रिगुण मायाधीश्वर भगवान विष्णु में धारणा करके उसके व्यापक तत्त्व में एवं अन्तरयामी तत्त्व में मेरी उपासना करने पर साधक देहादि क्षेत्र प्रेरक शक्ति भूत इशिता सिद्धि प्राप्त करता है। नारायण रूप में धारणा करके उसके व्यापक तत्व विराट स्वरूप में उपासना करने पर साधक वशिता सिद्धि प्राप्त कर सक्ता है। निरगुण ब्रह्म में धारणा करके परमानन्द में उपासना

करने पर इच्छित फल दायनी कामा वाशित्व सिद्धि प्राप्त करता है। स्वेत दीप के प्रति में धारणा कर शुद्ध धर्म चित्त में उपासना करने पर षट् उर्मि अर्थात् क्षुधा पिपासादि देह धर्म नष्ट होजाते हैं। आकाश के अणुओं में धारणा कर के हंस सोंह में उपासना करने पर दूर श्रवण की सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्य की प्रभा मे धारणा करके त्राटक में उपासना करने पर दूर दर्शन की सिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् त्रिश्व दर्शन होता है। मन और देह को लीन करके निज के रूप में उपासना करने पर परकाया प्रवेश कर सक्ता है। पावो की ऐडी से गुदा द्वारा का संकोच कर प्राणको ब्रह्माण्ड के ब्रह्म रन्धर में लेजाकर फिर स्वर्ग की धारणा करके स्वर्ग विहार मे उपासना करने पर साधक अपनी स्वच्छन्द मृत्यु प्राप्त कर सकता है। इच्छित संकल्प मे धारणा धारण करके ईशत्व में वशित्व में उपासना करने पर साधक की आज्ञा को कोई भंग अथवा उलंघन नही कर सक्ता। चित्त के शुद्ध स्वच्छ में धारणा करके त्रिलोकी की बुद्धि में उपासना करने पर तीनों कालों का ज्ञान प्राप्त कर सक्ता है। शीत उष्णादिक के दुन्दो में धारणा करके उनके भावों में उपासना कर के साधक अपने शरीर पर दुंदो का आघात नही होने देता अर्थात् सरदी गरमी को सहन कर सक्ता है। अग्नि जलादि मे धारणा करके उनके अधिष्ठाता देवता में उपासना करने पर साधक उनका स्थभंन कर सक्ता है। ईश्वर की विभूति में धारणा करके षट् गुणैश्वरीयादि भावों में मेरी उपासना करने पर साधक अपराजीत होजाता है इस प्रकार इन सिद्धियों को उपासना के द्वारा प्राप्त कर सक्ते हैं।

अध्याय आठवां ।

(भौवतिक सिद्धियां)

प्रकरण पहला ।

अब प्रोयोगिक सिद्धियों का वर्णन करते हैं ।

हमारे यहां प्राचीन काल से ही हमारे पूर्व जनोंने कई अक्षर शब्द, वाक्य और अँक आदिसे यंत्र मंत्र तंत्र आदि बन रखे हैं जिन के प्रयोग हम से हमारे कामनाओं की सिद्धियां प्राप्त कर सकते है इन प्रयोगोमें अपार अलौकिक शक्तियों भरके अनुभूत बनाये हुवे हैं। परन्तु हम हमारे दुरभाग्य से उनमें समाई हुई अपार रहस्य अथवा गुढ भाव नहीं जानते परन्तु आज कल प्रत्यक्ष हमारे सामने कैई भौवतिक बल के यँत्रो आदि की कला कौशल्यता के अदभूत अविष्कार प्रयोगो को हम देख रहे हैं। तो भी हमारा लक्ष उनकी ओर आकृ-षित नहीं होता जिस वक्त हम चंचल और अचल अर्थात् पोजिटीव और नैगीटीयु इन दोनों की क्रियों को जान लेंगे उस वक्त हम यंत्र मंत्र तंत्रों का तत्काल सिद्ध दर्श दिखा देंगे जब तक इन दोनों की योग के प्रयोग की क्रिया के संयोग को नहीं जानते वही तक यह भौवतिक सिद्धियां हमसे अलग हैं। ये यंत्र मंत्र तंत्र सैकड़ों क्या हजारोकी तादादमें हमारे पास मोजूद होने हुवे भी हम उनका यह किंचित भी उपयोग नहीं कर सकते हैं इसी लिये हमारी उन पर से श्रद्धा उठ गई और

उनका प्रयोग सिद्ध करना तो दूर रहा परन्तु हम उनको निरे थोथे पोथे के बैंगन समझ कर उसकी चरचा तक करनी छोड़ दी।

अब हम सिर्फ एक प्रयोग को ही लिखेंगे जो सिद्ध और अनुभूत है हमारे पास हजारों कोटि प्रकार के यंत्र मंत्र तंत्र आदि के प्रयोगो का सग्रह है परन्तु उनको यहां लिखने से पुस्तक बढजाती है और छापाखाना की पूरी जरूरत है इस लिये मैं इन सिद्धियों के प्रयोगों की अन्य एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना करूंगा उसको आप प्राप्त करलेना बशर्ते है कि मैं इस भूलोक में यदि वर्तमान रहा तो। क्योंकि अन्य लोगों का वैभव देखते इस लोक का तुच्छ है क्योंकि वैभव के बारे में अन्य लोगोंका मुझको अनुभव होचुका है जिसकी वजह से मुझको उदर की अधिक लालसा आकर्षण रहती है परन्तु इस लोक में जो स्मृति को छोड जाने के लिये जो लालसा है वह पूरी करने के ही लिये मैं इस लोक में महानु दुखो के युद्धस्थल में गिरा हुवा होते ही केवल अपनी स्मृति के ही अभिप्राय से अपनी लालसा पूरी करता जा रहा हूं और भूलोक के भौतिक तापों का अनुभव लेता जा रहा हूं ताके अन्य लोकों में इस लोक की व्याख्या करूगा इसी लिये मैं इस ग्रन्थ की रचना करता जारहा हूँ अब हम एक (२०) अक्षरा अँक संयुक्त यंत्र के प्रयोग को लिखते हैं जिस के प्रयोग के सिद्ध करने से रोग निर्वाण अर्थ सिद्धि शारीरिक और पठन पाठनादि मानसिक औरधन धान्य आदि संसारी अनेक कार्य बहुत सुगमता से पूर्ण हो जावेंगे।

ॐ ऐं ॐ

श्रीं	१	६	१०	ह्रीं
क्लीं	१४	७ २ ॐ ३ ८	६	श्रीं
ह्रीं	५	११	४	ह्रीं

ॐ क्लीं ॐ

इस यत्र को बहुत ही शुद्धता और सुन्दरता पूर्वक अच्छे कागज पर लाल स्याही से लिखकर कार्ड बोर्ड पर चिपका कर कुछ दिन नित्य सामने रखना चाहिये और इस पर त्राटक का संयम लक्ष वेद की दृष्टि जमजाने पर फिर इसका ध्यान मे लक्षवेद करके योतन द्वारा सर्व कामनायें पूर्ण करलेनी चाहिये।

इस में ॐ तो ॐकार प्रवेद सर्वम् है ही। (ऐं) यह वाकय सिद्धि मत्र है। (ह्रीं) यह चिंतामणी मन्त्र है। (क्लीं) यह संकल्प सिद्धि मंत्र है। (श्री) यह सोभाग्य सिद्धि मत्र है (ॐ, का वास सम्पूर्ण शरीर में है ऐंका वास कंठ में है (ह्रीं) का वास हृदय में है (क्लीं) का वास नाभी में है और (श्री) का वास मुख में है। ऐसे ये (ॐ, ऐं, ह्रीं क्लीं, श्रीं,) इन अक्षरो के ही सादृश्य शरीर कंठ हृदय नाभी और मुख की रचना प्रकृति है परा का उदय (क्लीं) से पश्यन्ति का उदय (ह्रीं) मध्यमा का उदय (ऐं) से और वैखरी का का उदय (श्रीं) से है और इन सब का उदय प्रकाश पमार

कार्य ॐ से है। जब इन बीजा अक्षरों का तत्व भेद होकर जिस २ अक्षर स्थानों पर उनका संयम होके गया वहां होजाती है तब फिर किसी कार्य के सम्पादन में संशय क्या है। अब अक्षरों को कहते हैं जैसे ही इसके प्रथम खाने मे एक है वह ब्रह्म का द्योतक है दूसरे खाने में नव है वह नव निद्धियों का द्योतक है तीसरे खाने में १० है वह (अत्यतिष्ठदशाङ्गुलम) अर्थात् अनन्तत्व का द्योतक है। चौथे खाने मे १४ है वह चवदह भवनों का द्योतक है पांचवें खाने में ॐ के चहु और प्रथम सप्त २ व्याहीती दो—बाह्य और अन्तर जगत है और तीन है सो त्रिगुण है और आठ है सो पञ्च भूत मन बुद्धि अहंकारघिरे हुवे है छटे खाने में छ है वह अन्तर जगत मे (काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर के द्योतक है। सातवे खाने में पांच है वह पंचतत्वों के द्योतक है आठवे खाने में इग्यारे है वह दस इन्द्रियों और मन के द्योतक है। इस प्रकार इसका मर्म सार यह है कि आत्मा में नव निधी धन माल खजाना भरा हुवा है और वह चवदे भुवनों में व्याप्त होकर भी दस अंगुल बाकी है और अनन्त है ॐ है उसको चारों तरफ से सप्त व्याहीती (सर्व खल्विदं ब्रह्म) से बना हुवा है अन्तर बाहाम्य जगत त्रिगुण आत्मक अष्टधा प्रकृति से घिरा हुवा है जिस के जानने से काम क्रोधादि षट ऋतुओं का नाश होकर पच तत्वो पर अपनी सत्ता जम जाती है और चारों पदार्थों धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ती होती है साधक जब इस यन्त्र का पूरा अर्थ जान कर द्योतन का भाव पूर्णतया स्थिर कर लेगा तो फिर किसी कार्य में वह अवश्य विजय प्राप्त कर सक्ता है। इस प्रकार यंत्र मंत्र तंत्रों के अनेक प्रयोग हैं परन्तु विना प्रयोजन के जाने प्रयोजक कदापि सफल मनोरथ नहीं हो सक्ता है।

॥ इति श्री सिद्धिसर्गः ॥

वर्णन करना होगा और पारद से किस प्रकार सोना चांदी आदि धातु बनाने की अनेक विधियां समय २ पर दी जावेंगी इसके अलावा शरीर उपयोगी रोगों को दूर करने के पारद से ही अनुभूत योग (नुसखे) दिये जावेंगे यह मासिक पत्र वैद्यों के परम उपयोगी होता है जो महाशय शीघ्र ग्राहक बने केवल चन्दा १) साल होगा। आज ही एक रुपया भेज कर ग्राहक श्रेणी में नाम दर्ज करालेवें और अगर आपको पारद के योग याद हों उनको हमारे पास भेजिये।

वैद्यों और रोगियों के लिये।

हमारे चमत्मकार चिन्ता मणी औषधालय में तत्काल चमत्कार बताने वाली सिद्ध और अनुभव औषधियां तय्यार रहती हैं जो रोगों पर अपना अचूक असर करती हैं अर्थात कभी भी नहीं चूकती हैं। आप एक दफा यदि किसी भी रोग से पीड़ित हो तो हम से इलाज कराकर तत्काल चमत्कार देखिये ताकि आप को खुद विश्वास हो जावे। चिकित्सा आयुर्वेद शास्त्र पद्धती के निमानुसार की जाती है। इसके अलावा इस औषधालय में रस रसायन चन्द्रोय सुवर्ण वंग आदि कुप्पिपक्व रसायन और सुवर्ण परपटी ताम्र परपटी पंचामृत परपटी विषय परपटी लोह परपटी रस परपटी हेम गर्भ रस रत्न गर्भ रस आदि बने हुये रसायन क्रिया द्वारा तय्यार रहते हैं इसके अलावा लोह भस्म अभ्रक भस्म बंग भस्म ताम्र भस्म सांभर श्रंग भस्म आदि सब प्रकार की भस्में विधी युक्त बनाई हुई तय्यार रहती हैं। और उचित मूल्य पर दी जाती हैं। जङ्गल की जड़ी बुटियां भी हमारे पास स्टाक में भरी रहती है इस लिये वैद्यों और

रोगियों के लिये थोक भाव में भी देने के लिये तय्यार रहती हैं इसके अलावा चूर्ण काथ गुटीका अवलेह तेल घीरत आसव अरिष्ट आदि भी मिलते हैं और आर्डर देकर भी तयार किये जाते हैं हरएक देशी यूनानी दवाओं के नुखसे भी सब से सस्ते बांधे जाते हैं इसलिये एक दफा हम से दवा खरीद के लाभ उठाइये।

नोट—चन्द्रोदय के खरीदारों से हमारी सलाह है कि यदि वह १० तोले का खरीद एक साथ होगा तो उसके प्रत्यक्ष बैठाकर विद्धि पूर्वक बना कर दे सकेंगे बशरते कि वह कीमत पूरी देवे इसके लिये वह हम से लिखा पढी करे और भी जो दवा अथवा रस रसायन जो लेना हो वह यदि अपनी आंखों के सामने बनाकर देवी जाएगी इसके अलावा कई प्रकार के खनिज पदार्थ भी हम खुद जाकर पहाड़ में से खोद कर लाते हैं वज्र अभ्रक व गोदन्ती हरताल भी हमारे पास से मंगावे मन्डूर भी हमारे पास १००० वर्ष की पुराने मिलते हैं और लोह जरेखतर मिलते हैं जिसको रसायन के पदार्थों के मुतालक जरूरत हो वो एक दफे हम से लिखा पढी करे ताकि फायदा होगा।

लिखा पढी करने का पता—

उपाध्याय जसराज वैद्द,

चमत्कार चिन्तामणी औषधालय,

मकराना चौक जोधपुर।